प्रवचन पीयूष

प्रवचन तरंग

तरंग संकेत पृष्ठ

अध्यात्म वा

अध्यात्म विज्ञान

अतिशय मंगल स्वरूपाय परम कल्याण कारिणे।
सर्वशक्तिमददेवाय श्री रामाय नमो नमः।।

दो मार्ग

देवियो और सज्जनो! यह मनुष्य जीवन बड़ी दुर्लभ चीज़ है
इसको पाकर कमाई करनी चाहिये। दुकान पर कोई बैठा हो त
उसको कमाई करनी चाहिए। दुकान जुए के लिए नहीं, ताश
लिये नहीं। दुकान तो कमाई के लिए होती है। यदि किसी
किसान को बीज दिया तो वह उस बीज को बीजे तो वह सौ गुना
पर चिड़ियों के आगे डाल दे तो यह किसान की बुद्धिमत्ता नही
आयु के एक-एक पल के दाने को विषयों के हेत जो फेंक देते हैं
प्राणी कितने मूढ़ और भाग्यहीन हैं? बड़ा प्रयत्न करना चाहिये
उत्तम प्रयत्न यह है कि अपने जीवन को राम के मार्ग, राम के प
पर चलाना चाहिये। दो मार्ग हैं एक स्वयश का और दूसरा प
यश का। एक आनन्द सुख मनाने का और एक कल्याण का
किसी अच्छे पण्डित ने किसी सभा में यह कहा कि दो रास्ते है
एक ईश्वर का और एक माया का। माया के मार्ग में प्रलोभन है
आदमी उसमें खिचता है पर अन्त में उसमें कष्ट है। मच्छली आ
को देख कर ही आती है तो कांटा मुंह में फंस जाता है। कबूत
और तीतर पकड़ने वाले जाल बिछाते हैं, दाने डालते हैं। तो फि
डार उसमें आती है। आकाश का रहने वाला स्वतन्त्र पक्ष
प्रलोभन के कारण फँस जाता है। प्रलोभन के पीछे दौड़ना अप
आपको हनन करना है। प्रलोभन का मार्ग अन्त में कष्ट की ओ
ले जाता है। परिणाम होता है दुख और चिन्ता। राग, द्वेष औ
कलह में माया पनपती है। माया का मार्ग

हानिकारक होता है। जो पुरुषार्थी और उद्यमी है वह कभी भी भूखा नहीं रहता। आलसी पास रखी हुई चीज़ को भटकता रहता है और पुरुषार्थी के लिये हजारों कोस की चीज़ भी समीप ही होती है।

माया का मार्ग आत्मा के लिये बड़ा हानिकारक है। किसी मेले में चार आदमी गये। एक ने कहा मेरा जी तो खेल देखने को चाहता है। सो जिधर वीरता के खेल हो रहे थे उधर वह चला गया। एक स्वार्थी ने कहा मैं तो कुछ खाऊँगा। तीसरे ने कहा कि मेरी तो यह रुचि है कि मेले में जरा मस्ताना होकर घूमूं। वह शराब की दुकान पर चला गया। चौथे ने विचार किया कि यह भक्त लोग जो गीत गा रहे हैं और जो किसी से कुछ मांगते नहीं हैं उनके पास बैठूं और उधर चला गया। सायंकाल सब इकट्ठे हुए। एक का बुरा हाल, मुंह में झाग, नशे में चूर, बार बार उठाते हैं, पर वह बार बार गिरता है। खेल तमाशा देखने वाला, जिसने दाव पेच की खेलें देखीं, उसने जोश की बातों का चर्चा किया और उसके जी में आया कि मैं भी दाव पेंच सीखूं। और यही बात उसने शाम के समय साथियों पर प्रकट की।

तीसरे ने कहा कि दो रुपये की मिठाई खरीदी पर अब मुझे प्रतीत हुआ है कि वह रंगदार, ऊपर से अच्छी पर अन्दर से बहुत खराब। न जाने क्या डाल रखा था? खाते ही डकार, कै और बुरा हाल। गिर गया। भले आदमी कोई थे, वे हस्पताल ले गये। दवाई दी। बच गया। हैज़ा था। पेट में दर्द अब भी है। दिन चढ़े उसने कहा कि मैंने कानों को हाथ लगाया कि मैं मेले में कोई चीज़ न खाऊँगा।

चौथे ने कहा कि मैं सत्संग में गया था। जो सुख मुझे आन्तरिक हुआ वह जन्म भर कभी नहीं हुआ। खेलने वाला कहे वह सुख कौन सा है, क्या तुम्हें अब भूख नहीं लगेगी? उसने कहा कि अन्दर ही जानता है। मेरे मन में वैराग्य का भाव पैदा हुआ।

तो मुझे कहना यह था कि प्रलोभन का मार्ग तो मिसरी ही है जैसे मेले में रंगदार मिठाई। माया का मार्ग अन्धेरे का है, अज्ञान का

है। इसमें हानि, लाभ का भी विचार नहीं रहता। मृग गीत पर मस्त होकर दौड़ कर जाता है और गोली खाता है। पतंगे चमकती वस्तु पर, बिजली या बत्ती पर, प्रलोभन के कारण जाते और भस्म हो जाते हैं। यह दुराचार का मार्ग और हत्या का मार्ग है।

दूसरा मार्ग, पण्डित ने बताते हुए कहा कि दूसरा मार्ग सर्वश्रेष्ठ मार्ग है। आत्मा परमात्मा का मार्ग है। उसमें आंखों का, कानों का प्रलोभन नहीं। केवल आन्तरिक वृत्ति से बात आती है। जो उसके जीवन को ऊँचा बनाती है। जो नर नारी इस मार्ग पर चलते हैं उनकी सभी प्रकार की कमी दूर हो जाती है। वे बहुत अच्छे रहते हैं। उनको आनन्द हो या कुछ भी हाल हो, हर हाल में स्वाद ही आता है।

कुछ सज्जन कार में नहर के किनारे जा बैठे। खाने की चीज़ें निकालीं और चर्चा शुरू की कि देखो रसोइये ने चटनी और अचार दिया ही नहीं। खाने में कोई स्वाद ही नहीं है। घर वालों ने यह क्या दे दिया? यह मट्ठी तो गले में अटकती है। वहीं नहर के किनारे एक किसान भी आकर बैठ गया। उसने सोचा एक बज गया है, रोटी खाऊं। और अपनी रोटी निकाली, प्याज़ निकाला और मज़े से खाने लगा। एक ज्ञानी वहाँ से जा रहा था। उसने कार वालों की बातें सुनीं और कहने लगा, इतनी चीज़ें तुम्हारे लिये बनाई गई हैं। घर वालों और रसोईये ने मेहनत की है परन्तु तुम खोट निकाल रहे हो। वे कहने लगे कि स्वाद नहीं आया। ज्ञानी ने कहा कि यह स्वाद की बात उस किसान को क्यों नहीं पूछ लेते जो प्याज़ से रोटी खा रहा है।

वे उस किसान से कहने लगे, "क्या कारण है जो हमें स्वाद नहीं आया"? किसान ने कहा, 'स्वाद क्या खाक आता। स्वाद तो मेहनत करने से जो भूख लगती है उसमें होता है। और धन्यवाद सहित जो मिले उसे खाने में होता है। तुम्हारी मट्ठियों पर जिन्हें खाते हुए तुमने धन्यवाद तो दूर, कोरे खोट ही खोट निकाले, मेरी नज़र तो उन पर जाती थी पर मन नहीं जाता था। मुझे तो पराये परांठों से अपनी रूखी सूखी अच्छी।"

तो जैसे स्वाद का पता भूख लगती है उसमें होता है और बिना भूख बहुत पदार्थ खाने पर भी पता नहीं चलता। तो जो आन्तरिक सुख होता है वह निराली चीज़ है। वह माया के मार्ग में नहीं मिलता। माया का मार्ग तो स्वभाव से प्रलोभन का मार्ग है। वास्तव में साधारण व्यक्तियों का इतना दोष भी नहीं। उन्हें सत्संग नहीं मिला।

एक स्त्री (देहात की) गंगा किनारे माला फेर रही थी। एक बड़े घर की स्त्री बड़े वस्त्र पहने हुए उसके पास आकर कहने लगी, तुझे एक घंटे से माला फेरते हुए देख रही हूँ क्या इससे तुझे धन मिल जायेगा? गाँव की स्त्री ने कहा मेरे लड़के बड़े परिश्रमी किसान हैं। महाराज ने मुझे सब कुछ दिया हुआ है। यहाँ नीलधारा के समीप जो सुख है वह अन्य वस्तुओं में नहीं। धनी स्त्री ने पूछा, राम नाम कहने में क्या रखा है? उसने कहा यह तो करने से अनुभव होता है, तुझे कैसे वह रस बताऊं? यह तो करने की बात है, कहने की नहीं। तुझे यदि चाव है तो किसी सन्त से विधि पूछ कर करो। उस की शान्ति देखकर उसे चाव पैदा हुआ। खरबूजे को देखकर खरबूजा रंग बदलता है। वहाँ गंगा जल लेकर संकल्प किया, एक व्रत लिया। सोचा कि ताश खेलने में जो घंटों समय नष्ट होता है, सहेलियों में जो अनाप शनाप चलता है वह सब बन्द हो जायेगा। कहने लगी मैं जप करने में आलस कर गई यह सोच कर कि जप में क्या रखा है और बाज़ारों में यूँ ही घूमने में उमर बिता दी। तुम्हें देखकर चाव हो गया। उस में इतना परिवर्तन देखकर उसके सम्बन्धियों पर बड़ा प्रभाव पड़ा। पूछने लगे यह सब कैसे हुआ? बोली श्री राम नाम के जाप से। उसकी वाणी में बल था। कहने का प्रभाव हुआ।

आत्मा में ही सब सुख का संचार होता है। और आत्मा परमात्मा का मार्ग ही कल्याण का मार्ग है और यह बहुत ही उत्तम मार्ग है।

अध्यात्म विद्या

आत्मा को लक्ष्य रख कर जो बात की जाये वह अध्यात्मवाद है। हिन्दू धर्म से भिन्न धर्मों में केवल विश्वास पर बल दिया गया है और यही मुक्ति का साधन माना गया है। हिन्दू धर्म में आचार और विचार दोनों हैं। विचार में विश्वास भी आ जाता है। आचार व्यावहारिक जीवन है जिसे सब संसार देखता है। अध्यात्मवाद एक विज्ञान है और उसी की रीति पर चलता है। पर यह भौतिक विज्ञान से भिन्न चीज़ है। विज्ञान वह चीज़ है जो परीक्षण करने पर पूरी उतरे। अध्यात्मवाद विज्ञान-मूलक है, केवल तर्कमूलक नहीं। तर्क कल्पना की बात होती है। अटकल गलत भी हो सकती है। पर विज्ञान अनुभव की बात होती है और ठीक ही हुआ करती है। विज्ञान कुछ एक को होता है, बाकियों के लिये श्रद्धा की बात होती है अर्थात् उसके लिये शब्द-प्रमाण की बात हो जाती है। श्रद्धा अन्धी होती है पर ज्ञान अनुभव से होता है। श्रद्धा जल्दी हो जाती है। प्राकृतिक विज्ञान समय माँगते हैं पर अध्यात्म विज्ञान में यह अनोखी बात है कि यह भगवत्कृपा से तुरन्त भी प्राप्त हो सकता है। यह भी समय और श्रम मांगता है किन्तु यदि भगवत्कृपा हो जाये तो यह शीघ्र भी प्राप्त हो जाया करता है।

अध्यात्म विद्या दूसरी विद्याओं के समान एक प्रकार की विद्या ही है। दूसरी विद्याओं में अपने से भिन्न पदार्थों को जाना जाता है और उसके साधन हैं सम्मिश्रण और विश्लेषण। सम्मिश्रण दो या अधिक पदार्थों के मिलाने को कहते हैं और विश्लेषण उन पदार्थों को अलग करने को कहते हैं। अध्यात्म विद्या आत्मा को अर्थात् अपने आपको जानने की चीज़ है और यह सम्मिश्रण और विश्लेषण द्वारा नहीं जानी जाती। यह जानने वाले को जानने की बात है। किसी दूसरे को जानने की नहीं। यह अनुभव की चीज़ है किन्तु भौतिक विज्ञान के समान परीक्षण द्वारा नहीं दिखाई जा सकती।

पदार्थ-विद्या-वेत्ता (Scientists) इसके सम्बन्ध में प्रायः उदासीन हैं। कुछ एक कहते भी हैं तो बहुत थोड़ा। कुछ इसके

विपरीत भी कहते हैं। कोई-कोई इसके अनुकूल भी बोलते हैं। अध्यात्मवादी भी अधिक नहीं बोलते। वे केवल अधिकारी को ही बताते हैं। उसका तरीका ही यही है। सभा अथवा जन समूह में नहीं कहते क्योंकि समक्ष कार्यान्वित करके तो दिखाया नहीं जा सकता।

युक्तिवाद

आर्यसमाज वाले युक्ति वाद बरतते, पर युक्ति जो हुई वह भी बुद्धि की बात। जानी हुई बात कुछ और होती है। उपासना में प्रार्थना बड़ी चीज़ है। हम जो राम नाम कहते हैं, यह भी प्रार्थना है। तो रात दिन हम प्रकृति में—भौतिक वाद हम पर सवार है। इसलिये यह प्रार्थना जो है बड़ी अच्छी चीज़ है। प्रकृति को आराधन करने से तो अन्ततः प्रकृति बलवान, पर भगवान को याद करने से आत्मजागृति हो जावे। इस का यह अर्थ नहीं कि आपकी संसारी यात्रा खराब हो जावे। इसमें न वैराग्य न आडम्बर, न वह त्याग जिसको बहुत लोग त्याग कहते हैं। भक्ति मार्ग में समझो यह विचार करना कि यह है भगवान के देव द्वार का दास बनाने का मार्ग। जितने महात्मा भक्ति वाले हुए हैं उन्होंने अपने को भगवान का दास ही समझा। हमारे इस युग में महात्मा गांधी यह बड़े आदमी हुए। यह देश डिक्टेटर शक्ति से काबू नहीं आ सकता किन्तु इसको आत्म शक्ति ने इनके अधीन बनाया।

अध्यात्मवाद कहीं भी किसी भी जगह मिले, वह हिन्दी में हो, अंग्रेजी में हो, किसी भी अन्य भाषा में हो, सब एक ही है। मतों में साम्प्रदायिकता होती है। अध्यात्मवाद में नहीं।

अध्यात्मवाद दूसरे देशों में भी ऐसे ही। कोई अभिमान नहीं कि दूसरे देशों में नहीं पर यह बात सच्ची है कि यहाँ के लोगों ने (भारत वासियों ने) आत्मा परमात्मा को समझने की बहुत पहल की है। मेरा अपना अध्यात्मवाद तो एक साईंस की पद्धति पर,

बाकी दर्शनशास्त्र (philosophy) कुछ और। इसमें (दर्शन-वाद में) गहराई बहुत नहीं।

अध्यात्म विद्या में वैज्ञानिकता पूर्ण रूप से है। अनुभव करने पर शास्त्र वर्णित बातें सत्य मालूम होती हैं। रामोपनिषद् कहता है कि राम नाम के शब्दोच्चारण से कल्याण हो जाता है। एक बार के कहने से मन मुक्ति हो जाती है। उसके लिए भावना भी ऊंची चाहिए। भाव परायण होकर जप करने से आत्मा ऊँचे लोकों को स्पर्श करता है।

महर्षि लोग कोई अनुमान करने वाले नहीं थे। उन्हों ने जो कुछ भी वर्णन किया है वह अनुभव करके किया है। उपनिषद्कार मतवादी नहीं थे। उन्हों ने अपने अनुभव वर्णन किये हैं। असली अग्निहोत्र अपनी वृत्तियों को हृदय की अग्नि में होम करना है।

भारत वर्ष का अध्यात्मवाद मौलिक है और सर्वत्र विस्तृत हुआ है। इसमें वर्णित सच्चाइयां गणित शास्त्र के समान ठीक हैं। हमारा ध्येय सत्य है। उसका जानना ज्ञान से होता है। यह आत्मा अपने स्वरूप को पा कर खिल जाता है। यह उपनिषद् का वाक्य है जो सत्य है।

नाम साधन

अध्यात्म विद्या को प्राप्त करने के सभी अधिकारी नहीं होते। दूसरी विद्याओं में भी यह बात है। सभी में यह योग्यता नहीं होती क्योंकि बुद्धि भिन्न-भिन्न प्रकार की होती है। कोई विरला ही इस योग्य होता है। इसमें अपनी प्रकृति को बदलना होता है जो सरल काम नहीं है। शरीर की प्रकृति को ही बदलना बहुत कठिन है और आत्मा को – जिसे न जाने किस काल से प्रकृतिमय समझता आया है – जागृत करना, उसको स्व-स्वरूप में लाना और भी कठिन है। इस लिये इस मार्ग पर पूरी विधि और तत्परता से चलना चाहिए। सीखने वाले में पूर्ण निश्चय और सावधानी होनी चाहिए और सिखाने वाले में भी इच्छा शक्ति की प्रबलता होनी चाहिए। जैसे दूसरी विद्याओं के परीक्षणों में हानि हो जाने की

सम्भावना होती है – अपने को कोई चोट लग जाना आदि – इसी प्रकार इस मार्ग में भी विघ्न होते हैं। इसलिए इस मार्ग में भगवान को हृदय में स्थापित करना चाहिए और समझना चाहिए कि जब स्वयं देवाधिदेव भगवान मेरे हृदय में विराजमान हैं तो अब कोई विघ्न बाधा तथा भय मेरे पास नहीं आ सकते। और ऐसा ही होगा। भगवान को हृदय में उनके मांगलिक नाम द्वारा स्थापित करना चाहिए। यही हमारा मार्ग है और इसी को नाम-योग कहते हैं।

आत्मा स्वतः प्रकाश है। यह स्वयं अपने आप को जानता है। यह विद्या दूसरी विद्याओं से निराली है। हम आत्मा हैं, हम जानने वाले हैं इस धारणा से आत्म-ज्ञान होता है। यह है अपने आप को स्थिर करना "मैं हूँ"। इस ज्ञान में कोई भ्रान्ति हो तो उसको दूर करना चाहिए। यही अध्यात्मविद्या का काम है और इसके अनेक साधन हैं – हठ योग, ज्ञान योग, अष्टांग योग, कर्मयोग, आदि आदि। प्रश्न किया जाता है कि क्या इस मार्ग में व्यक्ति अपने आप चल सकता है या किसी की सहायता की आवश्यकता होती है। साधारणतया यह समझा जाता है कि किसी दूसरे की सहायता की आवश्यकता है। पर ऐसे भी व्यक्ति होते हैं जो अपने आप ही चल कर लक्ष्य पर पहुँच जाते हैं। पर वे बहुत विरले हैं। इसलिए साधारण जनता के लिये सीखने का ही मार्ग है अर्थात् सिखाने वाले की आवश्यकता है। सिखाने वाला मार्ग पर डालता है पर जो कुछ बताता है उसी को मार्ग व लक्ष्य नहीं समझ लेना। ज्यों-ज्यों उस पर चला जायेगा अपने आप मार्ग तय होगा और लक्ष्य आ जायेगा। किसी व्यक्ति को अध्यापक बनने का अधिकार है, परमेश्वर बनने का नहीं। यदि वह ईश्वर बनता है तो वह अपराधी होता है। जो लोग उनको ऐसा समझते हैं उनकी दृष्टि रुक जाती है और वे संसार तक ही रह जाते हैं। क्योंकि उन्होंने संसार को ही आगे रखा है।

त्यागवाद

संसार के वादों में त्यागवाद भी एक है। जिसके कारण जीवन को नीरस बताया गया। त्याग को महत्त्व दिया गया। इस संसार को दुःख-आलय बताया गया, किन्तु अब यह एक ऐतिहासिक बात ही रह गई है।

यह भी बड़ी भली बात हुई कि लौकिक-साहित्य और इतिहास का प्रभाव श्रुतियों पर नहीं आया। श्रुति इस प्रभाव से निर्मल ही रही। त्यागवाद सदा ही किसी न किसी रूप में हिन्दू-संस्कृति का एक अंग रहा है। यों तो अनेक वाद भारत पर छाये रहे हैं जिनका प्रभाव साहित्य पर स्पष्ट रूप से आज भी दिखाई दे रहा है। किसी भी जाति ने शायद ही इतनी गुलामी सही हो जितनी भारतवासियों को सहनी पड़ी है। इसका मूल कारण यह रहा है कि उनमें जाति-जीवन, जाति-गौरव की जोत नहीं जगी थी। तभी वह दासता को सहती रही।

त्याग का निरूपण ईशोपनिषद् के प्रथम सूत्र में ही है 'तेन त्यक्तेन भुंजीथा' हे भगवान! यह समस्त सृष्टि तुम्हारी ही है। सब सृष्टि परमेश्वर राम की ही है। मैं तो उसे 'त्वदीयं वस्तु गोविन्द' रूप में ग्रहण कर रहा हूं।

शरणागति

भक्ति मार्ग में शरणागति का बड़ा महत्त्व है। पूर्वकाल में याज्ञिक लोगों ने इस भाव को अपने दैनिक जीवन में पूर्णरूपेण उतार लिया था। गृहस्थ धर्म में भी यही वृत्ति है। सभी का अपना नियत भाग का निर्धारण होता है। अपने समस्त संचय का भाग करना एक सनातनी प्रथा है। ऋग्वेद और गीता में भी यही संकेत है कि जो संचय के लिए संचय करता है वह अपना नाश ही संचय करता है। जो अकेला आप खाता है वह तो पाप ही खाता है। यह परमेश्वर का ही सब कुछ है, मैं तो उसका एक भोक्ता मात्र हूं, यह भावना बड़ी ऊँची है।

चारों वर्णों के नियत कर्म भगवान की पूजा है। सभी मानव अपने नियत वर्ण का काम करते हुए मुक्ति के अधिकारी होते हैं। भगवान ने स्वयं इस बात का कथन गीता में किया है।

समस्त अर्जित ज्ञान और शक्ति भगवत्प्रीत्यर्थ उपयोग हो यही भक्ति मार्ग का सार है, देवपूजन है। यह धर्म त्यागमय है, किन्तु यह त्याग शरणागति है। शरणागति का भाव बड़ा उच्च है।

अवतारवाद

अवतारवाद भी एक प्रतीकवाद है। थियोसोफिकल सोसाइटी ने यह परीक्षण किया कि अवतार बनाया जा सकता है। एक व्यक्ति को विशेष विचारों से भरा गया। माध्यम बनाकर ऊंची आत्मा बुलाई जा सकती है इस विचार का बड़ा प्रचार किया किन्तु वह अवतार न बना सके। ऊंची आत्माएं न बुला सके। छोटी आत्मा तो आ सकती है। ऊंची आत्माएं प्रायः नहीं आतीं, आती हैं तो ठहरती कम हैं। वह अवतारवाद जो इस सोसाइटी का था असफल हो गया।

उच्चात्मा का कोई माध्यम बन सकता है। यह कोई बड़ी बात नहीं। सम्भव है कभी कोई माध्यम बन गया हो। कभी कभी लोहे का यन्त्र भी हमारी भाषा बोलने लग जाता है। इस प्रकार हमारे जड़ शरीर में भी विश्वात्मा की वाणी बोल सकती है, यह मेरा विचार है। माध्यम की आत्मा शान्त होती है। भूत प्रेत बुद्धि पर अधिकार जमाते हैं। विश्वात्मा का संकल्प स्फुरित होता है। माध्यम के मुख से आप ही बातें निकलती हैं। इस प्रकार विश्वात्मा बोल जाये तो कोई आश्चर्य की बात नहीं।

परमेश्वर विज्ञान के द्वारा माने हुए सत्य के समान है। पौराणिक अवतारवाद वैदिक काल में भी था। ऋग्वेद में भगवान कहते हैं, मैं देवों और मनुष्यों द्वारा जुड़ा हुआ बोलता हूँ। मैं ब्रह्मद्वेषी के लिये धनुष को तानता हूँ। ऐसी बातें होती होंगी तो

हीं कही गईं। इसलिये अवतारवाद को गपोड नहीं मानना चाहिये। यह हिन्दुओं में तो आदिकाल से है। ईश्वर पैदा नहीं होता है। उसका पैदा होना भागवत में भी नहीं। यह उस देवाधिदेव का आदेश होता है। यह दूर से भी हो सकता है और निकट से भी।

विश्वात्मा का अवतरण होता है। मनुष्य शरीर तो एक यन्त्र है। इस यन्त्र में कोई देव बोल जाया करता है। जिनमें महाशक्ति का अवतरण हुआ, उनको परमेश्वर का अवतार माना गया। किसी में शक्ति का आरोप कर देना और उसे प्रतीक बना लेना अवतार बन जाता है। मगर वह स्वयं भी भलाई और शक्ति का पुंज होता है और उसमें उनकी भलाई व शक्ति अवतरण हुई होती है, पर बनाने से नहीं बनते। मेरे लिये परमेश्वर का प्रतीक नाम है, नाम बड़ी वस्तु है। नाम के प्रतीक में बड़ा भारी लाभ है। यह जब गहरा बस जाता है, अन्तःकरण निर्मल हो जाता है। हृदय के अन्धकार का नाश होता है। नाम का मार्ग वैज्ञानिक है। अन्तःशोधन का इस जैसा और कोई उपाय नहीं। दूसरे साधन अधिकतर बाहर तक ही रहते हैं। सब के प्रतीक भी अच्छे हैं पर नाम का प्रतीक उत्तम है। रूप एक देश में होता है। नाम देश और काल की सीमा लांघ जाता है।

सहारे बिना निस्तारा नहीं

यह हमारा जो जगत है इसमें जीविका को चलाना एक बड़ा काम है। दुकानदारी हो, नौकरी हो, खेती हो ये सब ही ऐसे काम हैं कि जी जान लगाकर काम करते हैं, तब कहीं जाकर आजीविका चलती है। इस देश की दशा भी कुछ इस प्रकार की है। दूसरे देशों में भी काम बहुत करना पड़ता है तब कहीं जाकर मनुष्य के नाते निर्वाह हो पाता है। भारतवर्ष पिछड़ा हुआ देश है। भारत वर्ष जातियों की दौड़ में अभी बहुत पीछे है। उन दूसरे देशों के साथ चलना और भी कठिन है। इसलिये आजीविका चलाने के लिए बड़ा प्रयत्नशील होना पड़ता है। कठिनाई जब हो तो कोई

अवलम्बन होना चाहिये। जब हवाई जहाज हवा में बिगड़ जाते हैं तो छतरियां उनमें रखी होती हैं। किसी में चालीस, किसी में पचास। उनसे उतरने का यत्न करते हैं। दूसरे जो जहाज, अर्थात् समुन्द्री, उनमें भी यदि डूबने लगे तो वहां भी अवलम्बन रखे जाते हैं। फिर समाचार पहुंचते हैं तो बचाने वाले जहाज दौड़ते हैं और उनको उठा लेते हैं। तो यह देखने में आया है कि सहारा आकाश में भी चाहिये और जल में भी चाहिये। सहारे बिना निस्तारा नहीं। जीवन के जहाज में भी तूफान आते हैं। डूबने लगें तो सहारा चाहिये। सन्तों ने कहा – भगवान के नाम का जो सहारा है, वह सबसे उत्तम है और परम है। डूबते को किनारे लगाता है और स्थान पर पहुंचाने वाला है।

एक स्त्री का बड़ा परिवार था। उसका निर्वाह न होवे। बच्चे भूखे रहें। उसको कोई सहारा न मिले कि कैसे वह स्त्री बच्चों के पेट की पालना करे। किसी सन्त के सत्संग वह चली गई और विनय से बताया कि ऐसे कठोर संकट में वह है और पूछा मेरा काल कैसे कटे? बच्चों के पिता तो परलोक सिधार चुके हैं। सन्त ने कहा "जितने जवान तुम्हारे घर में हैं उनको तू कल लाइयो" अगले दिन सन्त ने उन जवानों को कहा, "कल इस माई ने अपने कष्ट की कथा सुनाई है। मेरे रोंगटे खड़े हो गये। भला तुम घर में क्यों बैठे रहते हो? जाओ, जहा मजदूरी मिले काम करो। यह तुम्हारे लिये उपाय है। और बुढ़िया को कहा, "माई! तू बता, तुझे क्या काम है? तू कुछ किया कर। बुढ़िया ने कहा, "मैं तो घोर कठोर दशा को देख देख कर रोया करती हूँ। सन्त ने कहा, सुन! तेरे लिये सहारा यह है कि जब चर्खा काता करे तो राम, राम, राम जपा कर। देख रोने से संकट चौगुना हो जाता है। रोने वाले जो हैं उनका आमाशय खराब हो जाता है। बुद्धि खराब हो जाती है। जो संसार से चला गया वह तो चला गया। पर जो रह गया उसका रोगी बन जाना क्या बात हुई? बुढ़िया ने कहा, क्या संकट टल जायेगा? साधु बोला, संकट हरण श्री राम चरण हैं। जा, इन सब को बाहर भेज दे। लड़कों को लज्जा आई कि धिक्कार है हमारे

यौवन पर। काम करने की धारणा करके बाहर निकले और माई चरखा कातने लगी। आधे महीने में उन्हों ने परिवार के लिये कुछ पैसे भेज दिये। पन्द्रहवें दिन उसने पहली बार इतने रुपये देखे और बाल बच्चों ने पूरी रोटी खाई। बहुओं से कहा, कि आज पहला दिन है कि हमने हंसते हंसते पूरी रोटी खाई है।

सब जनियों ने उसको कहा कि हमारा भाग्य का दिन चढ़ आया है। बुढ़िया ने बताया कि सन्त ने कहा था, राम नाम जपा कर। पन्द्रह दिन में तेरा भाग्य पलटा खा जाएगा। एक लड़के ने बच्चों के कपड़े भी बनवाने शुरु कर दिये। घर की हालत सुधरती गई। उधर माई रामधुन में और रम गई। चर्खे के साथ रामधुन मिलाने लगी।

जब नाम देते हैं तो अनेक प्रकार से देते हैं। और छप्पर फाड़ कर देते हैं। राम देने पर जो आये। अगले दिन क्या हुआ कि एक स्त्री आई। किसी ने उसको कहा कि तेरा धन, मन शुद्ध हो जायेगा। यह घर बड़ा दीन है। ऐसे घर में दान का बड़ा लाभ है। वह आई। गठड़ी में कुछ कपड़े मिठाई आदि लाई। उन सब को नरमी पूरी आदि खिलाई और किसी ढंग से कपड़ों में सौ रुपये भी छोड़ गई।

माई कपड़े देखने लगी तो उसने कह दिया कि पीछे देखियो जब मैं चली जाऊं। बच्चों को कपड़े पहनाना जब चाहा, तो उनसे रुपये। चार पाच जनी गिनने लगीं। गिनती कहां आती थी। बनिये को बुलाया तो पूरा सौ रुपया। देने वाली तो जा चुकी थी। यही समझा कि यह सब कुछ तो राम ने भेजा। और भी हर्ष में आकर बुढ़िया उस सन्त के सत्संग में गई। बच्चों और बहुओं के कपड़े भी उस दिन साफ थे। साधू के पूछने पर कहा कि जो चर्खा राम नाम धुन के साथ कातती हूँ और राम के नाम का सहारा जो तुम्हारे से मिला वह उसी का चमत्कार है। तो मनुष्य को सहारा होना चाहिये। सहारे से भाग बदलते हैं। सहारा न होवे तो मनुष्य लोथ के समान पड़ा रहता है।

सुकृत कर्म

आपको सुनाने की एक बात मेरे पास यह है कि हर एक व्यक्ति, कोई सुकृत कर्म, जो उसकी आत्मा का कल्याण करे, नित्य किया करे। नहीं तो यह जो सारी प्रकृति है – पशु पक्षी भी – अपने प्राणों को पोषण करने के लिये प्रयत्नशील होते हैं। एक जगह से दूसरी जगह जाते हैं। अमरीका के किनारे की मछलियां अपने बच्चों का पालन करने के हेतु योरुप के पानी में आती हैं। हजारों मील की दौड़ करके अमरीका के पक्षी चोगा चुगने रूस जाते हैं और फिर वापिस उड़ान भरते हैं। जाते हुए तो एक स्थान पर रास्ते में उनका एक दिन का विश्राम होता है पर आते हुए वह तीन हजार मील बिना विश्राम दौड़ते हैं। पर यह सब तो केवल तन का पोषण हुआ। कोई इसमें बुराई नहीं, पर बड़ाई भी क्या है? एक बुद्धिमान प्राणी होकर, एक समझ वाला तनधारी होकर, मनुष्य भी वही क्रिया करे जो पशु पक्षी भी करते हैं तो इसमें उसकी कौन बड़ाई है?

बुद्धिमान सदा आगे बढ़ते हैं। भील तीरों से, ग्रामीण ईंटों से लड़ते। पर अब लड़ने वाले बुद्धिमान ऐसे कि हजारों मील के ऊपर उनकी आतिशबाजी और फिर जिस स्थान को निशाना बनाया उसी स्थान अस्त्र टकराया। पहले जंगल के जानवरों की छालें लोग पहनते पर अब सब प्रकार के कपड़े। २६०० वर्ष पहले की बात है, पटना से राज्य चलाया जाता था। एक बड़ा जनरल और राजा योरुप का, सेना लेकर आया। पंजाब के लोग उस समय केवल प्राणों का पोषण करने वाले नहीं थे। इतनी लड़ाई लड़ी कि उस जनरल का आगे आने का साहस मन्द पड़ गया। कितने ही मर गये। चाहते थे पटना तक जाना पर बहुत क्लेश और वापिस लौट गये। उनकी ऐसी दुर्दशा में भारत के वैद्यों ने उनकी सेवा, उपचार किया और वे लौट गये। पटना में सफीर (दूत) छोड़ गये। उन्होंने रोजनामचे (दैनंदिनी) लिखे। इनसे इतिहास सुगठित किया गया। तो बुद्धिमान कितनी उन्नति करते हैं। उस समय योरुप में कपास का ज्ञान नहीं था। दैनंदि[illegible] [illegible]

ने लिखा कि जैसे हमारे यहां भेड़ों को ऊन लगती है ऐसे भारत के पेड़ों पर। ऐसा भी कहा कि लकड़िया यहां पर बड़ी मीठी – ईख था नहीं। कहना यह है कि बुद्धिमानों ने कितनी उन्नति की। तो मनुष्य नाम से जो प्राणी वह केवल प्राणों के पोषण तक नहीं रहता। ज्ञान विज्ञान में बहुत बढ़ता है। क्या क्या प्रकृति में है इसका प्रयोग – यह खोज वह करता है।

तो ऐसे चाहे पशु पक्षी चाहे मनुष्य, केवल प्राणों का ही पोषण तो उसमें बुराई नहीं, पर बड़ाई भी नहीं। बड़ाई तो इसमें है कि बुद्धि पाकर क्या प्राप्त किया, क्या दूसरों को दिया? क्या विचार से बात खोज कर चलाई?

आत्मा—एक अमर ज्योति

किसी के घर की बिजली का लटटू टूट जावे तो समझना कि बिजली खतम हो गई ऐसी बात नहीं। बिजली आई पर गमन बन्द। जैसे ये बातें बुद्धिमानों ने निकालीं, ऐसे ही पण्डितों, महर्षियों ने, अपने दैविक बल से, यह बात समझी कि मनुष्य के जीवन का जो दीपक यह इस तन से बन्धा हुआ नहीं है—यह अमर ज्योति है। इस को जागृत करना चाहिए और यह भावना भगवत् प्रीति से, परमेश्वर की प्रीति से, जागती है। जैसे बसन्त ऋतु में कलियां अपना मुह खोलती और सुगन्धि देती हैं, तो इसी प७कार ऐसे विचारों की सुगन्धि चारों ओर फैले—यह हुई इसकी महिमा को बढ़ाने वाली बात—इसका महत्त्व इसी में। वह आत्मा को समझता है।

मैं आत्मा हूँ।

यह भावना दृढ़ हो कि मैं आत्मा हूं। शरीर तो है पर मैं इस के अन्दर रहने वाला आत्मा हूं। न मिटने वाला, न बुझने वाला, मेरी ज्योति आंखों में, कानों में। वास्तव में मैं अमर सत्य हूं। इस देह के किले में घिरी हुई आत्मा हूं। यह भाव सत्संग में आने जाने से सुदृढ़ और बहुत जागृत होते हैं। आप सब का और हम सब का इसी मे महत्त्व, इसी में बड़ाई। इस को समझना – इस बोध को

प्राप्त नहीं किया तो जन्म लिया और मरे – इतने
समाप्त – घास पैदा हुई और जमीन में फिर

आत्म - ज्ञान

यह सब भारतवर्ष ने खोज किया। अनुभूति
इस गीत को बहुत गाया। दूसरे देशों में भी इ
जले पर भारत की यह अपनी सम्पत्ति है –
नहीं। क्या क्या वस्तुयें मांगते हैं पर अध्यात्म
नहीं। लेना बुरा नहीं पर अवसर ही नहीं।

देवियो और सज्जनो! मैंने यह वर्णन किया
पान, मकान में नहीं, है, पर इतनी नहीं जो अ
और वह भगवद् भक्ति से प्राप्त होता है। उसव
वर्णन में आते हैं। सब ठीक, पर सुगम प्रयत्न
है। जितना चिन्तन उसका करेंगे उतना ही ला
श्री राम के दरबार में सफल होता चला जाये

व्यक्ति आत्मा है शरीर नहीं

भारत में रीति रिवाज कुछ बिगड़े हुए हैं।
ही बच्चों का विवाह कर देते हैं। युवावस्था अ
बच्चों के बाप बन जाते हैं। विद्या उपार्जन के स
बच्चों के साथ गृहस्थी का पालन करना पड़ता
अपने पीछे विधवा पत्नी और अनाथ बच्चों को
सिधार जाना पड़ता है।

ऐसा जीवन व्यतीत करने के स्थान पर जि
महत्त्व समझ में आ जाय और जो साधक परम
बनना चाहता है उसे तो आवश्यक है कि इ
कृतिमय जगत में न विचर कर उच्च लक्ष्य पर
अपना जीवन उच्च बनावे, देश तथा समाज
बनाने के लिए सेवा करे।

प्रभु से प्रार्थना करे, देश, समाज का कल्याण हो। उसका जीवन प्रार्थनामय हो। दैनिक समय में कुछ समय इस सकाम और निष्काम प्रार्थना के लिए भी नियत करे। वह इस प्रकार स्वयं का जीवन तो अच्छा बनाता ही है। साथ ही दूसरों का भी कल्याण करता है। वैसे इस साधन में हम परिवार छुड़ाते नहीं। लौकिक कर्तव्य करते हुए ही वह राम काज कर सकता है। इसमें आवश्यक है कि वह निरभिमानी हो, सबसे प्रेमपूर्वक व्यवहार करे, राग-द्वेष, कलह-क्रोध से परे हो। पर-निन्दा, पिशुनता (चुगली) आदि दोषों से मुक्त हो। सत्याचरण हो। ऐसा सत्कर्म करता हुआ भी ध्यानस्थ हो अर्थात् ब्राह्मी स्थिति में हो।

ये उपरोक्त स्थिति जड़ समाधि से कहीं बहुत ऊंची है। लोग शंकराचार्य, विवेकानन्द आदि के प्रामाणिक वचन कह कर पुष्टि चाहते हैं। स्वयं अनुभव की ओर नहीं बढ़ते। आवश्यकता इस बात की है कि स्वयं अनुभव करें। आजकल भौतिक विज्ञान भी इस सूक्ष्म शक्ति के महत्त्व को प्रकट करता है अर्थात् एटम बम, रेडियो, टेलीविजन। हमें इससे भी मनन पूर्वक शिक्षा लेनी चाहिये।

तो सुन्दर बात चिन्तन करने योग्य यह है कि तुम समझो कि तुम आत्मा हो शरीर नहीं। धर्म पालन में शरीर छूटे तो छूट जाय। प्राण भय से धर्म से च्युत होना तो उचित नहीं। आत्मज्ञानी भीरु नहीं होता। वह रात में, अंधेरे में चोर भूत आदि से क्यों डरेगा? नित्य मनन करो तुम आत्मा हो। इन्द्रिय निग्रह करो। राम काज में अपना जीवन समर्पण करो।

भक्ति-महत्त्व

भक्ति शुभ की राशि है। भक्ति भगवान में श्रद्धा, व विश्वास से पैदा होती है। अपरा भक्ति तो साधारण, पर आन्तरिक भक्ति, संशय रहित अनन्य निश्चय के साथ जुड़ी हुई है। अनन्य निश्चय यह है कि एक वह ही है। राम पर पूरे भाव से निर्भर होना जैसे समर्थ राम दास, तुकाराम, रामानन्द,

तुलसीदास। जैसे बच्चा मां पर निर्भर, किश्ती पर बैठा नाव पर निर्भर, ऐसे (गीता में भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं कि) जो मुझ में जुड़े हुए, मिले हुए लोग जो होते हैं उनके योग क्षेम मैं स्वयं चलाता हूं। परा-भक्ति—राम नाम से भक्ति—हम कहते हैं। कोई खुदा नाम से कहे उस से हमारा कोई झगड़ा नहीं व विवाद नहीं। पर पानी कह कर आग डालने की कोशिश नहीं होनी चाहिये।

हम अपने राम नाम जिस से भक्ति प्रार्थना करते हैं उस से हमारी बड़ी प्रीति है। हम समझते हैं कि परम पद से हमें प्राप्त हुआ है। सत्य कर्म, जन-सेवा, दूसरे का हित करना—ये भी सब भक्ति में सम्मिलित है। केवल माला फेरना ही भक्ति नहीं है। भगवान के मन्दिर तो बहुत हैं, विस्तार से कहें तो शुभ कर्म जितने हैं वे सब भक्ति का भाग हैं। राम नाम की लहर चली है—जो जितनी जन सेवा करता है उतना ही उसका राम पूजन होता है।

ज्ञान कर्म

पंडित लोग वर्णन किया करते हैं, उनकी बातों में नहीं जाना चाहता पर तुलसी दास जी कहते हैं "ज्ञान कर्म बिन प्रीति न होये" फिर प्रीतियां कई प्रकार से पैदा होती हैं। पारिवारिक सम्बन्ध के कारण भी कर्म किये जाते हैं। प्रीति जबरदस्ती से नहीं होती। लड़के को हाथ पकड़ कर स्कूल छोड़ आना कोई और बात है। शुरू शुरू में तो बच्चा छुट्टी पसन्द करता है चाहे मास्टर की मां भी मर जावे। पर बाल उपदेश पढ़ता जब कॉलेज जाने लगता तो बाद में वह रोकने से भी नहीं रुकता। उसमें प्रीति पैदा हो चुकी होती है। भक्ति के बिना ज्ञान और सुकर्म कठिन। प्रीति से ज्ञान बढ़ता है। पानी न हो पहाड़ में तो चश्मा नहीं निकलता। सुकर्म भी और भलेकर्म भी उन में जो प्रीतिवाले। इस को पंडित भाषा में भक्ति कहा जाता है। किसी ने कहा कि वह लड़का माता पिता का बड़ा प्रेमी है। यह कहना ठीक नहीं, ठीक कहना हो तो कहना होता है कि यह लड़का माता पिता का बड़ा भक्त है। पर लड़के

की बजाय बाप की बात हो तो ठीक कहना यही कि वह पुत्र का बड़ा प्रेमी न कि वह पुत्र भक्त। विषयों से जो प्रीति वह प्रेम नहीं कहला सकती। इसी प्रकार इष्ट ज्ञान से भक्ति कहलाती है।

भक्ति भाव में ज्ञान कर्म का मेल

भक्ति भाव में ज्ञान और कर्म दोनों का मेल है। वह मनुष्य नहीं जो सेवा नहीं करता, जो समय पर जाप आराधन नहीं करता। जिस में देश प्यार नहीं, सुविश्वास भी नहीं, वह भक्त नहीं। भक्ति जो है वह ज्ञान से बड़ी है। तुलसीदास जी कहते हैं कि जो ऐसी भक्ति को जान करके भी केवल ज्ञान के लिये परिश्रम करते हैं वे जड़मति वाले काम-धेनु को छोड़ कर वन में आक से दूध निकालने जैसी बात करते हैं।

मनुष्य जन्म में ही केवल भक्ति।

इस मनुष्य जन्म में ही केवल भक्ति हो सकती है। यह वह स्थान है जिसकी खिड़की खुलने से परमदेव परमात्मा की किरण आती है। इस लिये आदि काल से स्त्री पुरुष, समझ वाले, जो हैं, वे अपना कल्याण भगवान का आराधन करने में मानते आये हैं। बाकी चीजें जितनी हैं वे क्लेश देती हैं। मनुष्य की इच्छा को बड़ी नहीं बनातीं। आत्मा का ज्ञान मनुष्य को बलवान बनाता है।

भक्ति से आत्मबल

एक माई ने अपनी लड़की को पड़ोसन के घर से कोई चीज़ लेने को कहा। सूर्य अस्त हो चुका था। लड़की डरे, वह कहे, रास्ते में भूत है। बड़ी बूढ़ी कहती हैं पीपल के पेड़ पर चुड़ेल रहती है। प्राण सूख रहे थे। सोचती थी मां की आज्ञा न मानूंगी तो मां नाराज़ होगी। उधर चुड़ेल का डर। एक और लड़की जो उससे छोटी थी पर अपनी मां के साथ सत्संग में जाया करती थी उसने सुना था कि जहां राम नाम हो वहां चुड़ेल सुड़ेल कोई डाकिन नहीं आती। वे तो उस मुहल्ले से ही निकल जाती है। वह लड़की दूसरे घर में गई और चीज़ ले आई। उसने बड़ी लड़की को कहा कि तू सत्संग

जावे तो तुझे पता चले कि भगवान के नाम का जो मन्त्र है वह
ड़ा बल देता है। बड़ी लड़की ने कहा, बल देता है तो क्या मेरा
र निकल जायेगा? वह लड़की उसको बूढ़ी माई के पास ले गई।
ढ़ी ने नाम दिया। जब घर आई तो मां ने कहा क्या सीख कर
ाई? उत्तर दिया, निर्भयता सीख कर आई हूं। लड़की ने मन्त्र
ा कुछ जाप किया और फिर किसी रात मां ने कहा कि अब
ड़ोसन के यहाँ से चीज लाओगी? लड़की ने झट कहा, हां!
ाऊँगी। मां बोली, चुड़ेल मिल गई तो? लड़की ने कहा, मेरे
ये तो चुड़ेल नगर से निकल गई है। भगवान का नाम बड़ा बल
ता है।

महात्मा गांधी जी ने आत्म-कथा में लिखा है कि मैं बड़ा डरा
रता था। बनियों की न कोई अन्तड़ी कम, न दांत कम, पर बात
ा कि हिम्मत कम। साहस के काम करने को उसके हृदय में
रंग पैदा नहीं होती। वह तो सोचता है कि ऐसा न हो मैं न रहूँ।
रकार भले ही मिट जाय पर मेरे पास जो चीज है वह न जाने
य। यह बड़ी दुर्बलता है। यह बड़ी खराबी करती है। तो मैं कह
हा था, महात्मा गांधी ने बालकाल की बात कही कि मैं डरता
ा। दासी जो बच्चों को खिलाने वाली थी उसने गांधी जी को
हा तू राम नाम जपा कर। आयु सात आठ वर्ष होगी। दासी के
हने से राम नाम जपने लगे और यह बात अन्त तक उनमें बसी
ही। उन्होंने लिखा कि उसी दिन से मेरे में भय नहीं रहा। वे
फ्रीका में गये तो वहां हिन्दुस्तानियों की बड़ी दुर्गति थी। जिस
न के डब्बे में गोरे लोग बैठे उसमें हिन्दुस्तानी नहीं जा सकते
। उन मुहल्लों में भी नहीं रह सकते थे। अफ्रीका में रहते हुए
ांधीजी को ऐसा समय भी आया कि हजारों वहां के बसने वाले
नको मारने को आये। उस मकान को भी, जिसमें गांधी जी
हते, जलाना चाहा। वे डटे रहे। इतना ही नहीं, वे राजपूत खतरी
ी कोड़े से अपने पिण्ड पिटवाते रहे, गांधी जी के बताये राम नाम
आराधन से खड़े हो गये। यहां के नवयुवकों, बूढ़ों और स्त्रियों
ो उन्होंने खड़ा कर दिया। और वे भी अंग्रेजों के सामने जिनके

की बजाय बाप की बात हो तो ठीक कहना यही कि वह पुत्र का बड़ा प्रेमी न कि वह पुत्र भक्त। विषयों से जो प्रीति वह प्रेम नहीं कहला सकती। इसी प्रकार इष्ट ज्ञान से भक्ति कहलाती है।

भक्ति भाव में ज्ञान कर्म का मेल

भक्ति भाव में ज्ञान और कर्म दोनों का मेल है। वह मनुष्य नहीं जो सेवा नहीं करता, जो समय पर जाप आराधन नहीं करता। जिस में देश प्यार नहीं, सुविश्वास भी नहीं, वह भक्त नहीं। भक्ति जो है वह ज्ञान से बड़ी है। तुलसीदास जी कहते हैं कि जो ऐसी भक्ति को जान करके भी केवल ज्ञान के लिये परिश्रम करते हैं वे जड़मति वाले काम-धेनु को छोड़ कर वन में आक से दूध निकालने जैसी बात करते हैं।

मनुष्य जन्म में ही केवल भक्ति।

इस मनुष्य जन्म में ही केवल भक्ति हो सकती है। यह वह स्थान है जिसकी खिड़की खुलने से परमदेव परमात्मा की किरण आती है। इस लिये आदि काल से स्त्री पुरुष, समझ वाले, जो हैं, वे अपना कल्याण भगवान का आराधन करने में मानते आये हैं। बाकी चीजें जितनी हैं वे क्लेश देती हैं। मनुष्य की इच्छा को बड़ी नहीं बनातीं। आत्मा का ज्ञान मनुष्य को बलवान बनाता है।

भक्ति से आत्मबल

एक माई ने अपनी लड़की को पड़ोसन के घर से कोई चीज़ लेने को कहा। सूर्य अस्त हो चुका था। लड़की डरे, वह कहे, रास्ते में भूत है। बड़ी बूढ़ी कहती हैं पीपल के पेड़ पर चुड़ेल रहती है। प्राण सूख रहे थे। सोचती थी मां की आज्ञा न मानूंगी तो मां नाराज़ होगी। उधर चुड़ेल का डर। एक और लड़की जो उससे छोटी थी पर अपनी मां के साथ सत्संग में जाया करती थी उसने सुना था कि जहां राम नाम हो वहां चुड़ेल मुड़ेल कोई डाकिन नहीं आती। वे तो उस मुहल्ले से ही निकल जाती है। वह लड़की दूसरे घर में गई और चीज़ ले आई। उसने बड़ी लड़की को कहा कि तू सत्संग

में जावे तो तुझे पता चले कि भगवान के नाम का जो मन्त्र है वह बड़ा बल देता है। बड़ी लड़की ने कहा, बल देता है तो क्या मेरा डर निकल जायेगा? वह लड़की उसको बूढ़ी माई के पास ले गई। बूढ़ी ने नाम दिया। जब घर आई तो मां ने कहा क्या सीख कर आई? उत्तर दिया, निर्भयता सीख कर आई हूं। लड़की ने मन्त्र का कुछ जाप किया और फिर किसी रात मां ने कहा कि अब पड़ोसन के यहाँ से चीज लाओगी? लड़की ने झट कहा, हां! लाऊँगी। मां बोली, चुड़ेल मिल गई तो? लड़की ने कहा, मेरे लिये तो चुड़ेल नगर से निकल गई है। भगवान का नाम बड़ा बल देता है।

महात्मा गांधी जी ने आत्म-कथा में लिखा है कि मैं बड़ा डरा करता था। बनियों की न कोई अन्तड़ी कम, न दांत कम, पर बात क्या कि हिम्मत कम। साहस के काम करने को उसके हृदय में तरंग पैदा नहीं होती। वह तो सोचता है कि ऐसा न हो मैं न रहूँ। सरकार भले ही मिट जाय पर मेरे पास जो चीज है वह न जाने पाय। यह बड़ी दुर्बलता है। यह बड़ी खराबी करती है। तो मैं कह रहा था, महात्मा गांधी ने बालकाल की बात कही कि मैं डरता था। दासी जो बच्चों को खिलाने वाली थी उसने गांधी जी को कहा तू राम नाम जपा कर। आयु सात आठ वर्ष होगी। दासी के कहने से राम नाम जपने लगे और यह बात अन्त तक उनमें बसी रही। उन्होंने लिखा कि उसी दिन से मेरे में भय नहीं रहा। वे अफ्रीका में गये तो वहां हिन्दुस्तानियों की बड़ी दुर्गति थी। जिस रेल के डब्बे में गोरे लोग बैठे उसमें हिन्दुस्तानी नहीं जा सकते थे। उन मुहल्लों में भी नहीं रह सकते थे। अफ्रीका में रहते हुए गांधीजी को ऐसा समय भी आया कि हजारों वहां के बसने वाले उनको मारने को आये। उस मकान को भी, जिसमें गांधी जी रहते, जलाना चाहा। वे डटे रहे। इतना ही नहीं, वे राजपूत खतरी जो कोड़े से अपने पिण्ड पिटवाते रहे, गांधी जी के बताये राम नाम के आराधन से खड़े हो गये। यहां के नवयुवकों, बूढ़ों और स्त्रियों को उन्होंने खड़ा कर दिया। और वे भी अंग्रेजों के सामने जिनके

पास बड़े हथियार, हजारों मील लम्बे देश, उनके राज्य में सूर्य अस्त नहीं होता था। तो गांधी जी ने उनका विरोध किया और कहा कि यह असुर राज्य है। एक मिट्टी का ढेला फेंके विना, केवल इसी पर कि हम न मानेंगे, याने निर्भयता से, अंग्रेज का बिस्तर गोल करवा दिया।

शब्द-बल

शब्द में बड़ा बल है। उससे बड़ा बल पैदा होता है। यदि शब्द बड़े भार से दिया हो तो दूसरे के अन्दर शीघ्र काम करने लग जाता है। यह जगत शब्द से बना है। जो तरंग पैदा होती है वह किसी प्रेरणा से पैदा होती है। इसके पीछे कोई सत्ता है जो काम कर रही है। संकल्प में ही बल है।

वाणी के भाग

वाणी के चार भाग हैं। एक बैखरी वाणी कहलाती है जिसे मनुष्य बोलते हैं। मध्यमा वाणी कण्ठ में रहती है, पश्यन्ती परा अध्यात्मवाद की वाणी है। आप राम नाम बैखरी वाणी से जपते हैं। ऐसी वाणी जो उसकी कृपा से आती है वह परा वाणी है। सैकड़ों लोग नाम सुनते हैं, जहां मन वाणी का विचार न हो और राम नाम की ध्वनि अन्दर चल रही हो तो उस अजपा जाप के पश्चात् फिर किसी और बात की आवश्यकता नहीं रहती। मनुष्य के अन्दर जो वास्तविक भूख है वह पूरी हो जाती है जब अजपा जाप शुरु होता है।

जब कोई वस्तु हिलती है तो उस हिलने में ध्वनि पैदा होती है। [illegible] श्वास का शब्द मधुर व सूक्ष्म होता है। जैसे आरती के समय साधक का आत्मा बाहर सूक्ष्म लोक लोकान्तरों के नाद भी सुन सकता है। इन नादों में [illegible] होती है। चांद आदि के हिलने से भी नाद होता है जो एकाग्रता में सुना जा सकता है। आकाश के कई सूक्ष्म स्तर हैं। इन में से ऊंचे स्तरों पर जो आरती होती होगी वह कितनी मधुर होती होगी। सूक्ष्म लोक जिसे आत्म पद कहते हैं वहां सिद्ध लोग हैं। वहां से जो वाणी स्फुरित होती होगी वह कितनी रसमयी और मधुर होगी। वह उच्च पद का नाद एक

बार जो सुनाई दे जावे तो सारा जीवन स्मरण रहता है।

मन में जो अन्दर चिन्तन होता है वह मध्यमा वाणी है। मनुष्य वैखरी वाणी से बोलते हैं, देवता पश्यन्ती से बोलते हैं। जिसने पश्यन्ती को जाना वह देव पद पर आ गया। उसमें दैवी भाव स्फुरित हो गए। रागों के सात सुर वैखरी वाणी के शब्द हैं। पुरुष इन से मध्यमा में जाता है। वही आगे पश्यन्ती और परा में ले जायेगी। वाणी में ही जगत पिरोया हुआ है। परा और वैखरी एक वाणी के दो सिरे हैं। यही अन्दर ले जाती है। यही मन्त्र का रहस्य है। शब्द का, नाम का, मन्त्र का यह बल है। शब्दमय ही यह जगत है। जहां से पहले शब्द स्फुरित हुआ था उस धाम तक शब्द ले जाता है। जो हम नाम जप करते हैं उसका यही रहस्य है।

राम नाम में बल

देवियो और सज्जनो! मुझे कहना यह है कि भगवान के नाम में बड़ा बल है। पर तुम सोचोगे मैं जपने लगा तो हुक्का कौन पीयेगा? पान कौन खायेगा? सारा दिन इन्हीं बातों में पड़े रहते हैं। भला! महात्मा गांधी जैसा अनथक काम करने वाला कौन होगा? वे बहुत काम करते थे। निरन्तर काम करने वाला इतना अनथक किसी भी देश में कोई आदमी शायद हुआ हो। फिर भी उनका नाम में बड़ा भाव था।

सज्जनो! भावना से थोड़ा भी आराधन कल्याण कर देता है। भला होमियोपैथी की दवाई मात्रा में कितनी होती है? अन्य काम भी ठीक हैं। हम करते हैं और करने चाहियें। पर इस आराधन को कोई काम नहीं बनाता। सब स्त्रियों और पुरुषों के पास समय होता है। पर नष्ट होता है। अच्छा और सर्वोत्तम काम इस लोक और परलोक को मधुर बनाने वाला काम समझ कर इसमें समय लगाना और मन लगाना चाहिये।

धैर्य और विश्वास के बिना यह जगत भी कड़वा है। इसको भगवान की स्मृति से मीठा बनाना चाहिये।

एक व्यक्ति से एक साधू ने कहा कि कुछ अपना भी काम किया कर। जिसको कहा वह इस युग का आदमी था। कहने लगा, काफी समय जो लगाता हूं अपने शरीर को सम्भालने में, संवारने में। मेरे बच्चे भी हैं। उनकी भी विशेष तो नहीं पर थोड़ी सी देख रेख कर लेता हूँ! साधु ने कहा, हां, ठीक है, बच्चों का काम करना चाहिये। पर अपना काम तो तू नहीं करता। कहा, दोस्तो में बैठता हूँ। साधू ने कहा, यह काहे का काम है। उत्तर दिया, जवानी के दिन हैं। दोस्तो में बैठ कर थोड़ा सुख लिया करता हूँ। पी भी थोड़ी सी लेता हूँ। साधू ने कहा, यह भी तेरा काम नहीं। खुशी होती होगी पर मिथ्या है। अन्त में इन बातों से दुःख और क्लेश ही होता है।

फिर कहने लगा कि मुकदमे बाजी में भी मेरा थोड़ा भाग होता है। जवाब भी दे देता हूँ पर दोस्तों के लिए कचहरियों में बहुत समय लगाना ही पड़ता है। वकीलों को मिलना जो हुआ।

साधू ने कहा, यह काम तो तुम्हारा अपना नहीं। कोई मोह का है, कोई ममता का है। इन कामों में कोई भी काम तेरा अपना नहीं। देख प्यारे! काम वह है तेरा जो इस लोक में भी तेरा काम और परलोक में भी तेरा।

उसने कहा तुम कहते होगे भक्ति करो, यह अच्छा नहीं लगता। साधु वर्ष भर के बाद फिर आया। देखा, आमाशय (मेदे) की बीमारी, दिल की बीमारी, यकृत (जिगर) खराब हो चुका है और फिर कुपथ्य सेवी इतना कि इस अवस्था में भी पीता है। बड़ी सहानुभूति से कहा कि पहले आप बहुत हृष्ट-पुष्ट थे। मुझे बहुत विचार है कि तुम इतने दुर्बल हो गये हो। अधिक बुरा यह कि जुआ खेलते हो और शराब पीते हो। हमने कहा था कि तुम अपना काम करो। कहने लगा, मेरे जैसे दुर्भागी को यह बात कैसे भाती। मेरे तो मन का कारखाना बिगड़ा हुआ था। जिससे इनको अपनाया और अब यह दुर्दशा पाई। साधु ने कहा, यदि राम स्वस्थ कर दे तो? वह बोला, फिर तो मैं कुटिया बनाकर भक्ति में लग जाऊँगा। साधु ने कहा, कुटिया तो क्या, घर पर भाव चाव से

सिमरन करो। खूब जप करो। प्यारे राम तो दिन फेर देते हैं जब मन फिरे तो।

अगले दिन मुख पर प्रकाश था। धैर्य हुआ, माला जो जपी। फिर तो माला हाथ में और मुख में नाम। परिणाम यह हुआ कि नाम का प्रभाव छा गया। पीने का समय था तो सोया पड़ा था। उसको नहीं याद आया कि आज शराब पी नहीं। नौकर ने भी सोचा कि बोल देकर न जगाऊँ। बड़े दिनों के बाद गहरी नींद आई है।

प्रातः उठा तो भूख लगी। पत्नी को कहा कुछ खाने को लाओ। उसने कहा, बड़े सौभाग्य आज जो तुमने अपने मुख से मांगा। वह जो ठीक था वही खाने को लाई। उसने खाया और कहा, आज स्वाद आया। स्वाद क्यों न आता, भूख जो थी। मित्र आ गये। कहने लगे, भई! हम तो सुन रहे थे तुम जा रहे हो। कहो तो थोड़ा सा खेल लें। कहा, अब यह बात नहीं रही। मित्रों ने फिर कहा, थोड़ी सी पी लो। बीमारी भूल जावेगी, थोड़ी देर जो खेलोगे तो। कहने लगा, यारो! अब तो बाबा का बताया हुआ नशा है। मित्रों ने सोचा, आज तो यह और ही बोलियां बोलने लग गया है।

दस बारह दिन के बाद पाचन शक्ति भी लौट आयी। डाक्टर ने देखा जिगर भी ठीक और मुख पर भी प्रकाश। उसने सुना कि बाबा नगर से बाहर किसी बगीचे में आया हुआ है। चल के मिलने गया।

बाबा बड़े आदर से मिला। पूछा कि आप स्वयं चलकर आये हो। कहने लगा, मैंने यही अच्छा सोचा। जो अर्थी देखना चाहते थे, वे मुझे पैदल चलते को देख लें। तो देवियो और सज्जनो! यह नाम की औषधि बड़ी अच्छी है। थोड़ा बहुत समय भी जो लगाया जाता है बड़ा लाभ देता हैं। होमियोपैथिक डाक्टर की दवाई नाम मात्र की होती हैं। पर उसकी औपचारिक शक्ति बहुत होती है। तो नाम में भी थोड़ा सा समय निःसन्देह हो परन्तु भाव से हो।

नाम की औषधि पाप के रोगों का भी नाश करती है। यह मनुष्य की आत्मा को उठाने वाली और जगाने वाली है।

नाम योग

आध्यात्मिक सम्बन्ध का मूल – श्रीराम नाम

आध्यात्मिक सम्बन्ध का मूल, हमारे सत्संग में, श्रीराम नाम है। इस मंगलमय राम नाम रूपी महामन्त्र के दान आदान से ही हम आत्मा से एक दूसरे के समीपतर हो जाया करते हैं। यही महामधुर रामनाम हमारे सम्बन्ध को मनोहर और मीठा बनाता है।

रामनाम के उपासक को अपने हृदय में बड़ी श्रद्धा से राम नाम ऐसे स्थापित करना चाहिये जैसे मन्दिर में मूर्ति स्थापित की जाती है, जैसे कोई जन जीवनदायक जड़ी को बहुत सम्भाल कर अपने पास रखता है। राम नाम का महामंगल महामन्त्र मेरे हृदय में विराजमान है, यह मनोभावना पूरे विश्वास और सुनिश्चल निश्चय के साथ उपासक के अन्तस्थल में बद्धमूल हो जानी चाहिये। चलते फिरते, उठते बैठते, सोते जागते और काम काज करते हुये भी ऊपर प्रदर्शित मनोभावना अन्तःकरण में विलास ही करती है। ऐसा अभ्यास एक उत्तम अभ्यास है।

साधक को पक्का विश्वास हो कि राम नाम मेरे हृदय में है और इस नाम का वाच्य नामी भी वहीं विद्यमान है। अब मेरा हृदय परमेश्वर का आसन-स्थान है। यहां तेजोमय परम पुरुष सुशोभित है। मेरा तन भगवान का मन्दिर बन गया है। वह आनन्दकन्द, सर्वशक्तिमय श्रीहरि मुझ में अवतरित हो गया है और वह परमात्मदेव रात दिन निरन्तर मेरी पालना करता है। साधक श्रद्धापूर्वक मनन करे कि अब मेरे तन में भगवान की कृपा मेरी साधना का काम आप ही आप कर रही है। मेरे सब साधन अब राम कृपा से स्वयंसिद्ध होते चले जा रहे हैं। जब मैं श्रीराम चरण शरण में सर्वभाव से समर्पित हो गया हूं तो मुझे साधना और सिद्धि दोनों की चिन्ता कुछ भी नहीं करनी चाहिये। अब मेरी

आत्मोन्नति परमात्मा श्रीराम की इच्छा से अवश्यमेव होती चली जायेगी और रोकटोकरहित होती ही चली जायेगी।

मनोभावना नाम में स्थिर हो

साधक प्रबलतर मनोभावना बनाये रखे कि जैसे तन में औषधि काम करती है ऐसे ही मेरे मानस रोगों को, मेरी चिन्ताओं को, मेरी चंचलताओं को, मेरे मलिन विचारों को दूर करने का काम श्रीराम नाम आप ही कर रहा है। मुझे तो एकाग्रता धारण करके उसे काम करने का अवसर ही देना उचित है। रामनाम रूप कल्पतरु का बीज मेरे हृदय की भूमि में बोया जा चुका है। वह मेरी साधनाओं और सफलताओं के रूप में स्वयं अंकुरित और पत्रित पुष्पित आदि होता जायेगा। मेरा तो भगवान की कृपा पर अभंग भरोसा ही रखना काम है। भक्त के लिए मनोभावना का साधन एक ऊँचा साधन है और नामोपासना में तो ऐसी अनन्य मनोभावना को परम साधन समझा गया है। मनोभावना के स्थिर हो जाने पर हरि कृपा-किरण साधक के आत्मलोक में प्रविष्ट होती है। जैसे चन्द्र की शीतल रश्मियां वनों उपवनों में, कमलकुन्जों में और तरुमालाओं में अवतरित होकर उन्हें प्राण प्रदान करती हैं, भक्त मनोभावना करे कि ऐसे ही नाम चन्द्रोदय से परमेश्वर कृपा और शक्ति उसमें उत्तरोत्तर उन्नति कराती जाती है। साधक की मनोभावना हो कि जैसे सूर्य की सुनहरी किरणें जड़ जंगम जगत को ज्योति, जीवन, बल और शक्ति सहज से दान किया करती हैं इसी प्रकार नामोपासक में भगवान की कृपा स्वयमेव योग-साधना और आत्मिक विकास करती रहती है। साधक को तो अन्तःकरण की कोठरी के किवाड़ खोलकर हृदय में नाम-स्थापना द्वारा हरि कृपा को प्रवेश मार्ग ही देना होता है।

भक्त की भावना में भगवान

श्रीराम नाम के उपासक को इस बात में श्रद्धा करनी चाहिए कि भक्त की भावना ही भगवान के आराधन का सर्वोत्तम साधन

है। श्री भगवान भक्त की भावपूर्ण भावना से प्रकट होते हैं। उस परम पावन पुरुष का अवतरण उसी जन पर होता है जो भक्तिभाव भरे भावों से भगवान के नाम को जपता है। अचल निश्चय से एकाग्र मन होकर श्रीराम नाम का ध्यान तथा चिन्तन करता है। अतुल लगन से श्रीराम नाम की धुन में लौ लगाता है। पराप्रीति से श्रीराम नाम निर्भर हो जाता है। और जो अनन्य निश्चय से श्रीराम नाम को परमेश्वर के परम पद की सर्वश्रेष्ठ साधना और सिद्धि समझता है।

श्रद्धावान उपासक को श्रीराम नाम केवल अक्षरमय शब्द ही प्रतीत नहीं होता। वह अपनी प्रीति से, अपनी श्रद्धा से, अपने निश्चय से और अपनी भावना से इसमें भगवान को ऐसे ही प्रतिष्ठित कर लेता है जैसे लोग मूर्ति में अपने देवता को प्रतिष्ठित कर लिया करते हैं। उपासक के मानस नेत्रों के सामने नाम और नामी एक हो जाते हैं। वह नाम और नामी में कुछ भेद नहीं मानता। उसके निश्चय में जैसे सूर्य में ज्योति है, चांद में चमक है, जल में शीतलता है, अग्नि में उष्णता है, पुष्प में सुगन्धि है और मधु में मिठास है इसी प्रकार श्रीराम नाम में श्रीराम स्वयं विद्यमान हैं। उपासक तन में जीव की भांति नाम में श्रीराम को समझता है।

साधारण जनों के समीप तो नाम का जप, चिन्तन, आराधन और ध्यान एक शब्द को बार बार रटना है परन्तु नामोपासक की शुद्ध समझ में, सुदृढ़ विश्वास में और विमल बुद्धि में नामाभ्यास आन्तरिक विकास का, आत्मोन्नति का, मल आवरण विक्षेप के नाश का और पाप ताप के विनाश का एक तुलनातीत उपाय है। श्रीराम नाम का अभ्यासी राम नाम के जप से, श्रीराम नाम के चिन्तन से, श्रीराम नाम के आराधन से और श्रीराम नाम के ध्यान से स्वात्मा परमात्मा को ऐसे ही प्रकट तथा अभिव्यक्त कर लिया करता है जैसे याजक अरणियों से अग्नि को और पदार्थ विद्यावेत्ता रगड़ से विद्युत को। परन्तु नामाभ्यास गहरी लगन से,

संशयरहित निश्चय से, पूरे भरोसे से और बड़ी तत्परता से किया जाना चाहिये।

मनुष्य की शरीरस्थ चेतनशक्ति, परम्परा के कर्म बन्धनों से बंधी पड़ी है, असंख्य अशुद्ध संस्कारों के प्रबलतर परदों से आवृत्त हो रही है, देह ही को अपना आप मानकर स्वसत्ता को भूल सी गई है। अज्ञानान्धकार में घिर कर अपने आपके विवेक-विचार को खो बैठी है और प्रकृति के विकारों के प्रपंच में पड़कर स्वात्मपद से पतित सी बनी हुई है। वह बद्धचेतना अपने पवित्र पुरुष स्वरूप को प्रकृति रूप ही समझ रही है। श्रीराम नाम का उपासक इस मांगलिक महामन्त्र के भक्ति योग से, इसके मनन, चिन्तन और ध्यान से अपनी प्रसुप्त आत्मा को, प्रकृति रूप बने हुए अपने चेतन भाव को और कर्मपाश में फँसे पड़े अपने अमल आन्तरिक स्वरूप को जाग्रत, प्रबुद्ध तथा स्वतन्त्र कर लेता है। वह प्रकृति में आत्मा को देखने लग जाता है। उसे प्रकृति आत्मा के काम का एक यन्त्र प्रतीत होती है। नाम योग की महिमा अगम्य है। इससे उपासक जहां निज स्वरूप को प्रकट कर लेता है वहां वह अपने में तथा विश्व में परमेश्वर को भी अवतरित कर पाता है। वह जहां आप होता है, नामोपासना से, वहीं नामी को-परमेश्वर को, प्रकाशमान कर लिया करता है। नामोपासक की परा प्रीति के वश, अनन्य भक्ति के अधीन और श्रीराम नाम की धुन की एकतारता में श्री भगवान आप ही आप अभिव्यक्त हो जाते हैं। उपासक लोग इसी कारण श्रीराम नामरूप मधुर धुन में रमण करना, श्रीराम नामरूप महामन्त्र में मन लगाना, श्रीराम नाम में तन्मय हो जाना और श्रीराम नामोपासना में निमग्नता का अलभ्य लाभ लेना परम योग कहा करते हैं।

भावना में भगवान

आप आराधना करते हो—राम नाम की। इसमें भावना बनानी चाहिये। देव जो है वह भावना में रहता है। जिसमें भावना उद्दीप्त की उसमें भगवान। नाम भावना उद्दीप्त करनी

चाहिये। साधक को यह विचार करना चाहिये कि नाम में भगवान की कला प्रगट होती है और हम नाम की आराधना करते हैं। फिर वह (राम) हमारे पास है। तो नाम जो स्थापित हुआ है वह राम ही हुआ। सालिगराम का क्या आकार है—भावना ही तो है कि सालिगराम की पूजा, कृष्ण की पूजा। सो मूर्ति नित्य बनाते और प्रवाहित कर देते। जहां हमारी भावना। नाम और नामी एक होते हैं यह तो महापुरुषों ने कहा ही है। किसी के अंग को हाथ लगाओ कि तू कौन है? तो वह अपना नाम बताएगा। नाम जैसे सारे शरीर में, इसी प्रकार वह राम सारे संसार में है। राम मूर्ति स्थापित है (अपने हृदय में) तो जप करने वाले समझें, हम पूजन कर रहे हैं। राम को जप में अपने पास समझना।

मूर्ति में भावना-पहाड़ी लोग पत्थर को तो देवता कहते हैं। कुल्लू कांगड़ा के देवता, देहाती लाते हैं, साफ सुथरे कपड़े पहन कर, दस दस मील से, पन्द्रह मील से। देवता के दर्शन एक बात, ऐसे अवसर पर नृत्य भी और गाने भी। देवता लकड़ी का बना होता है। इस समय के रिवाज जब गमनागम कम था—एक पत्थर को कौन लाता। न मूर्ति में देव है, न पत्थर में है, वह तो भावना में है।

परमेश्वर को सदा पास समझो

पण्डित नेहरू जी दूसरी बार अमेरिका गए। टेलीविजन का इन्तजाम कर दिया (उनके भाषण के प्रसारण के लिए) जहां बोलने को कहा वहां भिन्न भिन्न देशों में रेडियो और टेलीविजन पर पचास लाख व्यक्तियों ने इसको सुना और देखा। कोई 400 मील दूर और कोई हजार मील। तो रूप और शब्द दोनों ब्राडकास्ट। शब्द भी आकाश में हज़ारों मील दूर और स्वरूप भी। एक जगह बोलता हुआ—लाख जगह बोलता हुआ दिखाई देता है। रूप देखने में अन्तर नहीं दिखाई देता है। यह विज्ञान से इस समय इतनी बात सिद्ध है। भगवान आप के पास ही है। वह

दूर नहीं है, यह भावना यदि कभी कभी आ जावे तो इससे बड़ा लाभ। जल होता है तो ही मछली तैरती है। पंछी टहनी पर बैठता है जहां वृक्ष होते हैं, वनों में। पर जब उड़ना चाहे तो ऊंचा आकाश। ऐसे ही परमेश्वर को जितना दूर समझते हो इतना ही गलत विचार है। उससे झूठ, अहंकार आदि होते हैं। साधना करने वाले साधक को यह भावना रखनी चाहिये कि हमारे पास है राम। वैसे भी पास है और आराधना में हो तो हम इसकी आराधना करते। इसलिये परमेश्वर को सदा पास समझना।

इससे बड़ा लाभ--बड़ा लाभ--बड़ा लाभ।

नाम जागृति

अपने भीतर श्रीराम नाम जाग्रत करना चाहिये। ऐसा प्रतीत हो कि चलते, फिरते, उठते, बैठते, लेटे हुए और काम काज करते हुए भी जब ध्यान किया जाये, रामनाम भीतर स्वयमेव जपा जा रहा है। यहां तक कि सोते हुए जप चलता रहे और जब आंख खुले उस समय भी राम नाम परम तारक मन्त्र की तार भीतर हिलती हुई प्रतीत हो। जिस उपासक को यह अवस्था प्राप्त हो जाय उसको समझ लेना चाहिये कि राम नाम महामन्त्र उसकी आत्मा में बस गया है, उसकी आत्मसत्ता जग गयी है, उसका मन्त्र सिद्ध हो चुका है और उस पर रामकृपा अवतरित हो आई है। यह अजपा जाप की भूमिका योग की ऊँची भूमिका है। इसके प्राप्त हो जाने पर उपासक कालचक्र से पार पा जाता है, उसकी गति उच्चतर हो जाती है और वह अपना निस्तार अवश्य कर लेता है।

अजपा जाप

ऊपर कही अवस्था को सिद्ध करने के लिये श्रीराम नाम में अपार प्रीति, अतुल श्रद्धा, अनन्य भक्ति और संशय-रहित निश्चय हो तो यह अवस्था शीघ्र मिल जाती है। श्रीराम नाम का अधिक जप करने से भी अजपा जाप जग जाता है। अपनी जीवन

नौका श्री राम चरण शरण में समर्पण करके कुछ काल तक एकान्त में नामाराधन करने से तो कोई कितना ही मन्द कर्मी क्यों न हो उसमें नाम नाद और अनाहत नाद अवश्य ही जग जायेगा। श्रीराम कृपा के असीम सागर हैं। वे अपने नाम के उपासक को एक न एक दिन अवश्य ही सम्भाल लेते हैं। उसे भूलने भटकने से बचाकर उसका पथ प्रदर्शन आप करने लग जाते हैं। ऐसा भरोसा और अनुभव सन्तों और भक्तों का आदि काल से चला आ रहा है। प्रत्येक उपासक को ऐसी ही धारणा तथा तत्परता से श्री राम नाम का आराधन करते रहना उचित है।

नाम बल

गंगा में जो बल है वह ऋषिकेश या हरिद्वार का नहीं वरन् हिमालय पर्वत का है। भारत में बड़ी नहरें हैं। नहर के जल में वेग की तेजी लाने की जरूरत विज्ञान बताता है। इसीलिए कुछ दूरी पर जल प्रपात रखा जाता है। इसी प्रकार राम नाम में जो बल है उसमें वही बल है जहां से अवतरित हुआ है। हमारे जाप करने का बल भी बल है। किन्तु वह उतना नहीं जितना कि अवतरित स्थान का होता है।

कभी कभी नाम दान के अवसर पर शक्ति आह्वान करते समय नाम बल का परिचय मिलता है। दस मिनट में दसों चक्र खुल जाते हैं। (तप और प्राणायाम का प्रचार लोगों द्वारा बड़े अद्भुत ढंगों से किया गया है।)

राम कृपा से अद्भुत परिचय होते हैं। इसके लिये कोई प्रमाण नहीं। नाम मन्त्र का योग है। वह एक विचित्र प्रकार का है। सूक्ष्म शरीर बाहर हो जाता है। अध्यात्म विज्ञान पूर्ण है, पौथिक बात नहीं है। भगवद् दया से साधक उन्नति करते हैं। ऐसा विश्वास होना चाहिये कि हमारा कल्याण तो हो ही गया। धारणा भगवान के इस नाम में ही अनन्य होनी चाहिये। बहुत मन्त्रों को जपना ठीक नहीं। मन्त्र में कुछ जोड़ना नहीं चाहिये।

नाम में निमग्न हो जाना चाहिये। नाम ही रक्षा करेगा ऐसी भावना चाहिये। नाम की महिमा अद्भुत है। अधिकारी सब ही हैं। खाट पर पड़े रोगी को भी यह अधिकार है। व्यक्ति को चरित्र अच्छा रखना चाहिये। भगवान के आगे अपने आपको खोलना चाहिये। भक्त कवियों ने अपने चरित्र को, भला बुरा जैसा था, खोला है। आत्मा से आत्मा बोले तो आत्मा जगता है। जो व्यक्ति बहुत से मार्गों पर चलता है वह भटक जाता है। जैसे चटोरे लोग अपने पेट की अग्नि को मन्द कर लेते हैं उसी प्रकार नाम प्रेमी भी सन्देहवश गिर जाते हैं।

नाम देने वाले की अध्यात्मिक उन्नति तथा लेने वाले की शुद्ध, सरल हृदयता आवश्यक

एक बूढ़ा जो पैर इकट्ठे भी नहीं कर सकता तो वह यदि चारपाई पर ही राम-राम करता है तो इसमें (ही) उसका कल्याण (हो जाता है)। राम नाम के सिमरन के लिए और बातें जो हैं उनकी बड़ी आवश्यकता नहीं, पर बात तो यह है कि बीज ठीक होना चाहिए। इस बात को देखने की आवश्यकता नहीं कि यों ही छिड़का या फैंका या बोया। बीज उल्टा पड़े या सीधा, अंकुर तो सदा निकलता है। बीज अच्छा होना चाहिए। आसन वासन जरूरी नहीं। नाम का साधन हर स्थिति में ठीक। जिस ओर से वह चला है वह ठीक हो। और जहां स्थापित हुआ वह हृदय साफ (नाम आराधन में मुख्य बात तो यह है कि नाम देने वालों की अध्यात्मिक उन्नति और लेने वाले की शुद्ध, सरल हृदयता। बीज उगेगा अपनी शक्ति से। इस बात का विश्वास हो कि बीज में शक्ति (है)। इसी लिए इसको (नाम को) बीजाक्षर कहा। बीज में पेड़ की सारी सामग्री समाई हुई है। इसी प्रकार भगवत नाम जो हम लेते-देते-जपते हैं। इसमें जिससे आया उसकी शक्ति है। जितना विश्वास हो इस बात का, इतना ही लाभ।

कृषिकारों को विश्वास होता है कि बीज हमने बो दिया, उगेगा। इसको कोई कहे कि यों बीज फैंकने से क्या उगेगा तो वह

नौका श्री राम चरण शरण में समर्पण करके कुछ काल तक एकान्त में नामाराधन करने से तो कोई कितना ही मन्द कर्मी क्यों न हो उसमें नाम नाद और अनाहत नाद अवश्य ही जग जायेगा। श्रीराम कृपा के असीम सागर हैं। वे अपने नाम के उपासक को एक न एक दिन अवश्य ही सम्भाल लेते हैं। उसे भूलने भटकने से बचाकर उसका पथ प्रदर्शन आप करने लग जाते हैं। ऐसा भरोसा और अनुभव सन्तों और भक्तों का आदि काल से चला आ रहा है। प्रत्येक उपासक को ऐसी ही धारणा तथा तत्परता से श्री राम नाम का आराधन करते रहना उचित है।

नाम बल

गंगा में जो बल है वह ऋषिकेश या हरिद्वार का नहीं वरन् हिमालय पर्वत का है। भारत में बड़ी नहरें हैं। नहर के जल में वेग की तेजी लाने की जरूरत विज्ञान बताता है। इसीलिए कुछ दूरी पर जल प्रपात रखा जाता है। इसी प्रकार राम नाम में जो बल है उसमें वही बल है जहां से अवतरित हुआ है। हमारे जाप करने का बल भी बल है। किन्तु वह उतना नहीं जितना कि अवतरित स्थान का होता है।

कभी कभी नाम दान के अवसर पर शक्ति आह्वान करते समय नाम बल का परिचय मिलता है। दस मिनट में दसों चक्र खुल जाते हैं। (तप और प्राणायाम का प्रचार लोगों द्वारा बड़े अद्भुत ढंगों से किया गया है।)

राम कृपा से अद्भुत परिचय होते हैं। इसके लिये कोई प्रमाण नहीं। नाम मन्त्र का योग है। वह एक विचित्र प्रकार का है। सूक्ष्म शरीर बाहर हो जाता है। अध्यात्म विज्ञान पूर्ण है, पौथिक बात नहीं है। भगवद् दया से साधक उन्नति करते हैं। ऐसा विश्वास होना चाहिये कि हमारा कल्याण तो हो ही गया। धारणा भगवान के इस नाम में ही अनन्य होनी चाहिये। बहुत मन्त्रों को जपना ठीक नहीं। मन्त्र में कुछ जोड़ना नहीं चाहिये।

नाम में निमग्न हो जाना चाहिये। नाम ही रक्षा करेगा ऐसी भावना चाहिये। नाम की महिमा अद्‌भुत है। अधिकारी सब ही हैं। खाट पर पड़े रोगी को भी यह अधिकार है। व्यक्ति को चरित्र अच्छा रखना चाहिये। भगवान के आगे अपने आपको खोलना चाहिये। भक्त कवियों ने अपने चरित्र को, भला बुरा जैसा था, खोला है। आत्मा से आत्मा बोले तो आत्मा जगता है। जो व्यक्ति बहुत से मार्गों पर चलता है वह भटक जाता है। जैसे चटोरे लोग अपने पेट की अग्नि को मन्द कर लेते हैं उसी प्रकार नाम प्रेमी भी सन्देहवश गिर जाते हैं।

नाम देने वाले की अध्यात्मिक उन्नति तथा लेने वाले की शुद्ध, सरल हृदयता आवश्यक

एक बूढ़ा जो पैर इकट्ठे भी नहीं कर सकता तो वह यदि चारपाई पर ही राम-राम करता है तो इसमें (ही) उसका कल्याण (हो जाता है)। राम नाम के सिमरन के लिए और बातें जो हैं उनकी बड़ी आवश्यकता नहीं, पर बात तो यह है कि बीज ठीक होना चाहिए। इस बात को देखने की आवश्यकता नहीं कि यों ही छिड़का या फैंका या बोया। बीज उल्टा पड़े या सीधा, अंकुर तो सदा निकलता है। बीज अच्छा होना चाहिए। आसन वासन जरूरी नहीं। नाम का साधन हर स्थिति में ठीक। जिस ओर से वह चला है वह ठीक हो। और जहां स्थापित हुआ वह हृदय साफ (नाम आराधन में मुख्य बात तो यह है कि नाम देने वालों की अध्यात्मिक उन्नति और लेने वाले की शुद्ध, सरल हृदयता। बीज उगेगा अपनी शक्ति से। इस बात का विश्वास हो कि बीज में शक्ति (है)। इसी लिए इसको (नाम को) बीजाक्षर कहा। बीज में पेड़ की सारी सामग्री समाई हुई है। इसी प्रकार भगवत नाम जो हम लेते-देते-जपते हैं। इसमें जिससे आया उसकी शक्ति है। जितना विश्वास हो इस बात का, इतना ही लाभ।

कृषिकारों को विश्वास होता है कि बीज हमने बो दिया, उगेगा। इसको कोई कहे कि यों बीज फैंकने से क्या उगेगा तो वह

कहेगा कि यह हम अनुभव से प्रतिदिन देखते हैं। हम खेतों का काम करते हैं, हमें पता है कि अवश्य उगेगा। डाक्टर फिर यद्यपि थोड़ा पढ़ा हुआ हो, यदि डाक्टर और उसकी दी हुई दवाई में विश्वास है तो लाभ अवश्य होगा। विश्वास की कमी तो जो है वह (तो) जमीन की खराबी (के समान है)। कल्लर जमीन में बीज कैसे उगेगा (इसी प्रकार अविश्वासी जन को नाम से कितना लाभ होगा) अपना विश्वास सुदृढ़ होना चाहिए। इसी से (नाम से) हमारा कल्याण होगा। ऐसा विश्वास हो तो फिर किसी प्रकार से करे (आराधन) इसको लाभ होगा। औषधि प्रभावित करती है, चाहे वह इंजैक्शन द्वारा दी जाए चाहे मुंह द्वारा। जितनी जल्दी वह रक्त में जावे उतना ही जल्दी लाभ (होता है)। इसी प्रकार जितना नाम को हृदय में बसावे, इतना ही लाभ। विश्वास दुर्बल न हो। बड़ी चीज विश्वास है। यह कृपा अलौकिक है, इस कारण विश्वास कम करते हैं लोग। किन्तु प्रतिदिन का अनुभव (है) उपरिवर्णित कृषिकार का जो काम करता है। इस प्रकार यह अवश्य है।

नाम से क्या लाभ? यदि कोई कठिन ढंग यहां नहीं बताया जाता (यह नहीं समझना चाहिए कि यहां तो कोई कठिन ढंग साधना का बताया नहीं जाता। केवल नाम जपने से क्या लाभ) यहां (नाम आराधना में) तो बड़ी चीज विश्वास है।

स्वाभाविक चीज़ तो कठिन नहीं होनी चाहिए। दाल-रोटी-साग, यह स्वाभाविक, यदि और कुछ जो चीज़ें आवश्यक वे और भी स्वाभाविक। तो जितनी बड़ी आवश्यक, वह उतनी बड़ी स्वाभाविक। इसी प्रकार सूर्य का तेज, पानी-इनके लिए किसी मोल की आवश्यकता नहीं। इसी प्रकार नाम सिमरन भी जो है वह सबके लिए सुलभ है। चाहे एक धुरन्धर विद्वान, चाहे मजदूर। कल्याण का मार्ग (नाम सिमरन) सबके लिए सुगम है। जितना समय मिलता है। हाथ जोड़कर जो अन्दर मूर्ति की स्थापना की है, उसे नमस्कार कर सिमरन करता

हूँ। बड़े महत्त्व का यह बीज है। अध्यात्मिक उन्नति सब इसमें समाई हुई है।

प्रारम्भ में मंगलाचरण—नाम माहात्म्य और सिमरन भी करें और विश्वास से ज्यादा। ज्यादा विश्वास को या इतना मन को घेरना घोटना आवश्यक नहीं जितना विश्वास।

पात्रता अनुसार प्राप्ति

विज्ञान का भाषण वैज्ञानिकों में या विज्ञान के विद्यार्थियों में दिया जाता है। इसीलिये ऐसा व्याख्यान यहां दिया है। दाता की दृष्टि में जो जितने का अधिकारी है उसको उतना ही देगा। बच्चे को एक आना ही रोज देते हैं और बड़े को अधिक। माँ को पता है कि किसको कितनी आवश्यकता है। भगवती जगदम्बा की गोद से जो मिलता है वह जितना आवश्यक समझती है उतना ही देती है। उसमें सन्तुष्ट होना चाहिये। निराशा नहीं होनी चाहिये। प्रसाद स्वरूप जो भी अनुभव हो उसमें कृपा माननी चाहिये। नामध्वनि विस्फुरण हो तो समझो कि सब से बड़ी कृपा है।

जो साधन करते रहते हैं उनको भगवान की विभूति अवश्य चमत्कार दिखाती है। मायाकी, मोह ममता की जो चन्चलता बसी है उसको शान्त करने के लिये नाम का अनुष्ठान करना चाहिये। इससे वृत्तियां शान्त हो जाती हैं। नाम की गूंज उठाने से फिर वहाँ तो कृष्ण की बांसूरी बजेगी। नाम अवतरण से आत्मा प्रबुद्ध की जाती है। इसी भावना से नाम दिया जाता है। इसी भाव से नाम लेना चाहिये। इस से अनेकों का कल्याण होता है। इसी लिये इस में विश्वास होना चाहिये। भगवान के रामनाम से प्रीति जोड़ कर अन्यत्र न भटकना चाहिये। भगवान के राम नाम का भर पेट भोजन पाने पर फिर क्या मांगते फिरना! इससे निस्तार अवश्य है, ऐसा मेरा विश्वास है। नाम के जहाज में बैठ जाने के बाद फिर हमें चिन्ता किस बात की? भावना भंग न हो, वह अखन्ड बनी रहे।

मन्त्र बल

मंत्र में बड़ा बल है। प्रत्येक साधक को मनन करना चाहिये। बिना मनन के मन्त्रत्व नहीं आता। मन्त्र को समझना व पूर्ण धारणा रखना आवश्यक है। बिना श्रम के बात चित्त में चढ़ती नहीं।

मन्त्र में निहित बल पर मनन आवश्यक है। इसके पश्चात् मंगल स्वयमेव होता है। मन्त्र लिखा हुआ सामने रखें। सर्वशक्तिमते परमात्मने श्री रामाय नमः। राम का अर्थ मनन किये बिना महत्त्व वाला नहीं होता। बिना भावना के साधक को बल प्राप्ति नहीं होती। उपासना में बैठते समय प्रणाम करना चाहिये। मन्त्र में देवता को साक्षात् मान कर सम्मान करो।

साधारण यज्ञ में देव को आह्वान करके स्थापित किया जाता है। वायु में पहले से अनेक लहरें चल रही हैं। संसार भर में फैली हुई हैं। अतः देव स्थापन करके ही उपासना में बैठना आवश्यक है। आपकी त्रुटि से दूसरी लहरें प्राप्त हो कर यदि प्रेतात्मा आ जाये और आप को हानि पहुँचाये तो दोषी स्वयं हैं।

इस मन्त्र के बाद अन्यत्र भटकने की आवश्यकता नहीं है। सती की भांति पतिव्रत के अनुसार धर्मपरायण होना चाहिये। सती पर-पति से रति नहीं करती। मन्त्र दीक्षा के समय वचन लिया जाता है कि आराधन छोड़ना नहीं है। भगवान को नमस्कार करके आह्वान करने के पश्चात् अवज्ञा नहीं होनी चाहिये। ये हुए दीक्षा पद्धति के रहस्य।

मन सहज से अधिकार में नहीं आता। वह नाम महातम नहीं जानता। जिनको मुश्किल से नाम धन प्राप्त होता है वे उतनी ही उसकी कदर करते हैं। अध्यात्मिक विद्या को जानने वाले ही इस सत्संग में आते हैं। मन्त्र के बल से आत्मा जागृत होती है। मूलाधार से सहस्त्राधार तक शक्ति को एक दिन में उठा देता है। जो समझता नहीं है वह अनाधिकारी है। गुरु कृपा से सब प्राप्ति होती है। यह प्रार्थना लोक व दैवी जीवन का भी निर्माण करती है।

नामाराधन करने वाला हृदय में साम्य रखे, न जीने की कामना, न मरने की। वह स्वप्न में भी संशयशील न हो कि अन्य भी कल्याणकारी पथ है। जो भगवान का हो जाता है उसकी अपने आप उन्नति होती है, उसकी इच्छा कुछ होती है नहीं। जिसने अन्य इच्छा की उसने राम से नेह नहीं लगाया। उसमें अनन्यता नहीं आई, जो प्रत्येक साधक में होनी चाहिये।

नाम में नामी

"नाम में नामी यों बसे ज्यों पुष्प में सुवास" नाम में नामी, वाच्य में वाचक रहता है। भक्तों ने भी यही वर्णन किया है। नाम देह है, नामी देही है। ये दार्शनिक परिभाषिक शब्द हैं। ऋषि मुनि शब्द में ही परमात्मा को ध्याते हैं। सनातनी भी मूर्ति लाकर रखते हैं किन्तु प्राणप्रतिष्ठा के बाद ही वह नमस्कार के योग्य बनती है, अन्यथा नहीं। कागज के चित्र वन्दनीय नहीं।

गॉड, शिव या अन्य नामों से ईश्वर का बोध होता है। पदार्थ एक है। पदार्थ की ओर संकेत ही प्रधान है। पदार्थ में तो भेद नहीं। स्वरूप के भेद होने से वस्तुभेद होता है, नाम में भेद होने से नहीं।

हम लोगों की प्रथा अन्य लोगों से भिन्न है। इसमें नामभेद से भेद नहीं किन्तु वस्तुभेद से भेद मानते हैं। अग्नि, आग, अग्ग आदि विभिन्न शब्दों से अग्नि का बोध तो व्यापक होता है। रूप एक देश में होता है किन्तु शब्द तो व्यापक होता है। देश-काल से नाम परे है। रूप की रचना तो मनुष्य-कृत भी हो सकती है।

राम नाम से संकेत ईश्वर की ओर है। कृष्ण नाम से भी यदि परम पुरुष का ध्येय हो तो हमें कोई भेद नहीं। परम पुरुष परमात्मा सर्वशक्तिमय स्रष्टा की ओर संकेत होना चाहिये। यहां किसी का खण्डन नहीं है।

राम नाम परम पिता परमेश्वर का नाम है। इसमें राम स्वयं विद्यमान है। ठीक जिस प्रकार नाम द्वारा पुकारे जाने पर कोई

व्यक्ति चला आता है, उसी प्रकार नाम के प्रभाव से परमेश्वर का आना अवश्यम्भावी है।

जैसे हम किसी को किसी नाम से पुकारते हैं तो वह बोलता है। इसी प्रकार हमारे नाम में नामी सम्मिलित है। केवल नाम दिया जाता है, स्वरूप नहीं। जिस प्रकार बीज कैसे भी रख दिया जाये, वह उगता है तथा जिस प्रकार बीज में वृक्ष, शाख, पत्ते तथा फल सहित सारे का सारा समाया होता है इसी प्रकार नाम में उस भगवान के समूचे स्वरूप समाये हुए हैं।

यदि कोई व्यक्ति कहे कि राम नाम कहने से क्या होता है तो हम उसे अज्ञानी समझेंगे, यद्यपि हम उसके सम्मुख यह बात न कहें।

गुरु मार्ग बताने तथा मार्ग प्रदर्शन करने के लिए होता है। उसका कार्य बीज को बोना है। साधक का यह कर्तव्य है कि वह नियमों के अनुसार चले। बीजारोपण एक विशेष प्रकार से तैयार की हुई भूमि में किया जाना चाहिए और उसके पश्चात् भी (अर्थात् बीजारोपण के उपरान्त भी) नियम पालन आवश्यक है। यदि ठीक प्रकार से देख भाल की जाय तो पौधा एक वृक्ष बन जायेगा अन्यथा नष्ट हो सकता है। सुदृढ़ निश्चय के साथ सतत प्रयत्न करते रहने से सफलता प्राप्त होती है।

इस नाम में ही सब नाम

इस नाम में ही सब नाम समाये हुए हैं, ऐसा हमारा निश्चय है। नाम भेद से वस्तु भेद नहीं होता। राम नाम हमारा उपासना का मार्ग है, कोई मत या सम्प्रदाय नहीं है। ऐसा नहीं कि दूसरे नामों से कल्याण नहीं होता। धर्म में विष्णु का स्वरूप व कृपा अवतरित होती है। वह स्वरूप शान्ति, प्रकाश, ज्योति आदि के रूप में हो सकता है। सर्व शक्तिमान का अस्तित्व है, तभी तो लाभ है। स्वरूप सामने प्रकट होने पर गद्गद् होना चाहिए। सहज से प्रकट होने पर भूख बनी ही रहती है। बाप की कमाई मिलने पर पुत्र उसका महत्त्व नहीं समझता। भक्तों पर भगवान

का संकल्प स्वरूप धारण कर अवतरित होता है। राम नाम के जपने वाले के पास आसुरी माया तब कभी खड़ी भी नहीं होती। इस नाम की साधना बहुत उत्तम है।

यदि परमात्मा का अस्तित्व न हो तो हमारे आह्वान करने का क्या लाभ? मैं तो इस बात को मानता हूं कि स्वरूप प्रकट होता है। विश्वास एक पर हो। वह राम भक्त कैसा जो कब्र पर भी माथा टेके और दूसरों को भी पूजे। पति पत्नी की तरह वह भक्त भी एक से प्रेम करे। भक्ति व्यभिचारिणी न होकर अनन्य हो। अनन्य भक्ति होने पर ऐसा नहीं हो सकता कि भगवान की कृपा की वदली आप पर न वरसे। राम नाम से लौकिक कार्यों में भी सहायता मिलती है।

नाम महिमा

राम नाम का आराधन पूर्ण विश्वास, भावना तथा निश्चय सहित करना चाहिये। नाम की बड़ी महिमा है। यदि इस का आराधन भावना, श्रद्धा तथा निश्चय सहित, संशय रहित होकर किया जाय तो वहुत अधिक लाभ होता है।

कुसंग संशय को जन्म देता है तथा इसे वढ़ाता है। यह एक पशु या कीड़े या ऐसी ही किसी अन्य वस्तु के समान है जो खेती को हानि पहुंचाते हैं। संशय मनुष्य को दुर्वल वनाता है। एक डाक्टर को संशय हुआ कि एक विशाल काय परछाई उसकी ओर आ रही है। किन्तु वह उस से डरा नहीं। साहस पूर्वक अपने में दुर्वलता नहीं आने दी।

लोग भगवान के नामों से मिलते हुए नाम अपने वच्चों के रखते हैं, यह अच्छा नहीं है। इस से भगवान के उन नामों की महिमा घट जाती है।

भावनावान तथा निश्चयवान के लिये राम नाम की महानता अपार है। दूसरों के लिये तो यह केवल एक शब्द ही है। वहुत सी चीजें हैं जो आपकी भावना तथा निश्चय को दुर्व

व्यक्ति चला आता है, उसी प्रकार नाम के प्रभाव से परमेश्वर का आना अवश्यम्भावी है।

जैसे हम किसी को किसी नाम से पुकारते हैं तो वह बोलता है। इसी प्रकार हमारे नाम में नामी सम्मिलित है। केवल नाम दिया जाता है, स्वरूप नहीं। जिस प्रकार बीज कैसे भी रख दिया जाये, वह उगता है तथा जिस प्रकार बीज में वृक्ष, शाख, पत्ते तथा फल सहित सारे का सारा समाया होता है इसी प्रकार नाम में उस भगवान के समूचे स्वरूप समाये हुए हैं।

यदि कोई व्यक्ति कहे कि राम नाम कहने से क्या होता है तो हम उसे अज्ञानी समझेंगे, यद्यपि हम उसके सम्मुख यह बात न कहें।

गुरु मार्ग बताने तथा मार्ग प्रदर्शन करने के लिए होता है। उसका कार्य बीज को बोना है। साधक का यह कर्तव्य है कि वह नियमों के अनुसार चले। बीजारोपण एक विशेष प्रकार से तैयार की हुई भूमि में किया जाना चाहिए और उसके पश्चात् भी (अर्थात् बीजारोपण के उपरान्त भी) नियम पालन आवश्यक है। यदि ठीक प्रकार से देख भाल की जाय तो पौधा एक वृक्ष बन जायेगा अन्यथा नष्ट हो सकता है। सुदृढ़ निश्चय के साथ सतत प्रयत्न करते रहने से सफलता प्राप्त होती है।

इस नाम में ही सब नाम

इस नाम में ही सब नाम समाये हुए हैं, ऐसा हमारा निश्चय है। नाम भेद से वस्तु भेद नहीं होता। राम नाम हमारा उपासना का मार्ग है, कोई मत या सम्प्रदाय नहीं है। ऐसा नहीं कि दूसरे नामों से कल्याण नहीं होता। धर्म में विष्णु का स्वरूप व कृपा अवतरित होती है। वह स्वरूप शान्ति, प्रकाश, ज्योति आदि के रूप में हो सकता है। सर्व शक्तिमान का अस्तित्व है, तभी तो लाभ है। स्वरूप सामने प्रकट होने पर गद्गद् होना चाहिए। सहज से प्रकट होने पर भूख बनी ही रहती है। बाप की कमाई मिलने पर पुत्र उसका महत्त्व नहीं समझता। भक्तों पर भगवान

का संकल्प स्वरूप धारण कर अवतरित होता है। राम नाम के जपने वाले के पास आसुरी माया तब कभी खड़ी भी नहीं होती। इस नाम की साधना बहुत उत्तम है।

यदि परमात्मा का अस्तित्व न हो तो हमारे आह्वान करने का क्या लाभ? मैं तो इस बात को मानता हूं कि स्वरूप प्रकट होता है। विश्वास एक पर हो। वह राम भक्त कैसा जो कब्र पर भी माथा टेके और दूसरों को भी पूजे। पति पत्नी की तरह वह भक्त भी एक से प्रेम करे। भक्ति व्यभिचारिणी न होकर अनन्य हो। अनन्य भक्ति होने पर ऐसा नहीं हो सकता कि भगवान की कृपा की बदली आप पर न बरसे। राम नाम से लौकिक कार्यों में भी सहायता मिलती है।

नाम महिमा

राम नाम का आराधन पूर्ण विश्वास, भावना तथा निश्चय सहित करना चाहिये। नाम की बड़ी महिमा है। यदि इस का आराधन भावना, श्रद्धा तथा निश्चय सहित, संशय रहित होकर किया जाय तो बहुत अधिक लाभ होता है।

कुसंग संशय को जन्म देता है तथा इसे बढ़ाता है। यह एक पशु या कीड़े या ऐसी ही किसी अन्य वस्तु के समान है जो खेती को हानि पहुंचाते हैं। संशय मनुष्य को दुर्बल बनाता है। एक डाक्टर को संशय हुआ कि एक विशाल काय परछाई उसकी ओर आ रही है। किन्तु वह उस से डरा नहीं। साहस पूर्वक अपने में दुर्बलता नहीं आने दी।

लोग भगवान के नामों से मिलते हुए नाम अपने बच्चों के रखते हैं, यह अच्छा नहीं है। इस से भगवान के उन नामों की महिमा घट जाती है।

भावनावान तथा निश्चयवान के लिये राम नाम की महानता अपार है। दूसरों के लिये तो यह केवल एक शब्द ही है। बहुत सी चीजें हैं जो आपकी भावना तथा निश्चय को दुर्बल बनाती हैं

किन्तु आप को चाहिये कि आप इस महान नाम की खेती की रक्षा करें तथा गधों द्वारा इस नाम रूपी खेती को नष्ट न होने दें। आप को यह नहीं समझना चाहिये कि यदि आप का कोई अपना खेती को बिना हानि पहुंचाए उसमें से गुजर गया तो गधे भी इसी प्रकार कोई हानि पहुंचाये बिना चले जायेंगे। अर्थात् कुसंग आदि से बचो। संशय आदि से नाम रूपी खेती की रक्षा करो।

हम केवल उन्हीं को आने देते हैं जिन्होंने नाम लिया हो (साधना सत्संग में)। यह एक कहानी के समान साधारण जनता में कहने की बातें नहीं हैं। इसलिये उन लोगों को इस में सम्मिलित होने को प्रोत्साहित नहीं किया जाता।

सारांश यह है कि पूर्ण लाभ उठाने के लिये पूर्ण भावना, निश्चय और श्रद्धा होनी चाहिये तथा संशय और कुसंग आदि से, जो आप की श्रद्धा को दुर्बल बनावें, बचना चाहिये।

नाम-योग—अध्यात्म चिकित्सा

नाम का योग एक प्रकार से अध्यात्म चिकित्सा है। मनुष्य के अंदर एक विचार, एक संस्कार बैठा होता है और वह सरलता से निकलता नहीं। जैसे किसी को भूतादि दीखते हों तो उसे कहते हैं कि तुम बोलते जाओ और बोलते बोलते उस के विचार बाहर निकल जाते हैं और वह स्वस्थ हो जाता है।

अध्यात्म चिकित्सा को स्वात्म चिकित्सा भी कहते हैं। जिस ने स्वात्म चिकित्सा नहीं कराई वह दूसरे की चिकित्सा के योग्य नहीं होता। इस लिए पर चिकित्सा से पहले आत्म चिकित्सा आवश्यक है। मैसमरेजम में यह त्रुटि है कि इसमें स्वात्म चिकित्सा नहीं कराई जाती और वह बड़ी बड़ी गलतियाँ कर जाते हैं। नाम अंदर गहरा जाता है। और गहरे बैठे हुए संस्कार निकल जाते हैं। इसमें मनुष्य पवित्र हो जाता है। नाम की चिकित्सा में कभी-कभी किसी के पुराने संस्कार बहुत भड़का करते हैं। असम्भव नहीं जो तीव्र आवेश (Aggravation) हो जाय किन्तु

वास्तव में चिकित्सा हो रही होती है। घबराना नहीं चाहिए। नाम जाप में लगे रहना चाहिये अपितु जाप की मात्रा बढ़ा देनी चाहिए। अंत में उसे लाभ होगा और वह अध्यात्मिक दृष्टि से बहुत अच्छा हो जाएगा। किन्तु आत्मचिकित्सा का भाव होना चाहिए। गुरु बनने के विचार से बहुत लोग इस मार्ग पर चलते हैं और भूलों में पड़कर भटकते फिरते हैं। और हानि उठाते हैं।

मैं अपने पास अपने मिलने वालों को तीन बातों का निशेध बताता हूं,

१. मादक द्रव्यों का सेवन (मादक द्रव्य वे जिनके उपयोग से बेहोशी सी आ जाय)

२. व्यभिचार (Sexual impurity),

३. कुसंग

कुसंग केवल पापी मनुष्यों के संग को ही नहीं कहते। संशय-शील तथा भ्रमशील व्यक्तियों का संग तो इनसे भी अधिक कुसंग है क्योंकि इस से आध्यात्मिक रोग हो जाते हैं। गुरु के समक्ष अथवा परमेश्वर को सम्मुख उपस्थित मानकर, उस के सामने बैठने से, यह भाव लेकर कि जो तू करे वही सत्य है, ऐसा करने से ही कृपा की किरणें आने लग जाती हैं।

अध्यात्म-चिकित्सा का तथा योग का अन्त एक है चाहे फिज़ियोएनेलेसिस (Physio-analysis) में विश्वास का अंश न हो। आत्मचिकित्सा का अर्थ है मेरे अन्दर से कुसंस्कार निकल जायें।

साधना में एक-मना होकर लगना चाहिये। आज एक साधन किया, कल दूसरा। नाम का योग अत्युत्तम अध्यात्म चिकित्सा है। इस में भगवान स्वयं डाक्टर है। आत्मा को पवित्र बनाने पर लक्ष्य होना चाहिये केवल सुन्न बनने पर नहीं। एकाग्रता भी होनी चाहिये। नाम का अभ्यास प्राणायाम आदि से भिन्न है। इसमें प्राण ही नहीं अपितु आत्मा की शक्ति उठा करती है। यह प्राणों में बन्द हुई पड़ी होती है और सजग बन जाने से जाग उठती है। का काम है कि शिष्य को जगाये और उसे महा-शक्ति दे।

किन्तु आप को चाहिये कि आप इस महान नाम की खेती की रक्षा करें तथा गधों द्वारा इस नाम रूपी खेती को नष्ट न होने दें। आप को यह नहीं समझना चाहिये कि यदि आप का कोई अपना खेती को बिना हानि पहुंचाए उसमें से गुजर गया तो गधे भी इसी प्रकार कोई हानि पहुंचाये बिना चले जायेंगे। अर्थात् कुसंग आदि से बचो। संशय आदि से नाम रूपी खेती की रक्षा करो।

हम केवल उन्हीं को आने देते हैं जिन्होंने नाम लिया हो (**साधना सत्संग में**)। यह एक कहानी के समान साधारण जनता में कहने की बातें नहीं हैं। इसलिये उन लोगों को इस में सम्मिलित होने को प्रोत्साहित नहीं किया जाता।

सारांश यह है कि पूर्ण लाभ उठाने के लिये पूर्ण भावना, निश्चय और श्रद्धा होनी चाहिये तथा संशय और कुसंग आदि से, जो आप की श्रद्धा को दुर्बल बनावें, बचना चाहिये।

नाम-योग–अध्यात्म चिकित्सा

नाम का योग एक प्रकार से अध्यात्म चिकित्सा है। मनुष्य के अंदर एक विचार, एक संस्कार बैठा होता है और वह सरलता से निकलता नहीं। जैसे किसी को भूतादि दीखते हों तो उसे कहते हैं कि तुम बोलते जाओ और बोलते बोलते उस के विचार बाहर निकल जाते हैं और वह स्वस्थ हो जाता है।

अध्यात्म चिकित्सा को स्वात्म चिकित्सा भी कहते हैं। जिस ने स्वात्म चिकित्सा नहीं कराई वह दूसरे की चिकित्सा के योग्य नहीं होता। इस लिए पर चिकित्सा से पहले आत्म चिकित्सा आवश्यक है। मैसमरेजम में यह त्रुटि है कि इसमें स्वात्म चिकित्सा नहीं कराई जाती और वह बड़ी बड़ी गलतियाँ कर जाते हैं। नाम अंदर गहरा जाता है। और गहरे बैठे हुए संस्कार निकल जाते हैं। इसमें मनुष्य पवित्र हो जाता है। नाम की चिकित्सा में कभी-कभी किसी के पुराने संस्कार बहुत भड़का करते हैं। असम्भव नहीं जो तीव्र आवेश (Aggravation) हो जाय किन्तु

तभी रोग दूर होगा। वैसे ही सिद्ध नहीं बन सकते। क्लब में ब्रिज खेलना, व्यर्थ गप्प लगाना, सिनेमा देखना ठीक नहीं। अपनी साधना के अनुकूल आहार विहार बनाओ। जाति पाँति समाज व्यवहार को भी अपने अनुकूल बनाओ। राम कृपा के अवतरण को मानस रोग स्थापित नहीं होने देते। रात्रि को अल्पाहार करो तो प्रातः जल्दी उठ सकोगे। मनमानी करो और सिद्ध बनना चाहो, यह असम्भव है। संसार के सभी सुख चाहियें और भगवान भी चाहिये, ऐसा नहीं हो सकता।

जो भगवान को चाहते हैं उन्हें भगवान मिल जाते हैं। जो न चाहे उसे पंच भूत नचावे। त्याग से भगवद्प्राप्ति होती है। संसारी विचारों के संस्कार की मात्रा मन में अधिक संगृहीत है। काम, क्रोध, लोभ, मद, मोह के संस्कार जब तक प्रबल रहेंगे भगवत्प्राप्ति नहीं होगी। तप, त्याग, तितिक्षा से ये संस्कार क्षीण हो जाते हैं। जप से निश्चय ही कल्याण होता है।

रात को जागकर किया गया जाप अधिक लाभदायक होता है। तीव्र भावना बिना प्राप्ति नहीं होती। तीव्र भावना उसी प्रकार होनी चाहिए जैसे डूबने वाले को वायु प्राप्ति के लिए, तीव्र भावना, व्याकुलता और आत्मरक्षा की भावना होती है। जैसे डूबने वाला सारे बल से बचने की चेष्टा करता है, उसी प्रकार साधक यत्न करे।

भक्ति भाव

मैं तो भक्तिभाव को अधिक महत्त्व देता हूं। वेदान्तवाद तो बुद्धिवाद है। इस में तर्क जाल अधिक है किन्तु वह भी जीवन में नहीं पाया जाता। वेदान्त में ईश्वर को अवैयक्तिक कहते हैं किन्तु स्वयं वेदान्ती महात्मा अपने जीवन में ही अपनी समाधि के लिए मन्दिर बनवा लेते हैं और उसके नीचे अपनी कबर बनवाते हैं। अपनी पूजा कराते हैं तथा स्वयं ब्रह्मा बनते हैं। ये तो धर्म की दुकानें खोले हुए हैं। जीवन में धर्म नहीं है। न मालूम कितने महात्माओं ने गंगा किनारे अपनी समाधियां बनवाई हुई हैं।

भारत में लोगों की दर्शन शास्त्र में अधिक रुचि है। जीवन में धर्म को नहीं बसाते हैं। न मालूम कितने लोगों ने मुझ से नाम साधन लिया होगा किन्तु साधन में लगे रहने वाले थोड़े ही होते हैं और उन में भी सत्संगों में सम्मिलित होने वाले प्रति वर्ष और भी कम आते हैं। ऐसा होता है, पेड़ के सब फल पेड़ पर नहीं पकते हैं। कुछ आंधी, तूफान में गिर जाते हैं, कुछ को पक्षी खराब कर देते हैं। कुछ ही फल पेड़ पर पक पाते हैं और लोगों के काम आते हैं। इसी प्रकार साधकों की बात है।

तर्क का सहारा छोड़ कर धर्म की कमाई करो। युक्ति के कमरे को बन्द कर साधक को परम विश्वास, प्रीति तथा श्रद्धा से साधन में लग जाना चाहिए।

प्रार्थना से बड़े लाभ होते हैं। प्रार्थना के सम्बन्ध में **प्रार्थना और उसका प्रभाव** पुस्तक मे सब बातें विस्तार के साथ दी हैं। साधक को इसे भली भांति मनन पूर्वक जीवन में उतारना चाहिए।

इस साधना में लोगों को शीघ्र ही लाभ होता है क्योंकि इसमें इस मंत्र के अधिष्ठाता स्वयं भगवान हैं। अतः इसके पीछे बड़ी शक्ति है किन्तु साधक उसका समुचित आदर नहीं करता है और जीवन में उस शक्ति-अवतरण को स्थायी बनाने के लिए प्रयत्नशील नहीं होता। जिस प्रकार कि करोड़पति धनवान के पुत्र को सहज में धन प्राप्त हो जाता है तो वह उस धन को महत्त्व नहीं देता, बड़ी निर्दयता से खर्च कर देता है। भोग विलास में फंस कर धन, सम्पत्ति और जीवन शक्ति से भी हाथ धो बैठता है। उसी प्रकार साधक इस साधन में प्राप्त शक्ति को ठीक मार्ग में उपयोग न करे तो कुपथ-गामी हो जाता है तथा कालान्तर में निराश होकर साधन छोड़ बैठता है।

अतः यह आवश्यक है कि मनो-निग्रह (इन्द्रिय संयम) करके साधन में तत्पर रहें। अन्य माया मोह के कार्यों में संयमित हों, जीवन को राम काज में लगावें।

ईश्वर-स्वरूप—राम सत्य स्वरूप है

परमेश्वर सत् चित् आनन्द है — यह हम कहते हैं — यह अनादि भाव है। यह प्रकरण मनन करने का है। ईश्वर के स्वरूप सिमरन मनन करने चाहियें। इसी प्रकार आत्म-स्वरूप है। यह दोनों (भक्ति प्रकाश, ईश्वर स्वरूप १०३-१२२ तथा आत्मिक भावनाएं १८३-१९५) बड़े आवश्यक हैं।

सत्य किसे कहते हैं यह पहले पद में कहा गया है। भक्ति प्रकाश के "राम सत्य स्वरूप है" प्रकरण में वस्तु का जो होनापन है और शुद्ध स्वरूप है, वह भाव वाली वस्तु है।

परम सत्ता वाली वस्तु शुद्ध स्वरूप है। वह वस्तु भाव (होने) के रूप में है। इसका स्वरूप सत्य है जो सत्य कही गई है। जैसा है वैसा ही वर्णन है। बना कर नहीं कही गई। उसमें झूठ अंश भी नहीं है। अखण्ड, जिसके खंड—टुकड़े—नहीं हो सकते, ऐसा राम भगवान का स्वरूप है। सद्वस्तु अखण्ड है—इसका टुकड़ा भी नहीं होता है—वस्तुपन ही इसमें सत्य है।।१।।

तीन लोक, तीन काल जिसकी नास्ति न हो—ऐसी सत्ता जो है वह एक रस है।

तीनों लोकों में जिसकी कभी कमी नहीं होती, वह सर्वदा विराजमान है। उसका अभाव कभी नहीं होता। उसकी सत्ता—अस्तित्व—एक रस ही रहती है। उसी से सत्य और सद्भाव कहा गया है।।२।।

जो घटने बढ़ने और परिवर्तन के विना है, जिसमें विकार नहीं है, जिसका आकार नहीं बदलता, जो नाश रहित वस्तु है, उसी को सत्य समझना चाहिये अर्थात् वही श्री भगवान का स्वरूप है।।३।।

जिस वस्तु में परिवर्तन नहीं और किसी दूसरी वस्तु की मिलावट नहीं, वही वस्तु सत्य है, ऐसा ज्ञानी लोग कहते हैं। श्री राम होने से रूप में पूर्णतया बाधा रहित है। इसका होना एक रस, अन्त रहित और बहुत ज्यादा है। श्री राम होने में पूर्णरूप—इस

का होना एक रस—जैसे सूर्य सदा ही प्रकाश वाला। अगाध जिसकी थाह न हो।।४,५।।

श्री राम सब सत्यों का आधार है और साक्षात् सत्य का ही रूप है। निरपेक्षित, अपेक्षा रहित, किसी के सहारे से रहित है। हम जो भी कार्य करते हैं, किसी अपेक्षा—सहारे—से करते हैं। किसी न किसी पर अवश्य निर्भर होते हैं चाहे प्रकृति पर ही निर्भर हों परन्तु भगवान किसी पर भी निर्भर नहीं अपितु अपेक्षा रहित सत्ता है।।६।।

राम की सत्ता हर स्थान पर विकारों से रहित है। उसके आगे कोई नहीं। वह सदा शुद्ध है। उसका रूप ऐसा अपार है जिसका अन्त नहीं।।७।।

जिसका नाम तथा रूप है, उसका काल भी अवश्य आता है। जो काल है वह नाम, रूप में ही है जैसे गुलाव के फूल खिले और फिर मुरझा गए। किसी वस्तु का नाम और युक्त—जो दो मिलाकर वने, वह वस्तुओं के मिलने से वनी है, चाहे वह क्षणिक ही हो, परन्तु दयाल इन दोनों वातों से दूर है। उसका न काल ही है, न संयोग ही।।८।।

हम कार्य हैं, जन जन्य हैं। जिसको पैदा किया हो उसे जन्य कहते हैं। प्रत्येक कार्य हम हाथ से करके दिखाते हैं। कोई वस्तु बनाई हो उसे जन्य कहेंगे। उसका नाश अवश्य होता है। जो जन्मा है उसका अन्त भी है। कार्य जो है वह पैदा हुआ है। जो चीज़ किसी से वनी वह कभी न कभी नष्ट होगी। राम किसी कारण से वने हुए नहीं। श्री राम कार्य रूप नहीं है। वह शुभ सत्य प्रकाश है। प्राणी को कार्य कहा गया है, क्योंकि वह धीरे धीरे तीनों अवस्था को प्राप्त करता है। किसी दिन उसका अन्त भी आता है।।९।।

परन्तु जो एक ही अवस्था में हो, अचल हो, उसे निश्चल कहा गया है। वह परिवर्तन से भी रहित है। ईश सत्ता है। सब सचाइयों का घर है, पूर्ण रूप से सत्य है। ऋषि मुनि कहते हैं कि श्री राम परिवर्तन आदि से तथा अन्त और आदि से रहित है। उनका पद अमृत है, मृत्यु से रहित है।।१०, ११।।

श्री राम के सत्य स्वरूप में काल तथा देश नहीं है। वह हर स्थान में है। किसी विशेष स्थान में नहीं बंधा, उनका स्वरूप अद्वैत, अद्वितीय है। दूसरा कोई नहीं है उन समान, वह सत्ता सनातन है।।१२।।

श्री राम में कोई अन्तर नहीं है। राम के समान और कोई भी नहीं है। उनकी सत्ता सनातन-पुरानी-पुरातन है। सब का ठौर ठिकाना है। उनकी सत्ता अंशांशी भाव—दो अंशों के मिलने के भाव—से रहित है। जैसे तार तार मिल कपड़ा बना है—राम बहुत परमाणु मिल कर नहीं बना। राम सब की टेक है, रक्षा है, सहारा है और कार्य तथा कारण से रहित है। जिसके द्वारा कार्य किया गया वह कारण है और जो किया गया है वह कार्य है।।१३, १४।।

किरण समूह जैसे सूर्य से जुड़ा रहता है, उसी प्रकार सब सत्ता राम में ही समाई रहती हैं। सारी सृष्टि माला के समान है। उसका सूत्र राम शोक-रहित है। सारे लोग उसमें पिरोये शोभा पाते हैं।।१५, १६।।

सब सत्यों के सत्य राम! तुम्हीं सब के आधार हो, मुझे अपने सत्य स्वरूप में प्यार दीजिये।।१७।।

यदि इन प्रकरणों को मनन किया जाये तो ज्ञान दृढ़ होता है और भक्ति भी दृढ़ होती है। जितना कोई मनन करे उतना ही भाव इस में आता जावेगा। तो यह मनन करें तो यह दृढ़िभूत हो जायेगा। तो मुझे यह हर्ष है कि आप सब भजन में लीन हुए। भजन में लीनता यह रस पैदा करती है। तन मन वचन से लीनता हो तो लोगों पर बड़ा प्रभाव होता है।

हम ईश्वर को ज्ञान स्वरूप समझते हैं तो यह मनन करने की बात है। मनन करके जब हम कहें तो ग्रन्थ के पढ़ने का लाभ और फिर रुचि उत्पन्न होती है।

इस पांच तत्त्व के पुतले में क्या है और भगवान क्या है यह भी हमें जानना चाहिये।

रामकृपा अवतरण

अमृत-वाणी में राम-कृपा अवतरण सम्मिलित किया गया है। इस में इस बात पर बल दिया गया है कि भावना सहित जब राम नाम का आराधन किया जाता है तभी अधिक लाभ होता है। जिस वस्तु को खाने की भावना न हो तो मुंह उसे स्वीकार नहीं करता। जो लोग राम नाम को इस भावना से आराधन करते हैं कि महाराज की कृपा होती है तो कृपा अवश्य होती है। परम प्रभु श्रीराम का स्वरूप जो है वह कृपा स्वरूप है। इस राम के आराधन से तो कोई दूसरी वस्तु आती नहीं, कृपा ही आती है। जैसे सूर्य से तो प्रकाश ही आता है, अंधेरा तो उस से आता नहीं। श्रीरामकृपा को ग्रहण करने की भावना का होना आवश्यक है, नहीं तो कृपा, आई और ग्रहण न हुई। ऐसे ही है जैसे रेडियो में ग्रहण करने की शक्ति नहीं तो वह ऐसे ही हुआ जैसे लकड़ी का संदूक।।१।।

जब हम आराधन में बैठते हैं तो उस की कृपा-रामकृपा-अवतरित होती है और यह जो कृपा है वह अनूप है। इसका स्वरूप है ज्ञानमयी, शक्तिशाली और सुखमयी-सुख देने वाली। भावना सहित आराधन हो तो फिर ऐसी कृपा आकर बसती है। इस से वृद्धि बढ़ती है और आनन्द होता है।।२।।

यह नाम बड़ा पावन प्रतीक है। प्रतीक का तात्पर्य है चिन्ह, मूर्ति। यह नाम शक्ति का घर है। जैसे परमाणु हमारे लिये मिट्टी का एक कण है किन्तु वैज्ञानिक जानते हैं कि इस में कितनी शक्ति है। ऐसे ही केवल जानने वाले ही नाम की शक्ति को जानते हैं, सब लोग नहीं। नाम बीजाक्षर है। जैसे गेहूं के एक बीज से कितने बीज बन जाते हैं। वट का बीज कितना छोटा होता है किन्तु उस में कितना बड़ा वृक्ष छिपा होता है। इसी प्रकार नाम में अध्यात्मिकता का महान वृक्ष होता है। नाम जहां तारक है, शक्ति का घर है वहां यह बीज अक्षर भी है। वास्तव में संसार में माया जाल फैला हुआ है। इसलिये रामकृपा बड़ी कठिनाई से आती है। किन्तु अन्ततः आती भी इसी मनुष्य जीवन में।।३।।

साधना करने वालों को साधक कहते हैं। साधना से साधक को जो प्राप्त होता है वह है सिद्धि। साधक को साधना भावना से करनी चाहिये और यह सार जान कर करनी चाहिये कि वाचक और वाच्य एक है। राम शब्द जो बोला वह वाचक है और परम पद जो, वह वाच्य है। यह कोई मैं ही नहीं कह रहा, पातंजलि ने भी कहा है। नाम और नामी एक हैं। मूर्ति की जो पूजा होती थी वह तो उस की प्राण-प्रतिष्ठा की जाती थी। नाम और नामी एक हैं – यह सार है।।४।।

निश्चय धारण करके नाम आराधन करे तो भक्त को यह समझना चाहिये कि नाम स्थापित हुआ, नामी अन्त:करण में आया। भावना के अनुसार लाभ होता है। गंगाजल को जिस भाव से वर्तते हैं उसी भाव की कामना पूरी होती है। अन्यथा ठण्डा पानी ही समझा जाय तो ठण्डक ही लगती हैं। इसी प्रकार धूप से भी उपचार किया जाता है और उसी से सनस्ट्रोक (Sunstroke) भी होता है। सूर्य की किरणें अब तो फोड़े फुंसी के इलाज में भी बरती जाती हैं। नाम का अधिक लाभ तो भावना से ही होता है। वैर, विरोध, मित्रता आदि भावनाएं हैं। इतनी धारायें हैं कि नाम की भावना कठिनता से होती है किन्तु प्रतिदिन नामाराधन करने से भावना होती है। इस का बार बार मनन, बार बार समझने की चेष्टा होनी चाहिये कि यह नाम शक्ति घर है, ज्ञानमय है, सुखमय है, बीज अक्षर है। ऐसी दृढ़ भावना वाले को निश्चय सफलता मिलती है।।५।।

तुम्हारी भावना और निश्चय दुबल नहीं तो फिर तो अवश्य बड़ा लाभ होता है। कृपा तो वैसे भी आ जाया करती है। अधिक और अवश्य लाभ के लिये तो फिर ऐसी भावना हो कि मेरे अन्दर भगवान विराजमान है। यदि कोई ऐसी भावना न बनाए तो कोरा रह जाता है। भावना तो बनाई जाती है।।६।।

भावना वाले के लिये मूर्ति देवमयी होती है। पुराने इतिहासों में अग्निहोत्र का बड़ा वर्णन है। उस का लाभ भी देव-स्थापना से है। ऐसा न हो तो फिर तो मूर्ति की पूजा का लाभ नहीं और

में आहुति का लाभ नहीं। वस्तु भावनामयी होनी चाहिये। साधारणतः पुत्र में केवल यह भावना होती है कि यह मेरा पिता है किन्तु श्रवण कुमार में तो पिता के लिये वास्तविक श्रद्धा थी। ऐसे ही श्रद्धा-पूर्ण भावना से भक्त को यह समझना चाहिये कि नाम में नामी है। मन्त्र आराधन करते-करते ही हमारे भीतर शक्ति उत्पन्न हो जाती है और बाहर भी। यदि पुत्र में भावना हो तो पिता भी उसके लिये कितना पिघल जाता है। श्रवण के माता पिता में कितनी भावना थी। श्रवण के शरीर छोड़ जाने पर उन्होंने भी वहीं शरीर त्याग दिया।।७।।

नाम में बड़ी पूज्य भावना हो कि परम पिता श्रीराम इस में विद्यमान हैं। ऐसी भावना से लाभ तो होता ही है। लाभ से तो भण्डार भर जाते हैं। जैसे धन्ना सेठ और प्रह्लाद भक्त के साथ हुआ। मुझे एक तरुण मिला जिस में बड़ी तीव्र भावना थी। वह सदा अपने सौदों में सफल होता था।

आप को यह जानना चाहिये कि रामकृपा अवतरण का प्रकरण किस भावना से लिखा गया है। किसी शब्द का अर्थ वह यथार्थ है जिस की ओर शब्द संकेत करता है जैसे पानी। अर्थ शब्द से भिन्न नहीं है। अर्थात् शब्द और अर्थ एक हैं। इसी प्रकार नाम और नामी एक हैं।

वाल्मीकीय रामायण सार में दो तीन मंगलाचरण हैं, यथा राम का, सीता राम का। इन में भक्त जनों को भी मंगलाचरण है। ऐसी रीति हो कि नमस्कार करके बैठा जाय, इस से विनीतता आती है, गम्भीरता आती है। भावना न हो तो देवदया नहीं होती। भावना से कृपा केन्द्रित होती है। जैसे सूर्य की किरणें मोटे दल के शीशे पर पड़ती हैं तो केन्द्रित होकर कपड़े को जला भी देती हैं। जब बड़ी लगन और चाव हो तो देव दया का अवतरण तथा विकास होता है और ठहरता है।

भगवान ने गीता में कहा है कि संशय मनुष्य का बड़ा शत्रु है। देखो! जब कोई व्याधि फैलती है तो डाक्टर टीका करता है। मेलों पर भी टीके लगाये जाते हैं। तो इसी प्रकार विश्वास का टीका

जगवाना ज़रूरी है ताकि पथ पतन न होवे। इसलिये दृढ़ विश्वास पैदा करें। जितना आप भटकेंगे, भटकते जावेंगे। मैं किसी पंथ के निश्चय के लिये नहीं कहता। रामनाम धारण करें। ऐसा दृढ़ विश्वास हो जाए तो फिर उतरदायित्व उस भगवान का ही हो जाता है।

श्री राम पर अचल एवं अटल निश्चय बनाओ।

जैसे बीज भूमि में डाला तो-जल, रज, ऋतु- इन तीनों द्वारा विकास पाता है। ऐसे ही नाम के मन्त्र के संयोग से आप ही लाभ होता है। जैसे बिजली घर है, परमाणु में शक्ति है, अर्थात् जैसे बिजलीघर बिजली का कोष है। परमाणु शक्ति का भण्डार है, ऐसे ही इस मन्त्र में पाप ताप को मारने और अच्छे भाव को प्रफुल्लित करने की शक्ति है। देव भावना में ही रहता है। यदि भावना न हो और फिर भी काम हो जाये तो दूसरी बात है पर भावना के साथ व्यायाम करने से ही शरीर बलिष्ट (बलशाली) होता है। किन्तु यदि कोई नौकरी ढूंढने के लिए दौड़ भाग करता है। तो इस में कोई व्यायाम की भावना नहीं होती। अतः उससे व्यायाम का कोई लाभ नहीं होता। अतः हरिकृपा के अवतरण का ध्यान करके रहना चाहिये।

कल्पना करे कि किसी ने अपने नाम, गाम और पिता के नाम को धारण किया तो वह सदा इनको स्मरण रखता है। इसी प्रकार इस शब्द को धारण कर सदा स्मरण रखो। ध्रुव के समान दृढ़ रहना चाहिये। चलायमान नहीं होना चाहिये। मन्त्र निधान है। अर्थात् खज़ाना है। पर बिना भावना के तो यह ऐसे ही है जैसे खाली बन्दूक की आवाज। परमात्मा शक्ति दें—इस मांग के साथ भी ऐसा निश्चय हो कि द्वार खोलने से जैसे वायु और प्रकाश का पूर आता है ऐसे ही नाम आराधन से शक्ति और कृपा का अवतरण होता है। जैसे वायु और प्रकाश, द्वार खोलने पर, अवश्य आते हैं ऐसे ही निश्चय से जानो कि हरि-कृपा दुर्गुण दूर करती है। द्वार खोलने वाले को यह भी सोचना चाहिये कि वायु का आना अच्छा है और मुंह ढाप कर सोना अच्छा नहीं। जैसे बटन दबाने से बिजली की धारा आती है और नल खोलने पर जल

में आहुति का लाभ नहीं। वस्तु भावनामयी होनी चाहिये। साधारणतः पुत्र में केवल यह भावना होती है कि यह मेरा पिता है किन्तु श्रवण कुमार में तो पिता के लिये वास्तविक श्रद्धा थी। ऐसे ही श्रद्धा-पूर्ण भावना से भक्त को यह समझना चाहिये कि नाम में नामी है। मन्त्र आराधन करते-करते ही हमारे भीतर शक्ति उत्पन्न हो जाती है और बाहर भी। यदि पुत्र में भावना हो तो पिता भी उसके लिये कितना पिघल जाता है। श्रवण के माता पिता में कितनी भावना थी। श्रवण के शरीर छोड़ जाने पर उन्होंने भी वहीं शरीर त्याग दिया।।७।।

नाम में बड़ी पूज्य भावना हो कि परम पिता श्रीराम इस में विद्यमान हैं। ऐसी भावना से लाभ तो होता ही है। लाभ से तो भण्डार भर जाते हैं। जैसे धन्ना सेठ और प्रह्लाद भक्त के साथ हुआ। मुझे एक तरुण मिला जिस में बड़ी तीव्र भावना थी। वह सदा अपने सौदों में सफल होता था।

आप को यह जानना चाहिये कि रामकृपा अवतरण का प्रकरण किस भावना से लिखा गया है। किसी शब्द का अर्थ वह यथार्थ है जिस की ओर शब्द संकेत करता है जैसे पानी। अर्थ शब्द से भिन्न नहीं है। अर्थात् शब्द और अर्थ एक हैं। इसी प्रकार नाम और नामी एक हैं।

वाल्मीकीय रामायण सार में दो तीन मंगलाचरण हैं, यथा राम का, सीता राम का। इन में भक्त जनों को भी मंगलाचरण है। ऐसी रीति हो कि नमस्कार करके बैठा जाय, इस से विनीतता आती है, गम्भीरता आती है। भावना न हो तो देवदया नहीं होती। भावना से कृपा केन्द्रित होती है। जैसे सूर्य की किरणें मोटे दल के शीशे पर पड़ती हैं तो केन्द्रित होकर कपड़े को जला भी देती हैं। जब बड़ी लगन और चाव हो तो देव दया का अवतरण तथा विकास होता है और ठहरता है।

भगवान ने गीता में कहा है कि संशय मनुष्य का बड़ा शत्रु है। देखो! जब कोई व्याधि फैलती है तो डाक्टर टीका करता है। मेलों पर भी टीके लगाये जाते हैं। तो इसी प्रकार विश्वास का टीका

किसी न किसी बात की भावना बनानी चाहिए तभी तो विचार आता है कि कृपा कैसे आती है?

जैसे खिड़की के खोलने से पवन तेज का प्रकाश होता है ऐसे ही जप सिमरन करना आरम्भ किया तो समझो कि हमने हृदय के द्वार खोल दिये। ऐसा जो समझे तो फिर कृपा के आने की समझ भी आती है।

जो कुछ हमारा कर्तव्य है वह तो हमें करना चाहिए। जादू हो जाएगा ऐसा कम सोचो, अपना प्रयत्न करो। भावना का भवन बनाना तो अपना काम है। परिस्थिति बनानी चाहिए।

१९३० से मैंने नियम पूर्वक सत्संग लगाने शुरु किए। मैंने हल्ले-गुल्ले को देखकर शांत भाव रखा। परिस्थिति बनी। लाउडस्पीकर न होते हुए भी बहुत सारी जनता में बोलने पर मेरी कम आवाज़ भी सब के पास पहुंच जाती। हमने समय का नियम रखा तो सब के सब समय पर आने लगे नहीं तो घंटों प्रतीक्षा साधारणतया होती है। परिस्थिति स्थान की भी है। जहां शोर हो रहा हो, रेडियो चल रहा हो, वहाँ नाम गूँज कैसे चले? भजन के स्थानों की परिस्थिति हम बनाते कम हैं फिर भी रामधुन गूँज जाती है, यह तो राम की कृपा ही है। आप में से कुछ को यहाँ के नियम एक बड़ी बात प्रतीत होते होंगे किन्तु ये सब ठीक हैं।

जब आप भावना से आराधना कीर्तन करते हैं तो ईश्वर में लीन रहने वाले देवता भी आप के साथ सम्मिलित हो जाते हैं। सुर का स्वाद और है। और तन्मय हो जाना कुछ और ही अवस्था है। मैं कीर्तनों में जाता हूं तो स्वाद कम आता है क्योंकि सुर का स्वाद तो नहीं, तन्मय होकर भावना से उच्चारण का स्वाद न्यारा ही होता है।

जहां क्राईस्ट का रास खेला जाता है वहाँ अमेरिका और सभी स्थानों से लोग आते हैं तो सीटें पहले से ही रिज़र्व होती हैं। अभिनय करने वाले भी बड़े निश्चयवान होते हैं। सब बड़े निश्चय से देखते हैं किन्तु अन्य किसी स्थान पर क्राईस्ट का कोई अंग भी दिखाया जाय तो सारे ईसाई उबल उठें। स्वरूप तो देखा

बहने लगता है, ऐसे ही राम नाम के जाप से राम-कृपा का जल बहने लगता है और इसकी कृपा अवश्य हम पर होती है। ऐसी सजग भावना बनी तो फिर इसी भावना में जो नाम ध्याया गया तो ज्ञान, शक्ति और आनन्द के साथ देव की कृपा का दशम द्वार के आस पास मिलाप हुआ और उसकी साधना सिद्ध हो जाती है।

ध्यान का अर्थ है तवज्जा रखना। पंजाब में हिन्दी को कम समझा जाता है। जब किसी साधक को कहा कि ध्यान करना है तो उसने प्रश्न किया, किस चीज़ का? क्यों उस ने ऐसा प्रश्न किया? ध्यान करना तो मूर्ति, चित्रादि का ध्यान करना ही समझा जाता है। किन्तु ध्यान का अर्थ है एक मन, एक चित्त होकर पूरी तवज्जा देना।

पंजाबियों का मुझ से प्रश्न रहा है कि भक्ति-प्रकाश में हिन्दी कठिन है। यह ग्रन्थ साधारण भाषा में होना चाहिये। वे इन पदों को अच्छी प्रकार समझते नहीं। अर्थ के स्थान पर भी मतलब बोलना होता था।

नमस्कार सप्तक पहले मैं ही बोला करता, फिर एक ठीक उच्चारण करने वाले को कहा जाता था। फिर भी इसके श्रद्धा, प्रणाम आदि अनेक शब्दों का ठीक उच्चारण अब भी पूरा नहीं होता। वैसे भी पंजाबी लोग प्रकाश, शान्ति आदि अनेक शब्दों का ठीक उच्चारण कम ही करते हैं। पंजाबी भाषा में यह हठ रहा है कि वह शब्दों को ठीक करने नहीं देते। उनका उच्चारण ठीक नहीं, दूसरी भाषाओं में यह तुकबन्दी नहीं। परिणाम यह होगा कि पंजाबी बहुत ही भ्रष्ट भाषा होगी। अब मैं कुछ अधिक इसमें चला गया। कहना यह है कि ध्यान तो जो है वह एक मन होकर याद करना अर्थात् एक मन होकर सुमिरन करना ही है।

यह ध्यान करो कि जैसे विद्युत कोष में शक्ति है ऐसे ही मन्त्र शक्ति शाली है और इससे शक्ति स्फुरित होगी। ऐसा समझने से ही लाभ होता है। मन्त्र निधान की आराधना करने के समय ऐसी धारणा होनी चाहिये और यह पूर्ण ज्ञान होना चाहिये कि ऐसी भावना में ही अवश्य कृपा होती है।

ता इसस कल्याण की भावना बनाना चाहिए। तो
कि भगवान की कृपा ऐसे ही प्रकाशित करती है
ाने पर बिजली।
ना से ही भक्त बनता है। भावना में भक्ति है और
भगवान का निवास है।
क सोचना चाहिये कि भावना कैसी होनी चाहिये न
यान किस का। जिस की जैसी भावना होती है वह
ो वैसे ही देखने लग जाता है। फिर यदि मनन हो तो
बड़ी स्थिर हो जाती है। साधक विचलित नहीं
ाव सजग करना चाहिये, चिन्तन करना चाहिये,
ो जब हम आराधन करते हैं। कई साधक हम में से
जाते हैं। एम.ए. के एक विद्यार्थी को बहुत ही
तो उसने कहा कि यदि मुझे ऐसा दूसरे स्थान पर
तो लोग पागल समझेंगे। मैंने कहा कि भाव को
यह समझो कि तुम ही कार्यकर्ता हो क्योंकि आप ही
हैं, आपके अतिरिक्त तो कोई है नहीं। आप संयम
पर वह ठीक रहा।
क एक बार जालन्धर गया। एक होटल में एक
वहां एक बार उसको आवेश आ गया। इसने
ो कहा कि मेरे पिता जी को तार देना और स्वामी
चत करें। होटल वालों ने पूछा किसी ने तुम्हें कुछ
हीं। इसने होटल वालों को कहा, कुछ नहीं। अन्त में
हुआ तो पूछने लगा कि तार तो नहीं दिया? उत्तर
से? तुमने ठीक प्रकार पता भी नहीं बताया था।
बनाये तो मनुष्य माया के वश रहेगा अथवा किसी
। साधक अपने मनोबल को दबने न दे। वह यह
जब चाहूंगा आवेश उतार लूंगा। इसी लिये तो
ी आवश्यकता है।
नाकर यदि आराधन किया जाय तो साधक ऐसा

अनुभव करते हैं कि अपनी सत्ता नीचे से ऊपर को उठी है, अपनी शक्ति ऊपर को जाती है। कोई सुशुम्ना और प्राणायाम वाले प्राण से इसे मिलाते हैं पर यह तो कुछ हुआ नहीं। प्राण तो बाहर भी जाता है। समझना चाहिये कि माया की, अविद्या की ग्रन्थी टूटी।

एक साधक ने मेरी पुस्तक में शक्ति के विषय में इकट्ठे लिखे श्लोक पढ़े। बहुत बात पूछा करता। परिणाम यह हुआ कि विद्वान होते हुए भी गड़बड़ा गया। कहने लगा शक्ति ने कहा है कि नमक ही खाना, मखन ही खाना आदि। मुझे भी ऐसी अवस्था में मिला। भावना मैंने समझी किन्तु वह भावना माना नहीं। अन्त में वह चल बसा। और कोई हमारे भीतर है नहीं। भगवान की कृपा तो, हमने पहले भी कही कि वह तो कोमल है, वह तो सुख देने वाली है, वह अपने आपको क्यों हानिकार हो। जो मां लड़के की पीठ पर अन्य प्रकार हाथ फेरे वह तो मां नहीं, डायन है। हां, पुकार होनी चाहिए, जितनी प्रबल पुकार होगी उतना ही लाभ होगा। जिन ढूंढा, तिन पाया। तीव्र उत्कट मांग कभी निष्फल नहीं जाती। भला जिन लोगों ने १९१० और १९४० के दो महायुद्ध जीते, इन लोगों से आपने सोते हुए स्वतन्त्रता प्राप्त की। कैसे? केवल उत्कट मांग के कारण। १९२९ में लाहौर कांग्रेस में इस मांग का प्रस्ताव पास हुआ तो जवाहरलाल नेहरू आवेश में नाचा। इनसे तरंग उत्पन्न हुए कि इतनी शक्तिशाली जाति ने बड़ी प्रसन्नता पूर्वक जाना स्वीकार किया। मुझे कहना यह है कि मांग कितनी प्रबल है। अमेरिका-पाकिस्तान के समझौते से हिन्दुस्तान में बचाव की मांग होगी। मांग तीव्र होगी तो केवल आलोचना समाप्त होगी। क्यों न हमें परमाणु शक्ति की गवेषणा में सफलता होगी। सम्मिलित शब्द से आज तक जो मांग हुई वह सदैव सफल हुई। बस मांग उत्कट हो।

"जे तैनूं यार मिलन दी चाह, सिर धर हथेली गली मेरी आ"

जब मांग उत्कट होती है तो दशम द्वार से कृपा होती है। यह दशम द्वार ऊपर है। नौ द्वार नीचे हैं। जब रामकृपा आती

है, शक्ति, ज्ञान, आनंद आता है। प्राणी ज्ञान से पूर्ण हो जाता है हर्ष उसे होता है, ये रामकृपा के चिन्ह हैं। अज्ञात ढंग से वह आती है। जब देवदया का अवतरण और अपनी शक्ति जागी तो फिर इसका सहस्रकमल में सत्पुरुष द्वारा मेल होता है। स्पाईनल कालम-संतों की वाणी में कमल नाल-वह ठीक है कि नीचे का रस ऊपर जाता है। अखरोट के समान इसमें खाने होते हैं। कोई खाना हिसाब का, कोई यह बड़ा वायरलेस स्टेशन और यह पता नहीं कहां कहां से-चन्द्र, सूर्य लोक की तरंगें यहां आती हैं। जब राम-राम शक्ति का उच्चारण हुआ, दोनों के मिलने से उसका मिलाप सत्पुरुष के संयोग से हुआ। यह मिलाप की गांठ ऐसी है एक बार जोड़ी तो फिर सदा मिलाप होता है। अब भी बांधी जाती है। शुद्ध भावना से। वैसे यह पहले इन्द्र ने बांधी-राक्षसों के वैद्य शुक्रचार्य से भेद लेकर-इन्द्र की जीत फिर हुई।

तो यह सत्पुरुष संयोग ग्रन्थि बंधी तो इस से कल्याण अवश्य होगा। यह हो नहीं सकता कि राम मांगी वस्तु हथेली पर रखकर वापिस लेगा। सो यह रामकृपा की बात थी और यह बात आराधना करने वालों को समझनी चाहिये। श्री रामकृपा अवतरण का बल हुआ तो फिर इसका कभी नाश हो ऐसा नहीं होगा। विश्वास तथा विचार होना चाहिये कि अब हमारा कल्याण अवश्य होगा। इस भावना क्षेत्र को बढ़ाना चाहिये।

नाम महिमा-परिशिष्ट, श्रीरामायण सार

नाम महिमा प्रकरण—परिशिष्ट का अर्थ हैं बाद में लगाई गई। इसमें कुछ गोस्वामी तुलसी दास जी के पद हैं और इनके पदों के उद्घाटन के रूप में कुछ अपने पद—

"नाम में नामी यों बसे, पुष्प में ज्यों सुवास।
शब्दार्थ गुण गुणीवत्, कहे एक निवास"।।
नाम में नामी ऐसे बसे जैसे फूल में सुगन्धि।
नाम देह नामी है देही, व्याप्य व्यापक माने वे ही।
इससे ऋषि सन्त मुनि ज्ञानी, शब्द में इष्ट ध्याते ध्यानी।।

राम नाम पावन वे गाते, परम पुरुष है ध्येय बताते।
सर्व शक्तिमय ईश्वर जो है, परम पुरुष परमात्मा सो है।।
आनन्द कन्द चिद्घन अविनाशी, राम नाम नामी सुखरासी।
राम नाम से मिलता ऐसे, सुरसरि में शीतलता जैसे"।

नामी तो व्यापक है नाम में—नाम तो उसकी देह है। भगवान सर्वशक्तिमान है। वह चेतन है, आनन्द का मूल है, सुख की राशी है, सिमरन में सुलभ, नाम में प्रकट होता है।

"रा, मुख से उच्चारते, पाप बहिः सब जाए।
फिर भीतर आवे नहीं, म, कपाट हो आए।।
रा, धुन मूलाधार से, जैवी शक्ति जगाए।
म, दसवें द्वार तक, तभी उसे पहुंचाए"।।

"रा" जब मुख से उच्चारण किया तो मुँह खुल जाता है मानो "रा" कहते ही पाप जो मनुष्य के अन्दर होता है वह जावे और फिर लौट कर न आवे, इसलिये "म" किवाड़ का काम करता है—यह एक कल्पना। शब्द दशम द्वार तक पहुँचाता है।

"इस से साधनशील सयाने, सहज योग भी इसको मानें।
राम नाम में वे रम जाते, नीरस सुर-सुखों को बनाते।।
शब्द नाम कहिए अविनाशी, हैं सब रूपाकार विनाशी।
एक देश में रूप सुहावे, सर्व देश में नाम समावे।।"

रूप, आकार विनाशी हैं, पर शब्द अविनाशी है। वह सब देश में है। रेडियो का शब्द सब जगह प्रगट रेडियो पर ही। तो नाम तो पूर्ण आकाश में। रूपाकार एक देश में और, दूसरे में और।

"नव पुरातन क्षीण हो जाते, रूप भिन्नता सदा दिखाते।
शब्द एक रस रहे सदा ही, भिन्न भेद न पावे कदा ही।।"

आप राम शब्द ही लिखने लगें तो भिन्न भिन्न चित्रकार जैसी उसकी अवस्था। जैसी समझ आ जावे वैसा वेश पहना दे। चित्रकार दस बैठाओ तो दसों भिन्न प्रकार के चित्र बनावेंगे उसके (राम के)। मराठा किसी और प्रकार और मथुरा का किसी और

प्रकार। पर शब्द में भिन्नता, भेद नहीं। मथुरा में श्री कृष्ण के भिन्न भिन्न चित्र। जैसा कर्ता का मनोमय जगत वैसी ही रचना (रचता है)

"कर्ता कल्पित रूपाकारा, देश काल से नाम अपारा।
नामी नाम अनन्त बताए, रूपाकार सान्त हैं गाए।
बड़ा रूप से नाम बखाना, सब गत सम दि्क काल में जाना।
सन्त जनों ने नाम बड़ाई, इस से अधिक रूप से गाई"।

नाम और रूप में भारी भेद—कितना ही चमकदार रूप क्यों न हो पर वह फीका पड़ जाता है। सब गत और सम—सब जगह गया हुआ और एक समान यह नाम की महिमा है। यह नहीं समझना कि रूप का यहाँ कोई निरादर है – रूप की अवहेलना नहीं।

चौ०

"समुझत सरिस नाम अरु नामी, प्रीति परस्पर प्रभु अनुगामी।
नाम रूप दुई ईस उपाधि, अकथ अनादि सुसामुझि साधी।।
को बड़ छोट कहत अपराधू, सुनि गुण भेदु समुझिहिं साधु।
देखिअहिं रूप नाम आधीना, रूप ग्यान नहीं नाम बिहीना।।
रूप बिसेष नाम बिनु जानें, करतल गत न पहहिं पहिचानें।
सुमिरिअ नाम रूप बिनु देखें, आवत हृदयँ सनेह बिसेषें।।
नाम रूप गति अकथ कहनी, समुझत सुखद न परति बखानी।
अगुन सगुन विच नाम सुसारवी, उभय प्रबोधक चतुर दुभाषी"।।

दो० "राम नाम मनि दीप धरु, जीह देहरीं द्वार।
तुलसी भीतर बाहेरहुँ, जौं चाहसि उजिआर।।

नाम न होए तो रूप से क्या पता चलता है। जयपुर जाओ तो वहाँ रूप घड़े जाते हैं (मूर्ति पत्थरों की)। जब तक नाम न रखा जावे कि यह कृष्ण की मूर्ति (तो कैसे पता चलेगा)। जो लेने वाला (मूर्ति को) वह भी सन्दूक में ही रखता था (उसे) जितना समय स्थापित न किया जाये। सौ आदमी खड़े हों तो कौन पहचाने यदि नाम न होवे तो। रूप भी यदि नाम न होवे तो पहचानना कठिन।

चाँद शब्द हो तो चाँद का ज्ञान। नाम जाने बिना करतल (हथेली) पर रखी चीज़ भी पहचानी नहीं जाती—तो पूछे यह क्या चीज़—यदि नाम आता हो तो नाम से उस चीज़ का भी विचार (आ जाता है) जो देखी भी न हो। अमेरिका का नाम ही सुना – कितनों ने देखा है—बातों द्वारा वर्णन जो है उससे आदमी को ज्ञान। अकथ कहानी—जो कहने में न आवे। सगुण, निगुर्ण दोनों का साक्षी, दोनों का बोध (नाम करवाता है)

तुलसीदास जी कहते हैं नाम जो दीपक है इसको दहलीज में रखो – देह की दहलीज में।

चौ०

'नाम जीह जपि जागहिं जोगी, बिरति बिरंचि प्रपंच बियोगी।
ब्रह्म सुखहि अनभवहिं अनूपा, अकथ अनामय नाम न रूपा।।
जाना चहहिं गूढ़ गति जेऊ, नाम जीहँ जपि जानहिं तेऊ।
साधक नाम जपहिं लय लाएँ, होहिं सिद्ध अनिमादिक पाएं।।

जो गूढ़ गति जानना चाहे वह जीभ से ही नाम जपे, लगन लगाकर।

गोस्वामी तुलसीदास एक अच्छे सन्त हुए। अपने युग में इन्होंने तुलसी रामायण रच कर बोली। अब तो समझो सब जगह इसका उपयोग। इसमें साधारण असाधारण सभी की उन्नति हुई। सच्ची चीज़ सब की होती है। क्या हरिजन, क्या ब्राह्मण, यह रामायण सब के लिए एक सांझी। इस परिशिष्ट में-अगला प्रकरण जो परिशिष्ट में दिया जावेगा, वह भक्ति की महिमा का है। वह श्रद्धा में प्रीति में, राम नाम में विश्वास। जप सिमरन कर्म। परम भक्ति का यह लक्षण वर्णन – संशयरहित, अनन्य भक्ति – किसी और में न होवे – राम पर निर्भर होना—अनन्य निश्चय से, संशय रहित विश्वास से। परा भक्ति सब से उत्कृष्ट – भक्ति सबसे बड़ी – हमारा बेड़ा पार कर दे। यह निर्भरता कहलाती है। अभंग परा भक्ति—भगवान पर निर्भर। मोक्षधाम का एक ही सुलभ सरल सुगम मार्ग —सत्य वह समझना चाहिये

– राम भक्ति और निश्चल निश्चय – अचल अविचल एक है मोक्षधाम का। आदमी में बार बार अभ्यास करने से अपने आप यह बात (अचल निश्चय) हो जाती है। सिंमरन जाप करने से आप ही आप आ जाया करती है।

भक्ति – राम आराधन तो यह है, पर सत्कर्म करना, जन सेवा यह भी भक्ति धर्म में सम्मिलित हैं। परहित परता–परहित में लगा रहना। यह नहीं समझना कि भगत वह है जो इन कामों को न करके केवल पूजा ही करे। ऊंची भावना हो। ज्ञान कर्म बिन प्रीति न होवे। हिन्दुस्तान में ऐसे भी पंथ जो केवल ज्ञान ही, कुछ केवल कर्म ही (पर बल देते हैं)। सरल और सच्ची बात यह है कि ज्ञान और कर्म, बिना प्रीति के, पर्याप्त नहीं होते। पहले-आज से 50 वर्ष पहले, वह कूट पीटकर लड़के को सिखाना। उस युग में यह बात थी कि लड़के को बांध कर भी ले जाते (स्कूल)। वे डर जाते। अब (आजकल बच्चों को स्वयमेव स्कूल जाने) की प्रीति हो जाती। छोटा बच्चा उदास होता है शुरू में। आठ वर्ष इन को बोध नहीं होता है। स्कूल आने की रुचि हो जावे तो उनमें चाव से आते। उन को रुचि पड़ जाती है (स्कूल आने की)।

ज्ञान प्रीति के बिना नहीं आता। प्रीति पैदा करने के उपाय–यह वास्तव में मनोविज्ञान से विचारने की बात–पर यह बात कि अब रुचि पैदा कर दी गई। एक सज्जन अमृतसर में लड़के को लेकर गया-अमृतसर बोर्डिंग में। उसने कहा कि यह (लड़का) खाने पर आग्रह करता, इन्होंने (बोर्डिंग वालों ने) कहा दो चार महीने में सब आदत सीख जाते हैं। घर भी तो स्कूल–पर घर में बच्चे को अड़ियल बना देने पर प्रेम प्यार की बात। बहुत ज्ञान तो होता नहीं, वह फिर नींद का अभ्यासी हो जाता है। वहां 9 बजे तो बिस्तर में चले गये और फिर बोलते नहीं (बोर्डिंग हाउसों में)। और यहां चुड़ैलों की, चोरों की कहानी (घरों में प्रथा)। रुचि होनी चाहिये कर्म और ज्ञान में, भावना होनी चाहिये। परिस्थिति हमारी (माता पिता की) नहीं है जो तुम्हें (बच्चों को) पढ़ा सकें। तो वे रोने लग जाते हैं। लड़के मजदूरी कर के भी, ट्यूशन करके भी पढ़ते। तो

यह तो रुचि की बात। वह जो प्रीति है और रुचि है वह ज्ञान कर्म में भक्ति है।

रोहतक—वहाँ एक बड़े अफसर आ गए। वह ईमानदार माना जाता। इसको बड़ी प्रीति (अपने कर्तव्य में)। मेरे जो कर्म हैं, वे पूजा हैं। दूर क्यों जावें—इन दिनों में तो गर्म रोटी, गुड़ धर खावें (आप यहां साधना सत्संग में आते हैं तो आप को प्रीति है तभी तो आते हैं नहीं तो सर्दी के इन दिनों में तो आप घरों में, गर्म रोटी और गुड़ खाते)।

आप यहाँ सवेरे नहाते। कोई आप में प्रीति का भाव है तभी तो। कोई आप को मजबूर तो करता नहीं। कोई भावना जमी दूर दूर से लोग भी आते हैं। आराम को छोड़कर जमीन पर सोना, सादा खाना, यह एक कैम्प के समान। जीवन प्रीति से ही है। सैकड़ों आदमी इकट्ठे होते हैं (यहां साधना सत्संग में)। भक्ति है तभी आप एकत्रित होते हैं। कर्म ज्ञान में प्रीति जो है उसी को भक्ति कहते हैं। ऊंचों में प्रीति, विनय के साथ। बराबर के जो हैं इनके साथ मित्रता। और बच्चों में प्रीति प्रेम है। प्रीति उत्पन्न हो जाती है। पूज्य व्यक्तियों में या भगवान में प्रीति इसको ज्ञानी भक्ति (कहते हैं)। इष्ट में जो प्रीति, उसको भक्ति कहते हैं। इष्ट का ज्ञान आना चाहिये, तब आदमी असली भक्ति करेगा।

ऐसे भक्ति है बड़ी, ज्ञान कर्म से जान।
जिस में रहते एक हो, सभी सुकर्म सुज्ञान।

सुकृत कर्म और ज्ञान भक्ति में एक होकर रहते हैं। इसलिए इस प्रकार की धारणा। भक्ति मार्ग बड़ा ऊंचा है और यह राम के परमधाम का मार्ग है।

तो यही मैंने पहले भी कहा था कि यह परिशिष्ट मुझे दूसरे ग्रन्थों से मिली नहीं। बाकी अध्यात्म रामायण और नाटक भी हैं। मुझे ऐसी नहीं सूझी जो इसमें सम्मिलित होवे (तुलसी रामायण के इन कुछ प्रकरणों के अतिरिक्त मुझे अन्य किसी पुस्तक में ऐसी चीज नहीं सूझी जो इस परिशिष्ट में सम्मिलित की जाती)

रामचरित मानस में जो वर्णित है मैं वही कहता हूं। उत्तरकाण्ड में यह बात है –

"जे असि भगति जानि परिहरहीं, केवल ज्ञान हेतु श्रम करहीं।
ते जड़ कामधेनु गृहं त्यागी, खोजत आकु फिरहिं पय लागी"।।

जो केवल ज्ञान के लिए ही श्रम करते हैं, वे जो भक्ति को छोड़ कर केवल ज्ञान के लिए श्रम करते हैं वे तो दूध के लिए आक ढूंढते फिरते हैं, घर में कामधेनु को छोड़कर।

"सुनु खगेस हरि भक्ति बिहाई, जे सुख चाहहिं आन उपाई।
ते सठ महासिंधु बिनु तरनी, पैरि पार चाहहिं जड़ करनी"।।

हे गरुड़! तू मुझ से सुन, जो दूसरे उपायों से सुख चाहते हैं, वे बड़े सिन्धु को बिना नौका या जहाज के पैरों से पार करने की चेष्टा करते हैं।

"ग्यान पंथ कृपाण कै धारा, परत खगेस होइ नहिं बारा।
जो निर्विध्न पंथ निर्बहई, सो कैवल्य परम पद लहई।।"

ज्ञान पथ जो है वह तलवार की धारा है। उससे यदि निर्विध्न वह पंथ निभ जावे तो वह परम पद पावे।

"अति दुर्लभ कैवल्य परम पद, संत पुराण निगम आगम बद
राम भजत सोइ मुकुति गुसाईं, अन इच्छित आवइ बरि आईं।।"

सन्त लोग कहते हैं कि केवल ज्ञान से मुक्ति बड़ी कठिन। राम भजन करते करते वह मुक्ति जो तलवार की धारा के समान उससे अपने आप ही आ जाती है।

"जिमि थल बिनु जल रहि न सकाई कोटि भांति कोउ करै उपाई।
तथा मोच्छ सुख सुनु खगराई, रहि न सकई हरि भगति बिहाई।।
अस बिचारि हरि भगत सयाने, मुक्ति निरादर भगति लुभाने।
भगति करत बिनु जतन प्रयासा, संसृति मूल अविद्या नासा।।
भोजन करिअ तृपिति हित लागी, जिमि सो असन पचवै जठरागी
असि हरि भगति सुगम सुखदाई, को अस मूढ़ न जाहि सोहाई।।"

कोई करोड़ों उपाय करे, जल थल के बिना नहीं रह सकता।

इस प्रकार, हे गरुड़! तू यह समझ कि मोक्ष हरिभक्ति को छोड़कर दूसरी जगह नहीं रह सकता है। इससे भगत सयाने की, भक्ति करते हुए विना जतन के संसृति (जन्म मरण) का आप ही नाश हो जाता है। भोजन तृप्ति के लिए करना है। पर इसको पचाती है (जठराग्नि)। भक्ति आप ही पचती है। (भोजन पचाने के लिए जठराग्नि की आवश्यकता है परन्तु भक्ति अपने आप ही पचती है)। भक्ति धर्म की महिमा वर्णन करी है।

"सेवक सेव्य भाव बिनु, भव न तरिअ उरगारि।
भजहु राम पद पंकज, अस सिद्धांत विचारि।।"

हे गरुड़! सेवक सेव्य भाव, इसके बिना तो संसार तरा नहीं जाता। उपासक और उपास्य—तो ऐसा सिद्धान्त मान, राम का भजन करे।

"राम भगति चिन्तामनि सुन्दर, बसइ गरुड़ जाके उर अंतर।
परम प्रकास रूप दिन राती, नहिं कछु चहिअ दिया घृत बाती।।
मोह दरिद्र निकट नहिं आवा, लोभा बात नहीं ताहि बुझावा।
प्रबल अविद्या तम मिटिजाइ, हारहिं सकल सलभ समुदाई।।
खल कामादि निकट नहिं जाहीं, बसइ भगति जाके उर माहीं।
गरल सुधासम अरिहित होई, तेहि मनि बिनु सुख पाव न कोई।।"

मोह और लोभ की हवा इस ज्योति (भक्ति की) को नहीं बुझा सकती। कीट पतंगा बहुत आते (इस भक्ति रूपी ज्योति पर मोह, लोभ आदि के) पर गिर गिर कर समाप्त हो जाते। तो राम भक्ति मन बसे तो सब बाधाएं दूर। जिनके हृदय में भक्ति निवास करती है, विष इसके समीप अमृत बन जाता है, और शत्रु मित्र। रामभक्ति की चिन्तामणि बिना कोई मनुष्य सुख नहीं पा सकता।

चिन्ता, शोक ये सब मानस रोग हैं। (ये रोग हृदय को दुर्बल बनाते हैं)। राम मणि का चिन्तामणि रत्न जिनके मन बसे, दुःख का लवलेश उनको नहीं होता। भक्ति से परलोक तो कल्याणमय बनता ही है, पर इस लोक में भी यह कल्याणकारी है। जो मुनि ब्रह्म के ज्ञाता हैं, इन सब ने यह बात वर्णन की है। श्रुति, पुराण सब कहते हैं कि राम भक्ति बिना कल्याण नहीं। कछवे की पीठ

पर भले ही बाल उग आवें, वन्ध्या का सुत भले ही किसी को मार दे, आकाश में भले ही अनेकों प्रकार के फूल खिल जावें तो भी जो जीव हरि प्रतिकूल है वह सुख नहीं पाता, भले ही मृगजल के पीने से प्यास बुझ जावे। पहली बार मैं मुल्तान को जा रहा था। बड़े दिनों की बात है। मैंने देखा, मृगतृष्णा, ग्रन्थों में पढ़ी थी, पर इसका स्वरूप नहीं देखा था। तारकोल की सड़कों पर भी (मृगतृष्णा दिखती है)। फिर एक मैंने मुसलमान को कहा कि कौन दरया आ गया। इसने फारसी का नाम लिया। खरगोश के सींग किसी को दिख पड़ें या उग आवें, अंधेरा सूरज के तेज को मिटा दे परन्तु तो भी रामविमुख जीव सुख नहीं पाते। भले ही पानी के मथने से घी आ जावे, रेत से तेल प्राप्त हो जावे परन्तु हरि भजन के बिना संसार नहीं तरा जा सकता, यह सिद्धान्त अखण्डित है।

तीर्थों पर लोग पाप धोने को दौड़ते हैं। कई कठोर व्रत जोग, दम्म करते हैं। नाना प्रकार के कर्म दान, जप, तप करते हैं। दया, ब्राह्मणों, गुरुजनों की सेवा, विद्या, विनीतता आदि लोग करते हैं। शिव कहते हैं, पार्वती को कि जहां तक यह साधन आदि वेद में वर्णित हैं इन सब का फल हरि भक्ति है। परम साधन राम भजन है, यह समझना। यह करना परम पथ पर चलना है। यह जो हमारा ध्येय है, इससे मानस जगत आप अच्छा बनता है। अपने आप अन्दर से जो बात पैदा होती जो है, वह अच्छा बनाती है। बहुत मोटे कपड़े से भले ही आदमी मोटा लगने लगे पर मोटापन कोई और। अन्दर सूखी रुई भी शायद मोटा कर दे पर बाहर हल्दी भी पलेटी तो अन्दर से अच्छा बाहर से कुछ नहीं। मालिश भी बहुत अन्दर तक नहीं जाती। बड़े बड़े जेल खाने हैं। उनमें चोर, गठ कतरे भी। जैसे जेल का बड़ा प्रबन्ध है। वहाँ जेल के अन्दर वह (चोर भी) चोरी नहीं करता। पर बारह साल (की कैद काटने के बाद भी बाहर आने पर वह) चोर का चोर। सुधार के उपाय और (होते) हैं, अन्धेरी कोठियों में डाल देने से भलाई नहीं आती। भलाई तो अन्दर से जागृत होती है, चित्त पर चोट लगने से। बाहर के कानून कायदे अच्छा नहीं बना सकते। सोना यहां

बहुत पकड़ा जाता है। अन्दर जिसका बदल जावे वह सोने की खान पर भी बैठ कर (सोना) नहीं उठाता। बाहर से किसी को क्लोराफार्म सुंघाओ तो वह कैसे जगे। जिसमें चेतनता वह ही जगाया जावे।

रामचन्द्र जी कहते हैं, भक्ति हीन विरंच भी क्यों नहीं हो, यदि भक्ति हीन विरंच (ब्रह्मा) भी हो, वह भी मेरे लिए दूसरे जीवों जैसा है। परन्तु भक्ति वाला मुझे प्राणों से भी प्यारा है यद्यपि वह (कितना) नीच भी क्यों न हो।

राम कृपा

राम कृपा जो है यह बड़ी ऊंची चीज़। पाप दोष सब इससे नष्ट होते हैं। गरुड़ को काक-भुशुंडि कहता है कि अपना अनुभव कहता हूँ कि—बिना भजन क्लेश दूर नहीं होता। राम की कृपा के बिना उसकी प्रभुता नहीं जानी जाती। इसकी कृपा जो है वह बड़ी ऊंची चीज़ है। बिना इसकी प्रभुता जाने इसकी प्रतीति नहीं होती, और प्रतीति के बिना प्रीति नहीं होती। किसी की महिमा को जाने तो ही प्रीति (होती है उसमें)।

बिना गुरु के क्या ज्ञान। ज्ञान क्या बिना विराग के हो सकता है। क्या सुख हरिभक्ति के बिना मिल सकता है। क्या सहज संतोष के बिना विश्राम मिल सकता है। चाहे कोई करोड़ों यत्न कर के पच पच कर मरे। क्या जल के बिना नाव चल सकती है। बिना सन्तोष के कामनाएं नहीं नष्ट होतीं। जिसमें कामना है उसको सपने में भी सुख नहीं। क्या कामना हरि भजन के बिना मिट सकती है। क्या पृथ्वी के बिना कोई चीज़ उग सकती है। क्या कोई आदमी आकाश के बिना अवकाश को पा सकता है।

मनुष्य तो इतना बढ़ गया (राकेट और कृत्रिम उपग्रह की चर्चा)। इन (राकेट आदि) का आधार तो अग्नि से विस्फोट (ही है)। भेद की बात ईधंन में है। आकाश में भी अवकाश (स्थान) है। श्रद्धा बिना धर्म नहीं होता। कोरी बातों से नहीं होता है। बिना पृथ्वी के कोई वस्तु नहीं होती। क्या तप के बिना तेज का विस्तार

हो सकता है। क्या जल के बिना कोई रसीली चीज़ हो सकती है। क्या शिष्टाचार ज्ञानी लोगों के सम्पर्क बिना हो सकता है। क्या आत्मसुख के बिना मन कभी स्थिर हो सकता है। क्या ह्वा के बिना स्पर्श हो सकता है। इसी प्रकार हरिभजन के बिना जन्ममरण के भय का नाश नहीं हो सकता। बिना विश्वास के भक्ति नहीं। उस भक्ति के बिना कृपा नहीं होती। राम कृपा मांगनी चाहिये। इस से मन शान्त होता है। इसी से वासना मिटती है और शुभ आता है।

आगे रामोपदेश हैं। वे छः हैं। वे तो वर्णन नहीं हो सकते समय अभाव के कारण। वाल्मीकि मुनि से हमने कोई वर्णन नहीं दिया। (परिशिष्ट में दिए गए प्रकरणों में से कोई भी वाल्मीकि जी की रामायण से नहीं लिया गया है)।

परिशिष्ट सुविशिष्ट है, प्रकरणों का सार।
सन्त कवि की रचना से, संग्रह सहित विचार।।
मननशील जन के लिए, है उपयोग सुरूप।
जी जीवन में ज्योति दे, भर कर भाव अनूप।।
रामायण कलि कमल में, है सुगंध मकरन्द।
हो नहीं कभी मन्द यह, याचे सत्यानन्द।।

आप आराधना करते हो, राम नाम की है। इसमें भावना बनानी चाहिये। देव जो है वह भावना में रहता है (महाराज जी ने पहले वह श्लोक बोला जिसका यह अनुवाद है)।

वहुत पकड़ा जाता है। अन्दर जिसका बदल जावे वह सोने की खान पर भी वैठ कर (सोना) नहीं उठाता। बाहर से किसी को क्लोराफार्म सुंघाओ तो वह कैसे जगे। जिसमें चेतनता वह ही जगाया जावे।

रामचन्द्र जी कहते हैं, भक्ति हीन विरंच भी क्यों नहीं हो, यदि भक्ति हीन विरंच (ब्रह्मा) भी हो, वह भी मेरे लिए दूसरे जीवों जैसा है। परन्तु भक्ति वाला मुझे प्राणों से भी प्यारा है यद्यपि वह (कितना) नीच भी क्यों न हो।

राम कृपा

राम कृपा जो है यह बड़ी ऊंची चीज़। पाप दोष सब इससे नष्ट होते हैं। गरुड़ को काक-भुशुंडि कहता है कि अपना अनुभ कहता हूँ कि—विना भजन क्लेश दूर नहीं होता। राम की कृपा विना उसकी प्रभुता नहीं जानी जाती। इसकी कृपा जो है वह ब ऊंची चीज़ है। विना इसकी प्रभुता जाने इसकी प्रतीति नहीं होती और प्रतीति के विना प्रीति नहीं होती। किसी की महिमा को जा तो ही प्रीति (होती है उसमें)।

विना गुरु के क्या ज्ञान। ज्ञान क्या बिना विराग के हो सक है। क्या सुख हरिभक्ति के बिना मिल सकता है। क्या स संतोष के बिना विश्राम मिल सकता है। चाहे कोई करोड़ों य कर के पच पच कर मरे। क्या जल के बिना नाव चल सकती बिना सन्तोष के कामनाएं नहीं नष्ट होतीं। जिसमें कामन उसको सपने में भी सुख नहीं। क्या कामना हरि भजन के बि मिट सकती है। क्या पृथ्वी के बिना कोई चीज़ उग सकती है। कोई आदमी आकाश के बिना अवकाश को पा सकता है।

मनुष्य तो इतना वढ़ गया (राकेट और कृत्रिम उपग्रह चर्चा)। इन (राकेट आदि) का आधार तो अग्नि से विस्फोट है)। भेद की बात ईधंन में है। आकाश में भी अवकाश (स है। श्रद्धा विना धर्म नहीं होता। कोरी बातों से नहीं होता है। पृथ्वी के कोई वस्तु नहीं होती। क्या तप के बिना तेज का वि

सकता है। क्या जल के बिना कोई रसीली चीज़ हो सकती है। या शिष्टाचार ज्ञानी लोगों के सम्पर्क बिना हो सकता है। क्या ात्मसुख के बिना मन कभी स्थिर हो सकता है। क्या ह्वा के ना स्पर्श हो सकता है। इसी प्रकार हरिभजन के बिना न्ममरण के भय का नाश नहीं हो सकता। बिना विश्वास के क्ति नहीं। उस भक्ति के बिना कृपा नहीं होती। राम कृपा ांगनी चाहिये। इस से मन शान्त होता है। इसी से वासना टती है और शुभ आता है।

आगे रामोपदेश हैं। वे छः हैं। वे तो वर्णन नहीं हो सकते समय भाव के कारण। वाल्मीकि मुनि से हमने कोई वर्णन नहीं दिया। रिशिष्ट में दिए गए प्रकरणों में से कोई भी वाल्मीकि जी की मायण से नहीं लिया गया है)।

परिशिष्ट सुविशिष्ट है, प्रकरणों का सार।
सन्त कवि की रचना से, संग्रह सहित विचार।।
मननशील जन के लिए, है उपयोग सुरूप।
जी जीवन में ज्योति दे, भर कर भाव अनूप।।
रामायण कलि कमल में, है सुगंध मकरन्द।
हो नहीं कभी मन्द यह, याचे सत्यानन्द।।

आप आराधना करते हो, राम नाम की है। इसमें भावना नानी चाहिये। देव जो है वह भावना में रहता है (महाराज जी ने हले वह श्लोक बोला जिसका यह अनुवाद है)।

विश्वास

विश्वास साधक का जीवन है

भगवान में पक्का विश्वास होना चाहिये। हमारा यह विश्वास दृढ़ होना चाहिये। विश्वास में दृढ़ता प्रतिदिन अभ्यास से आती है। अभ्यास से भगवान में विश्वास दृढ़ होता है। तभी लाभ होता है। जो व्यायाम करने वाले होते हैं वे १०-१५ मिनट में ही व्यायाम का लाभ ले लेते हैं। जितना लाभ व्यायाम करने वाला १०-१५ मिनट में उठा लेता है उतना दिन भर परिश्रम करके भी श्रमिक नहीं प्राप्त कर पाता। श्रमिक ८-९ घन्टे जमीन खोदकर परिश्रम करके भी उतना लाभ नहीं उठा पाता क्योंकि श्रमिक की भावना इस बात में रहती है कि इतना कार्य करना है, इतनी डालियां डालनी हैं। व्यायाम करने वाले में भाव होता है कि इस व्यायाम के करने से उसकी शक्ति बढ़ेगी और उसके पट्ठे सुदृढ़ होंगे-उसकी पाचन शक्ति ठीक होगी, शरीर में स्फूर्ति आवेगी। इसी प्रकार साधक को इस भावना से जाप करना चाहिये। दृढ़ भावना रखते हुए मन्त्र का आराधन करने से बड़ा लाभ होता है। उसके अन्दर शुभ भावों का संचार होता है। जितनी भावना और विश्वास बढ़ेगा, उतना ही लाभ होगा।

अपने आप में उठने की प्रवृत्ति होनी चाहिये। विश्वास साधक का जीवन है। विश्वासहीन व्यक्ति की दशा रोगी की सी होती है। रोगी वह जो विश्वास खो देता है। वह सोचता है कि मैं मर जाऊंगा तो यह कौन करेगा, वह कौन करेगा। अमुक कार्य कैसे होगा। विश्वासी को चिन्ता नहीं होती। विश्वासी की आत्मा सजीव होती है। विश्वासी का आत्म जीवन सुदृढ़ होता है, बलिष्ठ होता है परन्तु विश्वासहीन का जीवन निर्बल होता है, निराशावादी होता है। अपने विश्वास को ठीक बनाना चाहिये। अपने आप को यह न समझें कि हम शक्तिहीन हैं। जो अमृतवाणी पढ़े उसका विश्वास दृढ़ होना चाहिये। विश्वास मन बुद्धि को बल देता है। पारिवारिक जीवन को सुधारता है। भगवान पर

बड़ा भरोसा होना चाहिये। आत्मा सुदृढ़ बनाकर रहना चाहिये।

प्रत्येक व्यक्ति को श्रीमद्भगवद्गीता यह समझ कर पढ़नी चाहिये कि इसमें लिखी बातें मेरे लिये कही गई हैं। गीता पढ़ते व सुनते समय यह भाव होना चाहिये कि गीता के उपदेश मुझे दिये गये हैं—तब लाभ होता है। जो यह पुस्तक पढ़े उसे समझना चाहिये कि मेरा बल बढ़ाने के लिये इसमें बातें कही गई हैं। उन पर मनन करके उन्हें अपनाना चाहिये। एक व्यक्ति ने अपने पुत्र से पूछा कि "तूने आज पढ़ा?" पुत्र ने कहा, "जी हाँ।" उसने पूछा "तूने क्या पढ़ा?" पुत्र ने कहा "याद नहीं।" तो उसने कहा "फिर तूने पढ़ा ही क्या?" इस प्रकार के पढ़ने से कोई लाभ नहीं। साधक को संतोष और धैर्य होना चाहिये कि उसमें शक्ति है। ऐसी भावना हमें अपने अन्दर बनानी चाहिये।

नाम में विश्वास

जिस देवता का जाप होता है वह दूर नहीं होता। वह तो शब्द से अधिक समीप होता है। सर्वव्यापक है—ऐसा विचार करने से उसकी विभूति साधक में बसने लगती है। साधक को माया अपने आप पैदा नहीं करनी चाहिये। पातंजलि ने चार प्रकार की सिद्धि वर्णन की है—(१) मंत्र से, (२) औषधि से, (३) जन्म से और (४) समाधि से। समाधि और मुक्ति में ब्रह्म का मिलाप होता है। यह सिद्ध ने अनुभव की बात कही। जो परमाणु विद्या के ज्ञाता हैं वे जानते हैं कि परमाणु में कितनी शक्ति है। दूसरों को यदि विधि नहीं आती (परमाणु की शक्ति जानने की) तो यह अर्थ नहीं कि परमाणु में शक्ति नहीं। इसी प्रकार योग के ज्ञाता का भी विश्वास करना चाहिये। जिन सन्तों ने कोई मत आदि नहीं चलाया उनकी बात ठीक और पते की होती है। यह अच्छी प्रकार से समझो कि मन्त्र में देवता विद्यमान है। राम नाम इसका (राम का) मन्दिर है यह बात अपने आगे रखनी चाहिये और इसका पूर्ण विश्वास और दृढ़ निश्चय रखना चाहिये।

शब्द बल से कल्याण

मंत्रों वाले शब्द में बहुत बल मानते हैं। आराधन वाले को विश्वास होना चाहिये कि शब्द के साथ शक्ति है, बल है और यह पूर्ण विश्वास होना चाहिये कि इस शक्ति से ही मेरा कल्याण होगा। यह विश्वास पूर्ण धारण होना चाहिये। यह विश्वास जितना दृढ़ और ऊंचा होगा, उतनी ही उन्नति आयेगी। कुछ साथी कहते हैं कि मेरा मन नहीं लगता। जाप करने के बावजूद भी मन अशान्त रहता है। मन को एकाग्रता प्राप्त नहीं होती।

वास्तव में हम शब्द के प्रभाव को अच्छी प्रकार धारण नहीं कर सके। नाम देने वाले का कोई दोष नहीं। यह बात लेने वाले की अपनी भावना पर निर्भर है। जब डाक्टर किसी रोगी को औषधि देता है, तो वह अपनी अच्छी भावना तथा शुभ कामना से देता है। जिसे आराम आ जाता है, वह सराहना करता है। जिसे आराम नहीं आता वह डाक्टर की निन्दा करता है। यद्यपि दवाई डाक्टर की अनुभव की हुई होती है। किन्तु रोगी डाक्टर को ही कोसता है। आराम न आने के रोगी में भी तो कोई और कारण हो सकते हैं। रोगी बद परहेजी करे। डाक्टर तो २४ घंटे पास नहीं रहता। उसकी दवाई तो सिद्ध की हुई होती है। यदि किसी वैद्य के २-४ केस खराब भी हो जावें, तो उसे निराशा नहीं हुआ करती। अध्यात्मवाद में सिद्ध मंत्र इस प्रकार काम करते हैं। रोग मानस भी होते हैं और शारीरिक भी। रोगी को तो पहले अपने मन में यह सोचना चाहिये कि उसने औषधि ठीक ढंग से धारण की है या नहीं। अब कोई टाइफाइड का रोगी हो। वह औषधि भी ले किन्तु चलता फिरता भी रहे। तो भला उसे आराम कैसे आयेगा। और वह इस के लिए दवाई को बिना प्रभाव की बताए, तो उसकी भूल होगी। इस प्रकार से हमारे में कई खराबियां होती हैं। अपने मन को आप टटोलो। तलाश करो और देखो, कि कौन सी ऐसी वृत्ति है, जो मन को चंचल करती है। अपनी आत्मा को खूब टटोलो। अपने आप जवाब मिल जायेगा। देखो कि तुम्हारी आत्मा में या तुझ में कोई लोभ तो नहीं आ गया, जिसमें मन उखड़ गया। अपने

से पूछो कि आज दिन भर कोई झूठ तो नहीं बोला, यदि बोला तो क्यों और कितना बोला। यह भी अपनी आत्मा में देखो कि क्या मैं पूरा आस्तिक भी रहता हूं और यह भी देखो कि क्या हमारा नाम (राम शब्द) पर पूर्ण विश्वास भी है या नहीं। मोह जंजाल में तो नहीं फंसे हुए। काम और क्रोध तो नहीं सवार रहता। ऐसी स्थिति तो नहीं रहती कि किसी गीत सुनाने वाली की ध्वनि में वृत्ति चंचल रहती हो, आदि।

वास्तव में जब तक रोगी ही अपने आप को न टटोले, तो डाक्टर बिचारा क्या करेगा। डाक्टर ने कोई आठ पहर तो पास रहना नहीं। अपने आपको यह अवश्य देखो कि जिस नाम का मुख में जाप करते हो उसके अन्दर पूर्ण विश्वास की दृढ़ता भी है। पहले भरोसा होना चाहिए। यदि कोई मुकदमा चल रहा हो और वकील कर लो। वकील तो यह कह दे कि आप का मुकदमा ठीक सफलता देगा और वकील के इन शब्दों पर विश्वास हो जाय। फिर जहां मर्जी घूमो विश्वास पर अटल रहो, तो सब कुछ ठीक हो जायेगा। ऐसे मां-बाप पर विश्वास ही हुआ करता है। कई बच्चों को स्कूल के जीवन में ही विश्वास हो जाता है कि माता पिता कालेज में अवश्य पढ़ायेंगे। विश्वास निर्भय बना देता है। और निर्भयता का ही बड़ा बल होता है। इसलिये यह विश्वास तो मन में आना ही चाहिए कि मंत्र मुझे सहायता देगा और इससे मेरा कल्याण होगा। यदि यह विश्वास नहीं होता तो इसका प्रभाव कुछ भी नहीं होगा।

परमात्मा हमारे अंग संग

वह परमात्मा हमारे अंग संग है। यह भावना होनी चाहिए। विश्वास जितना प्रबल, सुदृढ़, सुनिश्चित होगा, उतना ही अधिक लाभ होगा। व्यवहार भी सुधरेगा और परमार्थ भी। जितना भगवान में भाव दृढ़ होगा उतना ही लाभ होगा। भगवान के नाम में धारणा पक्की हो। त्रिलोकी में करोड़ों मंदिर हों किन्तु जो मूर्ति हमने अपने मंदिर में स्थापित की, वह हमेशा आदरणीय है। अन्य इष्ट न हो। राम नाम के आसन पर और आसन लगना

ठीक नहीं। इष्ट को सर्वोपरि माने। नाम अपने आप में पूर्ण है। ऐसी धारणा होनी चाहिए।

नाम धार कर मौन हो, जन राधे भगवान।
बीज गुप्त रह भूमि में, बनता वृक्ष महान।।
नाम नाद उत्तम कहा, ऊँचा है वह धाम।
अतिशय मधुर सुरस सना, नाद राम ही राम।।

ईश्वर में परम विश्वास होना चाहिए। युक्ति अथवा तर्क को छोड़ कर उसके अस्तित्व में जीवित विश्वास होना चाहिए। पण्डित नेहरू जब रेडियो पर बोलते हैं तो यह समझ के कि वह जो कुछ बोलेंगे वह भारत, अमेरिका, जापान आदि सब स्थानों में सुनाई देगा और प्रभाव डालेगा और होता भी ऐसा ही है। हमें भी इन्हीं प्रकार से प्रार्थना के समय अपना भाव रखना चाहिए कि हमारे शब्द परमात्म देव के पास पहुंचेंगे। निर्मल तथा बलवान मन में जो संकल्प उठते हैं, वे दूर तक जाते हैं। हमें भी विश्वास रखना चाहिये कि जो हम निष्काम भाव से जगत के कल्याण की दृष्टि से नाम जाप अथवा प्रार्थना करते हैं वह अवश्य प्रभाव डालेगी।

विश्वास में कुसंगति से संशय

विश्वास भक्ति मार्ग में बड़े काम की चीज है। युक्ति वाद भी ठीक पर फोड़े पर नश्तर। निरोग अंग पर चीरा नहीं दिया जाता। ऐसे ही संशय को दूर करने के लिए युक्ति होती है—रोग के लिए सर्जरी (Surgery)। पर जिसको संशय ही न हो वह व्यर्थ में ही (युक्ति के) नश्तर क्यों लगवाए। तो संशय हो जाता है (कुसंगति से)। ऐसे आदमी मिलें जिनमें विश्वास नहीं, भावना नहीं, (जो कहें कि) अरे वहां जाकर क्या करेगा, राम नाम कहने से कभी रोटी पकती है—एक बार ऐसा कहा, फिर बार बार कहा, तो व्यक्ति में अन्तर आ जावे (ऐसे नास्तिक लोगों का संग संशय उत्पन्न करता है)।

एक बड़ा विद्वान व्याख्यान दे रहा था—(उसने कहा कि) एक बार गायत्री मंत्र कह लिया, बार बार क्या, बार बार हम क्यों

रटें? (तो ऐसी बातें सुनने से तो) अन्तर आ जाता है। कर्म करेंगे तो मुक्ति होगी, नाम जपने से कैसे होगी—यह सब बातें लोग कहते हैं। मुझे कहना है कि (यह सब) छोटे ज्ञान की बातें हैं। ऐसे लोगों को ज्ञान नहीं। वाणी से भी तो कर्म होता है—हाथ अकेला थोड़ा ही। यदि पत्थर लुढ़क पड़े और चोट लग जावे तो पत्थर उठाकर कोई थाना थोड़े ही ले जावे कि इसने चोट मारी। रिपोर्ट इसकी (पत्थर की) क्या लिखवाए? वास्तव में प्रबल कोई कर्म है तो भगवान का ही। यह युक्ति-वाद तो छोटे ज्ञान वालों की बातें हैं। ऐसी बातें आप सभाओं में सुन लेवें तो कोई बड़ी बात नहीं। सभाओं में जाना वैसे अच्छा पर उनका तरीका बना हुआ है कि युक्ति देकर दूसरे के विश्वास को कमजोर करना। देखो! हम युक्ति देने लगें कि गंगा में स्नान से क्या, पर कितने लोग आते हैं, फिर पाठ भी करते हैं, जाप भी कर्म हुआ। हाँ, भावना न हो (गंगास्नान में) तो निमोनिया हो सकता है। भ्रम जो है वह रोग है। पोह (पौष) के महीने में पहले सत्संग लगाते थे, थोड़े आदमी होते थे—दो तीन तो उन दिनों भी बड़ी डुबकियां लगाते (गंगा में पौष की सर्दी में)। मुझे कहना यह है कि युक्तियाँ प्रायः विश्वास पर चोट मारती हैं। विश्वास न होने के कारण धर्म भी बोदा रहता है। बात यह है कि जिसके पैर में कांटा उसका पैर टिकता नहीं। जिसमें संशय है उसका धर्म कहाँ रहा। सभाओं की कुसंगति, इतना ही नहीं, बहुत पढ़ना भी कि उसने यह लिखा, उसने यह लिखा, कुछ तो युक्ति के क्षेत्र में एक ही मंत्र के एक ही अध्याय में दो अर्थ लिख देते हैं। मैंने तो यही समझा कि युक्तियां देते देते प्रवाह में बह गया, बाद में किताब को देखा नहीं। व्यक्ति का विश्वास स्थिर, निश्चय स्थिर होना चाहिए। मैं यह नहीं कहता कि पुस्तकें न पढ़ो पर मैं हीर रांझा पढ़ने को क्यों कहूँ? ऐसी बहुत चीज़ें पढ़ने से भी संशय हो जाता है। नर-नारियों के हृदय में एक संशय का रोग हो जाता है। तो संशय को मारना चाहिए। इसीलिए पहले अध्याय में गीता में कहा है कि "ज्ञान विज्ञान को नष्ट करने वाले संशय को तू जीत।" संशय आत्मगत भी होता

है। जैसे अपने में संशय कि मेरे में वल नहीं है, मैं तुच्छ हूँ—यह क्यों सोचें।

रात के समय एक देवी चिल्ला उठी कि कोई आ गया। पड़ोसी आया चीख सुनकर। पर उसने देखा तो पता चला कि वह तो खम्भे को चोर समझ बैठी और चिल्ला उठी। रोटी का जला हुआ, काला सा टुकड़ा सब्जी में खा जाने पर यदि संशय हो जावे कि मक्खी खाई गई तो खाना अन्दर टिकता नहीं। इसी प्रकार संशय हो जावे तो धर्म हृदय में टिकता नहीं।

वीर पुरुष युद्ध क्षेत्र में आगे वढ़ता है पर पीला सा लाला का लड़का जो लाड़ चाव से पला है रणभूमि से सौ कोस दूर, अपितु हजार कोस से भी कांपता रहता है।

मैं पालमपुर में ठहरा हुआ था। जिनके यहाँ ठहरा हुआ था वे बड़े संशयी थे। धन तो वहुत पर घर में एक वर्छी भी नहीं। कहते कि इधर से एक कलगी वाला आवेगा—ऐसा लिखा। (एक) राजपूत से भी वहाँ मैं मिला। इन्होंने (राजपूतों) ने कहा कि ग्यारह वन्दूकें हैं हमारे पास, हम क्यों डरें? (किसी चोर डाकू से) कहना यह था कि संशय ने दुर्वल वनाया। अपने आप में भी संशय और दूसरों में भी। तो संशय हो तो भक्ति मार्ग क्या रह जावे।–

गाँधी जी की पीठ में इतना वल नहीं था जितना इनमें विश्वास था। विश्वास की कितनी वड़ी सत्ता है कि ब्रिटिश गवर्नमेंट जैसे (शक्तिशाली) चले गये (भारत छोड़ कर)। हमें उनके जैसा विश्वास टटोलना चाहिये।

यह पक्की वात आप में आवे कि भगवान के विना हमारा कोई और मुक्तिदाता नहीं।

अनन्य विश्वास हो। गीता में महाराज कहते हैं,

"जो अनन्य, मेरे में पूर्ण विश्वास.....इस प्रकार चिंतन करते हैं, उपासना करते हैं, ऐसे मुझ में लीन हुये पुरुषों का योगक्षेम मैं स्वयं चलाता हूँ"। सारा दिन जपना कोई जरूरी नहीं, काम भी करना हुआ। यह भी तो आवश्यक नहीं कि कोई पतिव्रता सारा

दिन पति के संग रहे। यह भावना आनी चाहिये (विश्वास की)। बच्चे में बड़ी भावना, कितना ही कोई विद्वान आ जावे। बच्चा जब भूखा होता है तो माँ ही की ओर देखता है। बच्चे जैसी अवस्था आनी चाहिये। उसको किसी और का भरोसा नहीं, केवल माँ का। भगवान पर ऐसा ही भरोसा हो—अनन्य और निर्भर—एक पर ही भरोसा।

हम नाम की आराधना करते हैं। इसमें विश्वास आवे तो यह खेती फल देती है। यदि ऐसी बात न आवे, न होवे विश्वास या कच्चा विश्वास रहे तो सब काम कच्चे। राम नाम पर बड़ा विश्वास हो।

उस परमेश्वर के नाम अनेक हैं। आग कहने से रोटी पकेगी पर फायर कहने से नहीं (ऐसा नहीं)।पर यह कुछ प्रीति का पागलपन। हम क्यों दूसरों के विपरीत कहें यहां। हाँ, यह कहें कि हमें यह मिला है, राम-नाम परमेश्वर से। हम तो इसी का आराधन करेंगे। हम उसी को राम कहते हैं जो सर्वशक्तिमान है, जिसको क्रिसचियन गाड कहते हैं, जिसको मुसलमान अल्लाह कहते हैं। परदेशी भी आते हैं। राम नाम ही जपने लगते हैं। वे जानते हैं कि इस महात्मा से जो शक्ति (प्राप्त हुई) इसको जपा करें।

अनन्य भक्ति होनी चाहिये। "ऐसे भक्तों का योगक्षेम मैं स्वयं चलाता हूँ।" बालक का काम माँ सारा करती है। बच्चा बनकर भगवान के पास जाओ। जो पण्डित बनकर माँ के पास जावे माँ उसकी नहीं सुनती। बच्चा बनकर माँ के पास जावे यद्यपि कितनी आयु का हो। बहुत युक्तियों से भक्तों के पास जाने से वह बात नहीं जो बच्चा बनकर जाने से है। बालभाव के साथ उसको पुकारने से, फिर वह जगत जननी इस को अपना लेती है।

हजार कोई युक्ति दे, विश्वास में अन्तर न
हृदय में आकर बस गई फिर दूसरे के लिये कोई

विश्वास हो कि परम पुरुष का वरद हाथ हमारे सिर पर

हमारा ईश्वर में परम विश्वास हो। मन, वचन, कर्म से हम राम-अनुरागी हों, तथा सत्य हमारे जीवन में बसे। इसके लिये प्रभु से प्रार्थना करनी चाहिये।

सर्व शक्तिमय रामजी, अखिल विश्व के नाथ।
शुचिता, सत्य, सुविश्वास दे, सिर पर धर के हाथ।।

प्रातः सायं नियत समय पर यह दोहा १०० बार पढ़कर यथाशक्ति जप करना चाहिये। इस प्रार्थना के करते रहने से मानो आपका सीधे भगवान से सम्वन्ध हो जाता है। आप उनकी कृपा पा रहे हैं, आपकी प्रार्थना सुनी जा रही है. ऐसी भावना करके आप प्रार्थना करें। (उपर्युक्त दोहा स्वामी जी को उसी समय स्फुरित हुआ था)। निरंकार, निर्गुण राम का हाथ सिर पर धरने से तात्पर्य पूछने पर स्वामी जी ने कहा कि—

हमारा विश्वास सजीव हो कि हमारे सिर पर उस परम पुरुष का वरद हाथ है। स्थूल रूप में भी अनुभव हो सकता है। वास्तव में वह तो अत्यन्त सूक्ष्म है। प्रभु का आशीर्वाद प्रकट होता है— आनन्द, मस्ती, आवेश के रूप में।

श्री रामशरणं वयं प्रपन्नाः

"ईश्वर सब प्राणियों के हृदय में रहता है। उनको वह नियम से चलाता है, हे भक्तश्रेष्ठ, तू उसी की शरण प्राप्त कर। उसकी कृपा से परम शान्ति प्राप्त होगी।"

हर साधक को समझना चाहिये कि हम रामशरण में आये हैं। शक्ति तो राम की बड़ी है। विश्वास हो कि शक्ति भगवान की है। निज के अहं से कार्य करने में व्यावहारिक मन की शान्ति काम करती है और बार-बार हम असफल होते हैं किन्तु यदि हम भगवान की शरण में जायें तो सुन्दर है। हमें चाहिये कि हम यह भावना बनायें कि राम शरण में आये हैं "श्रीराम शरणं वयं प्रपन्नाः।"

संशय मिटे, विश्वास जगे।

संशय को मिटाने के लिये युक्ति का प्रयोग किया जाता है।

विश्वास के लिये युक्ति की आवश्यकता नहीं। संशय आध्यात्मिक रोग है। संशय के कारण होते हैं। संशय उन लोगों की संगति से उत्पन्न होते हैं जो रामनाम के विरोधी हों। उन से बचना चाहिये। वे प्राय : यह कहते हुऐ पाये जाते हैं, "राम राम रटने से क्या होता है? भगवान के मन्दिर में मन के योग के बिना कर्म किये जाने का कोई मूल्य नहीं है"।

पण्डित—पांथिक लोग प्रायः प्रवचनों में, सभाओं में, दूसरे लोगों के विश्वास पर चोट करते हैं और युक्ति द्वारा अपने विश्वास का मण्डन करते हैं। चाहे उनका स्वयं उस पर विश्वास ही न हो। दूसरे के विचारों पर प्रहार करना ठीक नहीं है। जिसके पैर में कांटा है, उसका पैर टिकता नहीं। सबकी संगति करना ठीक नहीं। स्वाध्याय करना ठीक है किन्तु आलोचनात्मक ग्रन्थ पढ़ने से संशय पैदा होते हैं कि उस ग्रन्थ में यह लिखा है एवं उस ग्रन्थ में यह लिखा है, भेद क्यों? इससे संशय पैदा होता है। अधिक पढ़ना बुरा नहीं है किन्तु ज्ञान विज्ञान की पुस्तकें पढ़ने से अधिकाँश में संशय रोग पैदा हो जाता है, जिसका मारना आवश्यक है। यह संशय ज्ञान-विज्ञान को नाश कर देता है। इसीलिए संशय को मिटाओ।

बहुत लोग हैं जिन्हें अपने में संशय होता है। यह ठीक नहीं। खाने में मक्खी खा जाने का संशय हो जाने पर भोजन पचता नहीं, जी मचलाने लगता है। रणभूमि में गोले गिरने पर वीर लोग नहीं कांपते किन्तु लाड प्यार में पाले गये लोग दूर देश में समाचार पढ़ने पर कांप जाते हैं। इस हिन्दु जाति में हौसला नहीं रहा। इनमें विश्वास नहीं अपने पुट्ठों पर, रगों पर, अस्त्र शस्त्रों पर। संस्कार की आवश्यकता है। दुर्बल विश्वासी नहीं होना चाहिये।

अपने आपको तुच्छ नहीं मानना चाहिए। पहले असफलताओं से हताश नहीं होना चाहिए, यत्न करते रहना चाहिए। लाभ पर दृष्टि रखना व्यापार बुद्धि है। कोई कुछ [illegible]

को लक्ष्य करके नहीं करना चाहिए। कृत्य, कृत्य के लिए ही करना चाहिए। अन्त में लाभ होता ही है और फिर लाभ कई प्रकार से होता है। कई बार होता है पर पता नहीं लगता।

वह राम सब प्राणियों को अपने यंत्र में चढ़ा कर चला रहा है। समझना यह कि शक्ति कोई और है (शक्ति तो परमेश्वर की है)। हिटलर समझता था कि बड़ी शक्ति (है मुझमें) तो पीठ लग गई। अमरीका अरबों डालर खर्च करता (दूसरे देशों की सहायतार्थ)। वह (अमरीका यदि) अपनी सारी सम्पत्ति भी लगा देवे (इस सहायता में) तो भी यदि परमात्मा की इच्छा न हो तो उसकी नीति का विरोध हो (अमरीकन पोलिसी का)। गोस्वामी तुलसी दास जी ने कहा है, "भगवान की बड़ी शक्ति है। एक कीट भी किसी बड़े को मार सकता है।

मुझे यह कहना था कि विश्वास लाना चाहिए। मैं भी कभी विश्वास मांगता हूं (परमेश्वर से उसका)। विश्वास जितना लाया जा सके लाना चाहिए।

राम नाम—औषधि

मेरे एक बड़े अच्छे मित्र थे। वे ग्रेजुएट थे। संस्कृत का भी शास्त्री तक का ज्ञान था। अच्छी पदवी पर भी थे। इन्होंने स्वयं ब्लड प्रैशर का घटना राम नाम से देखा और किया। हृदय शुद्ध हो तो मंत्र भी औषधि होता है। हृदय यदि दोष से भरा हो तो फिर कठिन। प्रेमनाथ जो बैठे हुए थे। डाक्टर ने बताया कि ब्रेन को देखने के लिए कमरा—इसमें और कोई करंट नहीं। तारें मस्तक में लगाते हैं। फिर वे (तारें) यंत्र में जाती हैं। तब पता लगता है, जब कोई बाहर की धाराएं न आवें। रेडियो का भी इसी प्रकार। जब ठीक स्थान पर सूई जाए तब ही उस स्थान की आवाज सुनाई पड़ती है। मंत्र की सिद्धि के लिए आदमी में दूसरी करंट नहीं आनी चाहिए। भला आदमी (शुद्ध हृदय) यदि मंत्र का अनुष्ठान करता है तो अनुमति देने वाले को पता चल जाता है कि दोष उसका नहीं।

बाल विश्वास

राम मेरा कल्याण करेगा, यह विश्वास जमाना चाहिये। "मेरे में पूर्ण विश्वास रखते हुये नित्य चिन्तन करते हुए जो जीवन-यापन करते हैं उनका योगक्षेम वहन मैं करता हूं" गीता का ऐसा वचन है। सती अपने व्रत में दृढ़ रहती है। यह संशय न हो कि भगवान के अतिरिक्त भी कोई व्यक्ति है जो मुक्तिदाता है। हमें अपने आराध्य में संशय न हो। बच्चा जब भूखा होता है तो माँ की ओर ही देखता है। किसी शक्तिशाली बड़े आदमी की ओर नहीं देखता। हम में ऐसा ही बाल विश्वास हो।

भगवान के ऊपर निर्भर रहना चाहिये। संशय रहित विश्वास हो। यदि विश्वास कच्चा हो तो तब काम कच्चे रहते हैं। अनामी भगवान के नाम युग युग में भिन्न भिन्न रहे हैं। नाम से पदार्थ का बोध होता है तो हम उसी को राम नाम से पुकारते हैं। जो बच्चा माँ पर निर्भर रहता है उसकी चिन्ता माँ करती है। पण्डित बनकर जो माँ के पास जाता है उस में विनीतता कहां?

भूल जाओ विद्वत्ता को, पाण्डित्य को, बालवत् माँ के पास जाओ। भगवान सब का पिता है। भक्ति में दृढ़ विश्वास, अविचल निश्चय, अटूट आस्था होवे। कोई हजार युक्ति दे, प्रमाण दे, विचलित न होवे।

विश्वासी को भगवद् दर्शन

अपने विश्वास को बड़ा पक्का रखना चाहिये। वेदान्त में भगवान का व्यक्ति के रूप में प्रकट होना नहीं माना। ब्रह्म क्या है? अनिर्वचनीय है (which cannot be defined) (ऐसा वेद कहते हैं)।भक्त तो तब तक आराम नहीं करता जब तक उसके (परमेश्वर के) साथ बातचीत न करे और उसके कामों में सहायक न हो। वेदों में आया है कि अपने तन को बढ़ाकर हमारे यज्ञ में सम्मिलित हो। तू हमारे साथ बोल। ऋगवेद में ये बातें हैं जिससे वह पवित्र है। अब तो फ़िलॉसफ़ी चल पड़ी है। भक्तों ने तो भगवान को देखा और जाना। फ़िलॉसफी में तो बोधक विनोद से अधिक कुछ भी नहीं है। वह विष्णु का परम धाम है। वैष्णवों

पर ही प्रकट हुए भगवान। जिस का निश्चय नहीं है उस पर भगवान का क्या प्रकट होना। फ़िलॉसफ़ी केवल बोधक है। फ़िलॉसफ़ी मैं करता नहीं। मुझे पता है कैसे प्रकट होता है। भक्त कहता है, मेरे परमेश्वर! मैं आपको देखना चाहता हूं। आवाज आती है, किस रूप में? नाम का उपासक बोला, जिस रूप में तुझे पसन्द हो। विश्वास रखने वालों पर ही भगवान प्रकट होते हैं।

भगवान का स्वरूप आज भी लोगों पर कुछ अंशों में प्रकट होता है। विश्वास बड़ा हो। गाँधी जी जैसा बड़ा व्यक्ति, जिस में भारी निश्चय था, बोला कि उसे कहा गया है कि तू आक्रमण कर। इस लिये कहा है कि अनन्य भक्ति से जो जानते हैं उनका योगक्षेम भगवान स्वयं निभाते हैं। भक्त की बड़ी भावना होनी चाहिये।

"जो किसी अन्य देवता की श्रद्धा से पूजा करते हैं, वे भी किसी न किसी प्रकार, अविधि पूर्वक, मेरे को ही प्राप्त होते हैं। मैं ही सब यज्ञों का भोक्ता हूं"— गीता अध्याय ९,श्लोक २३, २४। परमेश्वर के अतिरिक्त अन्य किसी देवता की पूजा करना, अविधि कहा है। जैसे एक व्यक्ति ने स्वयं गंगाजी में फूल चढ़ाये और एक ने नौकर के हाथ। कितना अन्तर है दोनों में! तो मुझे कहना यह है कि भक्ति अनन्य हो। गुरु को परमेश्वर समझना ठीक नहीं। भगवान का आसन आपने एक कुली को दे दिया तो क्या महत्त्व? यह त्रुटि हिन्दुओं की प्रगति में बड़ी बाधक है। मुझे कहना यह था कि भक्तिवाद में अपनी स्तुति के लिये कोई स्थान नहीं। ब्रह्म समाज को आधा क्रिस्चियन कहते हैं। वे भी मानते हैं कि हजरत ईसा ही केवल ईश्वर का पुत्र क्यों? ईश्वर तो सब का पिता है। यह बड़ी ठगी है कि परमेश्वर उसी में प्रकट, औरों में नहीं। आप को विश्वास हो कि भक्त का कभी नाश नहीं होता। गीता में महाराज ने भक्ति धर्म का बड़ा अच्छा निरूपण किया है "मैं सब में सम हूँ"। यह पृथक बात है कि किसी में संशय और किसी में विश्वास, पर ऐसा तो नहीं कि सूर्य किरण दूसरे पर पड़ती नहीं। लाभ तो ग्राह्य शक्ति पर निर्भर। १२वें अध्याय में भक्त

लक्षण-इन से गिरा हुआ तो गिरा हुआ ही है। इन लक्षणों का
नन किया करो। भक्तों के लिये तो भगवान ने कहा है कि उन में
रहता हूं और वे मुझ में रहते हैं।

नन-शक्ति से मनुष्य

हम यदि कहें कि गाय वह जिस के सींग, तो भैंस, बकरी, बैल
ादि सब के सींग होते हैं। ऐसे ही मनुष्य वह जिस के कान तो
ान तो गधे के भी होते हैं। वास्तव में, जिस में मनन-शक्ति वह
नुष्य। भगवान में वह भक्ति होनी चाहिये जो दूसरे देव में न हो।
से लोग गीता को बहुत मानते हैं किन्तु चलते किसी और दिशा
हैं। यह समाज में परम्परा से दोष है। "जो मुझे इस प्रकार
नन्य भक्ति से पूजते हैं, वे मुझ में और मैं उनमें विश्वास करता
। वे चाहे कितने ही हों"। सारी दुनिया के कांटे तो उठाने
शिकल। पर जो बूट पहने तो उसके लिये तो सारे संसार में चर्म
छ गया। तो भक्त तो विश्वास का जूता पहने। ऐसा मनुष्य हो
ावे तो फिर उस का कल्याण हो जाये।

मेरा एक मित्र सेना में बड़ा अधिकारी था। छुट्टी के दिन वह
सरे बड़े अधिकारियों को मिलता। वे कहते बुराई बाहर से
ाती है किन्तु वह कहता बुराई अन्दर से आती है। प्याज खा
ाया तो बुराई आयेगी। विरोध अन्दर से। यह पंथों ने बाहर से
मझा कि तम्बाकू में सारा धर्म। दोष तो अन्दर से और गुण भी
न्दर से आते हैं। यदि हृदय में हर्ष तो आंखों में भी हर्ष। चेतना
तो व्यक्ति में शक्ति भी। अन्दर का हर्ष मुख पर दीख पड़ता
। यह नहीं कि पाउडर से मुखड़ा खिल जायेगा। पाउडर लगाना
रा नहीं पर भीतरी रौनक से मुखड़ा खिला होना तो अधिक
च्छा।

कोई बड़ा पातकी पापी भी यदि हो तो यदि किसी प्रकार
क्ति सागर में प्रवेश कर गया तो बड़ा धर्मात्मा हो जाता है।
दा रहने वाली भक्ति को प्राप्त हो जाता है। "सब पापों से स्वयं
उसे छुड़ा देता हूं। हे कुन्तिपुत्र! तू यह अच्छी प्रकार जान ले कि
रा भक्त कभी नष्ट नहीं होता" यह तो भगवान ने अपने ऊपर

उत्तरदायित्व लिया है। कितना ऊँचा यह उपदेश है।

आदरणीय भाइयो! जब एक देव पर विश्वास हो तो बेड़ा पार। पर जब अनेक पर विश्वास तो क्या है? यमुना जी में स्नान कर के एक देवी चली। मार्ग में कोई वैरागी बैठा था, उस के चरणों में प्रणाम किया। आगे एक मुस्लिम कबर पर माथा टेका। साधन ने कहा तू सब को मानती है। बोली कलयुग है। कोई तो कठिन समय में काम आयेगा। पर आज आप ने भजन सुना — मीरा ने तो यह कहा था, "चित्त चढ़ी मूर्ति, हृदय में आन अड़ी"। पर जो इतने देवों को पूजते हैं, वे कैसे तरेंगे? यह विश्वास का धर्म है। भगवान उसमें बसे हुए हैं जो अनन्य भक्त। मेरा भक्त कभी नष्ट नहीं होता, यह उनकी प्रतिज्ञा है।

भगवान को अर्पण करना ही भक्ति धर्म है। भक्तों के कार्य के लिये वह स्वयं प्रकट। पंथों के कारण इस का स्वरूप कुछ और है जिन से हमारा कोई सम्बन्ध नहीं। हमें तो दृढ़ विश्वास है अपने परमेश्वर पर। उसी पर सुनिश्चित निश्चय होना चाहिये।

विश्वास आन्तरिक चीज़ है

कल मैंने कहा था कि साधक में परम सत्य हो। परम विश्वास भी होना चाहिये। सत्य का पालन तो मुश्किल है।कारण कि व्यवहार में विचलित हो जाते हैं और इसको साध नहीं सकते। इसलिये निभाना कठिन है पर विश्वास तो आन्तरिक चीज है। इसका परिवार से कुछ सम्बन्ध नहीं। बच्चे को मां झूठ बोलकर बहलाती तो परम सत्य तो मुश्किल। स्पष्ट कहना मुश्किल है। पर विश्वास यह बात तो है अन्दर की। दूसरे को झूठी बात से बहलाना (उचित नहीं)। जिन में विचार (विचारशील व्यक्ति) वे झूठमूठ नहीं बहका जाते कि मैं ऐसा अवश्य करूंगा। वे इस ढंग से उत्तर देते हैं कि मैं पूरा यत्न करूंगा, मैं विचार आप को लिखूंगा। छुट्टी लेनी हो तो मां बीमार। कोई आपसे मिलने आए। आप पूछें अच्छा भाई भोजन खाओगे। आप ने बार बार कहा तो खाने बैठ गया। पहले खाना खाने से ना भी की

और फिर आप से डेढ़ गुणा भी खा गया। ऐसे आप सोचेंगे तो मिथ्यापन संसार में इतना हुआ। तो इस कीचड़ से निकलना, बचना मुश्किल पर फिर भी ऐसे लोग हैं जो सत्य का पालन करते हैं। पर विश्वास जो है वह तो अपनी आन्तरिक चीज है। (इसमें न परिवार का प्रश्न है, न सन्तति का सम्बन्ध)। पर स विश्वास हो तो उसके जीवन में तो पलटा आना चाहिये। मैं इन बातों की परीक्षा भी करता हूँ। मेरे पास कोई आए और कहे कि मन नहीं लगता तो कितने ही उपाय होंगे (पर) मैं उन में से कोई (उपाय) नहीं बताता। यही कहता हूं कि जप और कर और इस पर प्रभाव होता है।

अध्यात्म चिकित्सा विश्वास पर निर्भर

(मैं एक बार) हरिद्वार में ठहरा हुआ था। एक स्त्री ने कहा कि मन उखड़ता रहता है। वह इधर उधर बहुत जाया करती। पर मैं क्यों रोकूं। मैंने यही कहा तू यहां रहती है तो जप कर। एक लोटा रख ले और चौकी पर बैठ। (उसने) १०-११ लाख किया होगा (तब) इसने, फिर कहा कि मेरे मन का टिकाओ हुआ। संकट जो हैं इनका निवारण चिकित्सा शास्त्र से भी कठिन और अध्यात्म से कठिन। डाक्टरों की दवाएं बहुत अच्छी हैं। कोई ऐसी दवा भी है जो शतप्रतिशत को आराम दे देती है। पर दवाईयां फ़ेल भी हो जाती हैं। इस कारण दावे से कहा जावे कि ऐसा हो जावेगा बड़ा कठिन है। इलाज है, बनी के सब इलाज हैं।

डुलेस को क्या डाक्टरों की कमी थी—पर त्याग पत्र देना पड़ा अपने पद से निराशा के बाद। तिब्बत वाले तो और ही तरह से इलाज करते। इनके यहां भी ५०-७५ प्रतिशत अच्छे हो जाते हैं। जादू टोनों से भी लोग इलाज कराते। अब मुझे इधर इस विषय में ज़ाना नहीं बहुत। कहना यह है कि यदि विश्वास हो और नाम का आराधन करे तो चिकित्सा, यह भी अध्यात्म चिकित्सा है। एक बिमार का ऐक्सरे हुआ तो मालूम न हो सका (पीड़ा का कारण)। पीड़ा इस प्रकार अचानक रुक जाने और फिर इतनी तीव्र पीड़ा का होना बताए कि कैंसर ही हो सकता है।

लेकिन साबित न हुआ। मैंने एक सेविका को कहा कि तुम जाप रखाओ। रोने लग जाता है बच्चा जिसको आदत हो जावे, मंगल के समय भी और कष्ट के समय भी। परिवार वालों को तो सुझाया पर इन्होंने तो यह कभी किया नहीं। दो देवियां बाहर से आईं। डाक्टर इलाज करते रहे। दस दिन उन्होंने वह अनुष्ठान किया "राम नाम मुदमंगल कारी, विघ्न हरे सब संकट हारी"। बजाय पातक हारी के संकट हारी शब्द रखा इस पद में। मैं ने कहा कि पातक हारी की बजाय संकट हारी रखो। सारी मशीन और इंजन खड़ा हो गया (ठीक हो गया वह) तो मुझे कहना है कि ऐसा होता है। फिर भी कोई बात हो तो नासमझी है। यह भी एक शैली है! (आध्यात्म चिकित्सा भी इलाज की एक शैली है।)

गाय के सिर में दर्द हो तो गाय के माथे पर चन्दन। पर जिसके सिर पर पीड़ा इसको तत्परता से जप आराधन करना चाहिये। तो यह तो ठीक है कि सूली का कांटा बन जाता है पर विश्वास हो। उनका नहीं जिसने जादू वाला भी बुला लिया, हकीम भी और एक जड़ी जानने वाला चमार भी। विश्वास की जो चिकित्सा है, पक्का हो तो वह बहुत लाभ पहुंचा सके। यह दूसरों को बुलाने की बात नहीं। आप करें पांच दिन, छः दिन, जहां तक बन पड़े। इस प्रकार का अनुष्ठान स्वयं करें। दूसरों से क्या करवाना।

सत्य का पालन बहुत समझो कि वह है ठीक। यह दूसरों पर भी प्रभाव डालता है। आध्यात्म चिकित्सा के जानने वाले—वह तो बहुत बड़ी बात है—इनका भी निर्मूल नहीं है। मूल है, यह पुरानी प्रथा है। भारतीय लोग पहले यज्ञ किया करते। अब तो झूठ समझ लेते कि घी सामग्री इकट्ठी करो और स्वाहा स्वाहा। बच्चे भी, हर एक यों फैंकें। चने की मुट्ठी भी यों फैंकों तो भला आदमी स्वीकार नहीं करेगा। बच्चों से फिकवाओ तो यह नाटक नहीं तो क्या? वहां तो ठीक बोलना, गलत न बोलना, यह सब महत्त्व रखना, पर अब साले को भी, दोस्त को भी, बच्चों से भी फैंकवाएं। देवता से हंसी करने का आपको क्या अधिकार। आप अफसर के पास जावें तो कोई अनुचित व्यवहार नहीं करते तो देव

द्वार जाकर ऐसा निरादर क्यों? तो सब चीजें नाप तोल कर। वास्तव में तो ऐसे चिकित्सा हो। पर उस समय अग्नि को भी शक्ति मानते।

मैस्मरेजम में आत्माओं को (बुलाने की प्रथा)। एक साधक ने कहा कि अमुक रिश्तेदार को बुलाएं। चाचा आवे तो तिपाई दो बार हिले—फिर प्रश्न पूछे जावें इस आत्मा से। अब यह आत्माओं को बुलाने का ऐसा खेल है कि बड़ी सफलता तो इसमें कभी किसी को हुई नहीं। चण्डूखाना होवे तो वहां तो सेठ साहूकार भी एक आध—पर ज्यादा तो गांठ कुतरे। तो ऐसों में दैत्य भी आ जावें। एक धनी सेवक के यहां दुर्गा पाठ हुआ। बड़ी भावन के साथ और पुरातन ढंग से। आप रेडियो से समाचार सुनना चाहते एक विशेष स्थान से। दूसरे स्थान से न मालूम कौन बोल रहा हो। इसलिए उस स्टेशन पर सुई लगाते हैं। पर इस स्टेशन पर भी दूसरे-पिछली लड़ाई में भी जब रेडियो बोलता तो एक पक्ष वाले अपनी विजय की बात कहते तो दूसरी आवाज कहती कि तुम अन्याय पर हो—तुम हार जाओगे। वह शक्तिशाली स्टेशन तरंग तोड़ कर बोलता। आपके रेडियो पर भी तो कभी बादल की गरज। विश्वास न हो भगवान पर तो न जाने कौन आ जावे। बहुत दृढ़ विश्वास होना चाहिए। मुझे निवेदन यह करना था कि परम विश्वास हो (भगवान पर) जो आराधना करे तो अपने को, जीवन को, समाज को, अच्छा बनाने में बड़ा हाथ। घरेलू काम में लड़-झगड़ कर साथी को अच्छा बनाये तो यह बात बढ़ जावेगी पर किसी को विचार हो कि मेरा मित्र अच्छा हो जावे तो वह इस विचार से इसके लिए निश्चय से जाप करे। इसको परिवर्तित होना चाहिए। इस कामना से कि वह सदाचारी बने। विश्वासी की (प्रार्थना का तो प्रभाव होगा) उसकी नहीं जिसने मढ़ी देखी तो नमस्कार, पीपल देखा तो नमस्कार।

जो निश्चय वाले नहीं हैं उन की बुद्धि बहुत शाखाओं वाली होती है। जो लोग इस प्रकार की चिकित्सा करते हैं उनको ऐसा बोध होता है कि जप करने पर इसके बन्धु का चरित्र बदल गया।

अच्छा (बनाती है प्रार्थना)। तलवारें ही काम करती हैं यह क्या विश्वास? यदि कुछ अच्छे आदमी जो ठेका करके न करते हों—ठेकों की तो दिवार से रेत-इंजीनियर देखें नहीं तो ठेकेदार तो न मालूम क्या (कर बैठें)। पर किसी देश के भले आदमी देश के लिए प्रार्थना करें कि शत्रु आक्रमण न करे, (उनका देश) शान्ति से आगे बढ़े, शान्ति से काम हो, बाहर का उपद्रव इसे खराब न करे। ऐसे प्रार्थना वे करें। आप की समाचार-पत्र में देने की आवश्यकता नहीं। भारत के आप भी अंश हैं।

यह कोई शुभ कामना नहीं कि चीन हार जावे और तिब्बत जीत जावे। यहां अच्छे आदमी सिफारिशें बहुत कम मानते हैं। भारत शान्ति से चले और दूसरे का अनुचित व्यवहार न रहे यह तो भगवान को आह्वान करना (ठीक है) पर किसी के नाश के लिए कामना करना ठीक नहीं। अपने प्रकाश के लिए (प्रार्थना) करें। देव आह्वान जो हुआ तो केस जब जज के सामने आवे तो जज को नुक्ता सूझ जावे, डाक्टर को यत्न सूझ जावे ऐसा प्रभाव होगा। देव आह्वान होता है तो यह प्रभाव होगा। जो झूठा है वह झूठा ही है, इसके विरुद्ध क्या कामना करनी। अनुभवियों ने समझा कि बात जो सत्य है उसी के लिए आह्वान करना (चाहिए देव को)। हमारी किसी से शत्रुता नहीं। यह बातें जरा समझ की हैं। निर्दोष काम (प्रार्थना के लिए) यह है बुद्धि निर्मल हो, किसी का चरित्र अच्छा हो, आत्मा जागृत हो, आस्तिक भाव हो, यह प्रार्थनाएं इतनी निर्मल, इतनी निर्दोष हैं।

यह भागवत इच्छा के अनुसार ही बातें हैं। ऐसा करे तो इसमें दया। वह दृढ़ विश्वास, ऊंचे चरित्र वाला प्रार्थना न भी करे पर वह किसी से सहानुभूति भी करे तो भी इसको लाभ होगा मैस्मरेजम जो सोचते हैं वह पहले हाथों की, फिर आंखों की (प्रैक्टिस करते हैं)। तो आप तो राम नाम (के जपने वाले हैं) आप के संकल्प में बल क्यों न हो। इतना अभ्यास जिसने किया तो उसकी तो वाणी शुद्ध (हो जाती है)। नाम के आराधन से जो अपना इष्टदेव (है) इसका विशेष मिलाप (होता है)। यह उन का

कथन है जो भारत में अध्यात्मवाद में ऊंचे हुए
फिर दोनों हाथों में लड्डू हैं आपके।

विश्वास से आत्म कल्याण तथा जगत कल्याण

कल मैंने कहा था कि विश्वास बहुत
(विश्वासी) आदमी का अपना कल्याण तो होता है
भी (ऐसा व्यक्ति कल्याण) करता है। जिस
निकालता है फिर प्रार्थना के प्रभाव को
हृदय में कोई पक्षपात है-पर जब आदमी
बन्द हुआ, नीतिवान भी जब जाते हैं
हैं। इसीलिये याचक ऊंचा उद्देश्य

ईश्वर में सजीव विश्वास हो तो
ऊंचा होता है। जब हम उपासना करते हैं
राम को अपने समीप, अंग संग ही
दबाव से नहीं, मनन करते करते आता है।
में विश्वास होता है, वैसे ही जीवित
चाहिये। यह अवसर जो आपकी
जितना लाभ उठाया जावे उठाना चाहिये।
है। जितना अधिक कमाई होगी,
धन एकत्रित कर लिया जाये फिर
कभी कमी नहीं पड़ती। यह एकत्रित
का) जन्म जन्मांतरों तक काम में
आराधना करते रहना चाहिये।

भाईयो! मैं तो यज्ञ को
भावना, पुरातन रीति से किया
लोगों ने तमाशा बनाया हुआ है।
निकलते।

यज्ञ—यज्ञ का अर्थ कोई अग्निहोत्र
यज्ञ कहलाते हैं। प्राणायाम
पुरातन शैली में सभी

यज्ञ शब्द को रूढ़ किया गया। **कल्याण के सभी काम** यज्ञ—देवपूजा, संगतिकरण और दान यह यज्ञ का व्याकरण है।

श्रद्धा - (१)

जब मनुष्य का निश्चय स्थिर हो जाय तो श्रद्धा भी होती है, ज्ञान भी होता है। संशयशील की श्रद्धा भी ढीली हो जाती है, मनन भी ढीला हो जाता है। अंध श्रद्धा क्या है? और सनेत्र श्रद्धा क्या है? यह जानना बड़ा कठिन है। जो किसी बात को अन्ध श्रद्धा कहते हैं, वे स्वयं किसी पर अंधश्रद्धा करते हैं। इसलिए इनका ऐसा कहना बनता नहीं।

किसी भी क्षेत्र में देखो—पारिवारिक, जातीय, धार्मिक, राजनैतिक—अंध विश्वास सब जगह है और इन में अच्छाईयां भी हैं। ऐसा विश्वास, जिस में संशय नहीं, अच्छा है। जब संशय नहीं होता तब श्रद्धा भी होती है।

श्रद्धा चाहे दलीलों से बने चाहे स्वभाव से, यथा बालक माता की गोद में। जब श्रद्धा होती है तो अन्ध ही होती है।

निश्चय अटल होना चाहिये, पहाड़ की चट्टान की भांति। निष्ठा न हो, धारणा पक्की न हो तो श्रद्धा मर जाती है। इसीलिये धारणा दृढ़ करनी चाहिये।

श्रद्धा हृदय की संकल्प क्रिया है। बाहर से दिखाने की वस्तु नहीं। किस में कितनी श्रद्धा है उस का साक्षी मनुष्य स्वयं होता है। बहुत से लोग समझते हैं कि भलाई बाहर से अन्दर आ जायेगी पर ठीक बात तो यह है कि भलाई अन्दर से बाहर आवेगी।

श्रद्धा स्वभावजन्य भी है अर्थात् यह स्वभाव से भी होती है। स्वभाव से तात्पर्य परम्परा से है।

श्रद्धा - (२)

जब कोई श्रद्धा करता है तब उसे ज्ञान होता है। श्रद्धावान मनुष्य हर काम के लिए समय निकाल लेता है। समय तो निकला ही रहता है पर हम उसका उपयोग नहीं करते। भगवान के नाम

के लिए अवसर इस लिये नहीं मिलता क्योंकि हमारा अपनी आत्मा से प्रेम नहीं है।

सत्संग स्वल्प और स्वादु होना चाहिए। उसमें सजीवता और चैतन्यता होनी चाहिए। लम्बे कामों में श्रद्धा कम होती है। समय बहुत होता है, उसका ठीक विभाग करने से हर काम के लिये अवसर निकल जाता है। बात यह है कि हमारी इस काम के लिये रुचि नहीं होती जिसके लिये हम कहते हैं कि समय नहीं है। किसी काम को महत्त्व देने से उसके लिये समय निकल आता है। अवसर वहुत है। उनका सदुयोग होना चाहिये। सदुपयोग श्रद्धा से होता है।

एक माई सारा दिन घर के काम धन्धों में लगी रहती थी। उसने एक महात्मा से पूछा कि उस का आत्म कल्याण कैसे होगा। महात्मा ने उसको कहा कि काम करते समय हाथ में काम हो और मुंह में राम। यथा–"हथ विच काम, मुंह विच राम"। माई ने उस पर आचरण किया और थोड़े समय में उसे अध्यात्म प्रसाद की प्राप्ति हो गई। वास्तव में बात भी यही है। भगवान को पाने का रास्ता तो बड़ा सरल है, बाकी तो पण्डितों की बातें हैं। मनुष्य की भावना ऊंची होनी चाहिए। भावना में देव विराजमान होता है। सीधा सरल मार्ग हरिभक्ति का श्रद्धा है। इसमें जो कोई भी आराधना करे उसको लाभ होना चाहिये। यदि लाभ नहीं होता तो उसको अपने आप को टटोलना चाहिए, उसे स्वयं पता लग जायेगा कि कहां त्रुटि है।

एक जख्मी वंदर के घावों पर मरहम पट्टी की गई थी। पर वह उसे छील छोड़ता था। इसी प्रकार जो साधन की पट्टी को अपनी चंचलता के कुतर्क से कुरेदते हैं, उनके संशयों के घाव नासूर वन जाते हैं। और वह अच्छे नहीं होते। आध्यात्मवाद श्रद्धा का काम है। साधन पर विश्वास करके श्रद्धापूर्वक उसका अभ्यास करना चाहिये।

सत्य को प्रकट करने के लिए ज्ञान की आवश्यकता है। ज्ञान प्राप्त होता है श्रद्धा से और श्रद्धा उत्पन्न होती है, मनन करने से। मनन न करने से ज्ञान स्थिर नहीं होता। पढ़े सुने पर बार-बार

चिन्तन करना और उन पर धारना जमाना, यही प्रयत्न करना है।

श्रद्धा — (३)

जब कोई श्रद्धा करता है तब जानता है अर्थात् तब उसे ज्ञान की प्राप्ति होती है। वेद भी कहता है श्रद्धा से सत्य प्राप्त किया जाता है, श्रद्धा से मानव मंडल का जीवन मधुर बनता है। समाज इससे सुधरी हुई प्रतीत होती है। परलोक सम्बन्धी श्रद्धा भी मनुष्य को बड़ा हर्ष देती है। धर्म का विशाल वृक्ष श्रद्धा की भूमि में ही पनपता है। **सत्य के लिए जो रुचि, प्रीति है उसी वृत्ति का नाम श्रद्धा है।**

सनत् कुमार ने कहा कि जब कोई जानता है तब सत्य बोलता है। अर्थात् यदि सत्य का बोध ही नहीं है तो वह सत्य क्या कहेगा। सत्य का जानने वाला ही सत्य बोलता है। सत्य को विवेक बुद्धि से जानना चाहिए।

योग साधन
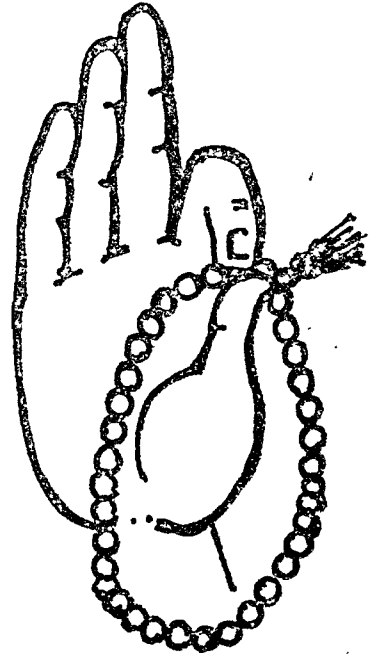
(क) व्यक्तिगत

जाप

जप—एक आध्यात्मिक तप

जप करना आध्यात्मिक तप है। जितना अधिक जप होगा, उतना ही अधिक आत्मा निर्मल होगा। जप बड़ी भावना के साथ करना चाहिए। इससे संस्कारों पर गहरा प्रभाव पड़ेगा। साधक स्वयं अनुभव करेगा। जब स्वयं अजपा जाप चलेगा, वाणी से नहीं, जीभ से नहीं, स्वयं मानसिक जाप होता जायेगा, तब अविद्या की ग्रन्थी टूट जायगी और दशम द्वार से पार हो जायगा। मानो साधक का परम कल्याण हो जाता है।

व्यक्ति समाधि के लिए बड़े जप तप साधन करते हैं। पहाड़ों की कन्दराओं में, कुटियाओं में, गंगा तट पर अनेक प्रकार के साधन करते हैं। वे अपनी जगह पर हैं। परन्तु हमारे लिए तो श्रेष्ठ राम नाम का साधन है। किसी को योग निद्रा आ जाये। जप निद्रा तो रोज ही आती है। जप से सिद्धि प्राप्त होती है। यह प्रबल भावना स्त्री-पुरुषों में होनी चाहिए। इससे संकट शीघ्र कट जाते हैं, सौभाग्य बनता है। व्यक्तियों को कुछ न कुछ अवलम्बन होना चाहिए। अतः नाम जप में अधिक समय व्यतीत करना चाहिए। व्यर्थ समय नहीं खोओ।

जप कीर्तन करने में लज्जा नहीं हो

राम नाम के जप कीर्तन करने में लज्जा नहीं आनी चाहिए। जब स्त्री-पुरुषों को सिनेमा जाने में या अन्य गन्दे व्यसनों के करने में लज्जा नहीं आती तो राम नाम की माला जपने में क्यों आवे ? भक्त राम नाम की माला से तर जाता है। यह माला बड़ा ग्रन्थ है। यह सदा बना रहता है। यदि यह साथ में हो तो अन्य मित्र या साथियों की आवश्यकता नहीं। यह लोक परलोक का साथी है। हर्ष के साथ माला जपनी चाहिए। प्रभु के साथ जब प्रीति लगा ली तो कोई कुछ भी कहे, संकोच नहीं करना चाहिये। घर के लोगों से

भी निर्मम होना चाहिये। इससे अन्तःकरण शुद्ध होता है। जो संसार की चिन्ता नहीं करते व राम से ही लौ लगाते हैं, वे राम को प्राप्त होते हैं। जप की मर्यादा बनाने से बड़ा लाभ होता है, कि इतना प्रतिदिन जाप करेंगे। राम धन का सदैव संचय होता है। कभी हानि तो होती ही नहीं और न खर्च होता है। अधिक राम धन का मोह हो जावे तो यह लोभ तो श्रीराम चरण शरण में ले जाता है। कल्याण कर देता है।

माला की उपयोगिता और महत्त्व

माला बड़ी अच्छी चीज़ है। भाव से फेरने से बड़ा लाभ होता है। इससे जप में दिल बड़ा लगता है। जो कहते हैं हमारा माला से दिल नहीं लगता, उन्होंने कभी माला फेरी नहीं। साधना के लिये माला फेरना बड़ी अच्छी विधि है। माला से नाम का संस्कार अन्दर भर जाता है। एक क्षण के लिए भी नाम में मन लग जाने पर जन्म-जन्मान्तर के मैल धुल जाते हैं और जप क़रते समय कभी न कभी मन लग ही जाता है।

माला काम काज में लगे आदमियों के लिये बड़ा अवलम्बन है। जब नींद रात को खुल जाये तो उस समय माला फेरने लग जाये। इससे बड़ा लाभ होगा। माला एक औषधि भी है। हर समय मन से काम करना कठिन होता है, उस समय माला फेरने से थकान नहीं होती। भोजन के तुरन्त उपरान्त माला फेरना पाचन को भी ठीक करता है। राम नाम से बढ़कर कोई मन्त्र नहीं। यह कमाल का वशीकरण मन्त्र है। माला तावीज का भी काम देती है। यह असुरों से रक्षा करती है। मैं भ्रम की चीज़ों को नहीं मानता। सीधी साधी वस्तु सम्मुख रखता हूँ।

माला संकटों का भी निवारण करती है, इसमें कोई आश्चर्य नहीं। न्यायसंगत प्रार्थना होनी चाहिये। अपराध, पाप, आदि की क्षमा के लिये भी प्रार्थना करनी चाहिये। माला संकट-हारिणी, पाप-नाशिनी और सुख-दायिनी है।

माला से हस्त-लाघव पैदा होता है और अंगुलियों में विद्युत्

शक्ति पैदा हो जाती है। यह शरीर की विद्युत् को जागरित करत
है। अंगुलियों को कहीं भी फेरो इससे लाभ होगा। इस
रोग-निवारण की शक्ति भी आ जाती है।

माला के विषय में श्री महाराज जी ने एक बार कहा—

१. माला जप में बड़ी सहायक वस्तु है।
२. इस पर प्रतिदिन कम से कम दस हजार का जाप करन
   चाहिए।
३. इसे बड़े आदर से पवित्र स्थान पर सुरक्षित रखना चाहिए
४. टूटने पर या बहुत पुरानी होने पर बदली जा सकती है
५. वैसे तो माला चन्दन, तुलसी, रुद्राक्ष आदि किसी भी वस
   की बनी हो सकती है, पर हम ऊन की बुन्दी हुई माला क
   प्रयोग करते हैं।
६. माला किसी भी रंग की हो सकती है।

जब श्री महाराज जी की आयु ९८ वर्ष की थी, उन्होंने कहा
माला पर राम नाम का जाप नहीं छोड़ना चाहिए। इस
साधकों को अपने जीवन का एक परम आवश्यक अंग बना ले
चाहिए। मैं जानता हूं कि जो मैं करता हूं वह साधक भी करते है
तो साधकों के आगे एक आदर्श रखने के लिए मैं इस आयु में
प्रतिदिन माला पर जाप करता हूं।"

राम भक्त का नाश कभी नहीं होता

साधक की उंगलियाँ माला के ऊपर नृत्य करती हैं। भक्त
कान कीर्तन सुनते हुए नृत्य करें, जीभ हरि-कीर्तन करती हु
नृत्य करे और मन व उँगली राम नाम की माला जपते रहें। रा
नाम के जपने वाले काल को भी हनन कर डालते हैं। यह भा
ऊँचा और श्रेष्ठ है। **राम भक्त का नाश कभी नहीं होता।** य
अवधि पूरी हो गई है तो भले ही शरीर छूटे। निर्भयता, निडरत
होनी चाहिये, तब लाभ होता है। मनोबल, वाणी बल बढ़त
जाता है। यह साधन बड़ा लाभदायक है। राम धुन पैदा हो जा
तो यही बड़ी चीज़ है। फिर क्या रह गया ? साधक के हृदय मन्दि
में राम धुन गूंजने लगे तो व्यक्ति पार हो गया। राम मन्दिर

ाने की सीढ़ी है तो राम नाम है। हम निश्चय से कहते हैं कि
समें बड़ा बल है। हमारी बुद्धि विचलित नहीं होनी चाहिये।
ावना दृढ़ बनानी चाहिये। राम नाम के जप को व्यक्तियों ने
ामृत नहीं समझा इसीलिये विश्वास नहीं। श्रद्धा खूब होनी
ाहिए। राम रस भक्ति का प्रेम प्राप्त करना चाहिये। निर्वाण पैर
ं नीचे डोलता रहेगा। राम नाम जपने वाले को राम धाम
नलेगा। सदा ज्योति जाग्रत रहेगी। राम धुन खूब रमाओ। इतना
ाम बस जाये कि पहाड़ के पानी के समान अपने आप रिसने
ागे।

ाम आराधन-आध्यात्मिक चिकित्सा

ाम जप क्या है ? नाम जपते जपते यह दशा आ जाती है कि
नुष्य के अन्त:करण में नाम चला जाता है। तब मनोवृत्ति
शथिल पड़ जाती है। उसमें झिझक नहीं रहती। उसमें से पाप
नकलने लग जाते हैं। **नाम-आराधन एक प्रकार की
ाध्यात्मिक चिकित्सा है।** उसमें से पाप-वासना स्वयं बाहर
नकल जाती है और उसमें निर्मलता आ जाती है। एकाग्रता
ानसिक ऐंठन की अनुपस्थिति सिद्ध करती है।

संकोच से ऐंठन आती है जो नहीं आनी चाहिये। नाचना सीखने
ाएँ और संकोच करें तो नाच कैसे सीखेंगे। ध्वनि अलापने पर
ुछ लोग विचित्र काम करने लगते हैं, जैसे नाचना, कूदना। ये
ाब मानसिक विस्तार होने पर होते हैं। ग्राह्य शक्ति बढ़ने पर
ाशीर्वाद आते हैं। प्रसुप्त चेतना जब जाग जाती है तो,
कसी-किसी के स्वर में अन्तर आ जाता है, टकटकी लग जाती है,
ाति में अन्तर पड़ जाता है, कम्प होता है, कोई कोई गाने लग
ाता है। ये सब उस समय में समाधिस्थ होते हैं। यह मत समझो
ो सुन्न हो जाते हैं वही समाधि में होते हैं। देह का गिर जाना भी
ुक ऐसी दशा है। जिसकी ऐसी दशा हो जाये वह फिर दुबारा
ान्म नहीं लेता। ऊपर को उछले, बैठे बैठे खड़ा हो जाय, या कोई
दव्य स्वरूप सामने आ जाय, ये सब इस बात के चिन्ह हैं कि

स्थूल शरीर में से सूक्षम शरीर निकल कर ऐसा करता है।

आवेश में आये हुए लोगों के हृदय की धड़कन भी इतनी तीव्र हो जाती है कि डाक्टर भी आश्चर्य में पड़ जाए। देह का भान न रहना तथा सामने प्रकाश देखना, जो चीज़ पढ़ी न हो वह भी देखने को मिल जाना भी उत्तम चिन्ह हैं।

रोदन करने लग जाये व कविता करने लग जाये यह सब प्रकट होता है। यह कोई आवश्यक नहीं कि नींद आये किन्तु नाम जप से वह अवस्था भी आती है कि लोग महीनों जागते रहते हैं और कामकाज करते हुए शिथिलता प्राप्त करते हैं। भिन्न- भिन्न अवस्थाएँ आती हैं।

ऐसी अवस्था आने पर आदमी भक्ति का पात्र बन जाता है। आवेश में जो कोष तथा तन्तु हिल जाते हैं वे आध्यात्मिक लहरों से पुनः शक्ति प्राप्त करते हैं। वह भगवान की कृपा का पात्र बन जाता है। शरीर शुद्ध हो जाता है। बाहर की शक्ति अन्तरात्मा की शक्ति को जगा देती है।

दैवी जीवन के योग्य वह बन जाता है तथा बड़ा भारी लाभ होता है। शरीर शुद्ध होकर भगवत्-कृपा का पात्र बन जाता है। राम कृपा किसी विरले व्यक्ति में ही अवतरित होती है, जिसने नाम-जप से हृदय शुद्ध किया हो। संयम भी आवश्यक है। नाम-जप छोड़ने पर ये अवस्थाएँ हर भी जाती हैं। यदि आदमी का पतन हो जाये तो कृपा अवतरण रुक भी जाता है। आँखें बन्द होने पर जो दिखता है वह आत्मिक नेत्रों से दिखता है। आत्मा जग जाता है।

नाम जप करने वाला यदि इस जन्म में नहीं तो अगले जन्म में अवश्य सफल होगा। जो राम कृपा का पात्र बन गया और एक बार नाम-ग्रहण कर लिया, वह भक्त फिर नाश को प्राप्त नहीं होता। अटूट निश्चय, बड़ी प्रीति, भक्ति भाव, आदर त विश्वास के साथ नाम आराधन करना चाहिये।

स से उन्नति

ाद न होने पर बारम्बार अभ्यास करने से स्मृति तीव्र हो है और पाठ याद हो जाता है। मन को शान्ति न मिलने पर धिक करना चाहिए। केवल अल्प समय आराधन करने को शिकायत करने का अधिकार नहीं है। गुरु पर आश्रित कर अभ्यास आवश्यक है। साधनशील बनकर त्-कृपा का पात्र बनो, सत्य संकल्प से अनेक चमत्कार होते न्तु बली ऐसा कहते नहीं।

मेव स्फुरणा से बली कुछ कह दे वह बात अलग है किन्तु वाहकर कुछ आशीर्वाद की मांग करना ठीक नहीं। कामना ोने के लिए भी श्रम आवश्यक है। व्यर्थ की भावना ठीक अल्प प्रयास से अधिक फल की चाह करना ठीक नहीं है। क जाप भी बहुत लाभ करता है।

ऊँची स्थिति—लय अवस्था

छ देखने की कामना बाधक होती है। वैसे यह सब राम में सम्भव है। राधा स्वामी मत आदि में दशमद्वार खुलने, दर्शन आदि की बात बताते हैं। किन्तु ये भी तो प्राकृतिक ों का ही दर्शन हुआ। कोई आत्मलीनता नहीं और न ा ही। अहंकारी विनीत बन जाए यह क्या कम आश्चर्य की है ? आकाश में उड़ान तथा पानी पर चलने के लिए योग का क्या करना। ये सब लौकिक क्षेत्र में भौतिक विज्ञान ने ब्ध कर दिये हैं।

च्चा योग तो ब्रह्म संस्पर्श भागवत योग है। **लय अवस्था ऊंची स्थिति है।** देखना, सुनना प्रवृत्ति है जो अन्तिम नहीं

व्यदर्शन देखना, दिव्य वाणी सुनना, कोई विलक्षण बात है। हमारे यहाँ भी कइयों को रूप दर्शन होते हैं। यद्यपि यहाँ नाम दिया जाता है, फिर भी कल्पना रूप की नहीं चाहिए, कृपा मांगनी चाहिए। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की

चाह न करके कृपा मांगते रहें। अवतार स्वरूपों का दर्शन कभी-कभी हमारे यहां साधकों को होते हैं किन्तु स्वमेव। कामना से नहीं, चाह से नहीं और कल्पना से नहीं।

नाम आराधन सब शास्त्रों में बताया गया है। भक्त की कामना मुक्ति की नहीं होती। मुक्ति पर जोर बौद्धों ने दिया। मुक्ति तो भक्त को आप ही प्राप्त हो जाती है।

भगवान मां समान है

निरालम्ब बाल-भाव से भगवान को पुकारो, जैसे प्यास और भूख से त्रसित बालक मां को पुकारता है। यह न सोचो कि तुम पापी तापी हो, तुम्हारी भगवान प्रार्थना नहीं सुनेंगे अपितु मां के समान है भगवान तो। हजारों अपराध करने पर मां कुपित नहीं होती। उसी प्रकार भगवान भी अपने पुकारने वाले पर कुपित न होकर दौड़कर गोद में उठा लेते हैं।

अजपा जाप

अजपा जाप पर कबीर आदि ने जोर दिया हैं। प्रयास न करने पर मन की आन्तरिक जप की अनुभूति अजपा जाप कहलाती है। "आगे क्या होगा" यह पूछना नासमझी है। ऋद्धि-सिद्धि की [illegible] नहीं करनी चाहिए। भगवत्-प्राप्ति हो जाने पर सब स्वतः [illegible] हो जाता है। अजपा जाप से शान्ति प्राप्त करनी चाहिए। [illegible] का मानस रोग "आगे क्या होगा" ऐसी शंका पैदा न करो। [illegible] दर्शन तथा दिव्यवाणी की चाह न करो। वे स्वयं आयें [illegible] आयें तो भगवान को धन्यवाद दो और अपने आपको [illegible]

यह युग संघर्ष का है। चरित्र में निर्मलता नहीं है। [illegible] जीवों को यदि कोई इस प्रकार की कृपा का अनु[illegible] आपको धन्य मानें। अधिकाधिक जप करने [illegible] निश्चय रूप से, हो जाएगा। मन, वचन, [illegible] बदलने के लिए जप की मात्रा बढ़ाओ।

सिमरन

(महाराज जी ने पहले मंगलाचरण पढ़ा, भक्ति प्रकाश लेकर) जो ध्यान करता है-सिमरन करता है- इसी का कल्याण। जो लोग कामकाज करने वाले हैं—पढ़े लिखे हों, दफ्तरी बाबू हों, दुकानदार, खेतकार इन सबके पास इतना समय तो होता नहीं है कि आसन जमाकर ध्यान करने में लग जावें। उनको परिश्रम करना पड़ता है और इतना अवकाश होता नहीं। तो फिर लाभ जो होता है वह भगवान कृपा से होता है। तो यहां जो राम ध्यान सिमरन होता है वह कोई किसी अवस्था में ही (कर सकता है)। उस (नाम आराधन) के लिए न बड़े आडम्बर की आवश्यकता और न ही बहुत समय की। न ही घर-बार का छोड़ना (आवश्यक)। काम जो करता है, करता रहे किन्तु थोड़ा बहुत समय भावना से सिमरन ध्यान होना चाहिए। इससे मनुष्य का आत्मा जग जाता है।

जैसे आंखें खोलने पर सूर्य ज्योति सहायता देती है इसी प्रकार जो नर ध्यान करता है उस पर भगवान की कृपा का अवतरण होता है। दूसरा साधन सिमरन है। ध्यान तो थोड़ी देर। तो नाम का आराधन, जो (नाम) भगवान की कृपा से अवतरित होता है। इस आराधना से, सुलभता से वह लाभ (प्राप्त हो जाता है) जो दूसरे साधनों में कठिनाई से होता है। हाली बैल हांके जावे और सिमरन करता रहे तो उसका इसी में कल्याण (हो जाता है)। उस को उतना ही लाभ हो जावे तो कोई आश्चर्य नहीं, जितना कि पद्मासन लगाकर तपस्या करने वाले को। सिमरन बड़ा ऊंचा साधन है और अच्छा साधन है। नांगल में हमारा सत्संग, तो चड़स लेकर जो जाता है उसको राम बोलकर बताना कि वह आ गया। इसमें इसका बड़ा लाभ कि जाप भी करना और बोझा भी उठाना।

सिमरन से दुर्गुण दूर

सिमरन बहुत अच्छी चीज़ है। अधिक सिमरन से शरीर शब्दमय हो जाता है। राम नाम का सिमरन रग रग में बह जाता

है जैसे कोरे घड़े में तेल। मनुष्य की रग रग में (नाम का) निवास हो जाता है। क्रोध और जितने दुगुर्ण हैं, वे आप ही समाप्त हो जाते हैं। तो यह सिमरन बड़ा सहायक है। कदाचित कोई दुगुर्ण है तो उसे (सिमरन) अज्ञात रूप में दूर करता है। जैसे साबुन लगा कर कपड़ा थोड़ी देर रख दिया जावे तो वह कपड़े की रग-रग का मैल निकाल देता है, ऐसे ही यह सिमरन है। दुष्ट संस्कारों को निकालने का सहज साधन केवल सिमरन है। (इससे) वह (दुष्ट संस्कार) कम-कम होते जाते हैं। जब नाम अधिक निवास कर लेता है तो वासनाएं दुर्बल होती जाती है और शुद्ध भावना पैदा होती है। बुराईयों से आप ही आदमी ठीक हो जाता है। देहली में एक स्त्री ने कहा कि उसके किसी बंधु को समय यूं ही बेकार ताश आदि खेलने, बुरे कामों में बिताने की आदत है। फिर ऐसे शहरों में (दिल्ली जैसे) जिसका समय ऐसे कामों में बीते तो फिर उसमें भ्रष्ट कर्म आ जाते हैं। उसने (उस स्त्री के उस बंधु ने) किसी कारण अमृतवाणी को पढ़ना शुरू कर दिया तो अब वह बड़ा अच्छा जीवन व्यतीत करता है।

जो शुभ अन्दर से जागता है वह है ठहरने वाली चीज़। बाहर की बनावट नहीं ठहरती। एक पेड़ को काटकर किसी दूसरे पर लगाने से तो वह वृक्ष बड़ा नहीं हो जाता। वह तो अन्दर से उपजता है। जब व्यक्ति खुशी का समाचार सुनता है तो आप ही आंखें भी कमल की तरह खिल जाती हैं। अन्दर यदि नाम बस जाए तो बाहर तो आप ही प्रसन्नता आ जाती है।

सिमरन से कामों में उन्नति

जो चाहता है कि मेरा जीवन अच्छा हो तो (उसे चाहिए कि)वह खूब सिमरन करे। खाली समय हर मनुष्य के पास होता है। मोटे काम तो करते हुए भी मनुष्य की वृत्तियां चलती रहती हैं। आदमी यदि हल चला रहा हो तो उसको यदि हिसार या देहली के बाजार का विचार आए तो फिर यह खराबी करता है। टिड्डी अंडे जमीन के अन्दर देती है, फिर कोई सप्ताह बाद वे ऊपर आते हैं, और इलाके का इलाका साफ कर जाते हैं। इसी प्रकार विचार

भी अंडे छोड़ जाते हैं (मनमें) और इसी प्रकार संस्कार खराब करते हैं। व्यर्थ विचार ही हमारे अन्दर कूदते रहते हैं। इससे बचने के लिये खाली समय भजन में लगावें। खाली समय का यदि शुभ उपयोग नहीं किया जाता तो फिर विचार चलता ही है। यह विचार तो पकड़ कर नहीं मारा जा सकता। यदि हमने आपने दूसरा विचार सिमरन का डाल दिया तो फिर उस समय बुरा विचार आप ही समाप्त हो जाता है। सिमरन अन्दर को अच्छा बनाता है। खाली समय में व्यर्थ सोचने की बजाय सिमरन शुभ है। सिमरन करने से काम रुकता नहीं। मेरे अपने अनुभव में यह बात फिर फिरा कर और मित्रों से मिल कर आई है और मैं इसी परिणाम पर पहुंचा हूं कि जो सिमरन करते हैं उनका काम रुकता नहीं। वे सब काम करते हैं और इस नाम सिमरन से सब कामों में अच्छे रहते हैं।

सिमरन से शान्ति तथा बल

फिर (नाम सिमरन से) शान्ति बड़ी होती है। मुझे वे सज्जन मिले हैं जिन में रोना, धोना बहुत हो, जिन्हें (इसी कारण) खाना पचता नहीं, इनके पूछने पर मैंने विधि तो (दुःख निवारण की) सिमरन की बतलाई। सप्ताह भर में सिमरन से वियोग समाप्त हो जाता है। जो लोग बहुत देर तक इस प्रकार वियोग में रहते हैं। उनके मस्तक में बल नहीं रहता। सिमरन का साधन ठीक प्रकार किया हो तो वे ठीक हो जाते हैं। आदमी कदाचित् दुःख से चूर चूर हो रहा हो, यदि वह उस समय नाम का सिमरन करे तो उसका मस्तक ठीक हो जाता है। जैसे पवन से बादल भाग जाते हैं, ऐसे ही सिमरन घबराहट को दूर करता है। सिमरन करने वाले में चुपचाप ऐसा बल सा आता है, उसका मानस बल बढ़ जाता है। जिस (काम) में वह हाथ डालता है वह सफल होता है। उसमें सभी प्रकार का बल बढ़ता है।

सिमरन से निर्भयता

लायलपुर में मेरा एक मित्र था। वह मारकाट के दिनां में

प्रतिदिन स्टेशन जाता था, हर गाड़ी पर। बाहर से जहां मारकाट ज्यादा जोरों पर थी, गाड़ियां भर कर आती थीं। लायलपुर में भी गड़बड़ थी। उसके बंधु उसको स्टेशन पर जाने से रोकते थे, लेकिन वह जाता रहा। उसमें सिमरन से निडरता आई हुई थी। वह समझता था कि वह अकेला नहीं है। उसका राम उसके साथ है। सिमरन करने वाला बहुत निडर हो जाता है। वह अन्याय नहीं करता किन्तु अन्याय से डरता भी नहीं। अर्थात् यदि कोई (उससे) अन्याय करे तो वह उस अन्याय से डरता भी नहीं। वह हानि लाभ से भी निर्भय होता है। इससे मेरा यह अभिप्राय नहीं है कि वह हित को न सोचे। वह तो चतुर भी होता है। यह तभी होगा जब सिमरन भावना से किया जावे नहीं तो यदि ग्रामोफोन की प्लेट में राम राम भरा हुआ है तो इस प्लेट को तो इससे कोई लाभ नहीं। लाभ तो भावना सहित सिमरन करने से होता है। वह तो (भावना से सिमरन करने वाला) बड़ा कोमल हो जाता है। फूल की भांति उसके मस्तक में खिलावट आ जाती है। उसका अन्दर जागृत होता है और अन्दर जागृत होने से ही जीवन बनता है। और अन्दर जागृत सिमरन से होता है। इससे अच्छाई आती है, सेवा भाव आता है। रात को नींद न आना, स्वप्न अधिक आना, आदि के सब कांटे सिमरन करने वाले के तो दूर हो जाते हैं। सिमरन से ध्यान में बड़ी सहायता मिलती है क्योंकि इससे बुरे संस्कार अन्दर से निकल जाते हैं। यह सिमरन का माहात्म्य बताया है। मैं (यह) भी अवश्य बताऊंगा कि यदि भावना सहित सिमरन हो तो फिर राम कृपा हो जाए। नहीं तो उत्तरदायित्व वाली बात नहीं। जैसे बीज कहीं से लाये परन्तु पक्का विश्वास नहीं और जब बीज फार्म का होता है, तो उसके ठीक होने की जिम्मेवारी होती है। जब यह समझ कर औषध का सेवन किया जावे कि डाक्टर जिसने यह दी है बड़ा बुद्धिमान है अतः इसका प्रभाव होगा, तो वह (औषध) अवश्य प्रभाव करती है। कहने का तात्पर्य यह है कि खूब समझ कर भावना सहित सिमरन अधिक करो।

हमारा नामाराधन और लोगों के समान केवल नाम जप नहीं है। यह नाम-योग तो क्यारी में बीज के समान है। जो अन्दर डाला हुआ हो, वह आप काम करेगा। हमारा काम उसे केवल काम करने का अवसर देने का है। विभिन्न प्रकार के विचारों से अपने आपको परे हटाकर उसे बढ़ने देना है और उसके विचारों से प्रार्थना करना है। डाक्टर की मरहम से घाव की गन्दगी निकलती है और उसे शुद्ध करती है। आराम तो घाव को शरीर की आन्तरिक शक्ति से ही स्वयमेव आता है। अन्दर की जीवनी शक्ति ही रोगी के रोग को दूर करती है। ऐसे ही इस साधन के सम्बन्ध में है।

अपने करने का अभिमान बिल्कुल नहीं करना चाहिए। भगवान के आगे समर्पण करो, धन का, कीर्ति का, ज्ञान का, बुद्धि का। ऐसा करने पर साधक बन जाओगे। सादगी आ जाएगी। मार्ग मिल जाएगा।

राम खरीदा नहीं जाता। गरीबी अमीरी को बेचकर, जो इसको चाहता है, उसको वह मिलता है। अपने गौरव अभिमान आदि को मारकर उसके मार्ग पर बढ़ पाओगे। समर्पण के बाद कुछ मिलता है। दुनिया की भी यही शैली है। लीडरों को लोग अपना जीवन समर्पण किया करते हैं। अध्यात्मिक जगत में तो समर्पण और भी आवश्यक है।

लोकेषणा, वित्तैषणा, पुत्रैषणा-ये सब एषणायें छोड़नी होंगी। दृढ़ता इतनी हो कि माता, पिता, पत्नी, मित्र कोई रोके, किन्तु वह रुके नहीं। राम के दरबार में जाने के समय किसी और को आदर में न लाए। यह छिप कर करने वाली बातें हैं। इनमें दिखावा व प्रदर्शन नहीं आना चाहिए। हम अपने अन्दर की, उस अपने मालिक की आवाज़ सुनने के लिए बैठते हैं।

ध्यान

ध्येय में कर सुधारणा, लक्ष्य बनाकर नाम।
ध्रुव ध्यान में ध्याइए, धैर्य्य से श्रीराम।।

ध्यान में बैठने की तैयारी

ध्यान में बैठने के पूर्व उसके योग्य मनोभावना बनानी चाहिये। उसके साधन हैं–

(१) सबसे प्रथम बैठने के समय आचमन करे, आखों पर ठंडे पानी के छींटे दे, गर्दन तथा मुंह पर ठंडे हाथ फेरे। इससे मनोवृत्तियां शान्त होती हैं और चित्त स्थिर होता है।

(२) बैठने का जो आसन हो तथा ग्रन्थ व मूर्ति रखने की जो चौकी हो वह केवल उसी काम के लिये हो, उनको और किसी काम में न लाया जाये।

(३) हो सके तो ध्यान का कमरा भी अलग ही नियत हो। उसमें वीतराग पुरुषों के चित्र लगे हों जिन्हें देखने से हमारी मनोभावना भी वैसी ही बन जाये।

(४) ध्यान का समय नियत हो। किसी भी कारण उसको आगे-पीछे न किया जाये। ऋतु परिवर्तन व अपनी सुविधानुसार उसको आगे पीछे किया जा सकता है, पर जो एक बार नियत किया जाय, उसको नहीं बदला जाये। यदि कोई प्रिय मित्र अथवा निकट का सम्बन्धी भी उस समय मिलने आये तो उनको नम्रता से कह दो कि यह हमारे ध्यान का समय है। किसी और समय पर उनको आने को कह दो पर ध्यान का समय न टालो। इस नियम की अवहेलना करने से मनोभावना शिथिल पड़ जाती है और सफलता दूर जा पड़ती है। ध्यान में नागा भी कभी नहीं हो।

(५) ध्यान में बैठने के पूर्व देवता को उसका नाम लेकर आवाहन करो और नमस्कार करके उसका पूजन करो और ध्यान में यह भावना बनाये रखो कि मेरा देवता मेरे सम्मुख उपस्थित है।

(६) ध्यान में जब बैठो तो अनुभव करो कि प्रभु की कृपा मुझ पर अवतरित हो रही है। ऐसा करने से बहुत लाभ होता है।

संकल्प विकल्प जो उठा करते हैं, वे कहीं बेजान से पड़े होते हैं, उनमें शक्ति नहीं होती। वे सिनेमा के चित्रों जैसे हैं और ऐसे ही स्वप्न होते हैं। स्वप्न दृश्य व मृत होता है। उसके पीछे कोई नहीं होता। आत्मा उसमें देखने वाला है, सोचने वाला नहीं होता।

इसी प्रकार ध्यान में जो संकल्प विकल्प आते हैं, वे आत्मा के नहीं होते। वे पहले के ही संस्कार होते हैं। उनको अपना नहीं मानना चाहिए। ऐसा समझना कि मैं संकल्प विकल्प कर रहा हूं और मेरा ध्यान भजन में नहीं है। यह गिराने वाली भावना होती है।

पर कभी कभी, वास्तव में, साधक का ध्यान नाम में नहीं होता और वह सिलसिलेवार कुछ और चिन्ता करता है। ऐसी अवस्था को **व्युत्थान -चित्त** कहते हैं। ऐसी अवस्था में भी चित्त को नाम में लगाने का ही प्रयत्न करना चाहिए।

ध्यान में बैठने पर मनुष्य में पड़े हुए संस्कार उद्भूत होने लगते हैं। जैसे जैसे उन संस्कारों को नष्ट करने का प्रयत्न करते हैं, वे तीव्र विरोध करते हैं। जमे हुए संस्कार नये प्रतिकूल संस्कारों को प्रवेश नहीं करने देते। ध्यान में बैठने पर ये मलिन संस्कार प्रकट होते हैं क्योंकि जैसे ही राम नाम उनको नष्ट करने के लिये प्रयत्न करता है वे संस्कार प्रबल होकर सामने आते हैं। यदि पुराने मलिन संस्कारों के अनुकूल संस्कार डालें तो उस समय वे विरोध नहीं करते। रक्त मज्जा जाल में पड़े संस्कार कीटों को मारने के लिये रामनाम औषधि का प्रयोग करना पड़ता है। रोग तीव्र होने पर उग्र औषधि देनी पड़ती है। रोगमुक्त होने के लिये धैर्य होना आवश्यक है। वैद्य के बताये अनुसार कार्य करने पर शीघ्र रोग-मुक्त हो सकता है। मानस रोग होने पर आध्यात्मिक चिकित्सा भी विशेष करनी होगी। मनुष्य यदि जप की संख्या चार लाख नित्य करदे तो बहुत लाभ होता है। यहां तक कि काया-कल्प हो सकता है। रोग बढ़ने पर अनेक अस्पतालों में देश विदेश में इलाज कराने जाते हैं किन्तु दुख की बात है कि

आध्यात्मिक रोग को दूर करने के लिये कोई प्रयत्न नहीं करता। जीवन का भय अधिक होने के कारण शरीर रोग की तो चिन्ता करते हैं किन्तु मानस रोग को दूर करने के लिये नहीं।

यदि आपको ऐसा लगे कि आपका ध्यान ठीक से नहीं हुआ तो उसके लिए आपको जप करना चाहिए। इससे आपका ध्यान ठीक से होगा। ध्यान अथवा पूजा प्रारम्भ करने से पूर्व आपको आदर पूर्वक नमस्कार करना चाहिए।

सब साधन का सार है, सब योगों का सार।
सर्व कर्म का सार हैं, नाम ध्यान सुखकार।।

अधिष्ठान

तो राम नाम शब्द में ही शक्ति—चिन्ह इसका अधिष्ठान।

तो अधिष्ठान बहुत उत्तम बना है। मंत्र की तरह है। ज्योति इसमें आ गई।

"तू वैष्णवी शक्ति है और तू जगत की बीज है। और तू सब में समाई हुई है"। इसमें राम शब्द-परम पुरुष सर्व शक्तिमान है, नीचे कमल है—मंगल देने वाला। इस भावना से (बैठे) (अधिष्ठान के सम्मुख) तो बड़ा लाभ होता है। नहीं तो इसलिए कि भई मेरी ड्यूटी आ गई (अखंड जाप में भावना सहित बैठना चाहिए न कि यह समझ कर कि लो भई मेरी ड्यूटी आ गई जप की)। अखंड जाप में बैठने वालों ने मुझे बड़ी बड़ी बातें बतलाई हैं, सुनाई हैं (जो उन्हें अनुभव हुई)। अब चौधरी यहां वैसे रेडियो लाकर रख दे, एरियल न होवे, न करंट होवे, न रिसीवर होवे तो क्या बात हुई (तब वह रेडियो केवल) लकड़ी का सन्दूक (ही हुआ)। अखंड जाप जो है वह हिन्दू रीति है। आहुति भगवान को देना, ऐसी रीति थी। वह आहुति को ग्रहण करता। मैस्मरेजम से योरुप में हिपनोटिस्ट दूसरे पर प्रभाव डालता है।

मंत्र ग्रहण करो

ग्रहण करने की शक्ति होनी चाहिए (रामकृपा को)। तार यदि दिया और आगे लेने वाला न हो तो तार तो प्राप्त हुआ नहीं। मैं

एक मंत्र की व्याख्या में चला गया। एक मित्र मेरा, राम नाम की हजार माला फेरता ''राम नाम मुदमंगल कारी, विघ्न हरे सब पातक हारी'' इस पद का सम्पुट दे देता। सूफी (मत के लोग) विचार देते हैं।हम विचार नहीं देते, मंत्र देते हैं। तो एक वकील है, प्रातः उसका बुरा हाल। मस्तक में जैसे कोई चोट मारे। वह किसी मित्र की प्रेरणा से (मेरे पास) आया। इसको मैंने कहा ''राम नाम मुदमंगल कारी'', किन्तु वह एक पीर को मानता था। कहा कि पीर को छोड़ दे। किन्तु वह डरा हुआ था। इसने मान लिया होता तो लाभ होता। तीन बार मुझे मिला। इसने नहीं माना। छुड़ाता तो मैं हूं (नाम दीक्षा देने से पहले। यदि कोई और रीति से पूजा करता हो, उस विधि से) तीन बार यूं कह दे (कि पुरानी विधि को त्यागता हूं)। तो एक मिलने वाला बाद में मिला। कहता कि मैं मर जाऊंगा। और कहता कि यह आत्मा की आवाज। हमने कहा, आत्मा तो स्वयं जानता है। वह स्वयं कहता क्यों। यह तो शैतान की आवाज है (जो कह रही है कि तू मर जाएगा)। तीन बार जूते मारो (उसे)। तो भावना से अखंड जाप में बैठना चाहिए। पहले हवन यज्ञ में केवल चार आदमी बैठते थे। वे मंडप की रक्षा करते थे।

एक बात कही कि 18वें अध्याय के बड़ी प्रीति से (किए गए) पाठों से बड़ा लाभ (होता है), पर लोग कह डालते कि अर्थसहित हो। बी.ए. स्टूडेंट को कोई कहे, वाटर, वाटर–पानी, पानी। यह बालक को समझाने की बात। यह कुरीति कि अर्थ सहित पढ़ा करो। 24 अक्षरों का मंत्र और दो पृष्ठ लिख डाले अर्थ करने वालों ने। कालिदास ने मंगलाचरण (लिखा इतना संक्षिप्त) कि ''पार्वती, महादेव जगत के माता, पिता हैं, मैं उनको नमस्कार करता हूं''–और ये ऐसे हैं जैसे शब्द शक्तिमान और शक्ति एक ही चीज़ हैं। मेरे मित्र एक सन्यासी थे, कांगड़ा जिला में रहते। बाद में तारा का मंदिर इन्होंने बनाया। शिव लेटे हुए और शक्ति खड़ी हुई (दिखाई मूर्ति में)। मैं तो ऐसे पहले (पूछता) कम था। मैंने इनसे पूछा तो कहा कि अभिप्राय यह है कि शक्ति बिना शक्तिमान तो लाश है।

अधिष्ठान व व्रत

जो बातें मैंने कही हैं वे आप समझते हैं ही, पर बार-बार मनन करने से याद भी होती हैं। नाम की आराधना में बड़ी प्रीति होनी चाहिए। भावना बड़ी अच्छी होनी चाहिए। आराधना आप सभी करते हैं, अधिष्ठान सामने रखकर भी और वैसे भी। कई के पास यह सिद्ध चक्र है। कोई और भी ला सकता है और दिया जा सकता है। पर इसमें जरा भावना की आवश्यकता है। ध्यान के बाद, हो सके तो उठा कर नहीं तो वहां ही रखा रहे, पर रुमाल इस पर दिया जावे। केवल ध्यान के समय खोला जावे। यह अधिष्ठान सिद्ध चक्र है। स्वास्तिक इसके चारों ओर, यह विघ्न विनाशक, कार्य सिद्धि करने वाला स्वास्तिक। नीचे कमल बड़ा मांगलिक, ऊपर श्लोक में भगवान का स्वरूप-मन्त्र के साथ सूर्य। (सूर्य की बड़ी उपासना होती है)। विश्वामित्र को इस सूर्यदेव का बोध हुआ था। यह सूर्य जीवन भी देता है, जीवनदाता है।

दिव्य जो इसका रथ चलता है वह सब प्राणियों और अप्राणी जगत में, मृत्यु और अमृत, दोनों भरता जाता है। प्राणियों में भी यह जीवन देता है। सूर्य न हो तो पांच-सात वर्ष में सब संसार समाप्त हो जाए। यह दुर्गन्ध को नष्ट करता है। यह ओज, तेज का केन्द्र, बड़ा मांगलिक है। स्वास्तिक के भी चारों कोने मिलाने से सूर्य स्वरूप बन जाता है। यह सूर्य हमारे लोक को ओज तेज देने वाला है। यह बड़ा शुभ चिन्ह है। ज्योतिष में इसका बहुत माहात्म्य है। यह सब प्रकार से ऊंचा माना गया है। लोग आध्यात्मिक दृष्टि में, हमारे देश में दोनों समय सूर्य के दर्शन करते हैं। फिर इसमें राम नाम-सूर्य के केन्द्र में—यह सिद्ध चक्र बड़ा उत्तम बन गया। इससे साधक को बड़ा बल मिलता है। विघ्न विनाशक, विपरीत लहरों का, दुष्ट विचारों का प्रभाव नहीं होने देता। इसकी थोड़ी व्याख्या इसलिए की कि अधिष्ठान रखने वालों को व्रत का भी पालन करना चाहिए।

मंगल और कल्याण कर, सिद्धि शान्ति शुभ कार ।
अधिष्ठान सम्मुख धरो, करके शान्त विकार ।।

त्राटक करके अल्पतर, नैन मूंद कर ध्यान।
मन्त्र राम राधो शुभ, सब से उत्तम मान ।।
साधक समझो है व्रत, आदर लिये अगाध ।
अनुचित स्थान जन हाथ पर, रखना है अपराध ।।

सब लोकों में राम नाम व्यापक है। थोड़े समय से ही यह अधिष्ठान कुछ साधकों ने लिया है। इसे अनुचित स्थान पर नहीं रखना। जो साधना करने वाले हैं वे अगर ऐसी भावना से लें तो दूसरों को भी मिल सकता है, किन्तु उसको (व्रत को) जो पालन करें।

नमस्कार सप्तक

वैसे भी आप सबके सामने रामनाम है ही। जब कोई बैठे तो सात बार नमस्कार (नमस्कार सप्तक) करके। नमस्कार सदा झुक कर करना। जहां प्रणाम, वंदना, नमस्कार आता है वहां सिर झुकना चाहिए। फिर त्रिकुटी में विचारे जाकर। सो यदि बाहर न भी रखा तो अन्दर तो है। आत्म शक्ति जगती है जब तो ऊपर को। अष्ट चक्र आप ही चला गया समझो। अन्दर तो नाम लिया-इसी समय लिखा गया-नमस्कार करके ही। नमस्कार से क्या होता है भला ? हम नमस्कार करके तो स्थापित करते हैं। तो फिर विघ्न विनाश होता है और मंगल मिलता है। भावना ऐसी बनानी चाहिए। सारे दिन जमींदार के फिरने वाले लड़के को भी सूरज की किरणें बड़ा लाभ पहुंचाती हैं। मजदूर को और दूसरे ऐसे सबको तो सूर्य से शक्ति मिलती है। इसमें वह चीज़ है जो घृत में भी इसी से आती है। धूप में रहने वाले पौधे की शक्ति साये में रहने वाले पौधे से अधिक होती है। दूध भी इसी प्रकार बाहर फिरने वाले डंगर का ज्यादा पुष्टिकारक, घर में बंधे रहने वाले पशु की अपेक्षा। जीवन तत्त्व की लहरें हैं ये किरणें। यह जगत में बड़ी चीज़ है। हमारे जीवन का देने वाला। ऐसा बार-बार ध्यान करने से साधक को लाभ होता है। सूर्य की यह आराधना न करके अध्यात्म सूर्य की आराधना करो जो इसको भी प्रकाश देता है।

वनाहीन आदमी होवे तो फिर लाभ अधिक होता नहीं, भावना
लिष्ठ हो। वैसे तो पानी से, मिट्टी से, कई रोग मिट जाते हैं।
ोई देहाती लड़का नहाता रहे तो इतना लाभ नहीं, जो नाभि के
ीचे मल कर नहाने का लाभ, किन्तु वह भी भावना से। एक
पांडा गंगा में हर समय टटोलता ही रहता है। गंगा के पानी का
उसे कोई लाभ नहीं। कहना यह है कि भावना से लाभ होता है।
भावना वाला नहाये, हर-हर गंगा करके तो न निमोनिया हो, न
सिर दर्द, भावना प्रबल जो हुई। भावना प्रबल नहीं तो तोता भी
राम-राम (रटता है)। मनुष्य यदि कहता हो तो शायद कभी
ध्यान आ जाए और लाभ हो जाए। किन्तु साधक की भावना तो
विद्यमान करने की हुई (परमेश्वर को)। जो देवता का आराधन
करने वाले हैं वे नमस्कार करके बैठते हैं। वह उपस्थित है यह
समझकर करने से बड़ा लाभ होता है। अखंड जापों में यह भावना
कि भागवत की कला अब यहां पैदा हो चुकी है। ऐसा समझ कर
मंत्र आराधन किया तो फिर कृपा का अवतरण, कृपा की लहरें
आती हैं। रेडियो का यंत्र रख देने से सब ही स्थानों की आवाजें
प्रगट होती हैं उस पर। एक साधक को यह समझना चाहिए कि
अब हृदय यंत्र बन चुका है। सारा दिन-रात ही तो रेडियो बोलते
रहते हैं। कोई कहे कि पीकिंग का, मास्को का शब्द कैसे आ
जाएगा ? न पहाड़ रोकते हैं, न समुद्र। हमने नाम लिया है।
हमारा मस्तक यंत्र है। यहां भगवान की कृपा आएगी, अवश्य
आएगी। दूर-दूर से समाचार खम्भों के द्वारा भी आते हैं। हमारा
तो यह वायरलैस का है। यह तो ऊंचे से ऊंचे स्वर्ग से ले आता
है। सब ऊंचे-ऊंचे शब्द होते हैं तो विपरीत (धारा) यहां आएगी
नहीं। देहली की सुई लगाने से ही देहली की आवाज। पर यह
अवश्य है कि स्टेशन की शक्ति का प्रश्न होता है। दूसरे तोड़ते
तो वे तोड़ने से टूटते भी नहीं (शक्तिशाली स्टेशन के तरं
पिछली लड़ाई में वह यंत्र भी बड़ा शक्ति-पूर्ण होगा, वह स
बोलता था।

उस धाम से जो कृपा अवतरण होती है (राम धाम से) इ

कोई भी तोड़ नहीं सकता—यह भावना होनी चाहिए। इसी से अधिष्ठान का अवतरण हुआ। इसमें शुभ ही आएगा। तो फिर तो सब कुछ आपके अन्दर की भावना पर। वह जो शुभ निश्चय के साथ लिया-धारण किया-वहां कृपा ही शुभ की।

हमें यह समझना चहिये कि यह चक्र शुद्धि करने वाला, शांति करने वाला और शुभ करने वाला है। ये राम नाम का मंत्र है। जिस मंत्र का या जिस शब्द का कोई देवता शक्तिशाली हो, उतना ही मंत्र शक्ति वाला होता है। तो इस मंत्र का भगवान शक्तिशाली है। इसलिये इस मंत्र में बड़ा बल है, बड़ी शक्ति है। यह तो व्रत के पहले भाग की व्याख्या हुई।

अब दूसरे भाग में यह वर्णन किया गया है कि इसके आगे बैठ कर कैसे ध्यान करना चाहिए। वह ऐसे कि अधिष्ठान को सामने रखकर पहले दो मिनट के लिए त्राटक करना चाहिए। त्राटक का अर्थ है टिकटिकी बांध कर देखना। बिना आंख झपके देखा जाये। ऐसा त्राटक करने से वृत्ति टिक जायेगी। ऐसा भी त्राटक न किया जावे कि आंखें दुखने लग जावें। जितना आसानी से हो सके, त्राटक किया जाये। इस त्राटक में भी मन में शब्द का जाप करते रहना चाहिए। फिर आंखें वन्द करके ध्यान में बैठ जाना चाहिए। यदि वृत्ति १०-१५ मिनट बाद विखर जावे तो फिर त्राटक दो मिनट के लिए कर लेना चाहिए। और फिर इसी प्रकार से ध्यान करते रहना चाहिए। ऐसा करने से वृत्ति टिक जायेगी।

तीसरे भाग में इसे रखने का साधन वर्णन किया गया है। इसे किसी भी अनुचित स्थान पर न रखा जावे। इसे अपनी बैठक या किसी कमरे में न लटकाया जावे। ऐसा न करने से इसकी महानता नहीं रहती। आज की तो हालत यह है कि भगवान राम, भगवान कृष्ण, सीता और राधा की फोटो कैलेन्डर पर छपती है और जगह-जगह बिकती है। लोगों को उनका आदर करना भी भूल गया है। मुझे ये सब देखकर बड़ी घृणा होती है। एक बार लाहौर में 'प्रताप' समाचार पत्र में स्वमी दयानन्दजी की फोटो छपी। किन्तु दूसरे पृष्ठ पर विज्ञापन के लिए बूट की फोटो छपी। जब

बन्द किया जावे तो दयानन्द जी के फोटो पर बूट की फोटो आ जाती थी। सनातन धर्म के 'वीर भारत' ने इस पर कड़ी टीका-टिप्पणी की। जिसके कारण प्रताप के सम्पादक को इस भूल की क्षमा मांगनी पड़ी। जिसने साधना न की हो, उसको अधिष्ठान नहीं देना। यह दीक्षित साधक मंडल (Inner circle) में ही रहना चाहिए। किसी भी अनुचित हाथ पर नहीं रखना। लोग रोते बच्चों को चुप कराने के लिए ठाकुरों के खिलौने दे देते हैं। यह बहुत गलत है। ऐसा नहीं होना चाहिए। आप में से बहुत अधिक गृहस्थी हैं। इसलिए इस अधिष्ठान को किसी भी अनुचित हाथ और अनुचित स्थान पर न रखें। यह बड़ा अपराध है। यदि किसी के पास ध्यान का अलग थलग कमरा हो तो उसमें भी इस पर शुद्ध कपड़ा डालकर रखना चाहिए। जिनके पास न हो वे शुद्ध कपड़े में लपेट कर ट्रंक में या सन्दूक में रख लेंवें। इसकी चिन्ता नहीं कि उस सन्दूक में और भी कपड़े हैं। कपड़े और भले ही हों। ध्यान के समय बाहर निकाल लिया करें। बाद में फिर वहीं रख दिया करें। ध्यान करते समय उसके साथ किसी भी और चित्र को साथ न रखें। किसी भी सत्संग में इस को न लटकाएं। क्योंकि यह तो केवल पूजा पाठ करने के लिए है। मुझे पूरा विश्वास है कि आप इन बातों का अवश्य पालन करेंगे। लोग इसकी नकल भी करें तो उसका उनको लाभ नहीं होगा। क्योंकि नकल किए हुए चित्र के पीछे वह भावना और शक्ति न होगी। इसलिए इसे सम्भाल कर ही रखें। इसके सामने केवल दिए गये मंत्र का ही जाप करें। आज के हिन्दू धर्म में बड़ी गिरावट आ चुकी है। यह तो केवल पुराणों की ठेका पर ही चल रहा है। सिनेमा घरों में कृष्ण और राधा को नाचते दिखाते हैं। बाजारों में बड़े-बड़े स्थानों पर अवतारों की मूर्तियां लटकाई जा रही हैं। यह अधर्म है। लोगों में आदर की भावना न रही। इस भावना को लाना चाहिए।

जो अधिष्ठान से सफलता प्राप्त हो, वह किसी से नहीं कहना। आम नहीं कहना। अपने गुरु से सब कुछ कहें। और एक आध अपने विशेष मित्र सज्जन से भी कह सकते हैं। अधिष्ठान की

नकल करने से कोई भी काम नहीं होगा क्योंकि यह बहुत तपस्या करके राम से मांगा गया है। इसके पीछे मेरी वर्षों की कमाई है।

इस अधिष्ठान को बहुत आदर के साथ रखियेगा जैसे भरत के लिये राम जी की खड़ावें थीं। यह बहुत मांगलिक है। यह चित्र कई चीजें मिलने से यन्त्र बना है। आज से बहुत दिन पहले मुझ में यह मन्त्र बसा और नस-नस में रच गया। फिर इसके बाद अनेक स्थानों पर गया। सब स्थानों के नियम पालन किये। आदर और सत्कार किया किन्तु मन के कोठड़े में स्थान किसी को नहीं दिया। मुझे अपने राम पर पूरा भरोसा था। विश्वास पूरा ही होना चाहिये। इसलिये आपकी अधिष्ठान पर दृढ़ता होनी चाहिये। आज के संसार को मनुष्य नष्ट कर सकता है। दो बड़ी शक्तियां बम्ब बनाने पर खूब लगी हुई हैं। किन्तु यह कोई आश्चर्य नहीं। भगवान सृष्टि का नाश करता है और नाश करने वाले साधन मनुष्य के ही हाथों बनते हैं। इस संसार में बड़े विघ्न हैं। बड़ी धारायें चल रही हैं। एक दूसरे पर यह ठोसने की पूरी चेष्टायें भी हो रही हैं। इसी प्रकार आकाश में भी संकल्प आते हैं। न जाने यह आपके ध्यान में कितने विघ्न डाल रहे होंगे।

ऐसे भी संकल्प हैं जो शुभ नाद फेंकते हैं और वे मिलते भी हैं। जैसे बैखरी वाणी का शब्द उच्चारण किया हुआ बहुत दूर तक जाता है, इसी प्रकार आकाश से ध्वनि भी आत्मा को सुनाई दे देती है। जब आपके सामने अधिष्ठान होगा तो विघ्न डालने वाले संकल्प आपके मन को विचलित नहीं करेंगे। अधिष्ठान ने वास्तव में उनको कील दिया है। आप इसे बड़े आदर से समझें और रखें। इसके पास होते हुए आकाश में कोई भी तुम्हारा विरोध करने वाला नहीं रहेगा। त्राटक अवश्य करें। आंख बड़ा प्रभाव डालती है। टिकटिकी बांध कर आप गम्भीरता से किसी चीज़ पर भी देखोगे तो उसका बड़ा प्रभाव पड़ेगा।

त्राटक करने से तो एक पन्थ दो काज वाला मामला है। इससे ध्यान भी होगा। कोई भी विघ्न नहीं पड़ेगा, दूसरे आंख की शक्ति भी बढ़ेगी। इसलिए इसका उपयोग बड़ी भावना से कीजियेगा।

ये हमने अध्यात्मवाद के विषय में बहुत थोड़ी बातें की हैं। बहुत खाने में तो कुछ रखा नहीं होता। इसी प्रकार अधिक बोलना भी वाणी को दुर्बल ही करता है। थोड़ा सुनो, थोड़ा बोलो, यही रीति है। जाप का, ध्यान का अभ्यास अधिक से अधिक करो। सुनने की बातें भी थोड़ी सुनो। मैंने रामनाम एक बार सुना। उसके बाद इतनी तृप्ति हुई कि फिर दूसरों का आदर तो किया किन्तु मन के कोठे में स्थान और किसी को नहीं दिया। मैं सब स्थानों पर गया, किन्तु मेरे मन में यह बात ही नहीं सूझी कि मैं किसी के ढंग को अपने मन में स्थान दूं। निश्चय बहुत दृढ़ होना चाहिये।

इस मन्त्र की बहुत साधना करना। देवता और मन्त्र एक ही हैं। मैं तो आशा करता हूं कि आप इस मार्ग पर चलते रहेंगे। मुझे हर्ष है कि इस संगति में सब प्रकार के लोग हैं। परमेश्वर की कृपा सब पर हो। आपकी वृत्तियां शुद्ध हों और आप सब के मन में, तन में श्री राम नाम बस जावे।

स्वाध्याय

स्वाध्याय-स्वयं पढ़ना-यह स्वयं पढ़ना जो है वह बहुत उत्तम। अन्त में केवल सुनने पर रह जावे तो सुनाने वालों के स्वार्थ भी होते हैं। तो न जाने कौन क्या कह जावे। धार्मिक जगत में अज्ञान का कारण भी स्वाध्यायशील न होना है। (अपने) आप पढ़ने का स्वभाव बनाना चाहिए। हमारा युग जिसमें हम सब विचर रहे हैं, इसमें बड़ी विशेषता है। इसका निरालापन है। बहुत सुगमता है। आकाश में चलो। पानी में चलो। जनता को लाभ, ऐसा युग यह है। आने को आने में सुगमता, जाने में सुगमता और समय भी कम लगे।किसी विशेषश्रेणी के लिए नहीं अपितु सब के लिए (सुगम, शीघ्र यातायात की सुविधाएं)। इसी प्रकार अनुवाद आजकल ग्रन्थों के बहुत हो गए हैं और (अनुवाद करने वाले) बड़े प्रमाणिक लोग। अब भी न पढ़ें (धर्मग्रंथों के सुगम, प्रमाणिक अनुवादों को भी) तो कोई क्या करे। सब भाषाओं में श्रीमद्‌भगवद्‌गीता मिल जावेगी। फिर भी न पढ़ें तो दोष किसी का तो नहीं है। रिवाज होना चाहिए। आपको शौक होना चाहिए कि सवेरे मंदिरों में जावें। मंदिरों में जाने का रिवाज उड़ गया, गावों में बिल्कुल। शहरों में कोई जाते हों (तो) पता नहीं। वहां कोई आकर्षण नहीं। घर में स्वाध्यायशील हो और गीता का पाठ करे तो गीता में श्री कृष्ण मिलते हैं। और जगह भी। वृन्दावन में भी लोग देखते हैं पर उसका (कृष्ण महाराज का) विशाल रूप तो गीता में है। स्वाध्याय करके (देखो)।

(गीता में) महाराज कह रहे हैं कि तू आसुरी भावों को काबू करके दैवी भावों को ग्रहण कर। आप रामायण पढ़ते हैं तो समझें कि आप मंदिर में गए रामदर्शन करने। (मन्दिर तो) ईंट पत्थर, सोने के (बने) होंगे पर वास्तव में (राम चन्द्र जी का मन्दिर तो)बाल्मीकीय रामायण है।

श्लोक ''सीता राम चरण रति मोरे। सब दिन बढ़े, अनुग्रह तोरे।'' स्वाध्याय न करो तो जो मन में आया, किसी ने सुनाया—

स्त्रियां न पढ़ें (शास्त्रों को)। ये बंधन तो कोई भी धार्मिकता नहीं रखते। आप पढ़ने का विचार न होना अपितु दूसरों से पढ़वाना यह व्यापारी की चालू की हुई बात है। वे लोग कुछ तो आलस्य के कारण और कुछ थकावट के कारण चाहते हैं कि पंडित से पढ़वावें। पाप करें आप और जाप उनके लिए करे पण्डित, (तो) समझो वे तो अपनी ब्लैक मार्किट की रीति परलोक में भी चलाना चाहते हैं। जो अपनी आंखों न देखे वह क्या देख पाता है; जो अपने कानों न सुने वह क्या सुन पाता है, वह सुना हुआ कितना अधूरा होता है। जो आप अपने पावों से न चल पावे, वह कितना अपाहिज होगा। जरा अनुमान लगाया जावे (कि यद्यपि) हिन्दुओं के अमोलक ग्रंथ संस्कृत में हैं पर बात तो यह है ना कि अच्छे ज्ञानियों के किए हुए उनके अनुवाद भी मिल जाते हैं और वे अनुवाद भी वहीं हैं (जैसे कि मौलिक ग्रंथ) फिर कोई अन्तर नहीं। लोगों में ऐसी भावना कम है (स्वाध्याय करने की)। फिर आलस्य प्रमाद भी (स्वाध्याय न करने का) बड़ा कारण है, (पंजाब में उर्दू का बड़ा प्रचार है) उर्दू कुछ ऐसी भाषा है जिसमें सही उच्चारण कठिन है। (उर्दू वाला) प्रकाश की जगह परकाश कहेगा; यदि शान्ति कहेगा तो न अलग (बोलेगा)।

स्वाध्याय भावना से करो

व्यापार के लिए भी अनुवाद बहुत हुए (धर्मग्रन्थों के)। गोरखपुर वालों ने तो कम कीमत रखी (उन अनुवादों की)। कोई दस साल हुए लाहौर में पहली बार छः सात सौ लड़कों की सभा ने मिलकर श्लोक पढ़े (तब) मैंने पहली बार शुद्ध उच्चारण सुना (श्लोकों का)। अंग्रेजी का शुद्ध उच्चारण तो भय और राज के कारण था। यू०पी० में हर एक मज़हब और जाति का मनुष्य स्वाध्याय करता है और बड़ी लगन से। स्वाध्याय में तो बड़े लाभ हैं। स्वाध्याय में जितना दस बीस मिनट का समय लगाया है यह तो अपने में ज्ञान का दीप जलाया है। अब यह बताना है कि स्वाध्याय की भावना कैसी हो। यह भावना की बात बड़ी

आवश्यक है और मैं इस पर जोर देता हूं। देखिये! आप मंदिर में जाते हैं तो ठाकुर जी का विचार करके सिर झुकाते हैं। यदि रामयण पढ़ें तो वहां (यह भावना हो कि) रामायण का अर्थ है, राम का घर, सीता राम का मन्दिर, रामायण तो रामयज्ञ है—इस भावना से रामायण पढ़ें। मूर्ति का तो नाम से पता चलता है और यहां तो गुणों का वर्णन है। तस्वीर में सारे गुण कैसे प्रदर्शित हों, जो चरित्र रामायण में दिया वह तो कल्याण कारी है (अर्थात् रामचन्द्र जी की मूर्ति से तो केवल यही पता चलता है कि यह रामचन्द्र जी की मूर्ति है परन्तु रामायण में तो उनका समूचा चरित्र वर्णित है। जिसका पढ़ना अति कल्याणकारी है)।

स्वाध्याय नित्य करना चाहिए

स्वाध्याय नित्य करना चाहिए। स्वाध्याय के लिए वीतराग पुरुषों द्वारा लिखे हुए ग्रंथ होने चाहिएं। स्वाध्याय से आदमी विचार वाला होता है और पक्का होता है। इससे स्वावलम्बी भी हो जाता है। उसको मतवाद की चाट की चाह नहीं रहती। वह बुद्ध हो जाता है। श्रद्धा बहुत गहरी बस जाती है। शास्त्र दैवी स्वतन्त्रता देता है, उनको अपनाना चाहिए। यह बहुत ऊंची चीज़ है। ज्यूं-ज्यूं इसमें अवगाहन किया जाता है त्यों-त्यों उसका ज्ञान बढ़ता है और विज्ञान रुचने लगता है। स्वाध्यायशील पुरुष का घर मंदिर बन जाता है।

केवल स्वाध्याय नहीं, अभ्यास आवश्यक

योग में प्रसिद्ध व्यक्तियों की संख्या बहुत कम है। अतः ऐसी पुस्तकों का स्वाध्याय आवश्यक है। आपको राम नाम में दृढ़ निश्चय होना चाहिए। यह परखा गया है अर्थात् यह परखी हुई चीज़ है। जिन्होंने वास्तव में अभ्यास किया है वे उनकी अपेक्षा अच्छे हैं जिन्होंने केवल अनेक पुस्तकों का अध्ययन किया है।

स्वाध्याय और साधना

साधना का संगी है स्वाध्याय। स्वाध्याय करना साधना में बड़ा सहायक है। शास्त्र पाठ ज्ञान बढ़ाता है और साथ ही सिमरन में

बड़ा सहारा मिलता है। वह कैसे? ऐसे कि भाव जो पहले किये कामों का, वह उतर जाता है और फिर सिमरन में बड़ी रुचि आती (है)।

'स्वाध्याय से इष्टदेव का महान मिलाप होता है।'

भारतवर्ष में (ही नहीं, अपितु) अखिल मंडल में श्रीमद्‌भगवद्‌गीता का बड़ा मान है। किसी मंडलेश्वर का यह वाक्य बड़ी खोज वाला है कि (गीता) भगवान का कथन है। बड़ी बात यह है, इस बात का आदर भारतवर्ष में भी है औ वह भी सभी महापुरुषों द्वारा। यह बोध हो जाने पर कि ये भगवान वाक्य (है) तो वृत्ति जमने में आती (है)। अन्ततः भावना ही महत्त्व की बात है। वह ही किसी के वाक्यों को प्रभावी बनाती है। तो गीता का स्वाध्याय करते समय (यह) भावना होनी चाहिये कि इसके कथन वाला ऐसा व्यक्ति (है) जिससे ऊंचा कोई (और) व्यक्ति है नहीं।

साधना सत्संग में जहां और भी कथन (होते हैं) वहां गीता का भी हो—ऐसा (मेरा) जी करता है। यह सुगम सुलभ पुस्तक (है) और यह माननीय भी (है)। कालीदास के ग्रन्थ, पुराण—वे जितने कठिन (हैं) उतना यह कठिन नहीं है। केवल यह अवश्य (है) कि यह एक ऊँचे विचार की पुस्तक है। इसलिए इस की समझ सुगम तभी (हो सकती है), जब भावना हो। (आज) यह भी सुगमता (है) कि अनुवाद भी प्रामाणिक व्यक्तियों के मिल (जाते हैं)। जैसे नलके से यमुना जल ठीक ठाक करके देहली में पहुंचाया जाता है। घर बैठे ही नल खोला और यमुना जल। ऐसे ही (वही) सुगमता ग्रन्थों के लिये भी प्राप्त है। पहले टीका होती थी—वह भी कठिन। पर इस समय जग सुगमता की ओर जाता है। सब को सुविधाएं प्राप्त हैं, केवल प्रयत्न होना चाहिये और भावना भी। फिर यह ग्रन्थ अत्यंत लाभजनक है और सुगम भी है। गीता में (सोलहवें अध्याय में) देव भाव और असुर भाव का कथन (है)। तो अब यहां इस समय के जो कथन (होंगे) इस में इन्हीं का निरूपण किया जावेगा।

असुर की साहित्य वालों ने शक्लें बनाई (हैं

दान्त—बड़े डरावने—बड़े भयानक। इसी प्रकार देवों की कल्पना कुछ इस प्रकार से की है कि देवस्थान जो हैं, वहां खाने पकाने का झंझट नहीं (होता)। वहां तो कल्पना करते ही थाल भरे स्वादु भोजन अपने आप (आने लगते हैं)। पर कहना यह है कि महाराज (श्री कृष्ण चन्द्र जी) ने सोलहवें अध्याय में जो वर्णन किया उसके अनुसार देव भी मानव रूप में और असुर भी इसी भूतल पर मानव रूप में फिरते उपस्थित (हैं)।

स्वाध्याय-ग्रन्थ

दैनिक स्वाध्याय के लिए पाठ्य पुस्तकों का सुझाव देने की प्रार्थना करने पर महाराज जी ने कहा—अमृतवाणी का नित्य पाठ करना चाहिए। भक्ति-प्रकाश ग्रन्थ में आवश्यक बातें साधन, साध्य, साधकों के सम्बन्ध में विस्तार से अपने अनुभव के आधार पर लिखी हैं। भक्ति-प्रकाश का पाठ करने वालों को 'आत्मिक भावनाएँ' शीर्षक के अन्तर्गत— १. सत्य भावना, २. ज्ञान भावना, ३.सुख भावना, ४. शक्ति भावना, ५. पवित्र भावना, ६. शान्त भावना, ७. प्रिय भावना, ८. सफल भावना, ९. मनोबल भावना, १० वैद्युत भावना, ११. अनन्त भावना, १२. अहँ भावना, आदि का पाठ करना मानो मन्त्र को अवलम्बन देना है। अपने आपको प्रबुद्ध करना है। इसका मनन पूर्वक पाठ करें। मैं क्या हूँ यह आत्मिक भावना में दर्शाया है। ईश्वर सत्-चित्-ज्ञान स्वरूप है। भगवान का भजन करना चाहिए।

जो इन आत्मिक भावनाओं का जितना मनन करेगा उतना ही मनोबल बढ़ेगा, कार्यों में सफलता मिलेगी। उसका आत्मभाव जग जाएगा। इन्हें नित्य मनन करना चाहिए। यह है आत्मा का सद्भाव। एक होता है नेति नेति का तरीका-जो वेदान्त का है किन्तु यह उत्तम नहीं। वेदान्त में अपने को ब्रह्म मानते हैं तथा यह सब दृश्य-मात्र अर्थात् जो दिखता है, वह सब मिथ्या है—ऐसा मानते हैं। यह तो निराशावाद है। तुम्हें निराशावादी नहीं होना चाहिए। अपितु आत्मिक भावना को दृढ़ करो। मोह में क्लेश है।

सत्य पालन कर्ता के सब मनोरथ पूर्ण होते हैं। कोई विघ्न नहीं आता। नाम जप की प्रार्थना द्वारा आत्मशक्ति को जगाओ, उससे सब प्रकार कल्याण हो जाएगा।

राम राम सुमन्त्र से, कर्म दिये सब कील ।
राम राम के पाठ ने, पाप दिये सब पील ।।
राम नाम के जाप ने, मैं को दिया जगाय ।
अहं भावना शुद्ध ने, अमृत दिया पिलाय ।।

(भक्ति प्रकाश से)

समाचार पत्र तथा आधुनिक पुस्तकें

आजकल समाचार तथा पुस्तकें जिन बातों पर आधारित होते हैं वे ये हैं–

1. वे ध्यान को एक बहुत कठिन स्तर पर दर्शाते हैं। वे बात इस ढंग से तरोड़-मरोड़ देते हैं कि यह न समझा जा सके कि इन विचारों से साधक को क्या हानि हो सकती है।

2. यह समाचारपत्र अथवा पुस्तकें अपनी लोकप्रियता पर आधारित होते हैं। वे (उन के लेखक) चाहते हैं कि अधिक से अधिक संख्या में उनका विक्रय हो। सो बुरे विचार भी उनमें होते हैं।

कुछ समाचार पत्र सदा कांग्रेस अथवा गांधी जी का समर्थन करते हैं तथा कुछ सदा उनकी निन्दा करते हैं। यह ठीक नहीं कि जो कुछ भी गांधी जी कहें वह सब का सब ठीक हो तथा न ही यह ठीक है कि वह सारे का सारा गलत है। अतः साधक को इन सबसे सावधान रहना चाहिए। किन्तु इसका यह अर्थ कदाचित् नहीं कि वह समाचार पत्र या पुस्तकें न पढ़े या वह अच्छे नेताओं द्वारा दिए गए व्याख्यानों को न सुने। इस विषय में आपको अधिकतर राष्ट्रसेवा संघ वालों की तरह होना चाहिए जिन्हें आप सिनेमा, समाचारपत्रों, भाषणों आदि की निन्दा अथवा हंसी करते हुए नहीं पाओगे। वे तो धूम्रपान की भी निन्दा नहीं करते यद्यपि वास्तव में वे स्वयं धूम्रपान नहीं करते। कुछ व्यक्तियों ने योगाभ्यास किया

होता है, उनके भाषण पढ़ने चाहिएं। (इस पर महाराज ने पद कहा) यह लाभप्रद है।

इसी प्रकार ऐसे लोगों की संगति जो दृढ़ निश्चय के साथ सत्संग में तीव्र लालसा रखते हैं, अच्छी तथा लाभप्रद है। सबसे अधिक आवश्यक ध्यान व पूजा जो अधिक लाभप्रद है।

प्रमाद-स्वाध्याय में विघ्न

बहुत आदमियों ने ऐसी बात सीखी। हिन्दू में प्रमाद बहुत है। इस युग में जो चेतन नहीं, इस काल में इनका स्थान बहुत कम रह गया है। तो देवियो और सज्जनो! रिवाज प्रचलित होना चाहिए कि कुछ समय प्रतिदिन पाठ हो। रामचन्द्र जी का नाम आदर से लेना, कृष्ण के गीत गाना, पर हिन्दू मां की गोद में पैदा होकर गीता और रामायण का पाठ न किया तो क्या किया! आप जानना, आप पढ़ना, आप समझना—इस (बात) को चलाया नहीं। थोड़ी-थोड़ी है (यह बात प्रचलित) पर आम नहीं। ऐसा नहीं कि समय नहीं। समय सब नष्ट करते हैं। समय समय पर काम होता है। यहां बहुत लोगों का समय व्यर्थ में बीतता है। वे जन्मते हुए बैल और मरते समय भी ढोर। यही देश का हाल। किसी ने बता दिया तो द्वादशी, नहीं तो एकादशी सही। प्रत्येक आदमी मनन करे। किसी मन्दिर की डेवढ़ी के द्वार पर कोई 80 वर्ष का वृद्ध क, ख सीख रहा था। एक विद्वान ने देखा। वह विद्वान बड़ी देर तक खड़ा रहा। पूछा कि आप क्या काम करते हैं? कहने लगे, मेरे लड़के दुकानें (करते हैं)। हमारे बाग भी हैं। कहने लगे पहले किसी ने बताया नहीं। दो माह से रिश्तेदार ने बताया। लगन तो पहले। अब बाल उपदेश समाप्त कर चुका हूं। इस लड़के को दो रुपये। यह आधी चौपाई बता जाता है। पंडित आश्चर्यचकित (था) कि विद्या में प्रेम हो तो ऐसा। प्रश्न किया यदि गीता, रामायण न पढ़ पाए और (पहले ही) मर गए (तो) कहने लगे, यदि मर गया तो संस्कार रहेगा। अगले जन्म में पढ़ लूंगा। प्रयत्न करना चाहिए। थोड़ा सा भी किया हुआ सुकृत। प्रारम्भ करना चाहिए। मैं यह कह रहा था कि शास्त्र का अध्ययन हर एक को

करना चाहिए। रस्सी कोमल हो (तो भी) बार-बार के घर्षण से वह पत्थर पर निशान (बना देती है)।

ज्यों-ज्यों मनुष्य शास्त्र का अध्ययन करता है त्यों-त्यों इसको ज्ञान और आगे के लिए रुचि बढ़ती है। और ज्ञान भी बढ़ता है। प्रत्येक को पोथी पढ़नी चाहिए। इसके बिना वह आम जीव। यह तो मैंने आरम्भ करते हुए (कहा था कि) जितने प्रकार के प्राणी हैं उनमें तीन प्रकार की श्रद्धा हैं। सात्त्विक, राजसिक और तामसिक। सद्कर्म करने की रुचि, श्रद्धा (होनी चाहिए)। मनुष्य श्रद्धामय है। भले कर्म न होंगे तो बुरे ही होंगे। तो जिसकी जैसी श्रद्धा है इसी के अनुसार कर्म हैं।

जो सज्जन आए हैं और जो और भाई बहन-अब आए-अपने आप में हर एक को पूरा होने का प्रयत्न करना चाहिए। पराधीनता का जीवन मन में बहुत ही ग्लानि पैदा करता है। धार्मिक रीति से प्रत्येक मनुष्य को शास्त्र का अध्ययन करना चाहिए। जिसने ऐसा नहीं किया, या नहीं करता, समझो इसने भारी भूल की है। इस युग में कठिनाई कम हर चीज़ में। समझना चाहिए कि अच्छे जो हमारे प्रमाणिक ग्रन्थ हैं इनको सुगमता से पढ़ सकते हैं। प्रयत्न न करें तो पास पड़ी वस्तु भी हाथ नहीं आती और प्रयत्न करने वाले हजारों मील दूर की वस्तु को प्राप्त कर लेते हैं।

अब हिन्दी सरल भाषा। मुझे तो यही कहना है कि [illegible] जो गीता को अध्ययन नहीं करता (वह तो) ऐसा ही [illegible] नलका है पर फिर भी प्यासा है। पर प्रीति न करे [illegible] बात नहीं हुई। भले काम [illegible] पर नहीं (छो[illegible] बात समझ न आवे [illegible] से श्रेष्ठ स[illegible] पुरुषार्थी हो [illegible] शास्त्र का पा[illegible] बहुत देशों [illegible] बात को [illegible] सुगम किया। [illegible] में बहुत [illegible] यु श्रेष्ठ।

शास्त्रों को पढ़े हुए भी मूर्ख [illegible]

विद्वान है। इसलिए पढ़ कर, सुन कर मनन करना चाहिए। पढ़ना कम चाहिए, मनन अधिक करना चाहिए। मनन करने पर जब दृढ़ता आ जाती है, उसको निदिध्यासन कहते हैं।

स्वाध्याय-धर्म

धर्म के दस लक्षण

मज़हब, पंथ तथा मत आदि शब्द होते हैं। मत या पंथ का अर्थ है राय। यह सब समय तथा आचार्य के अनुसार बदलते रहते हैं। धर्म कभी न बदलने वाला है। यह हमारे जीवन से संबंधित है। अतः हमें धर्म का पालन करना चाहिये। धर्म के दस लक्षण इस प्रकार हैं–

१. **धैर्य**–धैर्य का अर्थ है विचारों तथा कर्मों में बहुत प्रबल तथा सुदृढ़ निश्चय। ऐसे व्यक्ति हुए हैं जो अपने दृढ़ निश्चय के लिए इतिहास में विख्यात हैं। हम धैर्य के बिना धर्म का पालन नहीं कर सकते। यह धर्म का मूल सिद्धान्त अथवा लक्षण है तथा इसका दृढ़ पालन करना चाहिये।

यथा प्रह्लाद भक्त, मीरा, ध्रुव जी, श्री रामचन्द्र जी, महाराज हरिश्चन्द्र जी, बाल हकीकत राय, इत्यादि ने किया।

२. **क्षमा**–क्षमा का अर्थ है सन्तोष तथा सहनशीलता। यह भी जीवन के प्रत्येक दृष्टिकोण में आवश्यक है। यदि कोई हमारे विरुद्ध कुछ कहे तो हम क्रोधित न हों।

३. **मन का दमन करना**–मन को पूर्णतया वश में रखना या यूं कहिये कि मन को सिधाना। मन को सिधाना कुछ कठिन है क्योंकि यह नदी अथवा किसी अन्य वस्तु की भांति दिखाई देने वाली वस्तु नहीं है अर्थात् यह एक भिन्न वस्तु है। लोग नदियों को सिधाकर उन्हें एक विशिष्ट मार्ग पर या एक विशिष्ट दिशा में बहाते हैं। यह भी कहा जाता है कि इंग्लैंड की नदियां भारत की नदियों से अपेक्षाकृत अधिक सिधाई हुई हैं। यह भी विचारने की बात है कि वायु को किसी एक निश्चित दिशा में प्रवाहित किया जा सकता है किन्तु वायु को पूर्णतया रोक देना न तो संभव है तथा न ही इसकी आवश्यकता है।

मन को वश में करने के तीन मुख्य साधन ये है,—

१. किसी न किसी काम में लगे रहना चाहिये।

२. दिन के सब कार्यों का समय नियत होना चाहिये।

३. अपने मन के विषय में यह निश्चय होना चाहिये कि यह मेरी वस्तु है तथा यह विश्वास होना चाहिये कि यह मेरे नीचे है और मेरी इच्छानुसार ही कार्य करेगा।

१. यदि कोई व्यक्ति काम में जुटा है तो उसे कभी चंचल विचार नहीं आवेगा। एक बेकार लड़का अवश्य ही कोई न कोई दुष्ट कर्म करने लगेगा। इसीलिये किसी ने कहा है—बेकार समय में कुछ किया कर, और नहीं तो कपड़े फाड़ कर सिया कर।

२. जिसके सम्मुख कार्यक्रम होता है उसके मन को उसकी आदत पड़ जाएगी। उसको नियत समय पर भूख लगेगी तथा नियत समय पर नींद आएगी। इससे दुष्टता के द्वारा मन पर काबू पाए जाने की संभावना नहीं रहेगी।

३. ठीक जिस प्रकार एक सेनापति को आज्ञा देते समय अपने अन्दर विश्वास होता है कि इसका (उसकी आज्ञा का) पालन किया जाएगा इसी प्रकार आपको भी ऐसा विश्वास होना चाहिये कि मैं अपने मन का अधिकारी हूं अर्थात् मेराअपने मन पर अधिकार है।

४. दूसरों की वस्तु पर मनोवृत्ति न होना

धर्म का चौथा लक्षण है कि हम न तो किसी अन्य की वस्तु पाने की चेष्टा करें तथा न ही ऐसा सोचें। किन्तु युद्ध तथा अन्य उपद्रवों के समय में बात और है। यदि हमारी सेना आक्रमणकारियों को खदेड़ कर उनकी बन्दूक, तोपों तथा गोलाबारी के सामान पर अधिकार करे तो इस अवस्था में वह चोरी नहीं है। इसमें चोरी का कोई भाव नहीं है।

५. शौच-पवित्रता

यह बहुत आवश्यक है। पुराने समय में तथा अब भी

इसका पालन किया जाता है। यदि किसी जमींदार की खेती
कोई जानवर घुस जाए तो वह अविलम्ब उसे बाहर निका
देगा, रिपोर्ट करने पुलिस स्टेशन नहीं जाएगा।

६. अक्रोध

क्रोध बहुत बुरा है। पर जब कोई माता अपने बच्चे क
कहती है "कि तुम स्कूल क्यों नहीं गए" तो इसका यह अर्थ नह
कि वह क्रोध में है।

७. सत्य

२५०० वर्ष पहले कोई मत नहीं था। केवल इतना अंत
था कि हम परमेश्वर की पूजा इस रूप में करेंगे, उसमें नहीं

८. पवित्रता—इसमें मन की पवित्रता, बाह्य पवित्रता, वाण
की पवित्रता, तथा बुद्धि की पवित्रता सम्मिलित हैं।

९. इन्द्रिय निग्रह—इन्द्रियों पर काबू अथवा इन्द्रियों क
साधना।

१०. ज्ञान—ज्ञान या बुद्धि प्रताप कारण।

धर्म का निरूपण—

१. धैर्य—धैर्य होना चाहिए। पत्नी का धर्म है कि आज्ञा क
पालन करे। पति ही सब कुछ है। यदि वह उल्लंघन करती है त
धर्महीन है। राम के वन जाने पर कौशल्या जी ने कहा कि रा
मुझे वन साथ ले चल। यह नहीं कहा कि तुम मत जाओ
क्योंकि पति आज्ञा थी। पर राम ने बताया कि पति को छोड़ क
जाना धर्म नहीं है। अतः आगे कौशल्या जी ने जाने को नह
कहा।

२. सहनशीलता—धर्म जीवन तत्त्व विज्ञान है। जीने क
योग्यता प्राप्त करना चाहिए। जीवन से मोह व योग्यता पृथ

चीज़ है। प्रकृति के थपेड़ों को सहन करना ही योग्यता सम्पादन करना है। जीने के लिए योग्यता सम्पादन करनी चाहिए। सहन शील बनो। प्रकृति व मान अपमान को सहन कर सको। इसके बिना धर्म नहीं है। धर्म दूसरा करे, फल हमें मिले। दूसरे के कार्य से अपना कार्य नहीं होता। दूसरा रोटी खाए, पेट अपना भरे। यह नहीं हो सकता। पशुओं, आदमियों को दमन कर लेना सहज बात है, किन्तु इन्द्रिय संयम करना कठिन बात है। मन को दमन करने वाले विरले ही माई के लाल हैं। मन को वश में करना ही दमन है। यही धर्म है।

धर्म की कला चमकनी चाहिए। महात्मा गांधी अपने युग के धर्मावतार थे। धर्म सजीव होना चाहिए। धर्म मनुष्य को ओजस्वी बनाता है। जातीय गौरव बढ़ाता है। धर्म को धारण करना चाहिए। मतवाद के धर्म में पुरुष को अपने पर ही विश्वास नहीं है। तीर्थ आदि, गंगा स्नान आदि करना मत के अंदर है, जो धर्म नहीं है। धर्म तो जीवन तत्त्व विज्ञान है। आडम्बर से बचो। मत में कोई बात निश्चित नहीं, धर्म निश्चित है। धर्म तो जीवन ज्योति जगाने वाला है। धर्म में जीवन का कल्याण होता है।

भारतीय परम्परा को जो पुरातन है, स्थिर रखनी चाहिये। भक्तों के पद ही गाना चाहिये। धर्म त्रिकाल आराध्य है। रीति रिवाज में धर्म निहित नहीं है। सब देशों में धर्म विद्यमान है।

३. **अस्तेय, चोरी**—जेब काटना ही चोरी नहीं। आत्मा की चोरी करना भी चोरी है। अधिकारों की चोरी करना भी चोरी है। मुंह से कुछ कहना और हृदय में कुछ और हो, यह चोरी है। हक नहीं देना चोरी है। राजा को अन्याय नहीं करना चाहिये। झूठों की सिफारिश नहीं करनी चाहिए। ऊंचे पद वाले लोग सत्संगों में इसलिए नहीं आते हैं कि अन्य लोग परिचय बढ़ाकर उनसे सिफारिशें कराने लगते हैं। पापी की सहायता, सिफारिश करने वाले सब पापी हैं। धर्मात्मा ही सदाचारी तथा धर्म शील होते हैं।

४. **शौच**—सफाई, आचार बढ़ने से व्यौहार मण्डल सुधरता है। कम देना बेईमानी करना है। अविद्या से आकाश भी खराब हो गया है। क्योंकि धर्म के ठेकेदार भी पैसे के लिए पापियों को मंत्र जाप बताते हैं।

५. **पवित्रता**—सफाई का सदा ध्यान रखो। मन सत्य से शुद्ध हो। धन की पवित्रता सब पवित्रताओं से बड़ी है। कमाई पवित्र हो। अपवित्र कमाई हृदय, रक्त, नाड़ी, तन्तु, बुद्धि आदि को अपवित्र करती है। पापी यदि भगवान के समक्ष क्षमा मांगे, प्रार्थना करे, ऐसा करने पर अंतःकरण निर्मल होता है। बुद्धि, ज्ञान से पवित्र होती है। शरीर जल से। पापी जप से शुद्ध हो। सत्य के ऊपर कोई धर्म नहीं है। विद्योपार्जन—ज्ञान विज्ञान—से ही धर्म है। ज्ञान बिना धर्म नहीं चलता।

धर्म पालन

मनुष्य के जीवन का बहुत भाग आलस में व्यतीत होता है। अतः हर समय धर्म का पालन करने को तैयार रहना चाहिये। आत्मा का उत्थान करना चाहो तो कार्य करने को तैयार रहो। कोई काम कल को नहीं छोड़ रखना चाहिये। एक पल की किसी को खबर नहीं तो कल की क्या मालूम। "काल करे सो आज कर, आज करे सो अब"। कच्चा मन आगे करने की टाल टूल का संकल्प करता है। कच्चा मन समय टालता है। अच्छे कामों में देर नहीं करना, हिचकना नहीं। जो वचन दिया उसका पालन करना, उसे करना। वाणी का पालन करने से वाणी बलवती होती है।

मनुष्य को चैतन्य रहना चाहिये। सत्संग में जाकर समझने की चेष्टा करनी चाहिये। यही एक रहस्य है, उन्नति है।

पंचरात्रि में जो प्रति दिन प्रातः ७ से ११ तक का समय है, उसका सदुपयोग होना चाहिए। ५ मिनट में १००० (एक हजार) नाम जप की संख्या होनी चाहिये।

राग द्वेष से रहित होना कठिन है। परन्तु साधना से सुलभ

हो जाता है। धर्म में आचार का काम होता है। स्वार्थ आने पर वाणी काम आती नहीं।

दो विद्या हैं। एक परा और दूसरी अपरा। ग्रन्थों के पाठ आदि अपरा विद्या हैं। परा विद्या से भगवान के चरण शरण की भक्ति प्राप्त होती है। परा उत्कृष्ट है, अपरा साधारण। धर्म तत्त्व को जीवन में उतारना चाहिए। रीतियों की रस्सी में नहीं उलझे रहना चाहिए। जीवन कला धर्म तत्त्व से ही ऊंची होती है। इसका नाद बजाना चाहिये। ऐसी भेरी ऊंचे स्वर से बजानी चाहिये। जीवन को निर्माण करना बड़ी बात है।

मैं तो अपने को बालक ही अनुभव करता हूं। बालक जैसा रहता हूं। बालक के समान हंसना, खाना, खेलना चाहिए। यद्यपि दुनिया मैंने बहुत पहले देखी है। ६ साल पूर्व की घटना मुझे याद है और वह चित्र मेरी दृष्टि के सामने मूर्ति के समान दीखता रहता है। मैं उन जैसा नहीं हूं, जो चांदनी चौक में झाड़ू हाथ में ले खड़े हों और कैमरा वाला भी खड़ा हो और अपना नाम करता फिरूं।

धर्म का जो मार्ग है वह दूसरे मार्गों से न्यारा है। धर्म का प्रचार जनता में मेल मिलाप, आचार विचार की उन्नति करता है। तीव्र और प्रबल जिसका बिचार होता है उसे लाभ होता है परन्तु जिस युग में हम विचरते हैं इसमें राजनीति अधिक। उन के (राजनीतिज्ञों के) कथन वृत्ति को चंचल बनाने वाले हैं। इस का कारण यह है कि पिछले चालीस वर्षों से यह जग शांति में नहीं है। जैसे मानसून के दिनों में समुद्र चंचल इस प्रकार मानव जग में बड़ा कारण तो यह है कि राजनीति प्रचार जो है वह एक और धारणा को लेकर हो रहा है। इसकी भावना है भय वाली। वास्तव में बात यह है कि हमने धन, अपने गौरव को स्थिर रखना है। बैल पास जाओ वह सींग हिलाता है। इस से भय पैदा होता है। इस प्रकार हर जाति अपने सींग हिलाती है। पिछले चालीस वर्षों से इसका जोर रहा है—राजनीतिकों की बुराई से मेरा सम्बन्ध नहीं। मेरा अधिकार भी नहीं। न ही मैं करने की

इच्छा रखता हूं। बहुत बार बात अच्छी का भी परिणाम बुरा हो जाया करता है। राजनीतिज्ञों ने आत्मा परमात्मा के विचार को निकालने का बड़ा भारी यत्न किया। इस प्रकार नए तरुण जो आते हैं इन पर इसका बड़ा प्रभाव है। वे पुण्य पाप को, धर्म अधर्म को भय दिखाने वाला समझते हैं। वास्तव में यह बात नहीं। इस कारण मनुष्य कुछ नास्तिक सा बनता जाता है। अपने देश में तो फिर भी कुछ स्थिर है किन्तु दूसरे देशों में बहुत धक्का लगा। दूसरे देशों के नेता (धर्म संचालक) ऐसे समाचार निकालते हैं कि धर्म का तत्त्व बना रहे—वे वहीं से जहां इतना पाप है अपने धर्म का प्रचार करते हैं। इसी कारण योरुप की संस्था चल रही है। हमारे यहां इसकी कमी है। यहां तो परम्परा के कारण चल रहे हैं। बड़ा अन्तर है। यहां धर्म मनुष्यों से सुगठित नहीं है। सुगठित जाति में बड़ा बल होता है। लड़ता हुआ विरोधी कहता है कि तुझे पानी बना दूंगा या यूं कहते हैं मेरे सामने पानी-पानी हो गया। पानी कितना है यह बात इसमें है। ऐसा कहने में पानी जैसे इतना पतला कहा जाता है। किन्तु सुगठित जब यह होता है तो इसकी मार का विचार करो—लाखों रुपया नदियों के ठेकों पर खर्च होता है। कोसी जैसी नदी की मार को कम करने के लिये इंजीनियरों ने विचार भी बहुत किया हैं किन्तु अभी तक कहते हैं कि कुछ समझ में नहीं आता। पर मनुष्य बड़ा प्रबल है। पर मैंने तो कहना यह है कि पानी जब सुगठित हो तो कितना प्रबल है। दो ढाई साल पहले की बात है। बिहार, आसाम, पश्चिमी पंजाब में वे बाढ़ें आईं कि इस को बड़े-बड़े बांध न रोक सके। पहाड़ियां अपना स्थान छोड़ने लगीं। देखो, पानी जब सुगठित हो जाए तो कैसे चट्टानों को रेत बना डालता है। वैसे पानी कितना पतला (होता है)। कनखल बचाने के लिए जो बांध बनाया था, सारा बह गया। संगठन का यह बल है। भारतीय जाति में संगठन वैसे ही कम है। राज्य जो चल रहा है यह राज्य की पूजा की रीति है। लोग हुए हैं—वह बात नहीं—अंग्रेजों के समय से भी, बादशाहों

के समय से भी, इस प्रकार प्रचलित राज्य की पूजा। जो लोग बहुत कहते हैं कि हमारा दादा बड़ा अच्छा, मिथ्या युक्तियां देकर वे (मिलान) करते हैं। जैसे लड़का बाबा की लठिया को थोड़ा बनाए। यहां जो सभाएं बनीं वे लोगों ने अपना लीं। परम्परा बचा रही है। अमावस का दिन था। इसने सुना था कि सब इलाका आर्य समाजी हो गया है किन्तु लोग सड़कों पर झुण्डों में जा रहे थे। इसको बताया गया कि अमावस का स्नान है। यह थी परम्परा को मानता। इन्डोनेशिया की कैबिनेट का मैम्बर पहुंचा। एक वकील के यहां चाय पी। लोग गंगा स्नान के लिए जा रहे थे। बैलगाड़ियों की कतार में। इसने पूछा, नीचे सड़क पर क्या है। कहने लगा, नदी पर जा रहे हैं ग्रामीण लोग। वहां मेला लगाते हैं और स्नान करते हैं। तो यह परम्परा है। वह गीत सुनने वाले और सुनाने वाले मर गए। किन्तु जनता परम्परा की डोर में बंधी है। कहना यह है कि परम्परा बड़ी चली आती है। इसको जल्दी निकालना भी नहीं चाहिये। कुम्भ का मेला—उसके अभी भी दिन रहते हैं। वहां प्रधानमंत्री भी गए। उन पर पार्लियामेंट में प्रश्नों की बौछार। वियना में नेहरू जी की परम प्यारी पत्नी का देहान्त हुआ। नेहरू साहब जब हवाई जहाज से उतरे तो पत्नी की अस्थियां अपनी काँख में थीं। ऐसे आदमी को कोई कैसे कह दे कि वह धर्म नहीं मानते। यह बुद्धि से पीछे हट कर कहने की बात है। प्रयाग में नंगे पांव गए। अस्थियां डालने के लिए और शोभायात्रा के साथ। धर्म गाने की नहीं, अपने जीवन में बसाने की चीज़ है। जवाब सभा में दिया कि हिन्दुस्तान के लोग वहां इकट्ठे हुए। तुम जो इतने जलूस निकालते हो। स्वतंत्रता का दिन क्यों मनाते हो, लालकिला जाकर। यह सब भावना की चीज़। देश को ऊंचा करते हैं। संगठन पैदा करते हैं। कहना यह था कि यह जगत् भावनामय है। अब भी भावना बनी हुई है। इसको उठाना अच्छा नहीं, केवल सुधार की आवश्यकता और वह सुधार होता रहता है। यदि घर में शान्ति है तो शान्ति है। समाचार पत्र को देखकर और मित्र

बुलाकर टटोल कर देखो तो भी नहीं मिलेगी। विचार शान्त होने से शांति मिलती है। विलायत को एक मित्र जाने लगा तो बाबा ने कहा कि प्रार्थना सिखाई थी, उस को भी कभी पढ़ लिया करना। जब घर वापिस आया, हजारों रुपया खराब करके तो दोस्तों ने पूछा तो सब बातें और परिस्थितियां उसने वर्णन कीं। मित्र मंडली बैठी हुई थी। चाय पान कर रहे थे। एक सयाने वकील ने कहा, भाई साहब! आपने तो इतना रुपया भी खर्च किया, क्या देखा? क्या वे लोग शान्त हैं? जवाब दिया, बड़े चंचल जैसे मानसून के दिनों में समुद्र चंचल। जहां जाओ वहीं चंचलता। रुपया इतना हमारे पास था और हम और बढ़ाना चाहते हैं। ऐसे ही व्याख्यान इनके प्रोफेसर करते। फिर प्रश्न किया कि क्या तुम्हारे मन में शांति, तो उसने कहा कि शांति तो इस श्लोक में थी जो बाबा ने बताया था कि जिसकी वरुण, ब्रह्मा, इन्द्र [illegible] स्तुति करते हैं, वह हमारा देव है। इन पदों में मुझे सुख शांति [illegible] समुद्र मिलता था। किन्तु जब फिरता था तो असीम [illegible] होती थी। पर शांति तो प्रार्थना से मिलती। वह [illegible] अवलम्बन थी। कभी कभी विचार आता कि भारत में [illegible] जहाज नहीं, गोले नहीं, विनाशकारी दूसरे हथियार [illegible] भारत रक्षण होगा तो प्रार्थना करने पर विचार [illegible] चिंता करता है। चिंता करने वाला भगवान जो है [illegible] ओर है। इस युग में भारत के सब भागों में [illegible] कहना यह है कि धर्म कई विभागों में—आचार [illegible] में राम आराधन, तब मन शान्त हो। तो [illegible] के समय शांत होते हैं, इन में श्री राम [illegible] उच्चारण करें।

धर्म प्रचार

आजकल का धर्म प्रचार [illegible] ऐसे लोगों के हाथ में हैं, अधिकतर [illegible] आदि का सहारा लेते रहते हैं। [illegible]

और झूठ को सच बनाते हैं। दुकानदार, ठेकेदार सच कम बोलते हैं। ऐसे ही लोग धर्म के प्रचारक हैं। अतः धर्म पनप नहीं पाता है।

धर्म के प्रचार में (१) कठोर वचन न हो (२) अपने हाथ से किसी को न सताएं (३) पेट काबू में हो।

अन्दर के देवता की बात सुननी चाहिये। वह सुनाता है। तुझे पराई क्या पड़ी। अपने धन, मन, बुद्धि को अच्छा बनाओ। पराई गंदगी को जीभ से धोना अच्छी बात नहीं। मैं अपने आप को अच्छा बना लूं। जब तक मैला धब्बा मेरे दुपट्टे पर है, दूसरे के धब्बे को क्यों देखूं। जो अपने अन्तःकरण को देखते हैं, उनका कल्याण हो जाता है। पाप ताप उनके दूर हो जाते हैं। चरित्र निर्माण बड़ी ऊंची बात है। यह धर्म से होता है, राजनीति से नहीं। द्वेष की चादर को दूर फेंक दो, फिर आत्म बोलता हुआ सुनाई देगा। फिर पथ प्रदर्शन अपना आत्मा कर लगेगा। नियम मत तोड़ो और झूठी सिफारिश मत करो।

धर्म कभी बदलता नहीं। वह सनातन है। जो आद पारिवारिक जीवन के कवियों ने वर्णन किए हैं, वे दूसरे देश भी हैं। पति धर्म तथा पत्नी धर्म के आदर्श आदि। धर्म और में बहुत भेद है। राय ही मत है। प्रतिदिन के कार्य करना म जो बदल जाय वह मत है। धर्म अखण्ड है। अपरिवर्त है। मत आदमी के बनाए होते हैं।

राम काज में समय वाला आदमी चाहिए क्योंकि जाने आदमी जाने लगते हैं और खूब आते हैं। अतः व्यवसाय समय निकाल सको प्रचार में इधर उधर इन्दौर आ मध्य प्रदेश में खूब राम काज करना चाहिए। राम ज्यो मैं जवानी में एक एक आदमी के लिए सौ मील भी था।

मैं पसंद नहीं करता कि लोग ढिंढोरा पीटते फि प्रार्थना का काम सौंपा गया है। मैं तो च निरअभिमानता पूर्वक चुपचाप राम काज करे

राम काम को महत्त्व न देकर संसारी काज को ज्यादा महत्त्व देते हैं। जगत हित के काज जो समय लगाते हैं, राम को ही प्यारे होते हैं। जन सेवा का भाव रख कर निस्वार्थ भाव से रहे तो उत्तम है। कोई तीर्थों में फल छोड़ते हैं, सभी छोड़ते हैं किन्तु अपने दुर्गुण या कमी को कोई नहीं छोड़ते। वास्तविक छोड़ना दुर्गुण का है। जैसे परधन हरण, पर स्त्रीगमन, नशीली वस्तुओं का प्रयोग, निंदा, ईर्ष्या, द्वेष, काम, विकारादि।

साधकों से यह बात मैं चाहता हूं कि वे प्रश्न का उत्तर संक्षेप में सरलता पूर्वक और ऊंची आवाज में दें। गोल मोल भाषा नहीं हो। दो दोबार पूछना पड़ता है तब बात समझ आती है। यह तो ठीक नहीं। बात उतनी की जाये जितना पूछा जाये। ज्यादा बात करना ठीक नहीं। किन्तु बात अधूरी भी न हो। बात करना भी कला है। जो सब को आनी चाहिए। आज हम लोगों से काम काज छुड़ाने की आवश्यकता नहीं है। जो जहां है वहीं रहकर गृहस्थ धर्म का पालन करते हुए धार्मिक कर्तव्य का पालन करने की शिक्षा देना है। आवश्यकता है कि धर्म को दुकान की वस्तु न बनाकर जीवन में उतारें।

धर्म जीवन में उतारो

धर्म तो जीवन में उतारने की वस्तु है। आज कल के महात्माओं ने तो दुकानदारी की हुई है। दूसरों के लिए शास्त्रोपदेश किन्तु स्वयं के लिए जीवन में धर्म दृष्टिगोचर नहीं होता।

पंजाब के विभाजन के समय जब उत्पात होने की आशंका थी तो महन्त लोग दो मास पहले अन्यत्र भाग खड़े हुए और उन्हें आश्रय भी मिल गया। तो बताओ ऐसे प्राण के भय से भागने वाले महात्माओं के जीवन में धर्म कहां उतरा? उनसे तो वे नवयुवक बलिदान हुए प्रशंसनीय हैं, जिन्होंने वहीं पर रह कर आततायियों का सामना किया और प्राणों की आहुति दे दी।

रामायण से आचार-विचार का भाव जागना चाहिए। केवल रोकर रामायण का आदर करना तो कायरपन है, वीरता भी आनी

चाहिए। हिन्दू जाति के लोग रामायण पढ़ कर भी कायर बने हुए हैं—यह लज्जा की बात है। उनमें वीरता आनी चाहिए।

भगवान के साकार, निराकार, सगुण, निगुर्ण स्वरूप की उपासना के सम्बन्ध में क्या कहा जाय। भगवान का आराधन करना मानो उससे सीधा सम्बन्ध करना है। नाम में नामी समाया होता है। भगवान क्या है? यह तो भगवान ही जाने। हमें तो इतना विश्वास होना चाहिए कि भगवान है अर्थात् आस्तिक भावना हो। हम अपने आकार को नहीं जानते फिर भगवान को क्या जान सकते हैं, वह तो वह ही जाने।

जैसा तू है तुझ को नमस्कार (हे परमेश्वर)। यहां जो रोते आदमी आए और इन्होंने कहा कि हमारा धैर्य टूट गया, हमारा मन डांवाडोल है, किसी बंधु के वियोग से। तो तीन चार दिन के सिमरन से उन को शांति हो गई। यह विचार का धर्म बड़ा बलदायक। शक्तिदायक धर्म बड़ी मीठी चीज़ है। इसने बहुत दिनों तक जनता को शान्त रखा। धर्म ने दया, पुण्य, सेवा भरी मनुष्यों में। राजनीतिज्ञों ने हिंस्र जंतुओं जैसा खराब किया। सुन्दरता धर्म के हाथों बनी हुई है यद्यपि समाजी ने टक्कर मानी है गिराने की, किन्तु मनुष्यों की धर्म जो जड़ है इसने बचाए रखा।

परमेश्वर के आगे अपना दिल खोलने से शांति का विस्तार होता है। श्रीराम सब पर कृपा करें—अपने नाम का प्यार सब में बसाएं।

स्वाध्याय-धर्मग्रन्थ

पुरातन ग्रन्थ ही स्वाध्याय के योग्य हैं।

पुरातन ग्रन्थ आर्थिक और साम्प्रदायिक दृष्टि से नहीं लिखे गए। जैसे कि आजकल के लिखे बहुत से ग्रन्थ होते हैं। उनका अध्ययन करने से मनुष्य में ज्ञान की वृद्धि होती है। शास्त्र हमारे मुनियों की संचित की हुई सम्पत्ति हैं। ये हमें सहज ही से प्राप्त हैं। ज्यों-ज्यों कोई पढ़ता है, उसे आगे ज्ञान में बड़ी रुचि होती है। इस रुचि को उत्पन्न किया जा सकता है शास्त्र अनुशीलन से।

सुनने की अपेक्षा स्वाध्याय अच्छा

साधकों को धार्मिक ग्रन्थों का स्वाध्याय करना चाहिए। सुनने से या स्वाध्याय से ज्ञान प्राप्त होता है (किन्तु सुनने की अपेक्षा) स्वयं स्वाध्याय करना अच्छा है क्योंकि सुनने वाले सुनाने वाले के अधीन होते हैं। सम्भव है कि सुनाने वाले अनुचित विचार भी आपको दें जैसा कि पुराने समय में पंडित लोग (अज्ञान के कारण अनुचित बातें भी लोगों को कह देते थे)।

उपनिषद्

उपनिषद् हिन्दु साहित्य में उत्तम ग्रन्थ हैं। पुरातन संस्कृत में लिखे हुए होने के कारण लोग इन्हें कम पढ़ते हैं। यह किसी सम्प्रदाय की पूंजी नहीं। यह तो मज़हब (पन्थ) आदि चलने से पहले के ग्रन्थ हैं।

कोई ग्रन्थ देख लो, हर एक ग्रन्थ का अस्सी प्रतिशत उपनिषद् है।

उपनिषत्सार

(i) उपनिषदों का महत्त्व

धर्म में उपनिषदों का बड़ा श्रेष्ठ स्थान है। उपनिषत् काल में भारत वर्ष ऊँचे विचार रखता था। मनुष्य जब बहुत गहराई में जाता है तो उसके आगे ब्रह्म अर्थात् महान का

विचार आता है। जब मनुष्य को शान्ति न मिले तो वह महान की ओर जाता है। साधारण कोटि के मनुष्यों में ब्रह्म के विचार नहीं आते। भारतवर्ष में ये विचार उस समय स्फुरित हुए जब यह उन्नति के शिखर पर था। महान के सम्बन्ध में उपनिषदों में जैसा वर्णन किया है इससे अच्छा अन्य किसी स्थान पर नहीं मिलता। बहुत लोग तो फल के छिलके की बातें करते हैं, अन्दर के भोज्य पदार्थ की बात ही नहीं करते। लीला देखकर चले जाते हैं, उन अवतारों का महत्त्व देखते ही नहीं।

उपनिषदों का एक एक शब्द प्राचीन इतिहास का वर्णन करता है। समुद्र का नाम सागर इसलिये रखा है कि कोई सगर नाम का राजा था जिस का रथ समुद्र के किनारे तक गया। इस बात का रामायण से पता चलता है। जैसे कालेजों में पुस्तकें पढ़ाते हैं, उपनिषद वैसे नहीं बनाये गये। ये तो महात्माओं के वाक्य एकत्रित करके बनाये गये हैं। इनका कर्ता अर्थात् बनानेवाला कोई एक व्यक्ति नहीं। जैसे आरण्यकोपनिषद् वह जिस का सम्बन्ध जंगल से।

जिन को धन धान्य आदि और संतानादि प्राप्त हो चुके हैं, ऐसे लोग आयु की पिछली दो अवस्थाओं में, एकान्तवास आदि में कैसे रहें, इसका वर्णन उपनिषदों में है। ऐसे एकान्त वासी साधु सन्त महात्माओं के उपदेश उपनिषदों में दिये हैं। उस काल में ज्ञानी अनुभवी ही ऐसे तत्त्व कहा करते थे। उपनिषद् किसी की बुद्धि की उपज नहीं हैं अपितु अनुभव का प्रकाश हैं।

उपनिषद् महान की ओर ले जाते हैं। अल्प में सुख नहीं। जातियों की ओर देखो। महान में सुख दिखाई देता है। अल्प के लिये कोई स्थान नहीं। याज्ञवल्क्य ऋषि ने कहा कि जो अल्प है वह मरने वाला है। महान की ओर मनुष्य की दृष्टि रहती है। जैसे व्यवहार में महान बनने की रुचि है, परमात्मा को मिलने अर्थात् महान के साथ मिल जाने की भी वैसी ही इच्छा होनी चाहिये। जब अल्प में रहने का विचार हुआ तो

उन्नति रुक गई। अल्प की मृत्यु है। महान को तो मृत्यु भी नहीं मार सकती। महान में अमरता है। अल्प को काल ने घेरा हुआ है। मनुष्य को महान की ओर जाना चाहिये।

(ii) ब्रह्म विद्या

कल उपनिषदों का महत्त्व वर्णन किया था और उनकी गहराई की ओर भी संकेत किया था। उपनिषदों में जो ब्रह्म का वर्णन है और जो अनुभव दिये हुए हैं वे महात्माओं और संतों के वाक्य हैं। जो उन्होंने जाना, वही कहा है। इसी कारण उन ग्रन्थों का बहुत ऊँचा स्थान है। जिन लोगों का सम्बन्ध यहां की भूमि से है उन को उपनिषदों से और यहां के ज्ञान विज्ञान से प्रीति होनी चाहिये। यदि न करें तो यह उन में भारी कमी है। ये पुस्तकें जनता की बनाई हुई हैं। इन के कहने वाले ब्राह्मण, क्षत्रिय, राजा, शूद्र, पुरुष और स्त्रियां सब थे। ऋषि, महर्षि आदर्श श्रेणी के मनुष्य थे। स्वार्थ का त्याग बड़ा त्याग होता है।

यदि कोई व्यक्ति घर बार त्याग कर के क्षेत्रों में भोजनादि खा ले और यह विचार रहे कि घर बार के त्याग से मुक्ति हो जायेगी तो यह आदर्श जीवन नहीं है। राजा जनक बड़ा ज्ञानी था। ऋषि महर्षि उस की सभा में आते थे और सम्मिलित होते थे। यह महानता थी। त्याग मन से था। धन भी बहुत था। व्यास देवजी तो बाल्यावस्था से ही संग्रह-रहित फिरा करते थे। उन्होंने अपने पुत्र शुक देव को जनक जी के पास भेजा कि ब्रह्म विद्या राजा जनक से सीखे।

जनक ने जाना कि शुकदेव ने अपने पिता की अवज्ञा की होगी। वह ढाई वर्ष चीन और तातार आदि देशों की यात्रा करके आया है। प्राचीन ग्रन्थों में ऐसा लिखा है कि आने वाले के स्वागत के लिये सात आठ पद चल कर अतिथि को लेने जाये। आदर करना, यह सभ्यता थी। जाते समय पहुंचाने जाना, यह रीति थी। शुकदेव का आना जनक जी जान गये। उन्होंने उस की परीक्षा ली। तीन दिन बाहर और तीन दिन ड्

रखा। फिर शुकदेव जी को पूछा कि आप क्या लेने आये हैं? बहुत ढंग से उसे समझाया। इस प्रकार के भी धनशाली राजे हो चुके हैं जो ब्रह्मज्ञानी थे।

यह कोई रोक न थी कि ब्रह्मज्ञानी धनी न हो। यह हिन्दुओं की बाद की कल्पना है। पहले वेश केश में धर्म को जकड़ा नहीं करते थे। क्षत्रिय का काम भी उतना ही ऊँचा समझा जाता था जितना ब्राह्मण का। कर्तव्य को ऊँचा माना करते थे। यह नहीं कि ब्रह्मविद्या के पुरुष ही अधिकारी थे, स्त्रियां भी थीं। जैसे, सुलभा, गार्गी, आदि। अत्रि ऋषि शूद्र के पुत्र थे। इन के नाम से एक उपनिष्द भी है। इसमें बड़ी सुन्दर रचना है। इसमें ब्रह्मविद्या के बहुत ही उत्तम वाक्य हैं। प्रश्न किया जाता है कि यदि हम ब्रह्म को नहीं मानते तो क्या हानि है? इसका अभिप्राय यह हुआ कि हल चलाने वाला कहेगा, मेरा हल ब्रह्म को माने बिना भी चलता है, मोटरवाला कहेगा कि बिना ब्रह्म को माने भी मेरी मोटर चलती है, कारखाने वाला भी कहेगा कि बिना ब्रह्म के माने मेरा कारखाना चलता है। यह सब कुछ होगा किन्तु यदि मनुष्य ब्रह्म को न माने तो उसका अपना आप नहीं रहता। उसका अपना अस्तित्व ही मिट जाता है। यदि दो (२) संख्या कहे कि एक (१) संख्या का अस्तित्व ही नहीं है तो दो (२) का अस्तित्व भी मिट जाता है। अर्थात दो (२) का अस्तित्व एक (१) पर निर्भर है क्योंकि एक (१) में एक (१) जोड़ने से ही दो बनता है। कोई संख्या न हो तो बिन्दू का भी कोई मूल्य नहीं। प्रकृति तो आत्मा के आश्रित है। मानने वाला ही इसको स्थिर करता है। ऐसा ही समझना चाहिए कि ब्रह्म के ऊपर ही यह स्थित है। अल्प तो महान के आश्रय पर है। बून्द को देखकर समुद्र की कल्पना हो सकती है। बून्द सजीव है। पर समुद्र के साथ मिला हुआ है। यदि कोई यह माने के ब्रह्म नहीं तो उसका अपना नाश हो जाता है। यह तो अपना ही मूल काट देना है। समस्त अस्तित्व महान के साथ मिला

हुआ है। महान की ओर जाना हिन्दू धर्म की प्रवृत्ति है। जहाँ भी चेतना चमकती है उसे महान का ही अंश समझना चाहिए। सब अस्तित्व ब्रह्म के आश्रित है। उपनिषदों में ब्रह्म का संकीर्तन है और आत्मा के स्वरूप का वर्णन है।

आत्मा सरसों के दाने से भी सूक्ष्म है किन्तु इस पृथ्वी से भी महान है। देवलोक से भी बड़ा है। वह अपनी शक्ति से महान है। जैसे कोई वैज्ञानिक कह देवे कि एक परमाणु सारे नगर से अधिक अस्तित्व रखता है। इसी प्रकार आत्मा सूक्ष्म भी है और महान भी है। यह अपनी शक्ति को ऊँचा बनाने की शैली है। अपने आप को छोटा या अपाहज या दीन नहीं बनाना चाहिए।

यह देहरूपी मन्दिर विश्व शक्ति से मिला हुआ है। जिन्होंने अनुभव किया है उन्हीं का कहना है कि आत्मा चन्द्र, सूर्य, समस्त दिखनेवाले लोकों से बड़ा है। उपनिषद् के ये वाक्य बड़े मूल्य वाले और बगीचे में फूल समान हैं। वैज्ञानिक के आगे यूरेनियम (Uranium) का परमाणु बहुत छोटा है। यदि उसको तोड़कर गिरा दिया जावे तो एक हजार फुट तक ऊँचा पर्वत बन जावे। जैसे परमाणु में यह शक्ति है ऐसे ही यह आत्मा छोटा भी है और बड़ा महान भी।

(iii) श्रेय और प्रेय मार्ग

कल मैंने उपनिषदों में से यह प्रकरण लिया था कि यदि कोई महान के अस्तित्व को नहीं मानता तो वह अपने अस्तित्व को खो बैठता है। जो महान को मानता है वह अपने आप को स्थिर करता है। मनुष्य में मानने तथा न मानने का भाव होता है। और भी एक कारण है। सुख के मार्ग पर चलने की प्रायः प्रवृत्तियाँ रहती हैं। हम उधर ही जाते हैं। लौटाने पर भी हम उसी मार्ग पर चलते हैं जब तक कि बार-बार प्रवृत्ति न किया जावे। बुद्धिमान दो बातों का ध्यान रखते हैं। प्रिय मार्ग आराम का मार्ग है जिसका परिणाम दुख है। दूसरा

श्रेय मार्ग है जिससे सुख मिलता है। जो प्रेरित होकर निर्णय पर खड़ा होता है वह धीर कहलाता है। धीर मनुष्य विचार करके श्रेय मार्ग पर चलता है। ऊपर से तो प्रिय मार्ग अच्छा लगता है। वर्तमान सुख का प्रिय मार्ग है। वर्तमान सुख कोई चीज नहीं है। नष्ट हो जाया करता है। प्राणी वर्तमान सुख के लिए भविष्य पर पानी फेर देता है। जो धीर पुरुष नहीं वह बुद्धि से काम नहीं लेता। ये दोनों मार्ग—प्रेय और श्रेय—मनुष्य को बांधते हैं। श्रेय मार्ग, कल्याण का मार्ग विचार में बाँधता है, ऊँचे लक्ष्य में बाँधता है। वर्तमान सुख का लालसी भविष्य का विचार नहीं करता। वर्तमान सुख को तो परित्याग करना चाहिए। देखिये ! लोग परिवार के लिए कम मरते हैं, जाति के लिए अधिक न्योच्छावर होते हैं। सामूहिक जीवन की जो चेष्टा नहीं करते, वे बलिदान नहीं कर सकते। श्रेय मार्ग कल्याण का मार्ग है। बुद्धिमान श्रेय मार्ग ही धारण करता है। प्रिय मार्ग के स्थान पर मन की शान्ति के लिए इन्द्रियों का आराम त्याग देता है। श्रेय मार्ग मनुष्यों में पाया जाता है, शेष बातें पशुओं में भी पाई जाती हैं।

ये दोनों मार्ग एक दूसरे से बहुत दूर हैं। प्रिय मार्ग स्वार्थी बनाता है। श्रेय मार्ग त्याग और बलिदान सिखाता है। मनुष्य सामूहिक जीवन के लिये बरादरियों और वंशों के जीवन से पार हो जाता है। जो इन बातों में फंसा हुआ नहीं, वह बार बार काल का ग्रास नहीं बनता। कल्याण का मार्ग मूर्ख, अबोध व्यक्ति को अच्छा नहीं लगता। प्रमादी को भी कल्याण का मार्ग अच्छा नहीं लगता। आलस्य और प्रमाद एक नहीं। जो व्यसनों में पड़ा रहता है वह प्रमादी है। जैसे एक मनुष्य शतरंज खेलता था। उस के घर से कोई आया और उस से कहा कि उस की माता को बड़ा दर्द हो रहा है। और प्राय: मरण शय्या पर है। उस ने कहा कि एक चाल चलकर आता हूं, पर एक घंटा बीत गया और वह उठा नहीं। दूसरा कोई आया और कहा कि माता ने आंखें बन्द कर ली हैं। फिर भी वह नहीं

उठा। यह व्यसनी मनुष्य है। मान और बड़ाई का भी व्यसन होता है।

जो धन के मोह में मूढ़ हैं, उन्हें अपाचन होता है। उन्हें मोहनभोग कब अच्छा लगता है। मोह में निमग्न हो जाना मूढ़ता है। धन को जो हवा भी न लगने दे, उसका लड़का उस का दिया जलावेगा। संस्कृत के एक कवि ने लिखा है, लक्ष्मी, जो चौदह रत्नों में से एक है समुद्र की पुत्री है। उस का पिता खारा है तो पुत्री में भी खारापन है। जब पास नहीं होती तो भाई भाई में प्रेम होता है। जब आ जाती है तो भाई भाई में खारापन आ जाता है। इस की बहिन शराब है। उसका भी इस पर प्रभाव है। अतः उस में भी नशा है। लक्ष्मी जिस के पास होती है उस की कमर टेहड़ी नहीं होती। वह एक छड़ी से अथवा एक अंगुली से नमस्कार करता है। मर्यादानुसार दो हाथ जोड़ कर नमस्कार करना भूल जाता है। धन के मोह में प्राणी मतवाला हो कर मूढ़ हो जाता है। इसका भाई विष है और उसका भी इस पर प्रभाव है। विष को जब किसी ने भी न लिया तो शिवजी महाराज ने उठा कर खा लिया। विष जब गले में गया तो शिव जी के गले का रंग नीला हो गया। लक्ष्मी में मार डालने का भी गुण है। इसका पिता समुद्र अर्थात् पानी नीचे को जाता है। यह भी नीचे ले जाती है। इससे पाप आदि होते हैं। बेटा नदी के किनारे ब्राह्मण से पूजा करवाता है कि उसका पिता मर जाये, कितना पाप है। धन बड़े से बड़ा अपराध भी करवाता है। वृत्तियाँ ऐसे मनुष्यों की नीच हो जाती हैं किन्तु राम मन्त्र के जाप से ठीक हो जाती हैं। धर्म के स्थान पर धन लगाने से फलीभूत हो जाता है। धन का मोह दान से दूर होता है। आत्मा को इनसे ऊंचा बनाना चाहिये।

जो ऐसा सोचते हैं कि यह दुनिया ही है आगे कुछ नहीं उनको भी श्रेय मार्ग अच्छा नहीं लगता। कोई तीस वर्ष से यह बात आई है कि यही लोक हैं, परलोक नहीं है। यह बड़ी भारी कमी है। तभी से तलवार खड़क रही है। इस विचार के लोग

कहते हैं कि बरमा देश को नष्ट कर के जापान उन्नत हो जाये तो क्या दोष है। यह दर्शन वाद बहुत हत्या का मूल है। जो इस संसार के सुख को ही मानते हैं उन्हें श्रेय मार्ग अच्छा नहीं लगता। नास्तिक अधिकारी नहीं होते। किन्तु यत्न करने से प्राणी में परिवर्तन आ सकता है। विदुर जी ने कहा है कि दस अवगुण वाले मनुष्य परमेश्वर को नहीं पा सकते—पागल, भांगी, शराबी, प्रमादी, थका हुआ, जल्द बाज़, आदि आदि। अतः इन अवगुणों को जीतना चाहिये। नास्तिकपन का भाव श्रद्धा से और धर्मग्रन्थ पढ़ने से ठीक हो जाता है यह अनुभव की बात है।

(iv) उत्तिष्ठत, जाग्रत

कल मैं ने वर्णन किया था कि कल्याण का मार्ग जिससे आत्मा की उन्नति होती है अज्ञानी को, प्रमादी को, धन से मूढ़ मनुष्य को और नास्तिक को प्राप्त नहीं होता है। इस मार्ग पर वही चलता है जो इन दोषों से पार हो। विद्वानों ने कहा है कि भलाई का मार्ग खड़ग की धार जैसा है। इन नियमों पर चलने वाला ही ऊपर उठ सकता है। ऊपर चढ़ना कितना कठिन है। कोई ऊपर जा कर भी नीचे कूद पड़े तो कितना सरल है। माया ऐसे ही नीचे खैंचती है। महान् पुरुषों ने कहा है कि यदि इस मार्ग पर चलना चाहते हो तो उत्तिष्ठत अर्थात् उठो, खड़े रहो और तैयार रहो। भीष्म जी ने कहा कि शत्रु उस से डरते हैं जिसके हाथ में खड़ग खड़ी रहती है। तैयारी भी पूरी होनी चाहिये। मनुष्य वही सफल होता है जो बुराई को मारने के लिये सदा तत्पर रहे। आलसी और प्रमादी कभी सफल नहीं हो सकता। ऐसे व्यक्ति का गृहस्थ भी नरक बन जाता है। कोरा ज्ञानी पुरुष हो तो भी करन नहीं बनता। भूखा व्याकरण का घोटा लगाये तो भूख नहीं मरती। ज्ञान वह है जो कर्म को सिद्ध करे। आध्यात्मिक जगत में बुराई तो पड़े पड़े ही आ जाया करती है।

दूसरी बात यह है कि मनुष्य जाग्रत हो अर्थात् चैतन्य हो

जैसे कोई मनुष्य खड़ा हो और ऊँघ रहा हो तो उस पर व
भी आक्रमण कर सकता है क्योंकि उस ने आंखें बन्द कर र
हैं। जो केवल खड़ा है और जाग्रत नहीं उसे अन्ध क्रिया क
हैं। अपने लाभ और हानि को देखो। मनु महाराज ने कहा
प्राणी ब्रह्ममुहूर्तमें उठे। सूर्य निकलने से पूर्व धर्म और
का चिन्तन करे। भगवान का नाम लेवे। उस समय में, अ
विचारों के, न जाने कितने तरंग बह रहे होते हैं। असुर भ
सब सोये होते हैं। प्रातःकाल शांत समय होता है। न ज
कौन बात उस समय हमारे अंदर आ जावे। परिवार में
चढ़ने पर कितनी ही बातें आ जाती हैं। चित्त चंचल हो ज
है। प्रातःकाल प्रकृति भी चंचल नहीं होती। वह भी सहा
होती है। यदि हम बाहर बैठे हों तो हवा लगती है, इसी प्र
सूक्ष्म आकाश में महात्माओं के सूक्ष्म संकल्प सब ओर दौ
हैं जो साधकों पर प्रभाव कर जाते हैं। दूसरे, अर्थ का
चिन्तन करना चाहिये। क्या कमाना है, क्या काम करना
इस का भी विचार करना चाहिये। इस के साधन भी चिन
करने चाहियें। मनुजी के अनुसार, जो किसी के धन को ह
कर लेता है, वह उस के धर्म को भी हर लेता है। जिस के प
आसन आदि कुछ नहीं, वह पूजा क्या करेगा? जो गरीब
गया उस के पास क्या रह गया।

तीसरे चिन्तन करे कि काया का क्लेश, खांसी आदि,
हुआ। रोग कैसे आया। काया का क्लेश और उस का
नेत्रों के सम्मुख हों। चौथे, विद्या के तत्त्व का अर्थ भी चिन
करना चाहिए। गीता का श्लोक पढ़े और उसके अर्थ
चिन्तन करे। किसी ने एक पंडित से पूछा कि महारा
धर्मशास्त्र पढ़ने का कौन सा उत्तम समय है? उत्तर मि
प्रातःकाल का समय। यदि किसी से सहायता लेनी हो तो
में लेवें किन्तु स्वाध्याय करना हो तो प्रातःकाल करें पाठ
पथ प्रातःकाल ही चले जाते हैं। ब्रह्ममुहूर्त में ग्रंथ कर्ता अ
आप बोलेगा। यह विचार करना चाहिये कि मैं अर्जुन हूं

श्री कृष्ण जी महाराज मुझे ही उपदेश दे रहे हैं। ऐसी स्थिति न बनायें तो प्राप्ति नहीं होती। रोगी को ओषधि दी जाती है और प्रायः कहा जाता है कि खाली पेट खाना। इसी प्रकार जब अन्तःकरण बाहर के जटिल जंजाल से खाली होता है तो अपना आत्मा और देह भी बोलने लग जाते हैं। प्रातःकाल की साधना बहुत अच्छी होती है। पुरुषार्थी भी होना चाहिये। श्रेष्ठों की संगति अभिमान को मारती है। सत्संगति मनुष्य को सुधारती है। मनुष्य संगति से ही ठीक बनता है। जो वैद्य जुलाब देकर किसी रोगी की शक्ति को कम कर देता है, वह शक्ति बनाये रखने की भी औषधि देता है। इसी प्रकार पिछले ३० वर्ष में योरुप में शस्त्रों की विद्या बढ़ गई जो बुराई में प्रवृत्त हो गई और जिस से सभ्य जीवन के नाश का संकट निर्मित हो गया। ऐसे ही धार्मिक सुधार में भी है। बनाने लगे थे मनुष्य की मूर्ति किन्तु बना दी भूत की।

परलोक को न मानने वाले वास्तव में बुराई को नहीं छोड़ना चाहते। हिन्दुओं में संगति की बहुत कमी है। जहां संगति समझी जाती है वहाँ कुसंग होता है। इस युग में संत नहीं हैं, दुकानदारी बहुत है। न चाहते हुए भी मित्रगण दुकानदारी बना देते हैं। हिन्दू तो जीव को ब्रह्म के ऊपर चढ़ा देता है। वेदान्त वाक्यों को सुनने के लिये और आत्मा को जगाने के लिये उपनिषदों का पाठ करना चाहिये। इससे यह मार्ग सुगम हो जाता है। याज्ञवल्क्य ऋषि ने मैत्रेयी को उपदेश दिया कि जानने वाले को कैसे जाना जाय। जलते दीये को दीया लेकर देखने कैसे जायें। कबीर ने गाया है, "पिया मिला मोहे मेरे घर में "इससे ये समझना चाहिये कि केवल मुख ही फेरना है। जो बाहर देखता है उसका मुख ही अन्दर की ओर मोड़ दो। साधक तो आप ही अपने आप को देख सकता है। अपना आप अन्दर ही बताने लग जायेगा। जो यह सोचता है कि आत्मा कौन है, यह सोचे कि यह कौन है जो विचार कर रहा है। कर्ता को सामने करे फिर जैसे बुले शाह ने कहा है,

अपने आप ही कहेगा, "तेरे जया न दिसदा कोई।"

मैं क्या हूँ? मैं अपने आप को देखूँ तब स्वयं ही पता चलेगा। इस प्रकार जब साधक बहुत चिन्तन करता है तो लक्ष्य पर पहुँच जाता है। जैसे मूँज की पूली में से तिनका अलग कर लिया जाता है इसी प्रकार पाँच तत्त्व से चेतन को अलग करे,फिर समझे। यह यत्न कोई नहीं करता। न्यारिये ने सोने की कनी अलग कर दी।अलग की हुई दिखला दी। फिर भी मोह माया की, दम्भ की रेत में मिलाते हो—यह अपराध किसका?

आत्मा का स्वरूप

पिछले प्रकरणों में उपनिषदों के वाक्यों का वर्णन होता रहा है। कल कहा था कि साधक अपना आत्मा जानने की चेष्टा करे। जैसे मूँज के पूले में से तिनका निकाल लिया जाता है,ऐसे ही आत्मा को प्रकृति से पृथक करे और जाने।

पृथक करने के कई उपाय हैं, सांख्य की पद्धति है "नेति-नेति, "यह भी नहीं, यह भी नहीं। अर्थात् आँख आत्मा नहीं, प्राण आत्मा नहीं, यह आत्मा न जल है ना आकाश है—यह नेति नेति की पद्धति है।

महर्षि याज्ञवल्क्य ने कहा है कि आत्मा प्रकृति की वस्तु नहीं है। जो इसको जानते हैं, इसको आँखों के सामने लायें। चेतन वस्तु प्रकृति से भिन्न है। प्रकृतिवादी मनुष्य इसे अनुभव करने की चेष्टा करते हैं। वे मिश्रण और विश्लेषण की पद्धति से देखते हें। तीन चार वस्तुओं को मिला कर क्या रँग आता है। पृथक पृथक करके देखना विश्लेषण है। इससे आत्मा का ज्ञान नहीं होता। आत्मा प्रकृति का अंश नहीं है। स्थूल न होने से यह इस रीति से जानने योग्य नहीं है। तो फिर जब तक स्वरूप न बनायें इसको कैसे समझें? जैसे आकाश चित्र में दिखाना हो तो नीला दिखाया जाता है। उसका प्रतिबिम्ब

दिखाया जाता है। ऐसे ही यह रीति है कि हम स्वरूप बांधते हैं।

रूप में कोई वस्तु प्रगट हो जाये तो कोई आश्चर्य नहीं। दो वस्तुओं के मिलने से एक तीसरी वस्तु पैदा हो जाती है। रगड़ से बिजली पैदा हो जाती है। यदि है तो पैदा होती है।

साधक पहले स्थापना करे कि वह है। यदि यह न हो तो इस मार्ग पर चल नहीं सकता। उपनिषद् ने यह कहा है कि यह मानना चाहिये कि जो तत्त्व भाव है कि उसका स्वरूप प्रगट होता है। यदि स्थापना न करें तो प्रगट क्या करें। यह कहे कि आत्मा है। फिर यह किस स्वरूप वाला है। अपने आप को मानना बहुत बड़ी बात है। परमेश्वर भी अपने आप को मानने से प्रगट होता है। एक मानता है कि ब्रह्म निर्वचनीय है, निर्विशेष है, हर स्थान पर व्यापक है। अब इसका लक्ष्य क्या है? कोई कहे कि मैं ब्रह्म ज्ञानी हूं तो उसने यह कैसे जाना? विष्णु का जानना तो आता है, प्रगट होना भी आता है। मुझे कहना यह है कि यह भाव रखें कि परमेश्वर किस स्वरूप में अवतरित हो। यदि न हो तो उसके लिये क्या बात है? यदि जानना है तो किस स्वरूप में। जिन्होंने जाना है वे कहते हैं, "हे मेरे प्रभु तू है—वेदाहं अनुपम पुरुषं, वेदं अद्य वर्णम्—मैं उस पुरुष को जानता हूँ, वह आदित्य वर्ण है।" अज्ञान से परे उस पुरुष को जान कर पुरुष मृत्यु से पार हो जाता है। दूसरा कोई मार्ग नहीं है। यह बात जानी हुई है और इसमें स्वरूप बाँध दिया है। ऐसे संत भी हुए हैं जिन पर वह प्रगट हुआ है। ऐसा हम मानते हैं। श्रुतियाँ वर्णन करती हैं, तू इस यज्ञ में आ और बोल। जिससे तेरे शब्दों को हम सुन सकें। हमारे मार्ग में चलने वाला पथ प्रदर्शक हो। हे मेरे परमेश्वर! तू आप आ कर यज्ञ कर। यह भक्तवाणी है।

जब किसी वस्तु को जानना होता है तो उसका स्वरूप भी होता है। हम जिन स्वरूपों से परिचित हैं उन में वह प्रकट होवे और उन्ही में होना चाहिए। इस को जिज्ञासु जाने।

मानस जगत में स्वरूप बाँधना रीति है। हम तो ज्योति की कल्पना करते हैं। सम्भवतः ज्योर्तिमय ही हो। यह भी कहते हैं कि सूक्ष्म लोक अपने स्वरूप से प्रकाशमान हैं। यह ज्योर्तिमय आत्मा है। ज्योति तो आँख का विषय है। वह ज्योति किस प्रकार की है? यह आँख बन्द करने से सूर्य नहीं दीखता। किन्तु आँख बन्द करने से जो ज्योति दिखाई देती है वह बड़ी महत्त्वपूर्ण है। आत्मलोक ज्योर्तिमय है। ज्योति चर्मचक्षु की नहीं होनी चाहिए। सूक्ष्मलोक प्रकाशमय है। ऐसे स्वरूप में अंधेरा नहीं है। वह शुद्ध वस्तु है।

उपनिषदों ने और भी कहा है। वह आत्मा आनन्दमय है। इस शरीर से निकलकर परम ज्योति के स्वरूप को लाभ कर अपने स्वरूप में चमचमा उठता है। यह अनुभव के वाक्य हैं। एक प्रकाशमान वस्तु दीवा है। यह जो स्वरूप बाँधा तो जानने वालों ने कहा यह इसका वर्णन है। जो बादलों की घटा से बाहर है इस माया से ऊपर, बन्धन से स्वतन्त्र होकर इसका निरूपण है। यह आप का स्वरूप है।

यदि कोई कहे कि जब मैं नहीं रहा—मर गया—तो कुछ नहीं रहा—यह नास्तिकवाद है। इस प्रकार के असुरभाव करोड़ों में पैदा होकर एक ही आसुरी मूर्ति बन जाती है। आस्तिक लोगों ने मनुष्य का बड़ा सुन्दर स्वरूप बनाया। उसे अद्‌भुत देव बना दिया। इसमें रहते हुए स्वर्ग का राजा हो सकता है। उपनिषदों ने इसके हृदय में चाँद, सूर्य और तारे निरूपण किए हैं। सारे विश्व का राज्य इस मनुष्य में स्थिर किया है। इस युग में इसी मनुष्य में बड़ी गन्दी-गन्दी धारणाएँ भर दी गई हैं। अब यह मयखाना बना दिया गया है। आस्तिकवाद से तो कोई बात आई किन्तु नास्तिकवाद से कुछ भी नहीं आती। साधक अपने स्वरूप को जाने।

(vi) आत्मा अमर है

कल मैंने यह निवेदन किया था कि श्रुति आत्मा के सम्बन्ध

में यह कहती है कि इस आत्मा को हम जानें।
ज्योतिर्मय प्रकाशमय समझें। यह तेजोमय आत
अविनाशी है, न मरने वाला है, न मिटने वाला है
यह है कि यह किसी से नहीं बना, मिश्रत भी नह
उपनिषदों ने इसका नाम परमसत्य कहा है। स
सत्य है। सत्य और अमृत एक ही अर्थ को सि
आत्मा अमृत है। यह आत्मा के स्वरूप का वण
सत्य आत्मा है।

साम्प्रदायिक ग्रन्थ धर्म के अनेक लक्षण क
मनुष्य डरने वाला हो, खाने पीने में भ्रमी हो। ि
से धर्म नष्ट हो जाता है अथवा किसी विशेष वस
पतन हो जाता है। साम्प्रदायिक ग्रन्थ, धम
भिन्न-भिन्न वस्तुओं में भिन्न-भिन्न बताते हैं
एक देशीय हैं। धर्म का लक्षण सत्य तो सर्वव्य
उसे कहते हैं जो सदा रहने वाला हो। श्री कृष्ण ज
अर्जुन को भीरुता और दीन भाव हटाने के लिए
दीन भाव आ जाता है तो राष्ट्र नहीं बनता। जब
दैन्य भाव आ जाता है तो वे गिर जाते हैं।

जब यह बात श्री कृष्ण जी महाराज ने अर्जुन
वह अत्यन्त विनम्र हो कर बोला, "मैं हत्या नहीं
में यदि मेरी हत्या हो जाए तो मेरा कल्याण हो
धनुष तो मेरे हाथ से खिसक रहा है और मेरा
है। मेरे अंग शिथिल हो रहे हैं। मैं खड़ा भी नह
मेरा मस्तक चक्कर खा रहा है।" अर्जुन का य
सत्य का बोध होने से हटा। भगवान ने कहा कि
अपना बोध हो जावे, यह बड़ी बात है। ि
चार-पाँच शेर ही होते हैं। गीदड़ और चूहे
क्या? हम दीन भाव के अधिक गीत गाया करते
ने अर्जुन की दीनता को धिक्कारा है—"यह जो
यह तो अनार्य कर्म है। यह तेरे ओछे दिल की

तेरी जाति का काम नहीं। यह नर्क की वस्तु है। तेरे अपयश को फैलाने वाली है।" बड़ी भारी धिक्कार दी। उसकी दया को म्लेच्छपन और हीजड़ापन कहा है। जो अर्जुन की दया थी उसको श्री कृष्ण जी महाराज ने दीनता कहा। यह कोई ऊँचा दार्शनिक ही कह सकता है कि तू आत्मा है, तुझे कर्तव्य का पालन करना चाहिए।

जो नहीं है अर्थात् असत्य है, उसका भाव—होना—नहीं होता। अन्धकार से तो केवल अन्धकार ही पैदा होता है। सत्य नास्ति में प्रवर्तित नहीं होता। अस्तित्व नेस्ति में नहीं आता, यह उपनिषद् का कहना है। प्रज्ञा का मूल सत्य है। यह निरपेक्ष वस्तु है, किसी से उत्पन्न नहीं हुई। यह सिद्धान्त तत्त्वदर्शियों ने देखा है। आत्मा सत्य है। इसका त्रिकाल नाश नहीं होगा। गीता का कहना कितना ऊँचा है। जब तक परमाणु की शक्ति नहीं निकली थी तो मानते थे होगी। किन्तु गवेषणा (खोज) से लोगों ने परमाणु की शक्ति को प्राप्त करके देखा। जो परमाणु तुच्छ समझा जाता था उसने कितना बड़ा होकर दिखा दिया। यदि भगवान प्रकट होते हैं तभी तो मनुष्य उपासना करते हैं। पतन्जलि जी ने कहा कि स्वाध्याय से, आराधन से उसका साक्षात्कार होता हैं। सत्य वस्तु का प्रकटीकरण होता है। वह अपने आप को प्रकट करता है। जब द्वार ही बन्द कर दिया जाए तो फिर प्रकट ही क्या हुआ? यदि मान लिया जाए कि आत्मा नहीं में से पैदा होता है तो आप के आगे क्या आएगा? अपने अस्तित्व पर निश्चय हो कि मैं सत्य हूँ और फिर गहरी डुबकी लगाए तो अपने अस्तित्व का प्रकाश होना ही चाहिए।

भगवान ने अर्जुन को कहा, कभी ऐसा समय नहीं था, तू नहीं था। वह त्रिकाल और त्रिलोक में विद्यमान है और इन सब लोक-लोकान्तरों से बड़ा है। यह मेरा आत्मा है। आत्मा सत्, चित्त, शुद्ध, आनन्द शक्ति है। अहं भाव लाने से आत्मभाव जगता है, इसको कैसे जाने? "सुन सुन अन्धे पाँवें राह"।

विश्वासी आदमी भी वहाँ चला जाता है जहाँ और जाते हैं। यह मैं हूँ इस प्रकार जाने। यह अपने अन्दर मनन करे। वह आप किसी दिन कहेगा कि वह मैं हूँ। यह भारतीय रीति बहुत ऊँची है। यह सिद्धान्त बड़ा पुरातन है। यह काल्पनिक बात नहीं है। यह धर्म है। धर्म में कोई अन्तर नहीं पड़ता। मत और धर्म में भेद है। मतों में बहुत कुछ अनुचित मिला होता है। धर्म तो शुद्ध गंगा जी की धारा है जिसमें आचार्यों और दुराचारियों का हाथ नहीं लगा। जो इधर से, उधर से नहीं बनाया हुआ।शेष मूर्तियां आचार्यों की बनायी हुई हैं। धर्म का मूल आत्मा है। इसी का निरूपण शास्त्र करते हैं।

जिसको पैतृक परम्परा में ऐसी सच्चाई मिली हो उसे गौरव करना चाहिए। जो इतनी कमाई सम्भाल कर अपने पिता का नाम लेने से ले जाता है वह तो कपूत है। धर्म तत्त्व भारत से यात्रा करता हुआ दूसरे देशों में गया जैसे अब भौतिक वैज्ञानिकता यात्रा करती हुई यहाँ आ रही है। गीता का ज्ञान, उपनिषदों का उपवाद बड़ा ऊँचा है। हमारे ऋषियों ने इसे आत्मा की ध्वनि द्वारा कहा है।

(vii) समर्पणे त्यागम्

उपनिषद् बहुत ऊँचे ग्रन्थ हैं। इन में ऋषियों ने अपने अनुभवों का वर्णन किया है। भारतीय विचारधारा पर इस का गहरा प्रभाव है। सन्तों की वाणियों में भी इन का प्रभाव है।

ईषावास्वयं इदं सर्वम्, यत्किंच जगत्याम् जगत् — जो ये सब कुछ दीख रहा है, वह भगवान से बसाने योग्य है। इस में भगवान को बसाओ। इस में अपने आप को मत बसाओ। जो जितना ही अपने आप को इस में बसाता है वह उतना ही दुःखी होता है। ऐसा समझो कि ये सब वस्तुएं भगवान की हैं। हमें तो केवल उपयोग के लिये मिली हैं। इन में अपना ममत्व नहीं जोड़ना चाहिये। भगवान की सृष्टि में दुःख नहीं है। जीव मोह और लोभ के वश होकर अपनी सृष्टि रच कर दुःखी होता है।

भगवान की सृष्टि ऐसी ही रहती है। ममता करने वाले लाखों आए और चले गए।

जिस में यह भावना हो कि भगवान सृष्टि का आत्मा है तो उसके लिये सृष्टि मधुर हो जाती है। तू त्याग से पदार्थों का उपभोग कर। अनुराग में ही वैराग्य है। जब भगवान का अनुराग हो जाये तो संसार से स्वतः ही वैराग्य हो जाता है।

कीर्तन और हरि गीतों ने न जाने कितनी जनता को संमार्ग पर लगाया है।

समर्पणे त्यागम्—समर्पण में ही त्याग है। भक्ति मार्ग में समर्पण ही त्याग है। यह बड़ा भारी त्याग है। हरि चरणों में अनुराग ही वैराग्य है।

तेन त्यक्तेन भुंजीथा—भगवान की सृष्टि समझ कर उसके पदार्थ समझ कर उसका उपभोग करो। परमेश्वर की सब वस्तुएं हैं, ऐसा मनन करना बड़ा त्याग है। कोई एक महीना करके देखे, कितना आश्चर्यजनक लाभ होता है। जिसने अपना आप समर्पण किया हुआ है वह बड़ा त्यागी है। समर्पण करके खाने वाला अमृत खाता है।

सांसारिक पदार्थों का उपभोग करो किन्तु लोभ न करो। यदि मन में लोभ जागृत हो तो सोचो यह धन किस का है अर्थात् किसी का नहीं। ऐसा सोचने से लोभ की वृत्ति दब जायेगी। धन के दो उपयोग हैं—एक उपभोग, दूसरा दान। और ये दान न करो तो फिर इसकी तीसरी गति होती है—नाश।

वेदों में मानव तन

आत्म शक्ति का निवास-स्थान—सिर

(अथर्व वेद का एक मंत्र पढ़कर श्री महाराज जी बोले) मनुष्य का जो सिर है इसमें आत्मशक्ति का निवास है। और यह कि वह सिर बड़ा उत्तम है। और वह जो अविनाशी आत्मा का सिर है वह दिव्य शक्तियों का कोष। केवल इसमें हड्डियां या नसें ये ही नहीं, वे तो हैं ही। पर यह तो दिव्य कोष, दिव्य शक्तियों का स्थान। किसी युग में यह बात जानी गई कि यहां राम कृपा का अवतरण होता है। या कृपा निवास करती है और यह सरल है। प्रकृति में जो चीज़ स्वयं बनती है वह सरल नहीं। (यह) दिव्य कोष है और सरल है। मशीन जैसी पेचीदगी इसमें है नहीं। स्वभाव से सरल यह बना हुआ है। यह मनुष्य के मस्तक की एक प्रकार की प्रशंसा की। इसकी रचना के लिए क्या कहना।

अब अगले पद में इसकी रक्षा और पुष्टि का वर्णन है। रक्षा में पुष्टि मिली हुई है। इन से यह होती है। मनुष्य को अपना मस्तक उज्जवल और स्वच्छ बनाना हो तो प्राण पवन जितनी अच्छी मिलेगी उतना ही वह अच्छा होगा। शुद्ध पवन में रहने वालों के दिमाग अच्छे होते हैं। लोग कहेंगे कि फिर कोल भील आदि क्यों बहुत उत्तम बुद्धि वाले नहीं होते। भई कमल के खिलने के लिए केवल यह ही नहीं कि जल में हो अपितु सूर्य ज्योति और दूसरी चीज़ें भी आवश्यक हैं।

जीवन शक्तिदाता सूर्य

भावना फिर प्राण लेते हुए भी बड़ी आवश्यक है। प्राण को जीवन शक्ति भी कहा है। आदमी में भावना होनी चाहिये। लाभ तो धूप में जो होता है वह होता है किन्तु भावना हो कि सूर्य की शक्ति से मिलाप हम कर रहे हैं। तो ऐसा दस मिनट का सूर्य

सेवन जो है वह सारे दिन के सूर्य समीप बैठे रहने से अच्छा है। नहीं तो मनुष्य तो विचार वाला है तो इसके विचार खड़े हो जाते हैं कि शरीर काला न हो जाए। तो फिर यह भावना तो मनुष्य को रोकती है। सौन्दर्य के विचार से युरोपियन स्त्रियां (वसन्त) काल में भी छतरियां लेकर चलती हैं। सम्भवतः बुरका का रिवाज भी इसी प्रकार चला हो। फिर इस प्रकार कम से कम पीला तो पड़ ही जाता है। जब ऐसा विचार किया कि हानि देगा तो फिर तो कोई बात न हुई। किन्तु इस भावना से, कि बल देता है, तो फिर थोड़ी सी देर के सूर्य सेवन से क्या भला रंग काला हुआ करता है। युरोप में जहां सूर्य कम ही दिखाई देता है, समुद्र की रेतों में लेट कर सेवन करते हैं। हमने सुना है—वृत्तपत्रों में लिखा देखा। गर्मी में भारत में अवश्य गर्मी तीव्र होती है किन्तु प्रातःकाल का समय तो सदा ही बहुत अच्छा होता है। एक से किसी ने पूछा तो इसने कहा कि वसन्त में बाहर घूमने का बड़ा लाभ है। तो फिर वसन्त तो एक ऋतु। साल में केवल दो मास आती है किन्तु सवेरे की दो चार घड़ी का सूर्य तो सदा ही वसन्त का है। प्रातःकाल उदित सूर्य बहुत ही अच्छा, बहुत ही लाभदायक होता है। दोपहर की किरणें सीधी होने के कारण तीक्ष्ण होती हैं। वे तीव्र होती हैं। प्राण जो है वह सूर्य से आता है। जीवधारियों और भूमि को भी शक्तिदान सूर्य ही देता है। ऐसा यह लोग कहते हैं जो ज्ञानी—सूर्य तो जीवन तत्त्व है। सूर्य पर बहुत मंत्र हैं वेदों में, तो यह देव सूर्य अपने आकर्षण करने वाली किरणों से मृत्यु और अमृत दोनों भरता हुआ आता और जाता है। सब गंध दुर्गंध ही होता यदि यह (सूर्य) डाक्टर न होवे। तो मनुष्य को तो फिर वाद विवाद की आवश्यकता ही नहीं। सूर्य नष्ट करता है गंध को और जीवन देता है। प्राण सूर्य से वनस्पति में आता है। गांव में सब्जी आदि का खाना। बड़े नगरों में मरने का क्या आश्चर्य अपितु जीते कैसे हैं यह आश्चर्य की बात है। मौत तो पत्ते पत्ते में बसती है। जीवन तत्त्व (प्राण) सूर्य से वनस्पति में आता है। इस प्रकार गाय और भैंस का दूध

अच्छा जो बाहर चरने जाती हैं और बाहर रहतीं उनकी अपेक्षा जो कि मकान में बंधी रहती हैं। सूर्य की किरणों के सम्पर्क से प्राण वनस्पतियों और पानी में आता है। पानी का नाम भी प्राण है संस्कृत में। फिर जिस पानी पर सूर्य की किरणें पड़ें वह पानी भी अच्छा। जलपान से भी और स्नान से भी प्राण मिलता है।

प्राण और अन्न—शरीर के रक्षक

जितना अच्छा प्राण जाए उतना ही मस्तक खिलेगा। यह जो मस्तक कमल है इसका प्राण से बड़ा संबंध है। मुझे कहना यह है कि खाद्य पदार्थों में भी प्राण शक्ति है और प्राण पवन में भी है। भारत की स्थिति ऐसी है। दूसरे देशों की भी कि मकानों में बहुत कम खिड़की है। किसान सारे दिन खेतों में। सुन्दर पवन में किन्तु रात के समय सोते, बस दादा के पास अंधेरी तंग कोठरी में। वहीं डंगर भी और फिर कोई दरवाजा नहीं, खिड़की नहीं। यह देश में चोरी आदि के कारण और कुछ पता नहीं होने के कारण। इसलिये भी पवन के गमनागमन का विचार कम रखते हैं। यह (पवन का खुला आना जाना) आवश्यक है। —सूर्य की किरणें, पवन ये सब डाक्टर हैं। इसके लिए मार्ग आवश्यक है। इतने मार्बल चिप्स आवश्यक नहीं। केवल एक दरवाज़ा हो तो भी निकलने का रास्ता न होने के कारण खुली पवन नहीं आती। रात में कपड़े ओढ़ कर, अंधेरी रात में, कम्बल में मुंह ढककर सोना तो चांद कहां से आवे। इससे तो हवा बोझल होती जावे। अन्ततः नाक भी चौधरी के भट्टे की चिमनी के समान चलने लगे। इस भारी गन्दी पवन का लेना तो ऐसे ही है जैसे देहली की गन्दी नाली का पानी पीना। तो फिर दिन भर की पवन क्या करे। वह आत्म विश्वास न होगा। वह वीरता नहीं होगी। मस्तक नहीं खिलेगा।

मस्तक खिलता है शुद्ध पवन से, खुली हवा से, रोशनी आती है मस्तक में। प्राण रक्षा करता है। यह कहा फिर यह कि अन्न भी रक्षा करता है। रक्षा का अर्थ है पुष्टि भी। जो चीज़

ग्राई जावे वह सब अन्न है। काल खाता है, यह सारा जग अन्न
। और काल को भी खाने वाला (भक्त), इसलिये काल भी
अन्न है। सूक्ष्म तत्त्व जो है वह इसकी रक्षा करता है।

तीसरी बात जो कही गई वह इस प्रकार है। मुझे तो बहुत
आती वह नहीं किन्तु वैद्य लोग जानते हैं। वैसे भी भारत
रकार भी अभी नई है। अभी तो अन्न का ही प्रश्न बड़ा।
सरे देशों में अन्न की मर्यादा सिखाते हैं। इधर जो है वह तो
साम्प्रदायिक कि मूली न खा। इसका कोई मोल नहीं। इसका न
चरित्र की दृष्टि से समर्थन न डाक्टरी दृष्टि से। यह दिव्य कोष
—मस्तक—सरल है स्वभाव से यद्यपि (इसमें) जटिलता जो है
वह इंजीनियर भी क्या जाने। किसी आदमी ने खण्डन किया कि
मनुष्य का यह शरीर गॉड ने बनाया, कि मैं तो ऐसा न करता कि
मनुष्य मलमूत्र के द्वारों से पैदा हो। किन्तु सोचे तो सही। थोड़े में
इतनी रचना। डाक्टर सोचे तो सही। पेट चाक करके निकालते
, जब बच्चा न हो तो भी केवल दो बार। यह तो कोई ऐसी
सरल मशीन नहीं है। (मनुष्य शरीर)।

मैं निवेदन कर रहा था कि सरल जो कहा गया है, इस पर
बोल रहा था—मस्तक—यह वर्णन किया कि प्राण इसकी रक्षा
करता है और अन्न भी—इसका भी थोड़ा सा वर्णन किया।

यह अथर्व वेद का वर्णन जो मैं आपके आगे रखता आया हूं
इसमें मनुष्य के पद का वर्णन है—अन्त में मनुष्य का मोल
मनुष्य ही डालता है। इतना जो इसका महत्व हुआ है। वर्णन है
कि देवता भी इसको तरसते हैं और इससे ही मुक्ति का मिलना
। यही नहीं मनुष्य के लिए बहुत ग्रन्थ और साहित्य इसके
महत्त्व के बारे में लिखे गए हैं। अध्यात्म दृष्टि से यह वर्णन
हुआ है। पुरातन यह है। पुस्तकों के बारे में तीन प्रकार से कहा
जाता है और विचार किया जाता है। (१) भ।व।
अवतरित—इसका संबंध मानने से ही है।
पूर्वकाल की बात—जब तिथी दी हुई न
पूर्वकाल की बात जैसा रामायण का

ऐतिहासिक। रामायण महाभारत और वेदों के ग्रंथों की भाषा नहीं मिलती। वेदों की संस्कृत ब्राह्मण ग्रंथों से पुरानी है। पर इसका दिन निश्चित करना मत में हो सकता है पर बुद्धि का आधार—विचार से यही समझे कि इतिहास से पहले का काल (वेदों रचना का)। प्रसंग आ गया। मुझे यह कहने में संकोच नहीं कि रामायण पर ऐतिहासिक दृष्टि, वह रामायण से है। रामायण से सिद्ध की गई है, बाहर से कोई अधिक नहीं लिए गए। राक्षस आदि का वर्णन रामायण के अनुसार इसमें है। आर्य जाति से इन राक्षसों का कोई संबंध है नहीं। ऐसे इसमें और भी वर्णन है। सीता स्वरूप का भी वर्णन। इससे यह सिद्ध किया गया है कि वे संस्कृत भाषा बोलते थे। मकान बड़े सजे हुए होते थे। राज्य की स्थापना वैदिक रीति से होती थी। जटायु का (वर्णन) भी ऐतिहासिक है। मिथक शास्त्र (Mythology) से नहीं। इसमें एक प्रसंग है। विंध्याचल की चोटियों पर बर्फ रामायण काल में (पड़ती थी)। किसी वर्णन में आया है, नासिक के पास का, कि सरोवर जम गए। अब तो बर्फ हिमालय से भी दूर जा रही है तो हिमानी (Glacier) हिम जमा हुआ बड़ा निकट था। हिमानी की चट्टानें बड़ी निकट मिलती हैं। अब बर्फ जाती है पीछे पीछे। विंध्याचल की चोटियों पर रामायण काल में बर्फ पड़ा करती। वेद ब्रह्मण ग्रन्थों से पहले (के बने हैं)। कहना यह है कि इतिहास से पहले के हैं। यह कोई क्राईष्ट के समय या शाक्य मुनि के समय (बने हों) ऐसी कोई बात नहीं। जाति का तो ऋग्वेद में भी वर्णन आता है किन्तु जातियों के संघर्ष थे नहीं (उस समय)। यह बात तो प्रसंग गत कही।

जो पुर, नगरी ब्रह्म की है, जिसका यह जीवात्मा पुरुष है, इसके ज्ञान को जो जानता है उसकी बुद्धि ज्ञानी है। तन भी कोई शक्ति है ऐसा सोचना चाहिये। बुढ़ापे आदि की ओर से मन को दुर्बल जानना तो ठीक नहीं। बुढ़ापा अपने हाथों भी तो लोग लाते हैं। अजी अब क्या है, अब बुढ़ापा। पचास साल की आयु। मुझे कहना यह है कि बरसों के साथ मरने को बांधें नहीं। बंधा

होगा तो पैदा होते भी तो मरते हैं। "यहां यूं भी वाह वाह और वूं भी वाह वाह।" मन का बुढ़ापा न हो तो तन का बुढ़ापा कुछ नहीं। जटायु की हजारों वर्ष आयु लिखी। गीदड़ों के जवान बच्चे भी कुत्तों के आगे भागते हैं। वर्षों में मनुष्य भीरू नहीं। सोचना चाहिये कि तन में कोई शक्ति है। बुद्धिमान वस्त्र मोटे पहनकर अपने को मोटा तो नहीं मानता। तन के दुवलेपन के साथ उसको (मन को) दुबला न बनाना। जो सदा ही तरुण बने रहने वाली चीज है वह मैं हूं। तन के (वृद्ध होने से मैं वृद्ध नहीं होऊंगा)। हम मृत्यु को प्रायः अपने पास लाते हैं। वास्तव में भक्तों के वचनों में तो कम ही ऐसा आया करता है। मत चंचलता करो यहां तो रहना नहीं। यह तो किसी साधु का, जो दुख के मारे घर से निकला इसका बनाया हुआ ऐसा गीत है। यह बहुत बुराई के गीत तो उन्हीं के बनाए हुए हैं।

जो ब्रह्म के ज्ञान (आत्मिक ज्ञान) का ज्ञानी है इसको ज्ञान नहीं छोड़ता है और जरा से इसकी प्राण शक्ति कम नहीं होती। नैपोलियन जिस द्वीप में रखा हुआ था इस काल का, कहते हैं, कछुवा वहां पड़ा है। सांप, कोवा, कछुवा—इनकी आयु अधिक (होती है)। मनुष्य ने घटाई (है अपनी जीवनी)। सम्भवतः यह कारण कि बढ़ता बहुत है (संख्या में)। लड़ाई और बीमारी न हो तो फिर न जाने कितने हो जाएं। यदि न मरें। फिर बुढ़ापा सौ साल बाद तो सरलता से और इससे भी देर से। अब चर्चिल कितने वर्ष का है। वह कितनी व्यवस्थित जाति का शासन कर रहा है। हमारे देश में जरा बेढब काम करते हैं और नियम से (काम) नहीं (रहते)। यहां तो जैसे कुम्हार गधों का दम निकल जाए तब ही छोड़े, सब ही का यह हाल है। न वकील, न मिनिस्टर यहां तो (भारत में) चार भाई छोड़ आवें तभी रिटायर होते हैं। इसी से आदमी शीघ्र बूढ़ा होता है। अनेक काम अपने सिर पर लेना, यह वृत्ति। बहुत कम्पनी, फिर अनियमित जीवन, प्रोफेसरी और फिर ट्यूशन तो फिर आयु कम (तो होगी ही)।

ऐतिहासिक। रामायण महाभारत और वेदों के ग्रंथों की भाषा नहीं मिलती। वेदों की संस्कृत ब्राह्मण ग्रंथों से पुरानी है। पर इसका दिन निश्चित करना मत में हो सकता है पर बुद्धि का आधार–विचार से यही समझे कि इतिहास से पहले का काल (वेदों रचना का)। प्रसंग आ गया। मुझे यह कहने में संकोच नहीं कि रामायण पर ऐतिहासिक दृष्टि, वह रामायण से है। रामायण से सिद्ध की गई है, बाहर से कोई अधिक नहीं लिए गए। राक्षस आदि का वर्णन रामायण के अनुसार इसमें है। आर्य जाति से इन राक्षसों का कोई संबंध है नहीं। ऐसे इसमें और भी वर्णन है। सीता स्वरूप का भी वर्णन। इससे यह सिद्ध किया गया है कि वे संस्कृत भाषा बोलते थे। मकान बड़े सजे हुए होते थे। राज्य की स्थापना वैदिक रीति से होती थी। जटायु का (वर्णन) भी ऐतिहासिक है। मिथक शास्त्र (Mythology) से नहीं। इसमें एक प्रसंग है। विंध्याचल की चोटियों पर बर्फ रामायण काल में (पड़ती थी)। किसी वर्णन में आया है, नासिक के पास का, कि सरोवर जम गए। अब तो बर्फ हिमालय से भी दूर जा रही है तो हिमानी (Glacier) हिम जमा हुआ बड़ा निकट था। हिमानी की चट्टानें बड़ी निकट मिलती हैं। अब बर्फ जाती है पीछे पीछे। विंध्याचल की चोटियों पर रामायण काल में बर्फ पड़ा करती। वेद ब्रह्मण ग्रन्थों से पहले (के बने हैं)। कहना यह है कि इतिहास से पहले के हैं। यह कोई क्राईष्ट के समय या शाक्य मुनि के समय (बने हों) ऐसी कोई बात नहीं। जाति का तो ऋग्वेद में भी वर्णन आता है किन्तु जातियों के संघर्ष थे नहीं (उस समय)। यह बात तो प्रसंग गत कही।

जो पुर, नगरी ब्रह्म की है, जिसका यह जीवात्मा पुरुष है, इसके ज्ञान को जो जानता है उसकी बुद्धि ज्ञानी है। तन भी कोई शक्ति है ऐसा सोचना चाहिये। बुढ़ापे आदि की ओर से मन को दुर्बल जानना तो ठीक नहीं। बुढ़ापा अपने हाथों भी तो लोग लाते हैं। अजी अब क्या है, अब बुढ़ापा। पचास साल की आयु। मुझे कहना यह है कि बरसों के साथ मरने को बांधें नहीं। बंधा

होगा तो पैदा होते भी तो मरते हैं। "यहां यूं भी वाह वाह और वूं भी वाह वाह।" मन का बुढ़ापा न हो तो तन का बुढ़ापा कुछ नहीं। जटायु की हजारों वर्ष आयु लिखी। गीदड़ों के जवान बच्चे भी कुत्तों के आगे भागते हैं। वर्षों में मनुष्य भीरू नहीं। सोचना चाहिये कि तन में कोई शक्ति है। बुद्धिमान वस्त्र मोटे पहनकर अपने को मोटा तो नहीं मानता। तन के दुबलेपन के साथ उसको (मन को) दुबला न बनाना। जो सदा ही तरुण बने रहने वाली चीज है वह मैं हूं। तन के (वृद्ध होने से मैं वृद्ध नहीं होऊंगा)। हम मृत्यु को प्रायः अपने पास लाते हैं। वास्तव में भक्तों के वचनों में तो कम ही ऐसा आया करता है। मत चंचलता करो यहां तो रहना नहीं। यह तो किसी साधु का, जो दुख के मारे घर से निकला इसका बनाया हुआ ऐसा गीत है। यह बहुत बुराई के गीत तो उन्हीं के बनाए हुए हैं।

जो ब्रह्म के ज्ञान (आत्मिक ज्ञान) का ज्ञानी है इसको ज्ञान नहीं छोड़ता है और जरा से इसकी प्राण शक्ति कम नहीं होती। नैपोलियन जिस द्वीप में रखा हुआ था इस काल का, कहते हैं, कछुवा वहां पड़ा है। सांप, कोवा, कछुवा—इनकी आयु अधिक (होती है)। मनुष्य ने घटाई (है अपनी जीवनी)। सम्भवतः यह कारण कि बढ़ता बहुत है (संख्या में)। लड़ाई और बीमारी न हो तो फिर न जाने कितने हो जाएं। यदि न मरें। फिर बुढ़ापा सौ साल बाद तो सरलता से और इससे भी देर से। अब चर्चिल कितने वर्ष का है। वह कितनी व्यवस्थित जाति का शासन कर रहा है। हमारे देश में जरा बेढब काम करते हैं और नियम से (काम) नहीं (रहते)। यहां तो जैसे कुम्हार गधों का दम निकल जाए तब ही छोड़े, सब ही का यह हाल है। न वकील, न मिनिस्टर यहां तो (भारत में) चार भाई छोड़ आवें तभी रिटायर होते हैं। इसी से आदमी शीघ्र बूढ़ा होता है। अनेक काम अपने सिर पर लेना, यह वृत्ति। बहुत कम्पनी, फिर अनियमित जीवन, प्रोफेसरी और फिर ट्यूशन तो फिर आयु कम (तो होगी ही)।

मार्शल टीटो ने कोई भाषण २० या २५ मिनट से अधिक का नहीं किया। बड़ा आयु का भी (यह है)। इसने काम भी बहुत किए। वह दाने जैसा पिसता नहीं। पांच छः डयूटी लेने वाला या तो पिस जायगा या काम निकम्मे करेगा। फिर बड़े पेड़ के नीचे और पौधा कहां उगेगा। हर एक को अपनी ड्यूटी दो। मैं ही करूंगा, मैं ही बोलूंगा, ऐसा क्या। कहना यह था कि बुढ़ापा हम खींचकर बहुत लाते हैं (नियमित जीवन न बिताने से) अजी! बाबूजी! आप पर तो बुढ़ापा आ गया। चेहरा पीला पड़ गया। हां जी, मैं बीमार रहा। यह मुसलमानी नवाबी सभ्यता। यह प्राचीन सभ्यता नहीं। मुझ से भी कहते हैं (लोग कि अब तो आपकी आयु अधिक हो गई)। अजी वह बात नहीं रही। यह हिन्दू सभ्यता की नहीं (ऐसे कहना)। मुझे कहना यह है कि (ऐसा कहना) प्रभाव ही खराब करता है। यदि सहानुभूति जताते हैं (ऐसा कह कर) तो मैं तो नहीं समझता यह सहानुभूति की सभ्यता। यदि यह विचार हो कि यह ब्रह्मपुरी अयोध्या जरित होने वाली नहीं। दूसरे की नहीं। अपने आप को बोध देना कि यह ब्रह्म निवास है। आत्मदेव सदा तरुण (रहते हैं)। यह पिंजरा जरी भूत है पर पंछी तो सदा तरुण है। ऐसी भावना से वेद मंत्र दान देते।

पिछले कथनों में यह चर्चा हो चुकी है—

(१) मनुष्य का मस्तक जो है वह दिव्यकोष है,

(२) इसमें आत्मशक्ति को प्रतीत किया गया

(३) ब्रह्मपुरी है मानव तन (यह मनुष्य जो है वह ब्रह्मपुरी है)

(४) अमृत से यह घिरा हुआ है (मानव तन)

(५) जो इसको जानता है वह चिर आयु को जीता है। भगवान की इस पर (ऐसा जानने वाले पर) कृपा होती है और भागवत जनों की भी।

मनुष्य शरीर देव नगरी

इस नगरी के आठ चक्र हैं। नगरी की उपमा तन को (दी है)

। आत्मदेव का इसमें वास है। नगरी इसलिए भी कि इसमें कितनी शक्तियां जैसे नगर में बहुत दुकान या मकान तथा नर नारी। इसी प्रकार शरीर में बहुत से सैल। वे अपना जीवन रखते (सैल)। अणु केन्द्र, इन में शक्तियां। केन्द्र जो दूसरों को शक्ति देते हैं, हिस्सों को। इसमें बहुत सेवक रहते हैं। सैंकड़ों हजारों जो रक्षा करते हैं। किसी नस में कोई शत्रु पैदा हो जाए तो वे इसको मारते हैं। खाते हैं। साधारणतया कीटाणु एक नस से दूसरी नस में रक्त प्रवाह (Blood Circulation) के द्वारा जाते हैं। शारीरिक शास्त्र के जानने वाले कहते हैं कि रक्षा करने वाले कीट एक नस से दूसरी नस में सीधे चले जाते हैं। यह उनके लिये अपवाद (Exception) है जैसे जलसों और ऐसे अवसरों पर सेवक के लिए अपवाद होता है। सिपाही के लिए नियम नहीं, दूसरों के लिए होता है। इस शरीर की रक्षा के लिए बड़ी भारी सेना है। इतनी सेना किसी देश की न होगी। संसार के प्रबंध का तो बड़ा अच्छा नमूना है, (मानव शरीर में) इसमें सब कुछ पाया जाता है। चीनी बनती है, एसिड, इसी प्रकार नियम है। खट्टे मीठे रस पैदा होते हैं। एक दूसरे को बड़ी भारी सहायता है। किसी के पैर के अंगूठे में कष्ट हो जाए तो आगे से सहायता पहुंचती है। सारे शरीर की शक्ति इसमें लग जाती है। मैंने बहुत पढ़ा नहीं (औषधि के विषय में) केवल प्राथमिक (Primary) समझा। तन के अन्दर ही विश्व का चित्र है।

यह नगरी (तन) अष्ट चक्र वाली है। लड़ाई में पहले [illegible] बनाते थे, चक्र बनाते थे। मूलाधार से सहस्त्र द्वार [illegible] चक्र हैं। इन चक्रों में अध्यात्मवादियों ने आत्मशक्ति [illegible] किया। डाक्टरों ने कुछ समझा। यहां तक [illegible] अध्यात्मवादियों का कहना है कि आत्मशक्ति इन [illegible] हुई है। मूलाधार चक्र दोनों द्वारों के मध्य में। [illegible] वहां से शक्ति कहो, नागन कहो कोई, जगती है [illegible] पातंजलि ने इसका वर्णन बहुत किया। [illegible] करते हैं)। वह (आत्मशक्ति) सुषुम्ना में [illegible]

धीरे धीरे ऊपर तक आती है। स्वामी दयानंद ने यह पढ़ा तो उनको कोई और चीज़ मिली नहीं। फिर शव उन को मिल गया। उसे फाड़ा। उसमें चक्र नहीं नज़र आया। तो वे तो फिर ऐसे देखने में आते नहीं। यह तो शक्ति का जागरन। इसका वर्णन किया। वह जगती अवश्य है और संचालित होकर नाभि को मूलाधार से। इस हमारी ध्यान की पद्धति से तो पहले दिन ही आठों चक्र (पार कर जाती है)। हम ऐसा ही बताते हैं कि त्रिकुटी से जागृत की जावे। पहले साधन होंगे। मैं इसका खंडन नहीं करता। अब जो भजनों में है, जिस पाठशाला में अध्ययन करने का अवसर मिलता है, इसमें (हमारी शैली में) तुरन्त अष्टम (द्वार पार कर जाती है, शक्ति)। भागवत-कृपा इतनी होती है कि पहले मंत्र सुरों से ही चक्र खुल जाते हैं। यह ठीक है कि एक सज्जन अपने ग्राम से देहली कैसे आवे—पहले समय में बैलगाड़ी से कितना रास्ता और समय लगता था। अब तो वह कार में एक घंटा में और यदि वायुयान से जाना हो तो वह तो सीधा वहां पहुंचे। कहना यह है कि मंत्र योग से तो—राम नाम के इस योग से—उसे तो आठवें का ही पता चलता है। कहना यह है कि एकदम सब ही से पार। नीचे का इसको करना ही नहीं पड़ता। यदि आत्मशक्ति वहां से जग जाए। जब आई कमल नाल तक तो सिर तक पहुंचने में इसको देर नहीं, यदि मंत्र ठीक स्फुरित हो।

पहले सड़क के साथ स्तम्भ लगवाए जाते थे। दो तीन मील पर चौकी। तो इस प्रकार पुकार से ही पता लेते थे और कहकर और आगे से जवाब। अब शक्ति है, देहली से आवाज कलकत्ता पहुंच जावे। लन्दन में बैठा सुन रहा है। आवाज कितनी तेज हो गई। इसका वेग कितना बढ़ गया। समय तो लगता है दूर स्थान को आवाज़ पहुंचने में, पर इसकी गिनती भी की गई है। किन्तु वह तो बिल्कुल मामूली है। इसी प्रकार इस मस्तक के ध्यान का। नीचे के चक्रों का उसे बोध ही नहीं। किताबी बातें। मंत्र योग से शक्ति का जागरण सहज से होता है। (शरीर रूपी

नगरी) नौ इसके दरवाजे हैं—दो आंखें, दो कान, दो नाक, दो द्वार नीचे के और मुख। दशम भिन्न है। दिव्य आनन्दपुरी यह है। यह देवों की पुरी है। असुर और दूसरे तो धींगामस्ती से आए जानो—क्रोध के, अहंकार के, विरोध के, छल कपट के। भारत में असुर बाहर से आए। निवास देवपुरी में नहीं। मैं ने जैसा ठीक वर्णन किया उनके रंग रूप का—उनके चेहरे, मद्रासी से वे भिन्न। लंका में इस प्रकार बसी हुई हिंसक जाति। इतने क्रूर कि लहू पीने लग जाना एक एक अंग तोड़ कर। नखों से छुरी का काम। भूल जाओ वह ग्रंथ। शूर्पनखा--छाज जैसे नखों वाली। श्रीराम चन्द्र ने उनको बाहर निकाला। इसी लिये राम की विजय मानते हैं। अस्तु, वह मेरा प्रसंग नहीं। मानव तन में असुरी भाव आन बसते हैं। कुसंगति से बुराई आ जाती है। पर यह तन तो असुरों के लिये नहीं बना। कुसंग आदि के कारण वह अवगुण इसमें आ जाते हैं। रामचन्द्र ने तो केवल एक भाग से १४,००० राक्षस समाप्त किये या निकाले। पर राम नाम करोड़ों को निकाले अन्दर से। यह (नाम) तो मनुष्य को देव बनाता है। दैवी भाव लाने चाहियें। कल्पना जो अब है वह पुरातन काल वाली नहीं रही। सन्त की (कल्पना) और थी। महाराज आशीर्वाद दो, लड़का पैदा हो ऐसी बात नहीं जानते थे। वीर पैदा हो (यह वे जानते थे)। पुरातन भाव बाकी तो रहे हैं, वे थोड़े रहे हैं। मैं कहा करता हूं कि पुराने भारत वासियों का वास्तविक पता तो ऋग्वेद से ही चलता है। दूसरों से नहीं। अब लोगों के विचार कुछ और हैं। भगत जी कहलाने की बात। अंग्रेज से पूछो कि भक्त (devotee) कैसा हो। बड़ा साफ सुथरा, किन्तु हमारी सभ्यता में कल्पना ऐसी कि इधर से कपड़ा संभाला तो उधर से चला गया। भीष्म के चित्र में अब खड़ाऊं दिखाते हैं। ऐसे ही समझो कि धर्म के चित्रकार भी ऊंचे नहीं। निर्भयता-आत्मतत्त्व इसमें जिसमें भय न हो। (हल्का सा मुक्का मारते हुए) आत्म तत्त्व कितना जगा हुआ है यह निर्भयता है। जिसने भय को मार दिया इसने मौत को मार दिया। मेरा आदर मान न मारा जाए,

प्रतिष्ठा में बट्टा न लगे, आदि, आदि के अनेकों भय (मनुष्यों में पाए जाते हैं)। गांधी महात्मा में निर्भयता थी दिव्य आत्मभाव निर्भयता में जागता है। मैं नहीं। वह तो शुद्ध भाव जो चीज़ आई, इसने बाजी लगायी। यहां ही से देवभाव गिनने चाहियें। बाकी (देवभावों का वर्णन) गीता में है। इस नगरी (मानव तन) में देवभाव रहते हैं।

तो कल जो वर्णन किया गया था इसमें मनुष्य देह को एक नगरी का नाम दिया गया था। मूलाधार से सहस्त्रार तक और नौ द्वार। देवों की नगरी। देव या दिव्य प्राप्त करना ही इस नगरी का प्रयोजन है। वनस्पति के समान प्राणमयी और पशुओं के समान वृत्तिमयी। यह प्राण भी पोषण करते हैं। पर मनुष्य जो विशेषता रखता है वह ज्ञान की है। पशु जगत् में प्राण भी रहते हैं और वृत्ति भी—क्रोध, प्रीति आदि। मनुष्य में दिव्य बात होती है। वह है बोधक। यदि ऐसा न हो तो फिर तो पशु के समान। इसलिए यह बड़ी बात कि यह देवताओं की नगरी। इसी मानव तन में ही ऋषि, भक्त, सन्त, दानवीर, ऊंची कोटि के महापुरुष हुए। बुद्धि के धनी, वैज्ञानिक पुरुष भी हुए। जितनी जिसमें ऊपर वाली बातें हो उतना ही समझो इसमें देवभाव आ रहा है। यह बात जो कही गई कि यह मनुष्य काल का भी विकाल कर देता है। सभी धर्मों में यह बातें किसी न किसी रूप में पाई जाती हैं। फिर इसका (तन का) दिव्य नाम अयोध्या। कहते हैं अयोध्या मनु ने बसाई थी। किसी ने भी बसाई थी, अयोध्या का अर्थ है अखण्ड—या तो विजय न की जा सके, या शत्रु आक्रमण न कर सकें। तो ऐसा समझना चाहिये। अब वेद ने यह (अयोध्या) नाम (तन के लिये) रामायण से लिया था। या इन्होंने अपने ग्रंथों में लिया है (वेद से)। ऐसा विचार तो ऐतिहासिक लोग कर सकते हैं। तो ऐसे समझना चाहिये कि पुराने काल में ऐसी रीति थी और अब भी बहुत जगह प्रचलित है कि जितने नाम रखे गए वे वेद से हों। अयोध्या का अर्थ। मनुष्य का तन। अयोध्या पर क्यों हुआ (तन का नाम)। वहां तो

न जानें कितने किले। जर्मनों नें, न जाने कितने आक्रमण किए किन्तु स्टालिनग्राड गिरने में न आया। पर वह ऐसा दुर्ग बना हुआ था कि बहुत गोला बारूद वहां खपा। ऐसे नगरों को जिनको असुर विजय न कर सकें अयोध्या कहा जाता है। इस पर दो वाद विवाद कि मनुष्य तन कैसे ऐसा (अयोध्या) कहलाया? यह तन तो (1) मारा जाता है- गोली से, डंडे से। यह नियत नहीं कि कोई कितने वर्ष जिएगा। इसको अकाल कहते जिसका कोई काल नहीं। (2) दूसरा वाद—काल-मृत्यु। इसमें बहुत लोग चक्कर में आते हैं। पर निश्चय भाव से कहा जाए तो अधिक कहना हो जाता है। आदमी को यह चाहिये कि दूसरे की साक्षी से अपना विचार रखने की बात हो। यह शैली बहुत अच्छी है। उसी का अवलम्बन करता हूं (अर्थात् किसी के विचार का सीधा खंडन नहीं करता)। जो चीज़ बनती है उसका बिगड़ना साथ है। इस नियम को यदि सोचने लगे, हम यह देखते हैं कि कोई बच्चा और कोई तरुण और कोई बूढ़ा होकर मर जाता और कभी कभी बूढ़ा जाने में नहीं आता। यह तो परिवर्तन है, इसका क्या सोचना। किसी अधिकारी के विरुद्ध शिकायतें होती हैं तो भी बदलने में नहीं आता, इसका क्या सोचना। काल में हो, अकाल में हो, यह तो ऐसा ही, इसमें बहुत उलझना नहीं। कर्म वाद हिन्दुओं में ही है।

मैं यह कहता हूं कि कर्म से यह शरीर बना है तो इसका फल भोगने का कोई समय भी होगा। आयु ही न हो तो फल किस पेड़ को लगेंगे? जब कोई आदमी फूंक-फूंक कर कदम रखता है, बड़े नियम से रहता है, फिर न जाने बीमारी कहां से आ जाती है। और कई ऐसे हैं जो विचार नहीं करतें और बचे रहते हैं। पर इसका यह तात्पर्य नहीं कि विचार नहीं करना (चाहिये)। मियादी बीमारी (typhoid) में लोग बड़ी सावधानी करते हैं। करना चाहिये किन्तु कमपाऊडर को कभी कुछ नहीं होता है। हिन्दुओं में तो सभी पास बैठते हैं। इनफ्लुयंजा एक को घर में हुआ तो वह सब को ही कोठी में हुआ, पर मेहतर को नहीं हुआ।

इस के कारण वैद्यों के अनुसार और भी होंगे। पर समझना चाहिये आयु भी कोई चीज है। सिपाहियों ने मुझे कहा कि इधर भी गोले उधर भी गोले (बरस रहे थे) पर हम न मरे। हमारे से पीछे खाई में शरण लिए हुए बम के कारण मर गए। आयु की डोर होती है। काल मृत्यु हो या अकाल, मैं आपको एक बात कहूं कि वीर पुरुष सभी मानते हैं कि मौत का समय होता है। नैपोलियन कहता था कि वह गोली अभी नहीं ढली जो नैपोलियन को समाप्त करे। अब (तो युद्ध में) वीरता का प्रश्न नहीं, दाव पेच (बहुत चले हुए हैं)। एक सड़ियल सा आदमी ऐटम बम्ब से न जाने (कितने शूरों को हताहत कर दे)। जापानियों ने बर्तानिया का जहाज जो नष्ट किया वह था वीरता (का काम)। युद्ध-पोत की चिमनी में जापानी हवाई सैनिकों का बम्ब सहित कूदना। हमें इस प्रकार श्री राम चन्द्र के वाक्य याद आते हैं। दो तीन हैं। भरत जी को, तारा को, मन्दोदरी को भी। इन तीनों में ही वह नीति का वर्णन करते हैं कि ऐसा होना ही था। ऐसा ही इन्होंने समझाया।

भरतपुर के राजा की बात। जब भरतपुर के किला पर चढ़ाई हुई तो राजा आप चक्कर लगा रहा था। सिपाही ने कहा, गोली चल रही है। तो राजा ने भी यही कहा कि वह गोली नहीं जो मुझे लगेगी। दुःख और चीज़ है, मृत्यु और चीज़ है। मृत्यु बिल्कुल पृथक है। मरना और जीना दुःख नहीं देता। दर्द और दुःख तो पीड़ा और पीड़न से होते हैं। जाना और आना तो स्वाभाविक है। मोह का दुख हो सकता है कि जो मोटर अभी मैंने ली थी (उस की हानि आदि का)। इसी प्रकार होना, जैसे एक कमरे से दूसरे में जाना। नींद भी इसी प्रकार। यह अनुभव ज्ञानियों का है कि मरना तो ऐसा ही है जैसे यहां से दफ्तर चले गए और फिर दफ्तर से वापिस। यदि वहां कोई रकम जान बूझ कर ऐसी वैसी लिखी है तो घर आकर दुःख या भय। या दफ्तर जाते समय बीबी से झगड़ा और इसने कहा हो कि मैं मर जाऊंगी, आदि। तो फिर दफ्तर में तड़पता रहा। आने जाने में

तो ऐसे दुःख नहीं होते। भगवान की विधि में आना जाना तो ऐसे ही है जैसे सांस का आना जाना। सांस आता रहेगा तो जीवन बना रहेगा और यदि यह महाशय जाकर फिर न आया तो फिर (छुट्टी)। दुःख मोह में है, पीड़ा में है। इन सब के उपाय भी, मौत का कोई उपाय नहीं। त्रिलोकी में न हुआ, न होगा। काल की तिथि होनी कोई आश्चर्य की बात नहीं। तब तक हमारे कर्म ठीक हैं जब तक तो यह अयोध्या है। इस विचार से कितनी वीरता, धीरता आती है। फिर यह देवों की पुरी है। यह रोग सोग से टूटेगी नहीं। रोग और मोह अलग करो भाईयो। मैं ने यह कहा कि प्रारब्ध के अनुसार है (देह का रहना)। प्रारब्ध की समाप्ति पर इसकी (तन की) समाप्ति हो जाती है। जितना भय इसके खण्डित हो जाने से जिसे हो उतना ही वह भीरू (है)।

हम चाहते हैं कि स्वतंत्रता के भोग भोगें किन्तु साथ यह कि लड़का लड़ाई में न जाए, जज बन जाए। वैसे नून तेल पर लड़ पड़े, गोली लग जाए, मर जाय कभी। जाति कभी उभरेगी नहीं। जब तक उसे (जाति को) सिपाही न बनाया जावे। इसी लिये आवश्यक (है) सेना में होना। वीर वृत्ति तभी पैदा होती है। (जो सोचे) कि हमने आगे जाना है। मुझे यह कहना था कि यह अयोध्या नगरी है। (मुस्कराकर महाराज ने कहा) रोग है पर आयु की डोर तो हैं ही। सार यह है कि यह तन देवपुरी—देवों की नगरी और प्रारब्ध के मसाले से बनी है। इसको कोई खण्डित नहीं कर सकता।

सज्जनो! पिछले कथनों में अथर्ववेद के मंत्रों के भाव की व्याख्या की जा रही है। अध्यात्मवाद दृष्टि से ही इसका महत्त्व है। पुरातन काल के कथन में अयोध्या का वर्णन अध्यात्म दृष्टि से और कर्म की दृष्टि से भी (किया गया)।

इस नगरी में सुवर्णमयी कोष है जो सुख स्वरूप है और ज्योति से (प्रकाश से) घिरा हुआ है। सुवर्ण सुन्दरता के अर्थ में आता है। सुवर्ण, स्वर्ण दो शब्द हैं। सुवर्णमयी कोष
मई) मस्तक ही है। बहुत ऊंची बातें इसमें उ...

यह सुख का स्थान है। यह बात ठीक ही है कि मस्तक में सुख बसता है। यह वर्णन इसी नगरी के महत्त्व को जानने में। इसके लिये यह वर्णन है। जो यह नहीं जानता इसके लिए महत्त्व नहीं। जो भोगी जीव हैं, वृत्तिमय जगत् में रहते हैं, इन को आत्मशक्ति का कोई विचार नहीं। यह तो खोजने वालों के लिए है। दूसरे देशों में भी खोजने की चेष्टा लोगों ने की है किन्तु (वहां तो) राजनीति की ज्यादा चर्चा, ज्यादा प्रचार (है)। प्रवृत्ति ऐसी हो गई है जो आर्थिक पदार्थों की ओर जा रही है। पर शांत समय में दूसरे देशों ने चेष्टा की है। ऐसी पुस्तक लिखी है। कोई प्रायः कहे कि इस विचार से लिखी है।

सूक्ष्म शरीर का बाहर जाना और ऐसी क्रियाएं करना, यह पश्चिम ने भी जाना और भारत में भी। रहस्यवाद में ऐसी बातें जानने वाले लोग मिलते रहते। मस्तक में यदि आत्म शक्ति जग जावे, सूक्ष्म शरीर जरा बढ़ा हुआ हो तो वह दशम द्वार से ही निसरन होता है। यह केवल कहने की नहीं, देखने की और जानने की बात है। तो स्थान मस्तक। इससे निसरित हुआ आत्मा। फिर इस मनुष्य में सुख का स्थान।

आत्मा जब दशम द्वार में जाती है तो इसमें सुख होता है, स्वर्ग होता है। आत्मा के निकट ब्रह्म निर्वाण रहता है। इस को जानने वाले कई प्रकार से होते हैं। यह आडम्बर में नहीं है। प्रकाश होने पर प्रत्येक अवस्था में ही होता है। बुद्धि की विशुद्ध स्थान सुवर्गमय और सुखमय है और जो इसमें पहुंचता है वह बड़ा सुखी (होता है)। जो लोग भजन पाठ करते हैं, इसको कई बातें प्रतीत होती हैं। कोई सहज से हो जावे। जो परिश्रम से मिले उसका बहुत विचार घोर कठोर क्रिया के पश्चात् सामने प्रकाश आया। कदाचित् (यह अवस्था) सहज से प्राप्त हो जावे तो कहता है क्या हुआ। मैं आगे बढ़ा नहीं। यह सब सुनी हुई बात (है अर्थात् लोग सहज से प्राप्त की कदर करना नहीं जानते)। यह बातें सब अनुभव में आती हैं। यह जो लोग सिद्धियों का विचार किया करते हैं कि पानी पर

पैर रखकर चलना। हवा में उड़ाना। हवा में उड़ना।(यह कोई बड़ी बात नहीं)। यह तो पनडुब्वी में सुभाषचन्द्र भी पानी में रहे तीन मास तक। यदि यह (तुच्छ सिद्धयां) नहीं प्राप्त हुई तो कौनसी बात। मन की स्थिरता ही बड़ी चीज़ है। यह (प्राप्त होना) बड़ी ही उन्नति है। जप करता है और मन स्थिर (हो जाता है)। कदाचित कोई प्रकाश न आए तो (इसमें) कौन बड़ी बात। यदि आ जाए (प्रकाश, ध्यान करते समय) भगवद् इच्छा से तो वाह वाह। पर बड़ी बात तो मन का स्थिर होना है। पहले तो भगवान का विचार होना चाहियें। यदि हम समझते हैं कि वह कभी प्रगट होता नहीं तो फिर तो ऐसी समझ वालों को सन्देह होगा। यदि आप रूप को समझते हैं तो—हम शब्द देते हैं—रूप भी आते हैं—राम का, कृष्ण का, आदि। आदित्य स्वरूप भी आता है—सूर्य उपासना में यह बात। रूप तो अन्त में हमारी भावना। यूरोपियन तो गोरा स्वरूप ही बनाएंगे। ऐसे हो जैसे इतिहास में वर्णन। जैसे जगन्नाथ में, रामेश्वरम् में स्थापना की मूर्ति—जैसे मानचित्र में विंध्याचल—वह भला कहां होता है वहां।

यह हो जाना कोई कठिन नहीं (रूप का प्रकट होना)। जो नहीं मानेगा इसकी एकाग्रता कहां? मनन करे तो यह बातें। लहरें आती हैं। (मनन करने से) लयता आ जायगी। भूल जावेंगे (वृत्तिमय जग को)। पर कोई अभ्यास करे तो भजन में रहते रहते लहरें आती हैं। और पता न रहे कि कहां पर हूं। मुझे कहना यह है कि आदमी जिस प्रकार सच्चा हो, जैसी पहले धारणा हो तो वह बात बनती है। इस प्रकार भगवान की विभूति भी प्रकट होती है।

महर्षियों ने कहा था जो जानते हैं वे कहते हैं हम नहीं जानते (अर्थात् ब्रह्म को जानने वाले कहते हैं कि हम उसको नहीं जानते)। रहस्यवाद में ऐसी बात है। प्रकाश, शब्द, आनन्द ये सब भगवान की कृपा है। मुझे कहना यह था

यह सुख का स्थान है। यह बात ठीक ही है कि मस्तक में सुख बसता है। यह वर्णन इसी नगरी के महत्त्व को जानने में। इसके लिये यह वर्णन है। जो यह नहीं जानता इसके लिए महत्त्व नहीं। जो भोगी जीव हैं, वृत्तिमय जगत् में रहते हैं, इन को आत्मशक्ति का कोई विचार नहीं। यह तो खोजने वालों के लिए है। दूसरे देशों में भी खोजने की चेष्टा लोगों ने की है किन्तु (वहां तो) राजनीति की ज्यादा चर्चा, ज्यादा प्रचार (है)। प्रवृत्ति ऐसी हो गई है जो आर्थिक पदार्थों की ओर जा रही है। पर शांत समय में दूसरे देशों ने चेष्टा की है। ऐसी पुस्तक लिखी है। कोई प्राय: कहे कि इस विचार से लिखी है।

सूक्ष्म शरीर का बाहर जाना और ऐसी क्रियाएं करना, यह पश्चिम ने भी जाना और भारत में भी। रहस्यवाद में ऐसी बातें जानने वाले लोग मिलते रहते। मस्तक में यदि आत्म शक्ति जग जावे, सूक्ष्म शरीर जरा बढ़ा हुआ हो तो वह दशम द्वार से ही निसरन होता है। यह केवल कहने की नहीं, देखने की और जानने की बात है। तो स्थान मस्तक। इससे निसरित हुआ आत्मा। फिर इस मनुष्य में सुख का स्थान।

आत्मा जब दशम द्वार में जाती है तो इसमें सुख होता है, स्वर्ग होता है। आत्मा के निकट ब्रह्म निर्वाण रहता है। इस को जानने वाले कई प्रकार से होते हैं। यह आडम्बर में नहीं है। प्रकाश होने पर प्रत्येक अवस्था में ही होता है। बुद्धि की विशुद्ध स्थान सुवर्गमय और सुखमय है और जो इसमें पहुंचता है वह बड़ा सुखी (होता है)। जो लोग भजन पाठ करते हैं, इसको कई बातें प्रतीत होती हैं। कोई सहज से हो जावे। जो परिश्रम से मिले उसका बहुत विचार घोर कठोर क्रिया के पश्चात् सामने प्रकाश आया। कदाचित् (यह अवस्था) सहज से प्राप्त हो जावे तो कहता है क्या हुआ। मैं आगे बढ़ा नहीं। यह सब सुनी हुई बात (है अर्थात् लोग सहज से प्राप्त की कदर करना नहीं जानते)। यह बातें सब अनुभव में आती हैं। यह जो लोग सिद्धियों का विचार किया करते हैं कि पानी पर

पैर रखकर चलना। हवा में उड़ाना। हवा में उ
बात नहीं)। यह तो पनडुब्बी में सुभाषचन्द्र
मास तक। यदि यह (तुच्छ सिद्धयां) नहीं
बात। मन की स्थिरता ही बड़ी चीज़ है। य
ही उन्नति है। जप करता है और मन रि
कदाचित कोई प्रकाश न आए तो (इसमें)
आ जाए (प्रकाश, ध्यान करते समय) भग
वाह। पर बड़ी बात तो मन का स्थिर
भगवान का विचार होना चाहियें। यदि ह
कभी प्रगट होता नहीं तो फिर तो ऐसी स
होगा। यदि आप रूप को समझते हैं तो—ह
भी आते हैं—राम का, कृष्ण का, आदि।
आता है—सूर्य उपासना में यह बात। रूप
भावना। यूरोपियन तो गोरा स्वरूप ही ब
इतिहास में वर्णन। जैसे जगन्नाथ में, रामेश
मूर्ति—जैसे मानचित्र में विंध्याचल—वह
वहां।

यह हो जाना कोई कठिन नहीं (रूप
नहीं मानेगा इसकी एकाग्रता कहां? मनन
लहरें आती हैं। (मनन करने से) लयता आ
(वृत्तिमय जग को)। पर कोई अभ्यास क
रहते लहरें आती हैं। और पता न रहे वि
कहना यह है कि आदमी जिस प्रकार स
धारणा हो तो वह बात बनती है। इस
विभूति भी प्रकट होती है।

महर्षियों ने कहा था जो जानते हैं वे कह
(अर्थात् ब्रह्म को जानने वाले कहते हैं
जानते)। रहस्यवाद में ऐसी बात है। प्रका

होता रहता है (कृपा का)। हम तो यह भी मानते हैं कि थोड़े शब्दों में बातें भी होती हैं।

मुझे यह कहने में संकोच नहीं कि एक पर शब्द आता था (ध्यान में उस पर शब्द प्रगट होता था) इसने कहा मुझे दर्श दो। शब्द आया—तूं किस रूप को देखना चाहता है। वह चुप हो गया। रूप तो वह स्थिर नहीं करता। भगवान तूं जिस रूप में चाहे मिल। कई रूपों में वह आया।

नाम उपासना में रूप देवें तो बड़ी कठिनाई आती है। यह हम क्या बताएं कि कृष्ण रूप में ही था, राम में नहीं (अर्थात् हम कौनसा रूप मांगें भगवान का, यह हम कैसे करें)। हम तो नाम उपासना करते हैं जो (सदा) नया रहता है। रूप तो होकर भी नहीं रहे (अर्थात् रूप तो मिटने वाले हैं, नाम सदा वैसा ही बना रहता है)। नाम से ही रूप का बोध होता है (नाम आराधन से ही परमेश्वर के वास्तविक रूप की अनुभूति होती है) इसे गोड कहो, अल्लाह कहो। उन सब में वह व्याप्त है।

नाम उपासना बहुत सुन्दर है। तुलसीदास ने भी ऐसी ही कल्पना की है रामायण में। मुझे कहना यह था कि भजन करने वालों पर विभूति होती है। (कृपा नाम भजन से आती है, व्रत रखो, ठण्डे पानी में पड़े रह कर काया को कष्ट देने आदि से नहीं)।

जो धन कमाता है उसको पता लगता है, धन के मूल्य का। यद्यपि इसकी फर्म बाद में कितनी ही बड़ी हो जावे, पर इस धनी का (जिसने इतने कष्ट से धन कमाया) लड़का धन का महत्त्व क्या जाने। (इसी प्रकार) आलसी, प्रमादी (जो हो ऐसा) भगत भी सहज से (रामकृपा) आई हुई का महत्त्व नहीं जानता क्योंकि वह इस की कमाई नहीं है। नाम मेरी झोली में डाल दिया गया, यह राम कृपा है। कोहिनूर हीरा, जो विक्टोरिया के ताज में लगा हुआ है वह खरबूजा के खेत में एक किसान को हैदराबाद के क्षेत्र में मिला। महात्माओं की संगति और रामकृपा से (प्राप्त) भक्त लोग इसका गौरव नहीं मानते। कोई तप नहीं किया फिर भी आनन्द की लहर।

हर एक का मस्तक (जो है) यह कोष है। सुरति जब वहां पहुंचे (मस्तक में) तो आती है (आनन्द की लहर)। मनन करे। ज्ञान होना चाहिये। यह समझ होनी चाहिये कि मेरा आत्मा ऊंचा हो गया। यह स्वर्ण का कोष (है मस्तक)। पुस्तक पढ़ते पढ़ते जिसमें सत्य हो ऐसी बुद्धि पैदा होती है। ऊंचे और सच्चे विचार पैदा होते हैं और फिर वे उन पर दृढ़ रहते भी हैं। सुखमयी है, ज्योतिर्मयी है—विशुद्ध बुद्धि (मस्तक)। आज यह वर्णन रहस्य के प्रकरण। अयोध्या नाम (तन का) स्वर्णमयी स्थान—विज्ञान और वह स्वर्ण, सुखमयी और प्रकाशमयी है, यह निरूपण किया।

प्रकाश स्वरूप देव! हम रात्रि के आरम्भ में और रात्रि के अंत में आपको नमस्कार करते हैं। न तो कोई देव, न मनुष्य तेरी शक्ति को जान सकता है। तू अनन्त है। तू अपनी शक्तियों से ही बनता है। कल यह बात कही गई थी। देवपुरी (अयोध्या) सुन्दर स्थान। इसमें प्रकाश से अवतरण। अगले पद में यह कहा कि इसमें जो पूज्य देवता रहता है उस स्थान में जहां ज्ञान है—प्रकाश यक्ष रहता है—इसको ज्ञान के जानने वाले जानते हैं। इससे ही यह होता। इसमें जहा मस्तक वहां आत्मा का विकास। इस यक्ष को वही जानते हैं जो ब्रह्म को जानते हैं। यह बात ठीक है कि प्रकृति के ढंग बहुत। उन्हीं से इसे जाना जा सकता है। भौतिकवाद (Materialism) इसका पता नहीं कर सकता। यह बात मैं नहीं कह रहा, विद्वानों ने ही कही है। जो समझ महात्माओं ने उत्पन्न की थी वह राजनीतिक बादलों ने दबा रखी है। अब वे तारे (ज्ञान रूपी) चमकते नहीं। अब इतना राजनीतिक अन्दोलन है। इतनी राजनीतिक उलझनें बढ़ गई हैं। मैं किसी का दोष वर्णन नहीं करता। मैं तो एक बात वर्णन करता हूं कि इसमें जो दया का भाव मनुष्य में—आत्म कल्याण और अनर्थ के विपरीत भावना उत्पन्न हुई थी वह दब गयी इस (राजनीतिक) आन्दोलन के तूफान से। इस आंदोलन की आंधी में दिन होते हुए भी सूर्य दिखाई नहीं देता। इतिहास में हम देखें

कि जब लड़ाई १९१४ में चली थी इस समय धार्मिक बातों से लोगों का अन्त: करण चमकता था। योरुप में लोग घबरा गए कि हमारा इतना ज्ञान, क्या हो गया। सात प्रामाणिक व्यक्तियों को निमन्त्रित किया कि कैसे यह मनुष्य जानवरों के समान हो गया। इन सात आदमियों के व्याख्यान छपे। वे सब स्थानों पर बांट दिये गये। इन प्रमाण समझे जाने वालों ने कहा कि भौतिकता आदमी को नास्तिक नहीं बनाती है। अध्यात्मवाद शरीर क्रिया विज्ञान (physiology) या रसायन विज्ञान (chemistry) जैसा क्षेत्र नहीं। यदि इसमें आत्मवाद नहीं आया तो वह हमारी विद्याओं से प्रकट होता है कि कोई चीज़ है, कि कोई शक्ति है जो इसको नियमित कर रही है।

जब जेब फटी हुई हो तो पैसे गिर जावें। कहीं कितने ही गिरे और कहीं कितने ही। यह लोक ऐसे नहीं। यह तो गणित शास्त्र के अनुसार—जब सृष्टि बनी—इसका बड़ा नियम—जहां से एक ग्रह जाता है दूसरा भी वहीं से किन्तु कभी टक्कर नहीं होती। तो अब मैं इसकी सारी बात क्या वर्णन करूं। वह तो मैं यहां वर्णन नहीं कर रहा हूं। यदि एक भूगोल पढ़ रहा है और वह गणित नहीं पढ़ रहा तो इसका अर्थ यह नहीं कि गणित है ही नहीं। इनके युक्तिवाद में (सत्य नहीं)। मैं निवदेन कर रहा था कि राजनैतिक आन्दोलन चला और तीव्र हो गया—मैं कहा ही करता हूं कि महत्त्व मनुष्य का धर्मों ने बनाया। राजनीतिज्ञों ने कहा, नेहरू जी ने एक नया वाद बनाया यह बड़ी अच्छी बात तटस्थता की नीति (Neutral policy— की किन्तु जो शस्त्र बने हैं वे यदि उपयोग मे आएं तो क्या हो। रुके हुए इस लिये हैं (महायुद्ध से) कि किसी को अपना जीवन सुरक्षित नहीं दिखता। नहीं तो यह ठनाठनी कभी की हो गई होती। एक ही आदमी है जिसने अपने देश के ऐसे वैज्ञानिकों को कहा कि तुम अवश्य खोज करो किन्तु शान्ति से उपयोग के लिए। और यह है नेहरू जी। वैज्ञानिक फिर २ बनाकर परीक्षण करते रहते हैं, अणु शस्त्रों (Atomic weapon) ज्ञान विज्ञान से आत्मा का पता

लगेगा। यह बात बहुत पुरातन और अच्छी। यह बात
समय समझी गई जब ऐसे तूफान नहीं। इस लिये ठीक व
इसको ब्रह्म को जानने वाले ही जानते होंगे। जो इस वि
नहीं समझते वे गलती खा जाते हैं। जैसे स्वामी दयानन्द
लाश को पकड़ा चक्र देखने को।

एक कमल नौ द्वार वाला—यह तीन गुणों से आवृत्त है
तक सात्त्विक (गुण) ऊपर न हो तब तक आस्तिक भ
जागृति नहीं होती। इस एक कमल में जो आत्मदेव रह
ब्रह्म में रहने वाले। इन सत्संगों में आते हैं तो नौकरि
बात भी भूल कर आते हैं। यदि ऐसे आवें नहीं तो कैसे
कूदें! वे बंधुओं को भी भूल जाते हैं। यहां तक ही नहीं
क्रोध, लोभ, मोह, अंहकार को भी भूल जाते हैं। कोई व
ऐसे हैं कि अपने आप को भी भूल जाते हैं कि लोग क्या
कहां टक्कर लगेगी (कूदते हुए कीर्तन में)। जब तक या
कि मैं ग्रेजुएट, मैंने खड़े होकर खड़ताल बजाई तो क्या
जब तक यह बात है तब तक ऐंठन है। उन उन को मस्त
आती। लिखा पढ़ा जब तक भूले नहीं तब तक उसको ए
भी नहीं आती। फिर इस बात को नहीं भूला कि मैं कम
हूं और अधिक जानने वाला कि मैं अधिक। (यह सब
मान आदि) भूल के यहां आना। घड़ी उतार कर
अध्यात्मवाद को त्याग कर, बुद्धिमत्ता, बड़ाई को भूल
तभी वह यह कहकर 'मैं तेरा,' नाचेगा।

"मेरे में मन लगाए हुए मेरा भक्त मुझे ही नमस्कार
है। मैं तुझे वचन देता हूं कि तूं चिन्ता न कर। मैं तु
बुराइयों से छुड़ा दूंगा। तू मुझ में हो जाए (गा) यह मा
वचन देता हूं।" (महाराज ने गीता में कहा है)

फिर यदि ऐसा हुआ तो भगवान ही आए। एकाग्रता
आकाश निर्मल तो तारे चमकने लगे। फिर मस्तक में अ
फिर परिश्रम की आवश्यकता नहीं। तो मैंने प्रकरण ही
किया। तो महत्त्व तो ब्रह्म में रहने वाला हो जाने से केव

ही पद्धति कि बाहर की युक्तियों को भूला जाए। जो तू है सो प्रगट। हनुमान जी पेड़ के पत्तों में छुपे बोलते हैं कि राम चन्द्र बड़े अच्छे। दोनों भाई बड़े वीर। सीता माता को हम छुड़ा लेंगे। जो सीता माता को ले गया है उसका बदला ले कर छोड़ेंगे। थोड़ा इसलिये देरी है कि वापिस जाकर उनको (महाराज राम चन्द्र जी को) सूचित कर दिया जाए कि सीता माता कहां है। सीता जी कहती हैं, बोल रहा है प्रगट क्यों नहीं होता।" जब यह पुकार सीता जी की निकली कि जीवन दायिनी वाणी जो बोल रहा है वह प्रकट क्यों नहीं होता। तीव्र पुकार बाहर को भूल कर बच्चा पुकारे तो माता सातवीं कोठरी (से) दौड़कर आती है। पुकार सरल हो बच्चे के समान। इस झंकार को सुनकर (परमेश्वर) मस्त हो जाएगा।

तन रचना का महत्त्व वर्णन होता रहा (पिछले कथनों में)। पुरातन काल की श्रुतियां जैसे गाई गईं। वैसे तो देखने में हाड़ मास (तन), समझने वालों की पहुंच में क्या कुछ समझ आई वह कही गई। मैं समझता हूं कि कल्पना की हुई नहीं (श्रुतियां)। ये तो अन्दर के निकले हुए वाक्य हैं। साधक ने मीरा का गीत गाया। मैं जहां देखती हूं वहां तू ही तू है। यह कल्पना के रूप में कही हुई बात नहीं। यह रंग चढ़ी बात। वह (सर्वत्र) देखने लग जाती है। इसको तो बड़ी प्रेम प्राप्त करने योग्य समझा। वह देखने, न दिखने लगे तो क्या। कई साल की बात– एक सत्संगी (विद्वान और बड़े अच्छे अधिकार पर) सभा में उपस्थित नहीं हुए। इन्होंने कहा कि मैं सम्मिलित तो हो नहीं सका पर मैं (घर पर) नियम से रहूंगा। इस ने कहा इस प्रकार उसे ध्यान में राम नाम दिखने लगा। अगले दिन इन्होंने कहा कि सारे शरीर में दिखने लग पड़ा (राम नाम) और मस्तक में सहस्त्रों राम नाम देखे। कार्य देहली में करते थे किन्तु सत्संग में न आ सके। पत्र लिखा कि जब मैंने नमस्कार सप्तक पढ़ा तो प्रतीत हुआ कि सत्संगी मुझे, पास बैठे, पढ़ते मालूम हुए। ध्यान में प्रायः जय श्री राम जय श्री राम गाते देखा आपको।

मुझे कहना यह है कि परा-प्रीति उत्पन्न हुई तो फिर इसको दिखना कोई आश्चर्यजनक नहीं। टटोलना यह है कि लगन मुझमें है या नहीं। यही प्रयोजन है कि हम ऐसे एकत्रित होते हैं और बताते हैं। पहले जब आरम्भ किया तो इतना विचार नहीं था। वैसे तो लोग जाते हैं आमोद को होटलों में। पहाड़ी आदि पर जाते हैं। खान पान, आमोद मनाते हैं। एक दिन का काम हो तो चार दिन लगाकर आते हैं। पर यह तो एकान्त—वास और छुट्टियों को ऐसा बनाना। इसमें अपनी सूझ न्यारी। यह तो दूसरे साधन के ढंगों से भिन्न। इसमें मनुष्य में ऊंचे तरंग भी। यह एक निराली सी चीज़ है (साधना सत्संग)।

ऐसे अकेले भी बैठे तो भी होता है। तीर्थों पर भी लोग करते हैं। व्रत भी वहां पूरे करते हैं। सम्मिलित एक स्थान पर बैठना आवश्यक है और लाभ जनक (भी)। आपको लाभ भी होता है। तभी (आप) आते और सब कुछ तपस्या करते हैं। पानी छिड़कने आदि (कामों को भी) कोई ना नहीं करता। (यहां साधना सत्संग में आप सब प्रकार के काम खुशी से करते हैं)। तो काम करते हैं फिर इसमें आनन्द भी आता है। आत्मा की जागृति भी होती है। वृत्ति ऐसी हो जाती है कि भगवद् कृपा अवतरित हो जाती है। हमारे यहां एक दूसरे को बताने की रीति है।

कोई प्रारब्ध कर्म—कुछ मस्तक भी कल्पनाओं के (कारण) ग्रहण करने की शक्ति नहीं (रहती)। (कृपा) ग्रहण करने की शक्ति हो जाए तो बहुत ही अच्छी। इसी ग्राह्य शक्ति के लिए यह साधना है। भजन पाठ में जो आप बैठते हैं इससे ग्राह्य शक्ति पैदा होती है। वह ग्राह्य शक्ति हमारे अन्दर बस जाए इसके लिए बहुत साधना (करनी चाहिये)। अपने घरों पर भी (साधना) कर सकते हैं। यहां ही तो आवश्यक नहीं कि चांदनी छिटक जावे (कृपा अवतरण हो)। घरों में भी भगवान की कृपा की विभूति कई रूपों में अवतरित होती है। यह सब ही होता रहता है। साधना में एक रंग सा होता है। यह (साधक) कई

दिनों तक याद आते रहते हैं। जैसे प्रिय बंधु के पास बैठने का आनन्द कई दिनों तक याद रहता है इसी प्रकार किसी किसी दिन में तो मैंने अपने ऊपर अनुभव किया है कि स्थूल काया पर सूक्ष्म का प्रभाव छाया हुआ है। और वही बार बार मुझे स्फुरित होता है। यह बात प्राप्त हुई कि इस परिस्थिति के अनुसार स्थिति बनाए। भगवान हैं असीम कृपा करने वाले। इनकी कृपा आती है पर ग्रहण करने की हममें शक्ति (होनी चाहिए)। ठीक टिकाया जावे तो आएगी तो हम अपने को ऐसा बनाएं। यह परिस्थिति बनाए बनती है और फिर लाभ होता है। किसी विद्वान संत से किसी ने कहा कि क्या लाभ होगा भजन से? तो उत्तर दिया कि करके देखो। और कहा कि (तुमने तो) पहले ही न कह दी। डेढ़ साल बाद कहने लगा कि मुझे कुछ मिला तो नहीं। अब बैठने से (केवल) शान्ति मिलती है अवश्य और क्रोध दूर हो गया है और अब मैं व्यवहार भी ठीक ही करता हूं। सन्त ने कहा भाई! अब तो दो चार पद ही रह गईं। योग में बहुत बार होता है अब आगे कभी होगा या नहीं। कहने लगे अगले जन्म में सही। इसके लिए घबराना क्या। इस पथ पर चल पड़े तो चलते ही पहुंच गए, यह क्या? चल पड़े—यह चलना कभी बन्द न होगा। आगे ही बढ़ेंगे, पीछे नहीं जावेंगे। सन्तोष जो आ गया तो मैं तो समझता हूं कि ब्रह्म समाधि आ गई। दूसरे अध्याय में (गीता में महाराज ने) कहा कि 'एषा ब्राह्मी स्थिति'। वह यदि चार घंटे पड़ा रहा तो क्या बात हुई। मेंढक भी सूख जाते और फिर टर्रा उठते हैं। यह क्या बात हुई (सुन्न पड़े रहना ही साधना का उद्देश्य नहीं वरन् ब्रह्म संयोग प्राप्त करना है)। भजन पाठ से लाभ) होता है। यहां जो (भजन पाठ) किया उसको आगे (घरों में) भी करें। और महत्त्व है करते रहने में। इससे दूसरों को प्रकाश मिलता है।

कभी पहले वर्षों में पढ़ा, चीन का एक विद्यार्थी बड़ा निर्धन (था वह)। दीपक नहीं पर वह पढ़ा करता। रात को पढ़े बिना तो काम चल सकता नहीं (था) तो वह जुगनू इकट्ठे कर लिया

करता था (और उनके प्रकाश से पढ़ता)। जुगनू कीट ही तो
तो भी चांदना देता है। कुछ तो दीख ही पड़ता है (उसके प्रका
से) जिस में जितनी क्षमता वह (उसके अनुसार) दूसरों व
सहायता दे—सत्संग की, साधना की। मेरे मिलने वाला को
और भी लाभ उठाए ऐसी वृत्ति (होनी चाहिये)। अपनी कमा
वर्तने में आई। यूरोपियन एक आदमी ने लिखा था कि बड़
साधना हिन्दुस्तान के लोग करते हैं। शक्ति भी आ जाती है।
तो समझता हूं (साधना करने से) जीभ में भी और माला
शक्ति आती (है)। यूरोपियन ध्यान करते तो फिर मनोबल व
प्रयोग करते हैं—अर्थात् दूसरों को भी साधना के रंग में रंगन
चाहिये। हमारे मित्र का भी वह चोला रंगा जावे (भक्ति रंग मे
ऐसा भाव होना चाहिये। यूरोपियन देशों में ऐसा है। यह
(भारत में) किसी के पास दवाई (हो तो) वह (उसको) गुप्त भे
रखता है। यहां बरतने में कम लाते हैं। यह तो साधना बरत
की चीज़ है। इसका रंग चढ़ाना चाहिये। यह तो प्रबल तरं
पैदा करता है। यह कोई इस प्रकार की वृत्ति नहीं कि चमगाद
जैसे लटकने की। यह तो पानी में चलने से तरंग (पैदा होती है
और चट्टानों से टकराए तो भी तरंग, तो आकाश में भी तरं
(होती है)। संसार की इसी में भलाई। मैं यही कामना करता
कि भगवान हम सब पर कृपा करें और भक्ति भाव हम में बढ़े
पढ़ने से सदाचार की वृत्ति बढ़ती है। यह बहुत बड़ी चीज़ है
यदि पाठशाला में लाभ तो इसका बेड़ा पार हो गया। प
भगवान का नाम तो परम धाम तक ले जाता है। इसको (साधव
को) निश्चय होना चाहिये कि नाम तो नामी तक पहुंचा देता है
इसमें मस्त तो अवश्यमेव कल्याण होगा (नाम से) यदि इ
जन्म में नहीं तो दूसरे में। (यह भगवान का वचन है कि)
कुन्तीपुत्र! तू यह जान कि मेरे भक्त का कभी नाश नहीं होता
राम भक्त का नाश (कभी) नहीं (होता) यह वचन दिय
(भगवान ने) इसमें सत्य है। हम सब का कल्याण राम के हाथ

गीता

कृष्ण महाराज द्वारा कही गई गीता बहुत महान ग्रंथ है। अनेकों भक्तों तथा साधकों ने इस द्वारा अपने इष्ट तथा परमेश्वर तक की प्राप्ति की है। (महाराज ने गौरी शंकर मंदिर में गीता पर प्रगट किए गए श्री राजा गोपालाचार्य के विचारों की प्रशंसा की)। हम सब को जन्माष्टमी के अवसर पर एक सप्ताह के लिए दैनिक गीता पाठ तथा रामनवमी के अवसर पर नौ दिवस पयर्न्त रामायण पाठ करना चाहिए तथा आम लोगों को भी इसके लिए प्रोत्साहित करना चाहिए क्योंकि इससे जाति को लाभ होता है।

गीता क्या है ?-वह कृष्ण जी के गीत हैं। यह भावना हो कि (गीता) श्री कृष्ण जी का पावन चरित्र है। इनकी (कृष्ण जी की) शरण में हो तो लाभ होता है। गीता में जो ज्ञान है वह बड़ा ऊंचा है और सरल पद्धति से वर्णन किया गया है। भावना हो तो गीतापाठ से बड़ा लाभ होता है। यह भावना हो (गीता पढ़ते समय) कि भगवान कृष्ण स्वयं मुझे उपदेश दे रहे हैं। अन्त में भावना बड़ी आवश्यक है। गीता तो साक्षात् भगवान का वाक्य है, किसी पण्डित या किसी दूसरे का नहीं। ऐसी भावना हो तो संशय रहित लाभ होता है। यह भावनामय जगत है।

मेरे तो कथन में रूप का देखना है नहीं (भगवान को किसी विशेष रूप में देखने का) पर स्वरूप आते हैं। (स्वाध्याय करने से स्वरूप भी आते हैं) **गीता का वर्णन करने वाला भगवान के बहुत समीप हो जाता है।** यह विश्वास अन्दर में डालना चाहिए। जो ऐसा करते हैं तो ऐसा ही होता है। एक सज्जन ने (पर्वत प्रवास) में मुझे बताया कि शाम के समय जब वह बगीचे के किनारे बैठा तो उसको ऐसा प्रतीत हुआ कि सामने की पहाड़ी पर श्रीकृष्ण जी आ रहे हैं और वे भगवान् खड़े हो गए हैं और वह सज्जन भी (उनके स्वागत में) खड़ा हो गया है।

यदि भावना से स्वाध्याय करे तो करने वाला तो गद्गद् हो जाता है और देशकाल को भूल जाता है। स्वाध्याय करने का स्वभाव बनाना चाहिए। ग्रंथों का पाठ मंगलमय होता है। जिनके घरों में

स्वाध्याय होता है उनके यहां संतान बड़े शुद्ध संस्कारों की होगी, और युक्त, मनस्वी तथा वीर होगी।

भक्त के लक्षण

गीता में वर्णित भक्त के लक्षण बड़े सुन्दर हैं। उनको अपने जीवन में बसाना चाहिये। हम सब साधना के लिये आये हैं। इस लिए अभी से उनके लिये प्रयत्न प्रारम्भ कर देना चाहिये।

१. **अद्वेष्टा**—जो किसी से द्वेष न करे। द्वेष न करने का अभिप्राय यह नहीं कि दण्ड-योग्य को भी दण्ड न दे। दण्ड दे पर द्वेष के वशीभूत होकर नहीं, वरन् कर्तव्य-पालन की दृष्टि से। द्वेष करना और है, कर्तव्य-पालन और है। शास्त्र-धर्म द्वेष-जन्य नहीं, कर्तव्य-जन्य है। कर्तव्य-बुद्धि से जो कर्म किया जाता है वह कर्म न करने के बराबर है। उसका कर्ता के मन पर कोई संस्कार नहीं पड़ता। ईश्वर इतना महान कर्म करते हुए भी इसी लिए अकर्ता है।

२. **मैत्री**—मित्रता सम्पादन करना। प्राणिमात्र के प्रति मित्रता का भाव रखना। उससे प्रेम करना। जो विरोध करे, उससे भी मित्र-भाव रखना। इससे विरोध का किला गिर जाता है।

३. **करुणा**—दुखित अथवा पीड़ित को देखकर जो वेदना पैदा होती है, उसे करुणा कहते हैं। अमेरिका के प्रेसीडेन्ट ने सूअर को कीचड़ में लाचार तथा दुःखित फंसे देख कर कीचड़ से बाहर निकाला था।

४. **निर्मम**—अर्थात् ममता रहित होना। यह बात ईसा के उस उपदेश से कि जो तुझ से कोट मांगे उसे कमीज भी दे दे, बहुत ऊंची और गहरी है। कमीज देकर भी उसमें ममता रह सकती है पर निर्मम होने का अर्थ है वस्तु पास होने पर भी मेरापन न होना।

५. **निरहंकार**—अर्थात् अहंकार रहित होना।

६. **क्षमी**—अर्थात् सहनशील होना।

७. **समदुःखसुख**—सुख दुख में सम रहना।

८. **सतत सन्तुष्ट**—'यहां यूं भी वाह-वाह है और यूं भी वाह-वाह है'। इसका अर्थ यह नहीं कि पुरुषार्थ न हो। पुरुषार्थ होना चाहिये, पर सिद्धि-असिद्धि में तथा अपनी परिस्थिति पर सन्तुष्ट रहना चाहिये।

९. **योगी**— भगवान से जुड़ा हुआ हो।

१०. **महात्मा**— जितेन्द्रिय हो।

११. **अर्पित मनोबुद्धि**— मन बुद्धि को भगवान में अर्पण करने वाला हो।

१२. **दृढ़निश्चय**—अर्थात् अपनी धारणा पर दृढ़ रहने वाला हो।

इन लक्षणों का वर्णन गीता अध्याय १२ श्लोक १३, १४ में है। इसका मनन करना चाहिये।

जो लोग भजन पाठ करते हैं अथवा सेवा के क्षेत्र में काम करते हैं, उनको समझना चाहिये कि ये लक्षण उनके जीवन में आने चाहियें।

स्थितप्रज्ञ के लक्षण

यह सत्संग साधारण सत्संगों के समान नहीं। गाये, उपदेश सुने, नाम आराधन सुना और चल दिये। यह साधना सत्संग है। इस में सम्मिलित होने वालों को यहां आकर जीवन बनाना चाहिये। साधन में लग जाना चाहिये। भगवान को प्रिय लगने के लिये निम्नलिखित गुण अपनाने चाहियें।

१. दूसरे लोग उनसे व्याकुल न हों।

२. दूसरे व्यक्ति से वे स्वयं व्याकुल न हों। हर्ष, अमर्ष, क्रोध, भय और उद्वेग—इन से मुक्त हों।

३. भगवान को प्यारा वही होता है जो प्रत्येक परिस्थिति में सम रहने वाला हो। संसारी लोगों को ही जो प्यारा नहीं होता तो फिर भग्वान को क्योंकर हो सकता है। भक्त डरा नहीं करते। डरना भक्ति तथा भगवान से इंकार करना है। भक्त को भीरु

नहीं होना चाहिये। भक्तिवाद जीवन में परिणत होना चाहिये।

४. अनपेक्ष-दूसरे पर निर्भर न होना अर्थात् स्वावलम्बी होना।

५. शुचि—पवित्रता, तीनों प्रकार की पवित्रता—कायिक, वाचिक और मानसिक। क्षमा से विद्वान् शुद्ध होता है। दानी दान से शुद्ध होता है। जप से प्रच्छन्न पाप शुद्ध होते हैं। तप से शास्त्रों का जानने वाला शुद्ध होता है। सब पवित्रताओं में परम पवित्रता धन की है अर्थात् कमाई का पैसा पवित्र होना।

६. दक्ष—चतुर, समझदार।

७. उदासीन—पक्षपातरहित।

८. गतव्यथ—जिसके अन्दर से पीड़ा, मानसिक व्याधि दूर हो गई है। मानस व्यथा कई प्रकार की होती है। किसी प्रकार की चिन्ता, निरादर का भाव, व्यर्थ सोचना, इत्यादि।

९. सर्वारम्भ परित्यागी—'सब कामों में आसक्ति का त्याग करने वाला' यह लक्षण जीवन में घटना चाहिये। तब हम भगवान के प्यारे बन सकेंगे।

१०. जो हर्षित नहीं होता—जो अनुकूल वस्तु से हर्षित नहीं होता। इसका तात्पर्य उस प्रसन्नता से नहीं है जो आत्मप्रसाद के फलस्वरूप स्वयमेव उत्पन्न होती है।

११. जो द्वेष नहीं करता—प्रतिकूल वस्तु व पुरुष के संयोग से जो द्वेष नहीं करता। इस का अर्थ यह नहीं कि भक्त द्वेषी के दावपेंच को नहीं बचाता। ऐसा तो वह करता है पर उस में द्वेष बुद्धि नहीं होती। भक्त संसार में खेलता है अर्थात् राग द्वेष रहित होकर काम करता है।

१२. जो आकांक्षा नहीं करता—अनुचित रीति से किसी वस्तु को नहीं पाना चाहता।

१३. शुभाशुभ संयोग से रागद्वेष नहीं करता—अनुकूल प्रतिकूल को लांघकर अपने लक्ष्य की ओर चलता है। किसी जगह नहीं अटकता।

उपर्युक्त गुणों को लाने की चेष्टा करने से अपने अन्दर के

दोष क्षीण होते हैं। यह अनुभव सिद्ध है।

"अनन्य भक्ति करने वालों का योगक्षेम मैं चलाता हूं। जो दूसरे देवताओं को पूजते हैं वे मुझे जानते नहीं हैं।" "जो भूतों को पूजते हैं वे भूतों को प्राप्त होते हैं। जो मुझ को पूजते हैं, वे मुझे प्राप्त होते हैं।"

हिन्दुओं में वेदान्त से गुरुओं में ईश्वर के रूप की मान्यता आई। किन्तु यह विचार शोभा नहीं देता। यह विचार भारत की स्त्री जाति में अधिक पाया जाता है। वे गुरु को ईश्वर मानती हैं। यह तो ठगी है। केवल एक व्यक्ति में ईश्वरी कृपा अवतरित होती है, ऐसा पंथवाद में ही पाया जाता है। केवल ईसा ईश्वर का पुत्र नहीं था वरन् हम सब ईश्वर के पुत्र हैं, यह बात मान्य है।

अव्यभिचारिणी भक्ति होनी चाहिये। आदमी अन्दर से अच्छा होना चाहिये। बुराई बाहर से नहीं आती, अन्दर से आती है। यदि अन्दर हर्ष होवे तो मुख स्वयं खिल जाता है। यदि हृदय में चिन्ता की चोट लगती है तो मुख पर विषाद की झलक आ जाती है। यदि भलाई अन्दर हो तो वह भी प्रकट होती है। भगवान अन्दर आ जाये तो भलाई भी बाहर आती है। जिस प्रकार हृदय की तरावट चेहरे पर व आंखों में छा जाती है, उसी प्रकार भक्ति भी भक्त के जीवन में छा जाती है। भगवान की भक्ति बार बार चिन्तन करने से आती है।

पीपल में पानी देना, कबर को नमस्कार करना, यह व्यभिचारिणी भक्ति है। मीरा के अनुसार तो भगवान की मूर्ति हृदय में होनी चाहिये। लोगों ने तो न जाने मन में क्या-क्या बसाया है।

भगवान की भक्ति निष्कलंक कैसे हो, यह बार-बार चिन्तन करना चाहिये। भक्ति बार-बार चिन्तन करने से पुष्ट होती है। उसमें सुनिश्चय होना आवश्यक है।

भक्त कैसा सहनशील हो, १८वें अध्याय में यह बात आई है—

जो शत्रु मित्र में समान हो।
जो मान अपमान में समान हो।
जो शीत उष्ण में समान हो।
जो सुख दुख में समान हो।
जो आसक्ति से रहित हो।
जो निन्दा स्तुति में सम हो।
जो मौनी अर्थात् बहुत न बोलने वाला हो।
अर्थात्
जो जिस किसी प्रकार से भी संतुष्ट हो।
जो अपने स्थान में भी ममता नहीं रखता हो।
भक्त की प्रत्येक वस्तु दूसरे के लिये होती है।
जिसका निश्चय स्थिर हो, जो डांवाडोल न हो।
जो भक्ति करने वाला हो।

टिड्डियों का पंजाब पर अधिक आक्रमण हुआ। टिड्डीदल को विनष्ट किया गया। सैंकड़ों विद्यार्थी आदि ने इसमें भाग लिया। यदि कोई कहे कि (टिड्डियों को) किस दोष से नष्ट किया गया तो ऐसा तो नहीं है, यह तो (उनको नष्ट कराना) कर्तव्य है। गीता में बारहवें अध्याय के २३, २४ श्लोक में भगवान कहते हैं कि जो जन सब प्राणियों के प्रति द्वेष रहित है, सब का मित्र है, दयावान है, ममता रहित है, अहंकार वर्जित है, सुख दुःख में सम है, क्षमावान है, जो भी स्थिति हो उसमें सुखी रहता है, जिसने जो निश्चय किया उस पर दृढ़ और डांवाडोल नहीं होता, सदा सन्तुष्ट रहता है, तथा अपने आत्मा को वश में करने वाला है—ऐसा भक्त मुझे प्यारा है।

भक्त के लक्षण वर्णन करते हुए (भगवान ने आगे कहा है कि) जिससे लोग अशांत नहीं होते और जो स्वयं भी किसी से व्याकुल नहीं होता, जिसे वस्तुओं की प्राप्ति से हर्ष न हो, जो किसी की बढ़ती देखकर कुढ़े न, जिसे अभाव का भय न हो, वह भक्त मुझे प्यारा है।

भगवान को वीर धीर प्यारे होते हैं न कि मोही, छली।

भक्त किसी की सहायता का विचार न रखे, वह स्वतंत्र भाव का मनुष्य हो, अनपेक्ष हो। केवल राम के सहारे पर रहे, किसी और के सहारे क्या रहना, मनुष्य क्या पता कब सीढ़ी खींच ले।

भक्त पवित्र रहने वाला हो। मेल-जोल का, मन का पवित्र हो। केवल कपड़े आदि तो आम नागरिक भी स्वच्छ रख सकते हैं। मनु ने कहा कि जितनी पवित्रता मन धन की है उतनी मल कर नहाने की नहीं।

जो स्वतंत्र है अर्थात् दल बन्दी में नहीं आता, शत्रु और मित्र से भी अलग है, जिसको मन की पीड़ा नहीं।

भक्त के चिन्हों का मनन करना चाहिये। भक्त में तो निरालापन होना चाहिये। जो मायावी संसार में ही रहा तो वह तो भक्त न रहा। गीता में सब बातें वे कही गई हैं जो व्यवहारिक हैं (अर्थात् वास्तविक जीवन में जिन्हें कार्यान्वित किया जा सके) यदि इसे याद किया जावे (गीता को) तो यह संसार में बहुत काम आती है।

भय कोई और चीज है और विचार कोई और (अर्थात् किसी बात से भय होना एक भिन्न बात है और उस बात का विचार होना भिन्न।

गीता में आदर्श पुरुष के भिन्न भिन्न नामों से लक्षण वर्णन किये गये हैं। दूसरे अध्याय में स्थितप्रज्ञ, बारहवें अध्याय में भक्त, चौदहवें में त्रिगुणातीत तथा सोलहवें में दैवी सम्पत्ति-सम्पन्न पुरुष के रूप में वर्णित हैं। जो परमेश्वर के व्यक्तित्व को मानते हैं अर्थात् ईश्वर में व्यक्तित्व का आरोप करके आराधना करते हैं, वे लोग अपने उद्देश्य को जल्दी प्राप्त करते हैं, अपेक्षाकृत उनके जो किसी शक्ति का ध्यान करते हैं, जो कि समझ में न आये।

कर्म उपासना

सतत परहित में परायण रहना भक्ति ही है। यह कर्म द्वारा ईश्वर की उपासना है। भक्ति बिना ज्ञान के नहीं होती। प्रभु के

प्रति प्रीति भक्ति कहलाती है। पारिवारिक प्रीति न होने पर पारिवारिक कर्म नहीं हो सकते। बिना प्रीति के, ब्रह्म मुहूर्त में उठकर जपादि क्योंकर होगा? इष्ट में प्रीति को भक्ति कहते हैं।

ज्ञान, कर्म और भक्ति तीनों एक हैं

यह संसार ठाकुर द्वारा है। ईश्वर ने सारे विश्व को विस्तारा है। अपने कर्म से उसे पूज कर परम सिद्धि प्राप्त करें। कर्म सामाजिक भी है और आध्यात्मिक भी। केवल ब्राह्मण द्वारा ही पूजा, पूजा है, यह ना-समझी है। चारों वर्णों के अपने २ कर्मों द्वारा ईश्वर पूज्य हैं। जब से हिन्दुओं में ये भाव आए कि वृंदा वन में, काशी में या हरिद्वार में रहने-मरने में कल्याण होता है तो लोग अपने कर्मों को छोड़कर वृन्दावन, काशी भागने लगे। सत्य तो यह कि जीव अपने कर्तव्य कर्म करे और इसी में राम पूजन समझे। उसका कल्याण इसमें ही है।

स्वभाव से जो कर्म नियत है उसको करते हुए मनुष्य पाप को प्राप्त नहीं होता। विहित कर्म को सन्यास नहीं कहा है। सन्यास शब्द वेदों में नहीं है।

ज्ञान, मनन, सजीव श्रद्धा से बना रहता है। श्रद्धा बनी रहे, निश्चय बना रहे—इसके लिये निश्चयानुसार कर्म करना चाहिये। जैसे शरीर नित्य के अन्नपान से चलता है इसी प्रकार सुकर्म करते रहने से उसमें निश्चय बना रहता है। कर्म करने वाला ही निश्चय वाला है। कर्म न करने से निश्चय नहीं बना रहता। सुख न मिले तो मनुष्य कर्म छोड़ देता है।

नेताओं की सन्तान उनके समान नहीं होती। इसका कारण यह है कि उनका घरेलू जीवन उनके सार्वजनिक जीवन के समान नहीं होता। सन्तान मनुष्य के आचार, विचार, व्यवहार की प्रतिबिम्ब मात्र है।

प्रत्येक कर्म को करके समझना चाहिये कि इससे हम हरिपूजन करते हैं। (महाराज जी ने एक माई का दृष्टान्त दिया जो अपने आपको बड़ा दुःखी मानती थी। वह भगवान को गाली

ो थी, फिर दूसरी स्त्री ने उसको समझाया)। जो आग यत्नों बुझाई उसको न सुलगा, बाबा। जिस पेड़ की खोह में अग्नि वहां हरी बेल कैसे चढ़ सकती है (अर्थात् काम क्रोध आदि की गेन)।

अच्छे-अच्छे साथी चले गए। पाकिस्तान बनने पर कुकृत्य खकर जीवन से उदासीनता आ गई थी। पर अच्छे आदमी मलने से अब जीवन अच्छा लगने लगा। सफलता में ही सुख । अपने हृदय को निर्मल बनाएं, अनन्त की ओर जाने के नये।

ब्रह्म अनिर्वचनीय होता है। सच्चिदानन्द भी उनका वशेषण है। भक्त तो भगवान को बुलाता है और तब तक वेश्राम नहीं लेता जब तक वह उसके कार्यों में आकर भाग नहीं लेता, साथ नहीं देता। भक्तों ने भगवान को जाना है, बौद्धिक लोगों ने जाना नहीं है। वे केवल बौद्धिक आनन्द उठाते हैं। भगवान को जो व्यक्तित्व रहित मानते हैं उन पर रूप अवतरित नहीं होता। जो व्यक्तित्व में विश्वास रखते हैं, उनके विश्वास के अनुरूप, रूप अवतरित होता है। आज भी भगवान के रूप प्रकट होते हैं। गांधी जी को ब्रिटिश सत्ता से टक्कर लेने के लिए भगवान का आदेश हुआ।

कर्तव्य पालन ही भगवान का पूजन

देवियो और सज्जनों: अपना कर्तव्य पालन करना यह ही जीवन का सार है। पाप क्या है यह समझाने के लिए पंडितों ने बड़ा यत्न किया है पर अन्त में इसी निश्चय पर पहुंचे हैं कि प्रत्येक मनुष्य को अपना कर्तव्य पालन करना चाहिये। यह ठीक श्रीमद्भगवत् गीता में कहा है कि कर्म का पालन ही परमेश्वर का पूजन है। जो ईश्वर सब प्राणियों के हृदय में रहता है और सर्वत्र विद्यमान है और सब (वस्तुओं) को चला रहा है उसको अपने कर्म से पूजना।

हम पूजन को पत्तों और जल तक सीमित कर देते हैं—हम

कर्म में कितने ही हीन हों पर हम समझते हैं कि किसी के बगीचे से फूल चुरा कर ले आना और फिर उस पूजन का तो विचार, पर कर्म का नहीं। फूल चढ़ाना कोई बुरा नहीं पर एक मनुष्य कर्महीन-चरित्र इसका मैला हो और मन उसका गिरा हुआ—तो बाहर जो चीज़ बागीचों में है इसमें तो भगवान पहले ही विराजमान है। कर्म ही भगवान का पूजन है।

किसी नगर में एक मनुष्य रहता था। इसके कुछ मिलने वालों में यह बात फैल गई कि वह बड़ी पूजा करता है। एक आदमी आया देखने। देखा कि न फूल न मूर्ति। वह थोड़ी देर बैठा और फिर चला गया। इसको विचार आया कि इस की कीर्ति यों ही है। लोगों ने इसको यों ही प्रसिद्ध कर रखा है। किसी और से कहा कि वह तो कोई पूजा नहीं करता, न कोई ठाकुर उसके पास न कोई फूल सामग्री। पर वह कुछ कर अवश्य रहा था। इसने कहा, भाई! उसी से पूछो।

अगले दिन फिर गया। कहने लगा, भई! पूजा तो कोई और करते होंगे, मैंने तो कर्तव्य पालन किया जैसे मुझे किसी सन्त ने बताया। मैं प्रतिदिन अपने दैनिक कार्यक्रम को देखता हूं—मेरा किसी से बैर नहीं, किसी से विरोध नहीं। घर में शांति है। मैं अपनी आजीविका के लिए काम करता हूं। किसी संस्था में, जो लोगों की भलाई के लिए काम करती हो, उन में समय देना—यही काम। मुझे जिस महात्मा ने कहा था, मैं समझता हूं कि उसने ठीक ही कहा था। मैं, अनाथ कोई हो, उसकी सहायता करता हूं। किसी को सेवा की आवश्यकता हो उसकी सेवा भी करता हूं।

उसने कहा, आप इसको सेवा कहते हैं। तो कहा कि मुझे बताया सन्त ने। मुझे तो निश्चय है, नारायण का जगत यह है। इसमें जितने प्राणी सब नारायण की मूर्ति हैं। उसके मन्दिर को स्वच्छ बनाना। वह सन्तुष्ट न हुआ। नगर के ज्ञानी के पास गया। आरती घंटी की चर्चा की और आज की सुनी पूजा की भी। कहने लगा, यह नाम का चिन्तन करता होगा। मैं यहीं रहता हूं एक अतिथि दूर देश का मेरे मकान में रहा। वह बीमार हो ॥

तो यहां आकर वह पुजारी उसकी सेवा करता और रात को सोता। भई, उसकी बात क्या कहते हो। वह तो सदा श्री राम मन्दिर में ही रहता है। उस आदमी को बड़ा आश्चर्य हुआ कि बाल्यकाल से मैं तो सुनता आया था कि पूजा क्या (होती है) और इस नगर के लोग खूब हैं। फिर वह किसी और ज्ञानी के पास गया और कहा, आपकी सम्मति क्या है? भई! एक और एक दो। एक आदमी धोका करके पैसे कमा कर मन्दिर में ले गया तो इसने क्या पूजा की। एक कोई भाई से लड़े—घर में मां बाप से लड़ाई—तो वह ठाकुर द्वारे में फूल ले गया तो राम तो सब जाने।

अपने कर्मों से भगवान को पूजने से भक्ति। कर्म प्रधान जगत रच राखा।

दैवीसम्पद

अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम्।।

अभयम्—इसका चिन्ह, भय न होना—भय का अभाव—निर्भयता। मुझे एक (व्यक्ति) देहरादून में मिला। कहने लगा—'अब मुझे पैंशन मिल गई है। यह सोचा है एक कुटिया यहां देहरादून में बना लूं। वहां मकान तो है जालन्धर में, पर वह बार्डर के पास—वहां डर (है)। वह जालन्धर का ही रहने वाला खत्री (था) पर भय (उसके मन में)। जिसने जालन्धर में आक्रमण करना है वह देहली पर, बम्बई पर पहले ही बम्ब डाल (दे) (और) कोई आश्चर्य नहीं सीमा के निकट वालों पर बमबारी ही न करे। डर के मारे उस की ऐसी कल्पना। भीरुपन असुर गुण है। देव भाव वाले तो निर्भय (होते हैं)। पर जो भीरु (उन को) रात भर नीन्द नहीं आती। कुछ आवाज़ आई और दिल धड़क गया। दीवा लेकर देखने स्त्री आई तो मालूम हुआ चूहा था। पर रात भर नीन्द आई नहीं। ऐसे लोग जो हैं उन्होंने वीरता का, साहस का काम कभी किया नहीं होता। एक बार मित्र के पास गया। कुत्ता वहां छोटा सा—खेलने वाला—पहरा (देने वाला कुत्ता) नहीं। मैं भी अन्दर मित्र के पास जा बैठा तो वह छोटा सा कुत्ता अन्दर नहीं जाता था। कारण यह (था) कि यह खाल जो कमरे में बिछी हुई थी वह शेर की थी। सम्भवतः आठ दस पीढ़ी में भी शेर इस कुत्ते ने न देखा हो। चिड़ियाघर भी इस नगर में नहीं था। पर वह जो शताब्दियों पुरानी पीढ़ियों से भय की बात उस कुत्ते में थी (वह अन्दर न आने का कारण थी)। यह तो महात्मा गांधी ने अच्छा संस्कार डाला जिस ने भय मिटाया। नहीं तो इन युगों में मानवता की कल्पना नहीं हुई। वैसे भी इतने सौ वर्ष तो कोई भी देश दास नहीं रहा। बात यह थी कि निर्भयता नहीं थी। लकड़ियां भी धोकर जलायें।

आत्मभाव की कथायें यहां बहुत होती हैं। वे दूसरे देशों वाले

आत्मकथा इतनी नहीं करते। वहां आत्मकथा कम। पर डर भी यहां के लोगों के हृदय में अधिक। अच्छे प्रबल पुरुष आये, उन्होंने सभी लड़के, लड़कियों, नवयुवकों को खड़ा कर दिया--निर्भय बना दिया। अभयता--यह उत्पन्न होनी चाहिये, नहीं तो आदमी का तन चाहे कितना बड़ा हो, पर भारी शरीर के होते हुए भी दुर्बल। बल कोई तन का नहीं, बल तो अन्दर का है। कीकर सिंह एक पहलवान (था)। मैंने, पुरानी बात पटियाला की, देखा कि, एक दूसरे पहलवान ने जो उससे काफी हल्का (था) उस (कीकर सिंह) का कंधा लगा दिया। वह पुकारे, या अली। महाराजा पटियाला ने ठुड्डे मारे। मुझे कहना यह (है) कि बल (केवल) तन का नहीं होता। लक्ष्मण जी का कथन है--'हे राजन, बल तो साहस में है।' साहसी घबराता नहीं। उत्साह में बल सभी समाया।

शरीर के बहुत तगड़े तो नहीं, पर गांधी जी कहते-- 'स्वराज्य मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है।' वह राम नाम का आराधन करता हुआ पाप से भी निर्भय था। पर यह क्या हुआ--'मेरा कल्याण हो जावेगा जी?' अरे, राम नाम से नहीं तो फिर काहे से? राम नाम लेकर ऐसा जिसका विश्वास कि अब मेरा पतन कभी नहीं होगा--ऐसा मनुष्य जो है, वह देव-भाव वाला (है)। गीता में भगवान वाक्य (हैं)--"अनन्य भाव से जो मेरा आराधन करते, उनके योग-क्षेम का मैं उत्तरदायित्व लेता हूं।" ऐसी भावना लानी चहिये। "तू यह जान ले अर्जुन! कि मेरे भक्त का नाश नहीं होता।" यह विश्वास, यह धारणा बड़ी पक्की होनी चाहिये। ऐसी आन्तरिक दृढ़ता होनी चाहिये कि बुराई अब मेरे पास कभी नहीं आयेगी। साधक में यह बात आनी चाहिये कि हमने इस मार्ग को पाया है, यह (मार्ग) पाप ताप से परित्राण देने वाला है। ऐसी धारणा वाले में फिर श्रद्धा की बेल कितनी पनपती है! जो मार्ग से हटता है वह भटकता है। तो फिर जो भटकता रहता है वह अटकता ही रहता है। सज्जनो, यह भरोसा हो, कि अब उत्तरदायित्व उसका। टिकट लेकर आदमी को भरोसा (होता है)

कि अब मैं वहीं पहुंच जाऊंगा जहां का टिकट। वह, उतारे कोई, तो उतरता नहीं। उसे डर नहीं होता कि अगले स्टेशन कोई उतार देगा। पर वह तो महाराज सिकुड़ कर बैठेगा जो बिना टिकट (होता है)। बात यह है कि जब राम नाम का ले लिया टिकट तो रास्ते में कोई भी उतारने वाला नहीं मिलेगा। सीधा परम धाम का यह टिकट। ऐसी अभयता कोई बाहर की चीज़ नहीं। यह तो (निर्भयता) उन सभी को प्राप्त (है) जिनको डराया नहीं गया। यूं तो कुत्ता भी मालिक के द्वार पर शेर (होता है), पर निराली निर्भयता जो है वह तो भगवान के नाम आराधन से आती (है) कि त्रिलोकी के किसी कोने में भी कोई आदमी ऐसा नहीं जो मेरी गति मति को बिगाड़ सके। हनुमान ने कहा था—

"मेरा मार्ग है खुला दश दिश तीनों लोक।
मेरे पथ को जन नहीं सकता कोई रोक।
मेरी गति मति शक्ति को सके न कोई टोक।।

ऐसी निर्भयता नहीं आये तो सज्जनो, वे अभी बहुत पीछे हैं। ऐसा आदमी जिसमें निर्भयता है, वह खान-पान, द्वेष वालों से ऊपर रहता है। वह उसी के (परमेश्वर के) देवलोक में निवास करता है। ऐसी निर्भयता देवों में होती है। जहां निर्भयता है वहां देवभाव है। निर्भयता जो है वह पहला देवगुण है।

अन्तःकरण की शुद्धि

कल के इस समय के कथन में यह दर्शाया गया था कि निर्भयता देवों में होती है। अगला लक्षण महाराज (श्री कृष्ण जी)ने कहा—सत्त्व संशुद्धि—अन्तःकरण की शुद्धि, अन्तःकरण की निर्मलता। आदमी के अन्दर खोट रहता है। बाहर मुख कमल के समान (दिखाई देता है)। चन्दन की जैसी भीनी वाणी (बोलता है) पर हृदय तो जो है, उसमें कैंची। दुरात्मा जो होते हैं उनके मन में कुछ और होता है और वाणी में कुछ और। मन में बुरे विचार उत्पन्न न हों—देवत्व में यह पाया जाता है। दुर्वासना पैदा न होने देना—यह देवत्व है। खाली आदमी में बुराईयां आती हैं। मन को

खाली न रखना—यह ही एक अच्छा उपाय है दुर्वासना न पैदा होने देने का। किसी ने किसी वृद्ध को कहा। उसने वर्ष गिन कर बताये कि मैं सत्तर वर्ष का हूं। यह सुनकर उसने कहा कि तुम इतने अच्छे मालूम होते हो। भला क्या कारण है इसका कि तुम सत्तर वर्ष के दिखाई नहीं पड़ते हो। (वह) बोला—कोई कारण और तो मुझे पता नहीं है। एक इतनी बात अवश्य है कि मैं मन को मैला नहीं बनाता। यह मैंने अपने पिता से सुना था कि मन को मैला नहीं बनाना। राह चलने वालों के पथ में ऊँचा नीचा पथ भी आता है। संसार में बुरे भी आदमी मिलते, भले भी मिलते हैं। मैंने मन को मैला नहीं होने दिया—यह ही कमाई की है। फिर जो अवकाश मिलता है उसमें भगवान का जाप किया करता हूं। कठिनाईयां भी आई होंगी तुमको? उसने कहा—हां, मेरी भार्या जो आई तो उसके सम्बन्ध से, उसके बर्ताव से मैं कैसे कटुभाषी न बनूं—यह मैंने सोच लिया है कि मैंने अपने हृदय में कटुता नहीं लानी है। कभी मैंने उसको डांटा नहीं—ताड व तर्जना करी नहीं। मैं मन को मैला होने देता तो ही यह अवसर आता। विवाद के पांचवे वर्ष उसने स्वयं ही कह दिया कि तुम्हारी धारणा ने मुझे झुका दिया, मेरा स्वभाव बदल दिया। मैंने कहा, यदि तुम्हारा स्वभाव बदल जाये तो बड़ी अच्छी बात है। मैंने देखा कि वह बिंल्कुल बदल गई। यदि मैं दुर्वासना पैदा होने देता, मन (में) क्रोध लाता तो मेरे घर का संसार और ही होता। उसने फिर प्रश्न किया, ''जीवन में और भी कठिनाई आई होगी आपको?'' कहने लगा—मेरा भाई प्रमादी बहुत (था)। कारोबार में समय नहीं लगाता (था)। पिता जी के होते हुए वह ठीक चलता रहा। मैंने भी यही समझा, पिता जी ही समझायें। पिता जी के जाने के बाद (उसने) घर बटवारा करवा लिया। ज़्यादा मांगा मैंने दे दिया। तुम भाई हो, आवश्यकता हो तो यह भी ले लो। कुछ समय बीतने पर ऐसा होना स्वाभाविक ही था, संगति जो अच्छी नहीं थी। उसके बच्चों के तन पर शीतकाल में पूरे कपड़े भी न रहे। मैंने उसको कहा, मैं तेरा भाई हूं। यद्यपि बंटवारा हुआ था

पर मेरा घर जो है वह भी आप ही का घर है। बन्धु-भाव से कहता हूं यह कुछ कपड़े आदि ले लो। वह रो पड़ा। उसके बाद उसने मेरी निन्दा भी किसी के आगे नहीं की। कुछ दिनों के पश्चात् मेरे पास आ गया। कहने लगा, "तेरे मन की मधुरता ने मुझे जीत लिया है।" और आज वह इतना गाढ़ बन्धु है कि दूसरा कोई उस जैसा नगर में देखने में नहीं आता।

एक और कठिनाई भी आई। अफसर कुछ अजीब आ गये। बात बात में बुलायें। उन की दृष्टि फिर गई। उन्हें भ्रम हो गया कि मैं चोरों के साथ मिला हुआ हूं। मैंने सोचा मेरे मन में, मैंने तो ऐसा कुछ किया नहीं। यह सोचते हैं, सोचें। जो कुछ किसी ने पूछा, मैंने साफ-साफ कह दिया। अन्त में सरकारी नीति भी यही है। एक ने हिसाब देखा, फिर दूसरे ने, फिर तीसरे ने। समय बहुत लग गया। मेरे लड़के भी कहें, मेरी पत्नी भी कहा करे; परन्तु, मैंने किसी प्रकार की आवाज (उठाने) या सफाई देते फिरने की बात को नहीं अपनाया। अन्त में सरकारी रीति से (Enquiry आदि) सब बात साफ हो गई। दो वर्ष के बाद साख जम गई और महाराजा ने स्वयं निमंत्रित किया और बताया कि लोगों ने आपके बारे में बहुत कुछ कहा। इनक्वायरी (Enquiry) आदि हुई। उस का मुझे खेद (है)। पर मुझे कहना यह है कि पिता का पढ़ाया पाठ मेरे काम आया। मैंने अपने स्वभाव का ठंडापन नहीं छोड़ा, मन में मैल नहीं आने दिया और पिता के पढ़ाये पाठ से मेरे संकट, दुःखड़े आप ही आप दूर होते रहे।

मुझे कहना यह है कि अन्तःकरण की शुद्धि, अन्तःकरण की निर्मलता बड़ी बात है। यह देव स्वभाव वालों में होती है और जो इस गुण को अपनाता है उसमें दैवी सम्पत्ति समझी जानी चाहिये।

ज्ञान योग में स्थिति

फिर श्री कृष्ण जी महाराज ने तीसरा दैवी गुण कहा है—**ज्ञान योग में स्थिति**। योग वियोग दो शब्द हैं। योग शब्द

अध्यात्मवाद में भगवान के साथ मिलाप के लिये उपयोग में आता है और जब वियोग शब्द तो फिर भगवान से मिलाप न रहा—तो वियोग हो गया। वैसे योग शब्द का अर्थ जुड़ना और वियोग का अर्थ बिछुड़ना। तो यह जो ज्ञान योग में स्थिति कही गयी। यह है इस प्रकार की समझ और विचार पर बल कि यह काम करने से मुझे क्या लाभ होगा, न करने से क्या हानि होगी। अर्थात्, जो बात करना, बुद्धि पूर्वक करना, अन्धा-धुन्ध न करना। हानि लाभ को सोच कर करना—यह सब ज्ञान योग में स्थिति में आ गया।

महात्मा गान्धी ने सत्याग्रह चलाया। वे इस को समझते थे। सत्याग्रह अर्थात् सच्चा हठ। पहले युग में भी भरत ने कुटी के आगे धरने की बात कही थी। पर वह सत्य से हटाने की बात (थी) और भरत मान भी गये और उन्हें समझा भी दिया सभी ने। यह सत्याग्रह की बात तो ज्ञान पूर्वक होनी चाहिये। महात्मा गांधी जिसने चलाया था उसको तो ज्ञान था। अब दुरुपयोग और मिथ्याग्रह। अब तो इस विचार से किया जाता कि मिनिस्टरी गिर जाये तो फिर हमारी पार्टी गवर्न्मैन्ट (Government) हथिया ले। यह मिथ्याग्रह की बात—यह मिट जावेगी अपने आप से।

सोच के—आगा पीछा देखकर के काम करना—देवों में यह बात पाई जाती है। सीता हरण के लिये जब रावण आया तो मारीच ने उसे बहुत समझाया। उसने जो बात कही वह (अन्धाधुन्ध नहीं थी,) सोच विचार कर (कही गई थी)। सीता ने भी (अशोक वाटिका) में रावण को कहा था – 'तेरे देश में या तो सन्त हैं नहीं और हैं तो तू उनका कहना नहीं मानता। रावण की क्रिया आवेश से पैदा हुई थी, ज्ञान पूर्वक क्रिया नहीं थी। तो फिर कितना नाश करवाया। सब बातें सोचना, विचार करना, तो ही ठीक चान्दना आ जाता।

एक आदमी बहुत उतावली से काम किया करे। उसके अधिक काम बिगड़ते भी थे। हानि भी उसने बहुत उठाई। जहां भी हुआ उसने बढ़ कर बात करनी। वह साधु को मिला और छूटते ही कहा

– 'मैं चाहता हूँ कि साधु बन जाऊँ।' प्रार्थना की कि चेला बना ले। कहने लगा भगवा पहना दो। नगर के लोग मेरे बड़े विरोधी। घर का दुःखड़ा बहुत है। मैंने ठानी है संसार छोड़ दूँ। साधु बोला ज़रा बैठ जा। भोजन कर ले, फिर सोचेंगे। अभी से तेरी बात मान लूँ, भगवा पहना दूँ तो मैं समझता हूं कि पहले नगर के लोगों से विरोध और फिर तू साधुओं से लड़ेगा। महात्मा ने, जब रोटी खाने लगे, तो जो आश्रम में भोजन था, गरम करवाया और लड़के से कहा पीछे सोचेंगे, पहले भोजन कर लो। भूख थी, हलवा आया गरम-गरम। मुंह में डाला, जीभ जल गई –गरम जो डाला था। जीभ जलते में ऊपर को जो मुंह किया तो कहने लगा, "बाबा, आपकी कुटिया यह बनाई है इसमें शहतीर जो पड़े हुए हैं ये सीधे नहीं।" बाबा ने कहा, राज (MASON) भी तेरी तरह उतावला था। तू विचार पूर्वक काम नहीं करता। तेरी उतावली से तेरी जीभ जली है। देख, विचार पूर्वक काम न करने के कारण ही युधिष्ठिर जैसा महान पुरुष भी बड़ा दोषी गिना जाता (है)। बड़ा धर्मराज माना जाता था, पर जुए पर बुलाये कोई तो बहुत ही उतावला हो जाता। विचार पूर्वक काम न करने के कारण हानि होती है और बुद्धिपूर्वक करने से कठिनाई नहीं आती। कोई इस बात की परीक्षा कर के देख सकता है। लड़ाई की चिट्ठी लिखनी हो तो दो दिन ठहर कर देखो, वृत्ति बदल जावेगी।" इस पर उसने महात्मा की इतनी बात मान ली कि कपड़े जो उसने रंगवा लिए थे, वे अब धुलवा लूंगा, घर वापिस आ जाऊँगा। घर में आया, किसी आदमी से रुपया लिया हुआ था और वह अब मुक्कदमा भी जीत गया था। अगले दिन कुड़की हो जानी थी। उसके पास गया और निवेदन किया कि आप तक़ाज़ा जो करते (हो) वह भी ठीक (है) पर घर न रहा तो बाल बच्चे दुःखी होंगे। मैं एक साल में मेहनत करके कमाउँगा और आपका पैसा लौटा दूँगा। उसकी विचारधारा में और बात की शैली में परिवर्तन देखकर उसने कहा, 'यदि तुम निश्चय दिलाते हो तो मैं कुड़की रोक लेता हूँ। मकान हमारे पास है, उतावली तो है नहीं। यह उलझन सुलझा

कर फिर सोचा कि मुनीम मालिक बन गया है। ऐसे जो बोलता है तो पता पड़ता है कि व्यापार में पेचीदगी पैदा कर ली है, मैं प्रमादी जो रहा। मुनीम के पास गया और कहा कि मुझे तुम जो देना चाहते हो, दे दो। अब मैं किसी और व्यापार की सोच चुका हूँ। इस प्रकार बड़ी सुगमता से अन्धाधुन्ध की शैली को छोड़ कर उसने विचार पूर्वक काम करना अपना कर, व्यापार में जो उलझन आई हुई थी उसे सुलझा लिया और फिर निश्चय किया कि पत्नी—जो मायके गई हुई थी—को अब मना लाना चाहिये। जाकर उससे कहा, आप चलो, घर बरबाद हो रहा है।' संयोगवश तीन वर्ष बाद साधु मिला और सब बातें बताईं। साधु ने कहा, "अब बता क्या विचार है भगवा पहनने का?" तो कहने लगा, "अब तो जिन्होंने पहने हुए हैं, मन ऐसा करता कि उनके भी छुड़वा दूँ।"

ज्ञान योग में स्थिति—सोच विचार कर काम करे और अन्धाधुंध न करे—यह दैवी सम्पत्ति (है)।

दान

गीता के सोलहवें अध्याय से दैवी सम्पत्ति के लक्षण वर्णन होते रहे हैं। अगला (चौथा) लक्षण – दानम्।

दान में लोग पैसा-टका ही प्रायः गिनते हैं। यह एक प्रकार की शैली चली आती है। लोग एक बात की ओर लग जाते हैं, दूसरे का निरूपण नहीं करते। 'दूसरे का उद्धार होता हो—वे सब बातें दान में सम्मिलित (समझनी चाहियें)। दान तीन प्रकार का वर्णन किया है—

1. ज्ञान दान
2. सुमति दान
3. सेवा दान

कोई भी मनुष्य ऐसा नहीं जो दान न दे सके। धन दान की गाथाएं—वे सब अपनी जगह ठीक (हैं) पर जिसके पास पैसा नहीं, पर जो विद्वान (हैं) वह विद्या दान दे जिससे लोगों का भला हो।

जिसको अनुभव (है) वह सुमति दान करे और जो कर्मी आदमी है वह सेवा दान दे। कुछ एक देश ऐशिया में भी ऐसे हैं और योरुप में भी (हैं) जिन में धन और सेवा सरकार ने दोनों अपने हाथ में ले रखी हैं। माना तन भी ले लिया और धन भी सरकार के हाथ में। मन माने तरीके से व्यय करे। तो बात यह है कि कोई सड़क बनानी पड़े तो लाखों लोग लग जाते (हैं)। कोई न नहीं कर सकता। यह अच्छी बात है कि नहीं, यह तो वह जाने। दोनों से (धन और सेवा से) देश को बहुत बढ़िया और सुन्दर उन्होंने बनाया। भारतवर्ष में भी थोड़ा इसका प्रदर्शन हुआ। टिड्डियां मारने अध्यापक जावें – ऐसे परिपत्र निकलें। अस्तु, लोग चिल्ला भी उठे। सेवा-दान माँगा, देहात के लोग, लड़के दौड़ उठे तो टिड्डी दल को समाप्त किया। यह श्रम-दान (उत्तर प्रदेश) शासन और दूसरे शासनों ने भी चलाया। पिक्चरों में भी दिखाते (हैं)। इससे भी बड़ा लाभ (होता है)। जो काम आठ-दस वर्ष में हो, वह दो वर्ष में हो सकता (है)। लोगों ने ऐसा कम विचार किया कि सेवा में धर्म (है)। सेवा दान मांगने से लोगों ने नगरों की सफाईयाँ आरम्भ की। स्वच्छ रहने की भावना आ गई। तो मुझे कहना यह है कि इस युग में सेवा-दान का भी बड़ा महत्त्व (है) नहीं तो लोगों ने तो यही जाना था कि आटे की गोलियां मछलियों को दे दीं तो वही दान (है)। सैंकड़ों सेवादार अधिक कोमलता से कुम्भ पर सेवा में जुट जाते (हैं) ऐसे सेवकों का लोगों को वहां सुख पहुंचाने का बड़ा भाग है। इस समय जातीय जीवन में सेवा का बड़ा महत्त्व है। कहना यह कि दान को संकुचित न कर लेना। बिमार कोई है तो आप उसको औषधि ला कर दे देवें तो यह सेवा-धर्म है। नहीं तो कोई कैसे वैतरणी को पार कर लेगा या इसी किनारे लुटिया डुबो देगा। तो यह बहुत थोड़ा सा जातीय कामों में सेवा दान मैंने प्रदर्शित किया। एक आदमी ने पंडित जी से पूछा कि 'महाराज, आप दान की बड़ी महिमा बताते हैं। हमारे नगर में तो इतना धन है नहीं कि हम लोगों को दे सकें।' पंडित बोला, 'तू बड़ा भाग्यशाली है कि तू कमाई करता है। बहुत धन होता तो

आलसी बन पड़ा रहता। सांप भी जो धन पर बैठा रहता (है) आलसी ही होता (है)' देख, तेरे पड़ोसी भोले भाले (हैं)। रात को स्कूल खोला कर। उनको कहो, नहाया करो, बाल भी कटवाया करो। कहने लगा आज तक तो किसी पंडित ने हमें नहीं बताया कि इससे भी वैतरणी से पार हो सकना संभव (है)'। उसने घंटा डेढ़ घंटा देना आरम्भ कर दिया। छः मास में मुहल्ला उन्होंने चमका दिया। लड़के बाल उपदेश पढ़ने लगे और जो पहले से कुछ थोड़ा पढ़े हुए थे वे रामायण पढ़ने लगे। वह पंडित आया। उसने देखा कि मुहल्ला ब्राहमणों के मुहल्ले से अच्छा (है)। उसकी प्रशंसा करते हुए (पंडित ने) कहा कि भाई, यह जो तूने काम किया, यह उत्तम कमाई (है)। उसने कहा, 'महाराज, आपने बताया, आपकी शिक्षा के दान का यह फल है। इस श्रम का बड़ा फल है। इसमें मेरा आत्मा एक भाव से लगा हुआ है।' पंडित ने कहा – 'इसको विस्तृत करें।'

दमन

दान के बाद दमन है – पाँचवाँ लक्षण। अपनी वृत्तियों को वश में रखना दमन कहलाता है। ऐसे लोग बहुत (हैं) जो साँपों को वश में और शेरों को वश में करते (हैं)। मैंने देखा एक साधु को – वह शेर को ललकार कर झड़क देता। यह बातें पुरुष ही नहीं करते, लड़कियाँ मैंने देखीं सरकस में, पीठ पर सवार होतीं–पर अपनी वृत्ति को वश में रखना, मन को दमन करना, यह बड़ी कठिन बात है। लोग बाहर की चीजों में ज्यादा जाते हैं, इन बातों की और कम विचार करते (हैं)। मनुष्य का अन्दर अच्छा हो। मनुष्य (अपनी) वृत्तियों को अपने वश में रखे, यह बहुत उत्तम, बहुत श्रेष्ठ (बात है)। तो मन की वृत्तियों को मार्जित करना-यह दमन है। यह बड़ा देव भाव का गुण है। अपने मन को अच्छा रखना, यह भी देव-स्वभाव वालों का लक्षण है। मनुष्य आकार में देव भी हैं और असुर भी हैं। और महाराज (श्री कृष्ण चन्द्र जी)ने इसी अध्याय में असुरों और देवों के चिन्ह वर्णन किये हैं।

उससे सात्त्विक वृत्तियाँ जगती हैं, ज्ञान होता है, कर्म का, धर्म का और यह कि धर्म का क्या स्वरूप है। अच्छे मनुष्य बहुत कम मिलते हैं पर ऊंची कोटी के पुरुष ग्रन्थ लिख गए हैं। ऐसे ग्रन्थों के पाठ से उच्च वृत्ति बनती है। दान, दमन और स्वाध्याय का वर्णन आज किया गया। अगली बात कल को वर्णन करूँगा। स्वाध्याय करना दैवी सम्पत्ति का चिन्ह है।

तप आर्जवम्

कल मैंने स्वाध्याय का वर्णन किया था। भारत वर्ष में लोग तप को अधिकतर शारीरिक तप से ही समझते हैं। पर तापस कौन है, यह गीता में से ही समझना चाहिए। सतरहवें अध्याय में शारीरिक तप के विषय में तो यहां तक आया है कि वे मुझे भी क्लेश देते हैं। तप तीन प्रकार का वर्णन किया है –

1 काया का तप
2 वाणी का तप
3 मन का तप

काया का तप क्या है – देव पूजन, आराधन, गुरुजन का मान। इसमें माता पिता भी गुरु। बुद्धिमान् का पूजन, चाहे किसी भी प्रान्त का हो, किसी भी देश का हो। स्वच्छता-पवित्रता-तन से, मन से, घर बाहर से तो तप जो है वह शुचिता। सरलता मनुष्य में हो। सरलता परन्तु उस समय तक नहीं आती जब तक (मनुष्य) तपस्वी न हो, पेचीदा न हो, द्वि भाषी न हो। काया के तप में ब्रह्मचर्य – अपने आश्रम का पक्का रहना और अहिंसा– किसी को न सताना – यह सब काया के तप। काया के ये तप जो नहीं करते वे तापस नहीं होते।

दूसरा वाणी का तप–ऐसा वचन न बोलना जो बेचैन बनाये। सत्यवाक् बोलना। **प्रार्थना और उसका प्रभाव** छोटी सी पुस्तक है। उसको सामने रखते हुए हाँ 'न' का पालन। छोटी छोटी बातों में इस पर विवेक रहे–लपेट कर बात न की। मैं ने एक मित्र को कहा कि 'हाँ' न का पालन खूब करना चाहिए। यदि कोई केवल

'हाँ' न का ही पूरा पालन किया करे तो पता चले कि इस छोटी सी बात से जीवन में कितना परिवर्तन आया। यह बात बड़ी साधारण प्रतीत होती (है) पर मित्र मिलाप में यह बात बहुत चलती है कि 'हाँ, न' ठीक नहीं चलाई जाती। एक बार खाना खाने से इन्कार किया और फिर आग्रह करने पर खाने बैठ गया—ऐसा आचार कूट कूट कर भरा हुआ है। तो मुझे कहना यह है कि बड़े विवेक से हाँ, न' जैसी साधारण बात का पालन किया जाय तो साधक में इससे सत्य बसता है। गीता में श्री महाराज के सुख से वर्णन हुआ है। वह वचन बोलना जो प्यारा हो, सच्चा हो—यह वाणी का तप है। स्वाध्याय करना भी वाणी का तप (है)। स्वाध्याय का अर्थ है—स्वयं अध्ययन करना। दूसरे से पढ़वाओ तो उसका अपना स्वार्थ वर्णन करने में आ सकता है। तो यह दूसरा तप हुआ वाणी का और इसका थोड़ा सा वर्णन किया गया।

फिर आता है मन का तप। मन का तप है मन को प्रसन्न रखना। बहुत मनुष्यों में यह बात है कि वे चाल डालते रहते हैं। मन को प्रसन्न रखना ही मन का तप है। दुःख सुख, हानि लाभ आया ही करते हैं —.पर सुखिया रहना – यह तप (है)। मुरझाया हुआ चेहरा न हो। कैकेयी ने राम चन्द्र जी को पिता आज्ञा बताते हुए वनवास जैसी कठोर बात कही। राम चन्द्र जी महाराज को तनिक भी दुख न हुआ। मुखड़ा वैसे ही चान्द सा रहा। यह मन का तप—मुरझाया हुआ चेहरा न हो। आदमी चान्द सा मालूम हो। आज के युवक की तरह से नहीं कि चान्द से मुखड़े पर मामूली सी बात पर मुरझावा आ जावे।

मौनम् – बहुत बोलने वाला न हो। **आत्म निग्रह**—अपने हाथ में लगाम हो। भाव की शुद्धि हो। यह मनोमय तप। उसके मंडल में असुर जिन में यह तीन प्रकार का तप नहीं। इन तीन तपों से देव पहचाने जाते हैं। माया का जीवन तो संसार में सभी में आता है पर यह बात निर्माण करने से आती है कि भला आदमी कैसे बने। तो मैं ने आपके आगे यह निरूपण किया जो श्रीमुख से श्री मद्भगवत गीता में कहा गया। यह जीवन बनाने की बाते हैं।

यह कोई काल्पनिक नहीं। इन गुणों को अपने जीवन में बसाना यह बड़ी बात है।

अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम्।
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्यारचापलम्।।

अक्रोध

क्रोध न होना-यह भी देव जीवन का चिन्ह है। क्रोध कोई काम करवाने का साधन नहीं है। तू क्यों गया? क्यों ऐसा किया? यह अहंकार का शब्द है, क्रोध का नहीं। शब्द थोड़े कठोर अवश्य। अपने नीचे वाले के साथ मैस (Mess) में थोड़ा हँस भी लिया पर प्रेड में जवाब पूछे-क्यों देर की, ढीलापन क्यों? तो मुझे कहना यह था कोप जो है वह इन बात से भिन्न है। क्रोध मनुष्य का प्रथम शत्रु है क्योंकि यह देह में रहता हुआ देह का नाश करता है। कई की तो मृत्यु का कारण बन जाता है जैसे लकड़ी में आग रहती है, रगड़ते हैं तो पैदा होती है और फिर पहले लकड़ी को ही जलाती है फिर किसी दूसरी चीज़ को जलाने की बात आती है। माचिस पहले खुद जलती है फिर किसी को सुलगाती है। क्रोध जब तक क्रोध करने वाले को दग्ध न करे उस समय तक दूसरे को आँच नहीं पहुँचा सकता। तो अक्रोध, क्रोध न करना-यह दैवी सम्पत्ति है। यह देव भाव का चिन्ह है। इस अध्याय में देवों के गुण वर्णन किये गये हैं। इन का बहुत मनन करना चाहिए। यह ही इस अध्याय के श्लोकों का तात्पर्य है।

अगला दैवी गुण **त्याग** वर्णन किया है। छोड़ना, त्याग कहलाता है। पर हम ने त्याग को केवल संन्यास समझ लिया है। एक आदमी ने दूसरे को कहा "मैंने घर बार सब छोड़ दिया है"। कहने लगा तुम्हारे लड़के तो तुम्हारा बड़ा आदर करते होंगे। तुम्हारे इस संन्यास से उनको बड़ा दुःख हुआ होगा। वह बोला लड़के तो मुँह देखना भी पाप समझते। वे तो दुष्ट थे। फिर कहा "घर बार छोड़ दिया, यह तो कोई बात न हुई। आप को तो यह सोचना छोड़ना चाहिए था कि वे दुष्ट थे। वह कुछ छोड़ना

चाहिए था जिस कारण वे आपका मुँह भी न देखना चाहते थे। यह सोचना छोड़ना चाहिए था कि लड़के तो दुष्ट हैं। किसी कवि ने ठीक कहा है "लोभ न छोड़ा, राम भजन क्यों छोड़ दिया।" एक ब्राह्मण ने किसी साधु से पूछा, "आप ने क्या त्याग किया?" उसने कहा, "मैं दुकान छोड़ आया हूँ और साधु बन गया हूँ। वह मनोरंजन करने वाला था। बोला कि यहां आकर जो इतना बड़ा मठ बना लिया है, यह आप ही के नाम से तो माना जाता है। वहां रह पसीना बहा कर कमाया करते थे, कमाना छोड़ यहां चढ़ावा लेना शुरु कर दिया। साधु कठोरता से बोला, "तुम बड़े छिद्रान्वेषी हो। यह कुमति तुम में कहां से आ गई?" वह फिर बोला। क्या त्याग किया तुमने? वहाँ एक पुत्र को छोड़ा और यहां बीस चेले अपना लिये। त्याग तो जो है वह क्रोध का, मोह का, कटुवार्ता का है और यह त्याग दैवी गुण का चिन्ह है।

अगला दैवी गुण-शान्ति—आवेश में न आना। वकील अदालतों में एक दूसरे पर बोछाड़ कर देते हैं। दूसरा वकील डटा हुआ जबाब देता रहता है, आवेश में नहीं आता। ऊँचे स्तर के जो वकील—वही योरूप में कैबिनेट के मेम्बर होते हैं। वर्षों उन्होंने अभ्यास किया होता है। आवेश में नहीं आया करते। वे ही राज्यों को चलाया करते हैं। मुझे कहना यह है कि आदमी में शान्ति रहे। संसार में, जीवन में, गरमी भी और ठंडी पवन के थपेड़ भी। पर जो जीना चाहता है उसको इन्हें सहन करना चाहिए। कल जो प्रसंग होगा, उसमें जो बात सूझेगी, कहूंगा।

इस साधना सत्संग में आए हुए सज्जनों! यह व्याख्यान जो गीता का होता आया है, आज का कथन इस सम्बन्ध में, देवों के गुण का वर्णन करते हुए अन्तिम कथन है। कल जो अन्तिम बात कही थी वह अक्रोध। शान्ति का रखना बड़ा आवश्यक है। अशान्ति से बड़े झगड़े। बड़े काम जो दरबारों में होते हैं वे शान्ति भाव से किये जाते हैं। वहाँ भी भावना से जो काम करते हैं, वे किसी काम में सफल नहीं होते। कोई बड़े उत्तरदायित्व के काम करने लगे तो ऐसे आदमी के आगे बाधायें आया करती हैं। वह शान्ति

भाव से ही निपटाई जाया करती हैं। कितना ही कोई बुद्धि का धनी हो, गंभीरता से काम न ले तो सफलता को नहीं पाता। यह समझो कि एक बड़े सौभाग्य की बात देश की यह है कि बाहरी और आन्तरिक समस्याओं को भी गंभीरता से सोचते। प्राय: देखने में आया करता है कि मित्र विपत्ति में फंसे तो आदमी चाहता है, चाहे कुछ भी हो उसको निकाला जाय। काश्मीर के मामले में किस गंभीरता से काम सुलझाया गया। कोई किसी का शत्रु नहीं, कोई किसी का मित्र नहीं। अनुकूलता प्रतिकूलता से मित्रता, शत्रुता होती है। शेख अब्दुल्ला बड़े मित्र—इसमें सन्देह नहीं। पर जब भारतवर्ष का प्रश्नआया तो वे शेख जी भी कैद खाने भेज दिये गये। कोई पक्ष प्रधान मन्त्री जी ने नहीं ली। इतना ही नहीं। एक स्त्री तरुणी, बड़े अमीर घराने की शेख से मिलने चली। पठानकोट से ही वापस कर दी गई। वह कोई साधारण नहीं थी। उसने बंगाल में भी और सीमा प्रान्त पश्चिम पंजाब में भी गान्धी जी के समय बड़ा काम किया। जो कह दे वह प्रधान मन्त्री मान लेते। ऐसे उसकी चर्चा थी। वह पत्र-व्यवहार करने लगी तो सब अधिकार छीन लिये गये। इस बात का कोई विचार नहीं रखा गया कि उसने बहुत कष्ट उठाये। पेशावर तक जीवन घोर कष्ट में डालकर गान्धी जी के साथ बड़ा काम किया। रुपये की भारी सहायता कान्ग्रेस को उससे मिलती थी। इसकी उपेक्षा करके भारत का हित ध्यान में रखकर वह एक प्रकार से सीमित क्षेत्र में कड़ी दृष्टि में। यह गंभीरता का विचार जिन भले आदमियों में होता है वे ही उत्तरदायित्व संभालने के योग्य हुआ करते हैं। यह तो राज्यों की बात।

पर पक्ष लेने की बात, घरों में भी बूढ़े में आ जावे तो वे घराने गिर जाते। पुराने इतिहास ऐसे उदाहरणों से भरपूर। जब मित्र का विचार करके, जाति का विचार करके, निकट सम्बन्धी का विचार करके, पुत्र का विचार करके, न्याय नहीं किया जाता था। नये इतिहास की भी उपमा देनी चाहिए—ऐसा मैंने सोच कर यह सब कहा। जहां शान्ति होती है वहां निंदक, नमक मिर्च

लगाने वाला, नहीं टिक पाता। एक बार रोहतक के कुछ विद्यार्थी दिल्ली यमुना किनारे पहुंचे। एक पंडित वहां भाषण दे रहा था। बच्चों ने पूछ लिया "महाराज, आप बहुत सुन्दर बोलते (हैं) क्या मैं आपका नाम पूछ सकता हूँ? पंडित ने जवाब दिया "महोपाध्याय श्री शान्ति स्वरूप जी" ऐसा कथन सुन दूसरे बच्चे के भी मन में आई, पंडित जी को नमस्कार किया और नाम पूछा। पंडित ने कहा " हमारा नाम है, महोपाध्याय श्री पंडित शान्ति स्वरूप शर्मा"। तीसरे ने भी कहा, "कोई अवज्ञा न हो तो क्या मैं भी नाम पूछ सकता हूँ? ब्राह्मण क्रोध में आ गया। कहने लगा, "ठहर, अभी आता हूँ," लठिया उठाने लगा। विद्यार्थियों ने कहा "न आइयो, हमने समझ लिया है आप का नाम है अग्निस्वरूप"। निंदक, नमक मिर्च लगाना, ऐसा अवगुण देवों में नहीं होता। मौन रहना, बहुत न बोलना, बोलने से पहले विचार, फिर उसको जरा मुँह में गुंजाये, फिर अपने मुँह में डाली (बात) मीठी लगे तो बाहर निकाले। यह शान्त भाव से ही हो सकता है। तो शान्ति–यह दैवी गुण है।

दया भूतेशु– दया एक बहुत अच्छा गुण है। दैवी सम्पत्ति है। पर लोगों ने इसे साम्प्रदायिक कूज़े में बन्द कर रखा है। कबीर साहिब काशी के बाजार में एक आदमी से मिले। उसने झुक कर नमस्कार किया, कहा "महाराज, आपकी कृपा से बाल बच्चे भी सभी आनन्द से हैं। मैं एक माता जी के पास गया। कपड़ा माँगा। वह युग ऐसा था लोगों के पास पैसा कम हुआ करता था। कबीर ने पूछा, "माता जी ने आपको क्या दिया" उसने कहा,"मेरा जाल खराब था, उन्होंने मुझे सूत दे दिया। जाल की मुरम्मत की। अब बड़ी तो क्या, छोटी मछली भी जाल से नहीं निकल पाती" तो लोग कहें, पापी नरक पड़े, नहीं, धर्मी नरक पड़े। दया तो अन्दर से उपजती है। पुरानी बात–माण्डू का (रहने वाला) बहली वाला ब्राह्मण। कुछ आर्यसमाजियों के साथ मैं उसकी बहली में था। वह आर्यसमाजियों की निन्दा करे कि उन्होंने हरिजनों को सिर पर चढ़ा लिया। चमारों का दिमाग खराब कर दिया। अचानक

बैल की पूँछ की ओर मेरी दृष्टि पड़ी। ब्राह्मण की मार के निशान से बैल की पूंछ पर रक्त दिखाई पडा। मैं ने कहा, वह चमार तो सूखे चाम को कूटते। सूखा चाम तो लकड़ी के समान। तुम तो जीवित चाम को कूटते हो। छुआछात सब रिवाज है न। अब जाट के सामने चमार बैठता नहीं। कोई युग था, राँगड़ के सामने जाट भी बैठता डरता। तो बात तो खराब थी। एक ने साधु से कहा, हम ने एक साँड छोड़ दिया है। हम जीवों को छोड़ा करते हैं। इसमें क्या दया भाव। उस बछड़े को जहां जाये, लाठी पड़ती। इसमें क्या दया हुई। उसका कैसे गुजारा होता। विदेशों में भी सांड (हैं) पर वे इस प्रकार छोड़ते नहीं। वे तो खिलाते, पिलाते, बान्ध कर रखते। तो दया दैवी गुण है। प्रजापति के उपदेश में भी इस गुण का वर्णन किया गया था।

अगला दैवीगुण—**अलोलुपता**- लालची न होना। यह दैवी गुण है। ज्यादा खाना-यह लालच। मेरठ से एक बारात-सभी को अतिसार, बहुत जो खाया।

गोभी का फूल लिया और अदरक की गाँठ भी उठा ली—यह लालच है। दूध अच्छे भाव पर बिकता हो, फिर भी उसमें पानी मिलाय, यह भी लालच। मोटा दृष्टान्त यह समझो कि एक पढ़कर प्रथम रहना चाहता है, दूसरा कापी चुराकर या नकल मारकर। एक तो भूख को मिटाने के लिए खाए और दूसरा स्वाद के लिए। साधना के सत्संग में यह बात मैं ने इसलिए वर्णन की कि साधकों को अपने में विशेषता लानी चाहिए—लेन देन में, व्यवहार में। मिलावट तो मनुष्य की जीवनी पर व्योपार करना है। यह लालच की बात देवों में नहीं हुआ करती।

मार्दवम्—कोमलता—यह दैवी गुण। पिछली शताब्दी की बात है, कुरुक्षेत्र के इलाके में जा रहा था। कई और साधु भी साथ थे। मैंने नाम पूछा। नाम बता तो दिया, पर पहले कड़ा शब्द बोला—तेरे माथे की फूट रही सै? क्षेत्र का नाम है नरदक। अन्ततः लड़ाई जो इतनी हुई तो नरदक ही हो जाना था न— यह हम ने समझा। सनातन धर्म कहता—यदि कोई घर में आये तो

पहले आँखें उसकी ओर और मन उसकी ओर, फिर वाक्य मधुर—आइये, बैठिये—यह है सनातन रीति। राम चन्द्र जी की माता ने एक बार भी नहीं कहा कि तू वन मत जा। रो कर यह बार बार कहा, मेरे तन में विरह की आग। मैं तेरे साथ चलूँगी। रामचन्द्र जी महाराज ने सनातन धर्म का संकेत देते हुए कहा, ''हे मैया, तेरा और मेरा सनातन धर्म है कि पत्नी पति को छोड़कर पुत्र के साथ नहीं जाया करती। बर्ताव में कोमलता रहनी चाहिए। दूध में जब उबाल आता है तो वह बाहर आता है तो इस से दूध की भी हानि।

देवभाव वाला जो मनुष्य, इसमें चपलता नहीं होनी चाहिए—**अचापलम्**। बिजली का प्रकाश चपला-चमकी और बन्द। अब इधर फिर उधर-यह चपलता कहलाती (है)। देवों में यह नहीं होती। लाज, शरम बड़ी भारी चीज़ है। निर्लज हो जाना असुर भाव है, बहुत सा जग बुराई से केवल इस लिए बचा रहता है कि उनको अपनी लाज का विचार होता है।

तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता।
भवन्ति सम्पदं दैवीभभिजातस्य भारत।।

तेज— एक आदमी कोठड़ी से निकला, चेहरा उतरा हुआ। चेहरा उतरा हुआ क्यों हो, तेज होना चाहिए। यह दैवी चिन्ह है।

क्षमा— सहनशीलता। सहनशीलता होनी चाहिए। दूसरे की वृद्धि देखकर कम लोग प्रसन्न होते हैं। मानव जगत में दौड़ की जो होड़ हुई तो फिर उससे सहनशीलता बहुत कम हो जाती है।

भारत सरकार अभी कोई बड़े हथियार नहीं बना रही है। परमाणु का अनुसन्धान (research) भी शान्ति के लिए हो रहा है। फिर भी बहुत से लोग और देश इसको सहन नहीं करते। सूक्ष्म बात यह है कि दूसरे की बात को सहन करना। दू को सहन करना। ऊँच नीच को पार करके लक्ष्य प यह सब क्षमा में आ गये। यह दैवी गुण है। कभी न आसुरी भाव का भी वर्णन कर दिया जावेगा।

सज्जनो! मैंने आपके आगे इस समय के प्रवचन में गीता के आधार पर दैवी-गुणों का वर्णन किया। मेरा तात्पर्य यही है कि ये बड़े मार्मिक हैं। इनको पढ़ने की प्रवृत्ति होनी चाहिए। इन को पढ़कर अपनी सम्पत्ति को जाँचना चाहिए। जो परम्परा से चली आती है उसको देखना और उसका पालन करना और बन पड़े तो उसका प्रचार करना—ऐसी आशा मैं करता हूँ। यह सत्संग अब समाप्त होता है। आप बड़े भाव चाव से बातें सुनते रहे हैं। यह आपकी अपनी शोभा है और यह ही किसी को मधुर बनाती है, ऐसा मैंने समझा (है)। जो त्रुटि है वह तो मेरी है, पर सौन्दर्य जो है वह गीता के कमल का है। तेरी वस्तु तुझे समर्पण।

गीता का अठारहवां अध्याय

श्रीमद्भगवद्गीता का 18वां अध्याय बहुत मर्म का है। वैसे तो गीता सारी बड़ी मार्मिक पर गीता का 18 वां अध्याय पढ़ने का बड़ा रिवाज है, मंगल और कल्याण के निमित्त। पंजाब में तो कम पढ़ते हैं।18वें अध्याय का पढ़ना ऐसे है, जैसे तुलसी रामायण के सुन्दरकांड का पढ़ना। पाठ, संकट निवारण के लिए, सैंकड़ों पुरुष, स्त्रियां, यू.पी. जाकर देखा, प्रतिदिन ही करते हैं।

'हे महाबाहु' विशाल भुजा वाले! सन्यास का मैं भेद जानना चाहता हूं। हे हृषीकेश! मैं सन्यास और त्याग का अर्थ जानना चाहता हूं। यहां तीन सम्बोधन—महाबाहु, हृषीकेश और असुर नाश करने वाले। यह एक बहुत ऊंची बात है। डाक्टर ने कहा, योग साधन करने वालों के मस्तिष्क कैसे ? समाधि लगाने वाले का भी। तो इसने उत्तर यही दिया कि वह जानेगा भी......। ब्रह्मी बूटी में क्या तत्त्व ? एक साल तो यही जानने में लग गया कि ब्रह्मी बूटी के किस भाग में शक्ति है। तो पता लगा कि इसकी जड़ें मस्तिष्क को पुष्टि देती हैं। हमारा भी यह एक प्रकार का रिसर्च है। कितना किस को लाभ होता है ?

परिशिष्ट—श्री रामायणसार

परिशिष्ट 'श्री रामायणसार' में ऐसे हैं जैसे

तुलसीकृत-रामायाण में उत्तरकाण्ड। इसमें बड़ी गूढ़ बातें हैं। गरुढ़,शिवजी के कहने पर काक-भुशुण्डी के पास गए जिसका सबसे बड़ा गुण था, प्रतिदिन रामायण गान। इसी कारण शिवजी महाराज उसको बड़ा विद्वान, ज्ञानवान मानते थे। पक्षियों का राजा शिवजी महाराज के कहने से छोटे से पक्षी, काक भुशुण्डी के पास गया। उसी के मुख से सब उत्तरकाण्ड की रचना करवाई गई है। ऐसा तुलसीदास जी ने 'रामचरितमानस' का आधार बनाया है।

मेरे कुछ अपने अनुभव हैं--अध्यात्मिक। मुझे दूसरे ग्रन्थों में जो किसी सन्त ने रचे हों मेरी बादत की साक्षी नहीं मिली तो मैंने महत्वपूर्ण विषयों पर रामचरितमानस के बालकांड और उत्तरकांड आदि से कुछ लिये। परिशिष्ट आजकल प्रैस में है उसमें नीचे पाद-टिप्पणी (footnote) हैं कि मेरे निजी पदों के बाद रामचरितमानस से कहां से मिलते जुलते दोहे और चौपाइयां ली हैं। उत्तरकांड में यह बात है कि भावना को बहुत ऊंचा करना है। मैं भी चाहता हूं कि भक्तिभाव बढ़े आन्तरिक भाव जगें और साधक का मार्ग सुलभ हो जाये। काकभुशुंडी कहता है हे गरुड़! तू मुझसे सुन कि वह जो भक्ति को छोड़ कर दूसरे उपायों से ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं वे नर बड़े सिंधु को बिना नाव या जहाज के पैरों से पार करने की चेष्टा करते हैं। काकभुशुंडी ने कहा कि ज्ञान पथ तलवार की धारा है। यदि निर्विघ्न वह पंथ निभ जावे तो वह परमपद पावे। संत लोग कहते हैं कि केवल ज्ञान से मुक्ति बड़ी कठिन है। राम भजन करते करते वह मुक्ति जो तलवार की धारा के समान है राम भजन से वह आप ही आप आ जाती है। कोई करोड़ों ही उपाय करे, जल थल के बिना नहीं रह सकता। इसी प्रकार हे गरुड़! तू समझ कि मोक्ष हरि भक्ति को छोड़ दूसरी जगह नहीं रह सकता। इसलिये गूढ़ सयाने कहते हैं कि भक्ति करते हुए जन्म मरन का आप ही नाश हो जाता है।

प्राणी भोजन तृप्ति के लिये करता है पर उसको पचाती कोई

और ही शक्ति है। यहां भक्ति आप ही पचती है। भक्ति धर्म की महिमा वर्णन करते हुए काकभुशुंडी जी ने कहा,'हे गुरुड़! सेवक सेव्य भाव के बिना तो संसार तरा नहीं जाता। तो उपासक ऐसा सिद्धांत मान कर राम का भजन करे। अगले पद में तुलसी दास जी ने काकभुशुंडी से कहलवाया है–"

"परम प्रकाश रहे दिन राती
नहीं कुछ चाहे दिया घृत बाती
मोह दरिद्र निकट नहीं आवे"

अर्थात् मोह और लोभ की हवा उस ज्योति (राम नाम की) को नहीं वुझा सकती। कीट पतंग बहुत आते हैं पर गिर गिरकर समाप्त हो जाते हैं। यदि कोई राम भक्ति मन में बसावे तो सब बाधायें दूर हो जाती है। जिनके हृदय में मनिषा निवास करती है विष इनके समीप अमृत बन जाता है और शत्रु मित्र। राम भक्ति के चिन्ता मणी बिना कोई मनुष्य सुख नहीं पा सकता। मानस रोग है चिन्ता। चिन्ता है तो शोक है। यह सब मानस रोग शरीर को दुर्वल बनाते हैं। राम भक्ति का चिन्ता मणी रत्न जिनके मन वसे, दुख का लवलेश उनको नहीं होता। परलोक तो सुधरता ही है पर उसका कल्याण इस लोक में भी होता है। ब्रह्मा, शुक, नारद जो भी मुनि ब्रह्म के ज्ञाता उन सब ने यह बात वर्णन की है। सब कहते हैं कि राम भक्ति बिना कल्याण नहीं। कछुए की पीठ पर भले ही बाल उग आवें, जिसको बच्चा नहीं होता उसका सुत भले ही किसी को मार दे, आकाश में भले ही अनेक प्रकार के फूल खिल जायें तो भी जीव (हरि प्रतिकूल मनुष्य) सुख नहीं पाता। भले ही मृग तृष्णा का जल पीने से प्यास वुझ जावे। पहली बार जब मैं सड़क पर जा रहा था वड़े दिनों की बात है मैं ने देखा आगे सड़क पर पानी नज़र आ रहा है। मृग तृष्णा ग्रंथों में पढ़ी थी पर स्वरूप नहीं देखा था। तारकोल की सड़कों पर औरों के साथ भी ऐसा होता होगा। यह देख मैंने बराबर बैठे मुसलमान को कहा कि कौन दरीया आ गया है उसने फारसी का नाम लिया जो मृग जल के

लिये उपयोग किया वह मुझे अब याद नहीं। तुलसीदास जी ने काकभुशुंडी के मुख से और जोरदार शब्दों में कहलावाया कि खरगोश के सींग किसी को दीख पड़ें या उग आवें, अंधेरा सूरज के तेज को मिटा दे परन्तु तो भी राम विमुख जीव सुख नहीं पाते क्योंकि ये तो भक्ति के साथ मिलते हैं। यह अखंड सिद्धांत अपेल है। भले ही तीर्थों पर लोभ पाप धोने को दौड़ते हैं। कई लोग कठोर व्रत, नाना प्रकार के दम्भ रचते हैं। शिवजी पार्वती को कहते हैं यह उनकी विद्या हीनता है। शिवजी कहते हैं, हे पार्वति! जहां तक पाप धोने के साधनों का वर्णन है सब का फल हरिभक्ति है। परम साधन राम भजन है। हे पार्वति! यह समझना कि परम साधन राम भजन है, यह करना परम पथ पर चलना है। कोई अपने आप अन्दर से शरीर से बढ़ता है। जो अन्दर से बात पैदा होती है वह ही भीतर को अच्छा बनाती है। कपड़े मोटे पहनने से भले आदमी थोड़ा मोटा लगने लगे पर मोटापन कोई और चीज़ है। जिस लड़के की पाचन शक्ति ठीक, उसके अन्दर संभवतः सूखी रोटी भी जाकर उसको मोटा करदे पर बाहर मलाई भी लपेट दो तो कुछ बात नहीं हुई। मालिश भी बहुत अन्दर तक नहीं जाती। बड़े बड़े जेलखाने, उनमें चोर, छली, गठ कुतरे भी। क्योंकि जेल का बड़ा प्रबन्ध होता है वहां तो वह चोरी नहीं करता पर बारह साल भी वह चोर का चोर सुधार का यह तरीका नहीं। अंधेरी कोठरियों से भलाई नहीं आती। भलाई तो अन्दर जागृत होने या चित्त में चोट लगने से आती है। बाहरके कानून कायदे अच्छा नहीं बना सकते। केवल हिन्दुस्तान से ही नहीं सोना तो अरब से दूसरे देशों से सब से पकड़ा जाता है। अन्दर जिसका बदल जावे वह सोने की खान पर भी बैठ कर नहीं उठाता। बाहर से किसी को क्लोरोफार्म सुंघा दो तो वह कैसे जगे। जिसमें चेतनता है वही जगाया जा सकता है। रामचन्द्र जी कहते हैं भक्तिहीन विरंची (ब्रह्मा) भी क्यों न हो तो मेरे सामने भक्तिवाला, प्राणों से भी प्यारा, यद्यपि कितना भी नीच हो।

सुन्दर कांड

एक एम.ए. स्त्री पीलीभीत से आई। इसने कहा, सुन्दरकांड का पाठ प्रतिदिन करती हूं। मुझे कोई कष्ट क्लेश नहीं आता, नहीं सताता। एक बड़े इंजीनियर की स्त्री— इसने आर्यसमाज में भी बड़ा काम किया। उसने कहा कि सुन्दर कांड के पाठ से मुझे ब्लड प्रैशर से बड़ा आराम। जब कष्ट होता है तो उसका पति पुस्तक खोल कर रख देता है। तो पाठ से उसको बड़ा लाभ।

दुर्गापाठ

दुर्गा पाठ बड़े होते हैं। इनमें भी बड़े नियम-अभिप्राय यही कि दूसरे करंट नहीं आवें। दूसरी धारा हमारे में न आवे।

मंत्र तब फल देता है जब अन्तःकरण शुद्ध हो। पिछले दिनों एक को हथकड़ी लग गई। राय साहब की पदवी। केस चला। 20 हजार की जमानत पर रिहा हुए। साधना वाले किसी आदमी के पास बैठा और बताया कि उस अपराध को जानता तो वह था पर अपना हाथ नहीं था। तो साधक को आवाज आई, आवाजें आती हैं-यह नहीं कि मोटर की ही आवाज—कि इतना-इतना पाठ तीन दिन तक यह करे। तो तीन दिन के बाद इसकी पेशी हुई। वहां जब गया तो बरी हो गया।

अन्याय में आदमी फंसा हो तो उस के लिये निःस्वार्थ कामना की जाय तो प्रार्थना स्वीकृत हो सकती है किन्तु स्वार्थवश हो तो सम्भवतः स्वीकार न होवे। किन्तु कई बार तो सूली की सूई बन जाती है। पर मैं तो जो कहना चाहता हूं वह यह है कि कोई और करंट न होवे।

(ख) व्यक्तिगत

अखण्ड जाप

अखण्ड जाप

अखण्ड जाप जिस कमरे में होता है, वहां जाते ही शान्ति प्राप्त होती है। शब्द के संस्कार उस कमरे में पूर्ण हो जाते हैं। केवल सिमरन, ध्यान, कीर्तन में मन लगाने से बड़ा प्रभाव होता है और उससे बड़ा लाभ होता है। हर एक घर में एक कमरा इस कार्य के लिये पृथक रखना चाहिये। उस कमरे में कुछ अवतारों के चित्र भी लगाने चाहियें। राजनैतिक तथा साधारण व्यक्तियों के चित्र नहीं लगाने चाहियें। वहां भजन करने से चित्त प्रसन्न होता है और बड़ा लाभ होता है। कई बार ऐसी दिव्य बातें अनुभव होती हैं कि चित्त प्रसन्न हो जाता है परन्तु भगवान का आराधन भावना से होना चाहिये। केवल अकेला रहने से ही या व्रत रखने से ही लाभ नहीं होता। भगवान के आराधन से बहुत अधिक लाभ होता है। इस मन्त्र का उसी प्रकार से प्रभाव है जिस प्रकार बिजली की तार से धारा उस समय आती है जब कि उसका सम्बन्ध पावर हाऊस से आने वाली तार से लगाया जाये। यह सम्बन्ध बड़ी चीज़ है। इसी प्रकार अन्त:करण में सम्बन्ध जोड़ना चाहिये और वह राम नाम से ही जुड़ता है। अब जब सम्बन्ध हो जावेगा तो धारा आती रहेगी। मन्त्र से ही मन्त्र के देवता का आवाहन होता है। नाम का नामी के साथ सम्बन्ध है। जैसे किसी का नाम लेकर पुकारें तो उसकी वृत्ति उधर हो जाती है। इसलिए उस परम धाम से सम्बन्ध जोड़ने का एक मात्र साधन राम नाम का जाप है। भगवान से सम्बन्ध नाम से जुड़ जाता है। परन्तु साधक की धारणा ठीक होनी चाहिये। जैसे रस्सी की तार से बिजली नहीं आती, उसी प्रकार अशुभ भावना से धारा नहीं आती। अपने अन्दर तार निर्मल होनी चाहिये। जब उसका सम्बन्ध जोड़ा जाता है तो राम नाम की धारा आनी आरम्भ हो जाती है। इसमें

किसी प्रकार का कोई सन्देह नहीं है। यदि किसी की भावना नहीं बनी तो उसको समझ लेना चाहिये कि उसकी तार अभी नहीं जुड़ी। मन को वश में करने के लिए बड़ा यत्न किया जाता है परन्तु मन काबू में नहीं आता और जिसका तन काबू में नहीं उसका मन कैसे होगा? इस लिए पहले तन की साधना करनी चाहिये। अपने अन्दर तरंग पैदा करनी चाहिये और वह तन को वश में करने से होती है। मन्त्र का बड़ा प्रभाव है इसलिए हर समय मन्त्र जाप करते रहना चाहिये।

अभ्युदय सद्धर्म का

हमारी अनेकानेक जन्मों से स्थूल पर ही दृष्टि रहती आई है, अतः हमारी चाह स्थूल की रहती है। यह अनुभव में आ जाये तो कोई आश्चर्य नहीं। यह तो वही जाने किसको राम कृपा का आधार बनाये, हम क्यों उसके कार्य में बाधा डालें। परमेश्वर जिस धर्म का प्रचार एवं प्रसार चाहे उसकी वृद्धि हो—हम यही प्रार्थना करते हैं। हमारी साधना का उद्देश्य यही है जो निम्नांकित दोहे से प्रकट है—

वृद्धि आस्तिक भाव की, शुभ मंगल संचार।
अभ्युदय सद् धर्म का, राम नाम विस्तार।।

शब्द सद् धर्म है। कोई विशेष पंथ, धर्म अथवा सम्प्रदाय जैसे वैष्णव शैव अथवा शक्ति धर्म आदिक पंथिक धर्म का नाम हम नहीं लेते। क्योंकि यह तो ईश्वर ही जाने इस युग के लिए कौन सा धर्म उपयुक्त और श्रेष्ठ है। हां, जगत में आस्तिक भाव की वृद्धि हो, सुख शान्ति हो, लोगों का जीवन धर्ममय हो।

अखण्ड जाप से उन्नति

एक साधक को अखण्ड जाप में, होशियारपुर, यह प्रतीत हुआ कि साधुओं की मण्डलियां आकार सम्मिलित हो रही हैं (अखण्ड जाप में), मानस ध्यान, नाम का ध्यान, जप भी एक नाम होना चाहिए और कीर्तन भी। गीता में कृष्ण जी ने कहा है, "यदि कोई

बड़ा दुराचारी भी है पर बड़ी भावना से मेरा सिमरन करने लग पड़ा है तो उसको अच्छा ही जान, वह बहुत ही जल्दी धर्मात्मा हो जाता है। सदा रहने वाली शान्ति को शीघ्र ही प्राप्त हो जाता है। हे कुन्तीपुत्र! यह तू अवश्य जान कि मेरे भक्त का कभी नाश नहीं होता।" जीवन की धारा को ऊँचाई की ओर ले जाने के लिये नाम बड़ा लाभदायक है। साधक मण्डली को यह विचार होना चाहिये कि इतने चिर से यदि इसको (साधक को) कोई समझ नहीं आई तो (उसका) कोई दुष्कर्म है जो सामने खड़ा है, परन्तु यह समझ आती इसी से (नाम आराधन से ही) है।

मुझे एक बात का विचार आ गया। दो स्त्रियां-एक मां और दूसरी लड़की, मेरे पास शिमला आईं। उन्होंने कहा कि भागवत में ऐसा कहा है कि मेरा भजन जो करते हैं मैं उनको दुःखी किया करता हूँ। अब मैंने इसको ना तो नहीं कहा, किन्तु मैंने सब श्लोक (भागवतके) स्वयं पढ़े हैं और ऐसा उनमें कहीं नहीं है, फिर भी सीधा नहीं करने की तो रीति नहीं। जवाब यह दिया कि गीता में स्वयं भगवान यह कहते हैं कि, भक्ति मेरे में वह हो जो व्यभिचारी न हो। जो मेरी भक्ति वाले हैं, जो नित्य मुझ में जुड़े हुए हैं, उनका योगक्षेम मैं चलाता हूँ। लड़की ने वह श्लोक भी पढ़ा और कहा कि अठारहवें अध्याय का श्लोक है। भगवान तो उत्तरदायित्व लेते हैं उनके योगक्षेम का, जो अनन्य भाव से आराधना करते हैं। इनका कल्याण अवश्य होता है।

अखण्ड पाठ

अखण्ड पाठ—श्रीरामायणसार—(i)

बहनो व भाईयो! यहां मिल कर विजयदशमी के पुण्य पर्व पर श्री रामचन्द्र की लीला मना रहे हैं। यह लीला आप की भाव भावना की है। कितना आवेश आया, रोमांच हुआ—गद्गद् कितने आंसू टपके—यह आप सब जान गए। मैं जानता हूं। बन्धुवर्ग ने राम लीला यहां मनाई है। यह अद्भुत जीवन दान है। हर्ष है यह सब कुछ मैं देख रहा हूं।

हे राम! (रामायणी सत्संग, हरिद्वार विजयदशमी, १९४९) मैं समझता हूं कि इस पिजरे में रह कर बहुत दिन देखे। जनसंख्या में तेरे नाम के गुण गाए—यही बात जब तक जीवित रहूं बनी रहे।

आदरणीय देवियो और सज्जनो! मुझे हर्ष है, बाल्मीकीय रामायण को मैंने अपनी कथनी में, भावों में प्रगट किया है। इसका पाठ करके आपने और मैंने मधु रस का स्वाद पाया। मुझे बहुत देर तक इस कुटिया में बसने की इच्छा नहीं है। कोई बड़ी बात देर तक इस जीवन में जीने की रह नहीं गई है—यदि कोई चीज़ प्रेरित करती है तो केवल राम नाम का स्मरण निरन्तर होता रहे। मुझे यह नाम प्राप्त हुआ जैसे किसी ने यह मणि मेरी झोली में डाल दी। पहले राम नाम रस का स्वादन किया—उसका उद्गार किया—अपने पदों में गाया। राम नाम बहुत उत्तम मधुरता करने वाला जाप है। आप अपने मित्रों में विकसित करते रहते हैं। मेरे जीवन के लिए एक ही काम बाकी है—मैंने बहुत रोटी दाल शाक इत्यादि खाए—कव्वा भी बहुत देर तक जीता है—परन्तु ऐसे जीने से कोई महत्त्व नहीं है। आप ज्योति मुझे प्रेरित करे। राम नाम की ज्योति जगमगाती रहे। जीवन जड़ी है। मुझे यदि राम जीवन प्रदान करे तो सदैव राम नाम का रस स्वादन करता रहूं। यह सुअवसर मिला है—कि यह पुण्य तीर्थ स्थान एक अद्वितीय है। पृथ्वी तल पर एक ही है। दूसरा ऐसा स्थान नहीं है।

आप अपने दिलों में सत्य, परम शुचिता का पालन करें। इस स्थान में रह कर शुभ कामनाओं को बली बनाएं—इन भावों के साथ मैं आपको बधाई देता हूं। जो रामलीला आपने की है उत्तम सिद्ध हुई है।

भगवान आपके भावों से इस लीला को मनाते रहें।

जब तक जिऊं मेरी कामना यही है कि रामलीला विजयदशमी पर मनाया करें।

बधाई देता हूं।

यह बड़ा सुन्दर सुअवसर है कि हमने रामायण का भावपूर्वक अभिनय किया। मुझे प्रसन्नता है कि आपने भाव चाव से भाग लिया। रामचन्द्र के कथनों में अनुशासन का भाव समझते आए। सत्संगों में अनुशासन बनाने वाली होती है। होशयारपुर में हर साल दिसम्बर में साधना सत्संग लगा करता था। एक साधु आया। पहले मेरा उसके साथ घनिष्ट संबंध था। बी.ए. था। आजकल सम्भवतः विनोबा जी के साथ है। उसने विरोध करना आरम्भ कर दिया। मतभेद हो गया। मैंने उससे कहा कि तुम्हारा सत्संग में आना उचित नहीं है। आज तक भी मैं उसको मित्र समझता हूँ। विपरीत नहीं। वह प्रायः सत्संगों में आने की अनुमति माँगता है परन्तु मैं उसको उत्तर दे देता हूँ कि तेरा भला इसी में है कि काम करता रहे। उसकी प्रीति पत्रों द्वारा वही है। अनुशासन की बात है, कौन आवे, कौन न आवे। रामचन्द्र के जीवन से सीखने की है। रावण को मारकर विभीषण से विदा हुए। पराए को कितना अपना लिया उन्होंने। जो तलवार लिए खड़े थे उनको महाराज रामचन्द्र ने पुकारा कि वे सब मेरे आदमी हैं। इनको सीता के दर्शन पाने दो। चित्त को चकित करती है (उनकी यह उदारता)। उनके काम बड़े निराले हैं। रामचन्द्र शिविर से बाहर नहीं गए। हनुमान से कहा कि सीता को संदेश देने विभीषण से पूछ कर जाना। यह राजनीति में बड़ी बात है, मनन करने योग्य है। परम्परा की मर्यादा रखने के लिए
कि मेरा जो कर्तव्य था, मैंने किया। आदमी

अच्छा बनाए, चरित्र निर्माण करे। जो वनों में सीता के लिए रो रहा था वह इतना दृढ़ हृदय थाम कर बैठा कि सीता को कहा जहाँ चाहो तुम चली जाओ। सीता जी लालायित थीं राम के दर्शनों को। उसने सब कुछ कह दिया रामचन्द्र को और फिर उनकी आज्ञा भी भंग नहीं की। राम ने आज्ञा दी कि अग्नि जलाकर इसमें बैठो। जब उसमें बैठीं तो अग्नि शांत हो गई। दैवी घटनाएँ होती हैं, जगत में यह निराली बात है (इस प्रकार अग्नि का शान्त हो जाना)। रामचन्द्र पुष्पक विमान साथ लाए। और वह विमान भी अयोध्या पहुँच कर वापिस कर दिया। भारत से अंग्रेज हीरा ले गए (कोहेनूर) जो अभी तक इंग्लैंड की रानी के मुकुट में लगा है। रामचन्द्र जी की बड़ी बड़ाई है। यह एक शोभा है (विजित देश से कुछ भी न हड़पना)।

भरत मिलाप का वर्णन बहुत सुन्दर है। भावपूर्ण शब्दों में है। मुझे हर्ष है संगति में उच्चारण बहुत अच्छा है। राम नाम का उच्चारण बहुत अच्छा किया। सबों को बधाई देता हूँ।

कीर्तन

जिन साधकों को जितना इसमें (रामनाम में) विश्वास होता है उतना ही लाभ होता है। ऋग्वेद काल में भी इसका (नाम महिमा का) वर्णन होता था। उस समय नाम होगा अग्नि (अर्थात् उस समय लोग अग्नि नाम से भगवान की पूजा करते होंगे)। प्रतीत तो यही होता है कि उस युग में भी लोग नाम उपासना बड़ी करते थे। (नाम आराधन) तीन प्रकार से हुआ—

1-ध्यान (एकान्त शांत स्थान में)

2-जप

3-ऊंचा ऊंचा नाम को बोलना अर्थात् कीर्तन करना।

इसमें (कीर्तन में) भी बड़ा लाभ है, एक तो हम बोले, दूसरे हमारी आवाज हमारे कानों में आई। पर जो मानस जाप है अर्थात् ध्यान, इसका प्रभाव (कीर्तन की अपेक्षा) मनु जी ने सहस्त्र गुणा बताया है। यह तो इसके अन्दर (ध्यान से) तरंग पैदा होती है इसलिए इसकी महिमा अधिक वर्णन की। पर ऐसा नहीं समझना कि (कीर्तन का) प्रभाव कम पड़ता है।

कीर्तन दो प्रकार का होता है— धुनात्मक और गीतात्मक। बहुत से लोग तो गीत वाले कीर्तन को और बहुत से धुन के कीर्तन को पसंद करते हैं। हमारी (महाराज की) रीति में सब अच्छे। अच्छा शब्द, अच्छा सुर जब हो तो एक प्रबल तरंग उत्पन्न होती है जो सभा और गाने वाले दोनों पर बड़ा प्रभाव डालती है। कीर्तन कराने वाला अच्छा हो जाता है। पुरातन (ऋषिमुनि लोग) जो कोई गीत गा गए वे बहुत अच्छे हैं। संस्कृत में गाने के अतिरिक्त (पुरातन ऋषिमुनियों के) आम भाषा में कबीर, सूरदास ने अपने सुरसागर में (सूरसागर तो नाम बाद में पड़ा) भागवत का वर्णन किया। ऐसा मालूम पड़ता है कि वह (सूरदास जी) बड़ी ऊंची कोटि का भक्त हुआ है। गहरे आदमी तो भाव की ओर जाते हैं।

मैंने सभाओं में देखा कि इस युग के (पुरातन युग के) गीत जो खड़तालों द्वारा गाये जाते हैं वे सभा को रिझाते नहीं किन्तु सभा को रिझाना तो कुछ और है और राम को रिझाना इससे भिन्न। एक वार मैंने सभा में देखा कि वह सभा एक लड़के के इस गाने को "अज पोप जी दी सुच्ची रसोई" बड़ा पसंद करे। एक बार कुम्भ पर मैं स्रोत की ओर चला गया तो गोस्वामी जी ने बड़ा मंडप रचाया हुआ था, बहुत बातें इस में थीं, मुझे भी वहां बुलाया था। किन्तु सभा ने एक लड़के का गीत बहुत अधिक पसंद किया, वह गीत था, 'निकियां निकियां गल्ला कोलों रुसना नहीं चाहिदा शामा।' सारे दर्शक बार-बार कहें कि इसी लड़के को खड़ा करो (गाने के लिए), न उन्हें गोस्वामी जी का भाषण पसन्द, न और कुछ। लाहौर में एक बार एक सज्जन ने नाम संस्कार के समय अहमदाबाद से विष्णु दिगम्बर जी के शिष्य को बुलाया, 500 रुपये प्रति दिन पर। उसने सूरदास का गीत गाया। "माई री मैं नहीं माखन खायो।" सारी सभा बड़े प्रभाव से सुनती रही।

भक्तों के गीतों को बदल देना ठीक नहीं

पुरातन भक्तों के गीतों में बड़ा भारी भेद होता है। इन गीतों से मनुष्य की काया पलट जाती है। राम रिझाने वाले गीत, गीत गाने वाले को जगा देते हैं, वह (गायक) बड़ा अच्छा हो जाता है। पर भाई एक शर्त है, चाहे धुन का कीर्तन हो चाहे गीत का किन्तु अन्तक को बदलो मत। इसमें (गीत में) कवि का आत्मा होता है। (गीत के अन्तक को लोग इसलिए बदल देते हैं कि वह) इनको (शुद्ध रूप से) याद नहीं। यह आदत इसी कारण है। मैं अपनी ही (रचना के विषय में) कहता हूं कि "अहं भजामि रामम्, सत्यम् शिवम्, मंगलम्।" मैंने लोगों को गाते सुना है, अहं भजामि रामम्, सत्यम्, शिवं, सुन्दरम्। (इसी प्रकार महाराज ने हरे कृष्ण, हरे कृष्ण के विषय में कहा)। समर्थ रामदास की गाई हुई कविता गायकों को क्या अधिकार है बदलने का। ऐसा नहीं होना चाहिए (अर्थात् भक्तों की मौलिक धुनों, भजनों आदि रचनाओं में तनिक भी अन्तर नहीं करना चाहिए)। "रघुपति राघव राजा

राम, पतित पावन सीता राम"।—इसमें महात्मा जी के सामने, अल्लाह हो अकबर तेरा नाम।" (मुसलमानों ने जोड़ दिया)। पहला (अर्थात्, "रघुपति राघव राजा राम, पतित पावन सीता राम"।) जब ठीक था, इस समय तक हिन्दू मुस्लिम एकता थी। बाद में हिन्दू मुस्लिम खींचातान। यह (भक्तों की मौलिक रचनाओं में फेरबदल) अनाचार है, भक्तों का अनादर है। जवाहरलाल के शब्दों के साथ घिसियारे के शब्दों को जोड़ने का क्या मतलब। पहले युगों के ब्राह्मण तो पाप समझते थे कि कहने वाले और सुनने वाले दोनों के लिए हानिकारक है।

मुझे कहना जो है वह तो यह है कि कीर्तन में बड़ा लाभ होता है, इसको कम नहीं समझना, यह भी मंत्र ही है, यह दूसरों पर बड़ा प्रभाव डालता है।

संतों के गीत – उनकी आत्मा की झंकार

गीत गाए जाते हैं। बड़े अच्छे गीत हैं। सत्संगों में पुराने सन्तों के गीत ही गाये जाने चाहियें क्योंकि यह उनकी आत्मा से निकली हुई हृदय की झन्कार है। वे गीत यदि गाए जाएँ सत्संगों में तो मंत्रों के समान होते हैं और उनका बड़ा लाभ (होता है)। पुराने गवैये जानते हैं पक्के रागों से तात्पर्य – गिने हुए सुरों साथ जोड़े। इसमें सूरदास के भी, तुलसी दास के भी, राग से बने हुए और राग विद्या में तुले हुए। कोई सुरताल भी कहे जाते हैं। यह अलौकिक हैं। इनका सुर पुरातन काल से है। यह इस लोक की चाल नहीं।

सन्त लिखते हैं अपने अनुभव

सत्संगों में सायंकाल तथा प्रातः काल तोले हुए गीत—पक्के—गला पक्के राग गाने का है। यह सत्संगों में बात आनी चाहिये। मीरा का जो है, मीरा बाई के भजन—ऐसा प्रतीत होता है कि चीज़ इसने देखी। विरह के गीत गाती है। (मीरा जी कहती हैं) कि मैंने जो मधुर मूर्ति देखी, वह उस में आन खड़ी, छाती में आन खड़ी। यह बात वह मीरा देखी हुई कहती। अन्त में उसके जीवन में इतना त्याग, विराग आया।

मीरा का परमात्मा को मानने वाला, बड़ा सुन्दर गीत विरहिन वन वह ऐसा कहती, यह दिल से निकली हुई बात। अध्यात्मवाद पर लेख लिखेगा जितना जानने वाला लिख सके। इसकी किताबें बड़ी अच्छी। रमन की महिमा वे कहने लगे। हमारे सामने बक्स इसने खोले। बड़े भारी पुस्तकों के थे। इन को देखकर हार बनाता। माली हार बनाता पर फूल माली के बाप के पैदा किये हुए नहीं। इसने यह बात समझी ही नहीं। मुझे कहना यह है कि लेखक बनाते राई को पहाड़। उनको विरह वेदना होती नहीं। मीरा को विरह वेदना।

(बड़े बड़े ग्रन्थों के लेखक तो केवल पाण्डित्य पूर्ण ग्रन्थ ही रच सकते हैं। बातों को बढ़ा कर वे वर्णन करते हैं। उन में यह वास्तविकता थोड़े ही मिल सकती है जो मीरा जी के पदों आदि में है। मीरा जी ने तो विरहिन के रूप में अपनी अनुभव की हुई बातें लिखी हैं।)

सूर, कबीर, मीरा, तुलसी, सदा ही रहेंगे। चैतन्य ने कोई चीज़ देखी। उससे मतवला (हो उठा)। फिर जब वे निर्मल अवस्था में आए तो वर्णन का प्रयास किया। (आवेश की अवस्था में जो कुछ चैतन्य महाप्रभु ने देखा, सामान्य अवस्था में आने पर उन्होंने उस का वर्णन करने का यत्न किया।)

सन्त जो हैं, वे देखने वाले हुए। इनके, सन्तों के, वाक्यों में देखने की साक्षी है। बाकी दूसरे लेखकों आदि की तो तुकबन्दी और काम चलाने वाली बात ही है।

जब गाते हैं रघुपति राघव राजा राम। क्या मजाल इसमें और कुछ। इसी प्रकार हरे राम हरे राम हरे कृष्ण हरे कृष्ण। यह मंत्र के समान प्रभाव। मुझे कहना यह था कि सत्संगों में यह बात आनी चाहिए। (अर्थात् सन्त कवियों के पद, धुनें उनके मौलिक रूप में गाने चाहियें)। बाकी लोग मृदंगों पर नाचने वाले। अन्य लोग तो ऐसे ही नयनवे गाने गाते फिरते हैं। अन्दर के सुर से नाचने वाले और देखने वाले। मीरा ने देखा था, क्या प्रमाण है। मैं इस युग का नहीं पर मेरे मित्र हैं, इन से बात समझता हूँ। तो मुझे

कहना यह था यदि मीरा हुई है तो इस युग में भी तो देखते हैं, आडम्बर नहीं करते। महात्मापन का राग नहीं अलापते। तो देखा तो है। विरह वेदना भगवान ने इनको दी नहीं है। मीरा का तो निभ सकता था।

अपनी शैली विशेष

मेरी तो शैली निराली है। जो इस प्रकार के टुकड़े खाते हैं उनकी आत्मा जागती नहीं। धर्म क्षेत्रों पर जो पलते हैं उनकी आत्मा जागृत कैसे हो? (मुफ्त के टुकड़ों पर पलने वालों की आत्मा जागृत नहीं होती) यह बात एक बड़े सन्त की थोड़े में मैंने कही है। यह साईंस है। यह विवाद का विषय नहीं। वह सच्चाई का मार्ग मानने की बात। एक बार मैं एक मित्र के पास ठहरा हुआ था। एक दिन सूर्यास्त के बाद मेरे मित्र को ऐसा प्रतीत हुआ कि कृष्ण जी आए। सुक्ष्म शरीर यह क्रिया करता है। भगवान का स्वरूप दिव्य पर वह भी पकड़ने में कठिन। अपने आप आता। कृष्ण जी पास आए। वे उठ खड़े हुए और आलिंगन किया। मीरा ने समझा हुआ। इसमें क्या कोई बात। एक वेदान्ती कह सकता है। वह (वेदान्ती) तो कहेगा कि यह सब माया है। झूठा गुरु झूठ को झूठे को समझाये, यदि इसको विरह वेदना भगवान ने नहीं दी। युगांतर तक गीत रहेंगे (मीरा के गीत युग युगान्तर तक रहेंगे) महाराज को मालुम होगा इस व्यथा में वह गाती रही। यह कोई ऐसी बात नहीं कि हम इसको (यूं ही समझें) यह तो अनुभव की हुई बातें हैं। केवल युक्ति नहीं। जुकाम तो अन्दर का ही पिघलना। आचार्य की युक्तियां ही मानसिक रोग होता है।

पैरों आदि को पकड़ने की प्रथा गलत है। परम आचार्य वह भगवान है। इस विश्वास से महाराज का आराधन (करना चाहिये)।

होर असी की मंगना

एक बार सत्संग आरम्भ होने से पहले साधक जब कीर्तन कर रहे थे। श्री महाराज जी ठीक समय पर पधारोतब साधक गा रहे

थे, "सानूं मिल गया राम प्यारा, होर असी की मंगना।" श्री महाराज जी थोड़ी देर सुनते रहे फिर हाथ उठाया और कीर्तन रुक गया। उन्होंने कहा गाइये न, "सानूं मिल गया नाम प्यारा, होर असी की मंगना।" संकेत पाते ही फिर से सारा सत्संग हॉल गूंज उठा और श्री महाराज जी के साथ सभी साधक उठ कर नाचने लगे। 'मिल गया नाम प्यारा, मिल गया नाम प्यारा।' और राम का नाम तो एक हैं, पर नाम की डोर को पकड़ कर ही साधक राम धाम तक पहुंचता है।

कीर्तन से काया पलट

संगीत में मोहक शक्ति है। संगीत और सभ्यता का बड़ा संबंध है। राग में बल होता है कि वह मनुष्य के जीवन को पलटा देता है। कविता आदमी को बड़ा ऊंचा कर देती है।

एक बार नारद सनत्कुमार के पास गए। मार्ग में रत्नाकर डाकू ने उन्हें रोका। नारद जी ने अपना गाना सुनाया। रत्नाकर उनके गीत पर मुग्ध हो गया और उनके कहने पर उसने डाकू का कर्म छोड़ दिया तथा तप करने लग गया। वही रत्नाकर तप के प्रभाव से संसार के आदि कवि हुए तथा उन्होंने रामायण जैसे महान ग्रंथ की रचना की। नारद जी जब सनत् कुमार के पास पहुंचे तो उनके पूछने पर जो जो विधाएं उन्होंने (नारद जी से)पढ़ी थीं वे सब उन्होंने उनको सुनाईं तथा साथ ही यह भी कहा कि इतनी विधाएं पढ़ने पर भी उनकी चिन्ता नहीं गई। सोच नहीं मिटा। सनत् कुमार जी ने कहा कि उन्होंने केवल शब्दों में ही अर्थ पढ़ा है। उनके वास्तविक अर्थ (तत्त्व) को नहीं समझा। एक शब्द की जगह दूसरा शब्द रख देना उसका अर्थ नहीं है। वास्तव में जिस वस्तु की ओर शब्द संकेत करता है वह उसका अर्थ है। अर्थ और शब्द मिले हुए होते हैं। ये पृथक नहीं होते। यह केवल समझाने के लिए भिन्न-भिन्न शब्द होते हैं। अन्त में सनत्कुमार ने कहा कि सत्य को जानना चाहिए।

बहुत सुनना भी अच्छा है क्योंकि सुनते सुनते ही मनन करने का विचार हो जाता है पर सुनने से करना बहुत अच्छा है।

सत्संग

सत्संग–अच्छे व्यक्ति का संग

अच्छे व्यक्ति का संग अच्छा बनाता है। अच्छे व्यक्ति जहां बैठा करें उसे ही सत्संग कहते हैं। सत्संग मनुष्य के जीवन को उज्जवल बना देता है। इसमें सारा सार भर देता है। सत्संग से कठोर कुकर्मी और पातकी मनुष्य का भी कल्याण हो जाया करता है। सत्संग सुलभ भी है और दुर्लभ भी।

दुर्लभ इस कारण है कि श्रेष्ठ मनुष्यों का मिलना माया जाल के कारण कठिन है। किन्तु ज्ञानी लोग दुर्लभ वस्तु को सुलभ बनाते हैं। तो सत्संग सुलभ कैसे बनाया जाए ? हमारे देश में अधिक पन्थ होने और एक पुस्तक न होने के कारण श्रेष्ठ मनुष्य कौन है यह जानना भी कठिन है। चाहे कल ही कोई पन्थ चला हो, वे कहते हैं, ''बस यह ही है और बाकी सब तुच्छ है'' ऐसा कहना अज्ञान भरी बात है। यह तो राजनैतिक दलों के समान दल बने हुए हैं। सच्चा राजनीतिज्ञ तो देश की भलाई देखता है। पर ये गुटबन्दी के राजनीतिज्ञ तो पक्ष से भरे हुए हैं। चुनाव जो हुआ तो जाति का पक्ष कितना था। इतना भारी भेद रूस और जर्मनी के लोगों में नहीं जितना कि एक जाति से दूसरी जाति का चुनाव में देखा गया। धड़ों की दलदल वालों के सामने देव नहीं आ सकता। उनके आगे तो दैत्य ही होता है। इसी प्रकार पन्थों के धड़े हैं। अब ऐसी स्थिति में सत्संग कैसे सुलभ बने ?

एक बात सर्वोत्तम है कि राम आराधन करते समय समझे कि मैं राम के समीप बैठा हूं। जहां गीता पाठ हो वहां समझे कि स्वयं श्री कृष्ण जी महाराज विराजमान हैं।

श्री कृष्ण वाक्य है ''**जहाँ गीता का पाठ होता है वहाँ स्वयं महाराज की कृपा होती है।**'' गीता में आया है ''मैं जप यज्ञ हूं यज्ञों में जप यज्ञ हूँ यह महाराज जी का वाक्य है। तो ~ भगवान हैं यह बात हुई।

नाम जाप-एक शुभ सत्संग

कोई व्यक्ति जंगल में बैठा हुआ पूजा कर रहा था। उस देश का राजा उधर आ निकला। राजा ने चाहा कि वह उसके घोड़े को पकड़ कर रखे। पुकारने पर भी वह मूर्ति के सामने से नहीं उठा। धमकाने पर भी उस पर कोई प्रभाव नहीं हुआ। जब राजा घोड़े से उतरा और देखा तो पता चला कि वह वैसे ही नहीं बैठा अपितु मूर्ति के सामने बैठा है। उसके ध्यान समाप्त करने पर राजा ने प्रश्न किया, "तुमने मेरे आदेश की ओर ध्यान क्यों नहीं दिया ?" उसने उत्तर दिया, "मैं तो स्वयं भगवान के दरबार में प्रार्थना कर रहा था। तुम्हारी कैसे सुनता ?" तो मैं कहना चाहता था कि राम का जाप जो कर रहा है वह तो बड़े शुभ सत्संग में है।

मनुष्य जब घर में तृप्त हो तो उसको बाहर या बाजार में खाने में ग्लानि होती है और बाजारी भूख नहीं होती। एक सेवक सांपले से दिल्ली आते हैं। घर से खा कर चलते हैं और फिर आवश्यकता नहीं समझते।

साधक को परमात्मा के संग में आत्मनिर्भर होना चाहिए। इससे वह मांगने वाला नहीं रहता। यदि राम दरबार से न मिला तो कानी कौड़ी भी किसी स्थान से मिलेगी नहीं यह निश्चित है। यह भावना भक्त में आई तो सत्संग कितना सुलभ हो गया।

सत्संगी को यह दृढ़ होना चाहिए कि उसके भगवान की मूर्ति का निवास उसमें है। ध्यान करने वाले इसको गाते चले आए हैं। दूसरी बात है गीता पढ़ें तो समझें कि भगवान श्रीकृष्ण अपने शब्दों में ही हैं। यह समझ हो तो लाभ अधिक होता है। रामायण, गीता, उपनिषद् बड़े दरबार हैं, भगवान, ऋषियों और सन्तों के। यह ग्रन्थ तो पन्थिक पोथियों से पहले के बने हैं।

शास्त्र-पाठ—उत्तम सत्संग

जब पहले इधर हाँसी के गाँव में घूमने लगे तो एक साधक के हाथ में लठ होता था। कहना यह है कि लठ मार्ग का अवलम्बन, सहारा है। ऐसे ही मोह-माया की छल कपट की सृष्टि में चलने के

लिए शास्त्र लाठी का सहारा है। पहला मत को चलान वाला बुद्ध गौतम हुआ। फिर ईसा मसीह आदि। पर हमारे शास्त्र ऐसे हैं जिनको पन्थ के हाथों ने मैला नहीं किया। ऐसे शास्त्रों का पाठ उत्तम सत्संग है।

शास्त्रों में जिनके वाक्य हैं वे साक्षात् उन ग्रन्थों में हैं। राम आराधन करने वालों को तो समझना चाहिए कि वे तो भगवान के दरबार में हैं। उसके दरबार में तो सभी का सत्संग मिला—ऋषि, मुनि, सन्त और महन्त का। जो श्रेष्ठ हैं वे ग्रन्थ पढ़ा करें न कि उपदेश। आप गीता का बार-बार पाठ करें। तीन बार पाठ के बाद बोलने लग जाएगी। इसी प्रकार रामायण, उपनिषद् भी अवश्य पढ़ो। अनुवाद ही सही।

सिमरण, स्वाध्याय और सत्संग जिसमें आ गया वह कल्याण पा गया।

सत्संग—संत कृपा

सत्संग वहीं पर हुआ करते हैं जहां अच्छे पुरुष और अच्छी स्त्रियां हों। सत्संग वहीं होते हैं जहां भगवान की अपनी कृपा हो। लौकिक बातों के लिये बहुत स्थान बने हैं। माया का कोई अन्त नहीं होता। माया के जंजाल में मनुष्य हमेशा फँसा रहता है, इसलिए उसे अपने अध्यात्मवाद के लिये थोड़ा सा समय अवश्य निकालना चाहिये। सत्संग में सत् का निरूपण होता है। जहाँ धर्म की चर्चा हो—सत् का निरूपण हो—वही सभाएँ सत्संग कहलाती हैं। सत्संग अपनी शोभा आप होते हैं। सत्संग सन्तों की कृपा से होते हैं और सन्त लोग ईश्वर की कृपा से ही मिलते हैं। सन्तों की संगति करनी चाहिये।

लोग सिनेमा में जाते हैं, चंचल गाने सुनते हैं। फिल्म पर लाखों रुपया खर्च होता है। लोग लौकिक चीजें देखकर प्रसन्न होते हैं। हृदय में उनके लिये आकर्षण रखते हैं। यदि यही चंचलपन सत्संग के लिये आ जाये तो फिर संसार में शान्ति हो जाए। वह सभा जहाँ हरि ही की चर्चा हो उसमें शान्त रस बरसता है,

इसलिये सत्संग लगाने आसान नहीं। यह तो बहुत गम्भीर व्यक्तियों का काम है।

सत्संग से सुधार

सत्संग से पाप और पुण्य की परख हो जाती है। राजसभाएँ भी होती हैं। राजसभाएँ तन्त्र बना सकती हैं, जैसे शराब निकालना अपराध है, शराब पीना नहीं। रूस और अमरीका में ऐसे तन्त्र बने भी, किन्तु शराब निकालना बन्द नहीं हुआ। क्यों? केवल इसलिये कि यदि चोर को चोरी के अपराध में १२ वर्ष के लिये जेल में डाल दिया जाय—यह समझ कर कि यह चोरी का स्वभाव शारीरिक दण्ड मिलने से छोड़ देगा—यह भूल है। अपितु वह बारह बरस बाद भी 'चोर' ही जेल से निकलेगा। इसलिये कि उसका जेल में मन नहीं बदला—आत्मा नहीं बदली। अर्थात् राजसभाएँ मन की वृत्ति को नहीं बदल सकतीं। हमारे देश में अधिक लोग शराब नहीं पीते, कारण कि यहां सन्तों का प्रचुर प्रभाव रहा है। यह कोई पानी का ही प्रभाव नहीं अपितु धर्मों का प्रभाव है। मनोवृत्ति बदलना सरकार का काम नहीं। सत्संगों में ही मनुष्य सुधरता है। जब तक मन में पाप का भय पैदा न हो तब तक मनुष्य सुधरता नहीं। सत्संग से ही मनुष्य के मन में पाप का भय पैदा होता है। सत्संग की सब से बड़ी बड़ाई यही है कि आत्मा बुराई को बुराई समझने लग जाती है। सत्संग सब जगह लगने चाहिएँ। जीवन को सुन्दर बनाने के लिये धर्म का बड़ा महत्त्व समझा जाता है। जगत् में सत्संग की बड़ी आवश्यकता है। जगत् बिगड़ता जा रहा है। यदि यही स्थिति रही तो इसकी क्या दशा होगी? दुःख और आश्चर्य की बात है।

गांधी-वाद धर्म के साथ शुरु होकर प्रचलित हुआ। धार्मिक युद्ध भी नियम से होते थे। सूरज चढ़ने से पहले और छिपने के बाद युद्ध नहीं होते थे। शत्रु पर चोरी से नहीं अपितु सूचना देकर आक्रमण किया जाता था। गांधी जी ने इस धर्म को अपनाया। अपनी पीठ पर कोई लाठी मार दे और फिर मारने वाले के कन्धे पर मुक्का भी न मारा जाय यह कितनी बड़ी बात है।

संत-महिमा

सन्तों के कर्मों से ही भारत वर्ष शान्ति का सन्देश देता रहा है। हरिकृपा से सत्संगियों अथवा सन्तों में बड़ा प्रभाव होता है। बिना हरिकृपा के सन्त नहीं मिलते। सन्त बादलों का रूप हैं—उनकी भक्ति जल है—प्रेम जल—जो चलता ही रहता है, रुकता नहीं। भाग्यशाली मनुष्य इस जल को स्वीकार करते हैं। माता सीता ने रावण से यही कहा था कि तेरी इस म्लेच्छ-बुद्धि से ऐसा प्रतीत होता है कि तेरे इस देश में सन्त नहीं हैं। यदि कहीं हैं भी तो छुपे हुए हैं, उपदेश नहीं देते या तू उनके उपदेश पर नहीं चलता।

सत्संग स्वल्प और स्वादु होना चाहिए। लम्बे काल में श्रद्धा कम होती है।

प्रार्थना

प्रार्थना में विश्वास

ध्वनि तो सब ही अकाश में तरंग रूप से जाती है किन्तु प्रार्थना के समय मनोबल से संकल्प तरंग सूक्ष्म शक्ति के साथ दूरगामी होता है। यह हमारा विश्वास होना चाहिये कि हमारी प्रार्थना भगवान के पास सुनी जा रही है। जिस प्रकार कि रेडियो स्टेशन पर गाने वाले अथवा भाषण देने वाले को विश्वास होता है कि मेरे शब्द देश विदेश में जायेंगे और सुने जा सकेंगे। रेडियो से वे तरंग कहीं भी पकड़े जा सकते हैं।

प्रार्थना के समय हमारा विश्वास होना चाहिये कि हमारी प्रार्थना सुनी जा रही है। कभी कभी शाब्दिक उत्तर भी मिल जाता है। इसके लिये प्रार्थी का मन निर्मल तथा मनः संकल्प तीव्र होना चाहिये।

हमारे तो इष्ट राम ही हैं, इसका विस्तार हमारा उद्देश्य है। राम के विस्तार के साथ जगत में मंगल का संचार और आस्तिक भाव की वृद्धि होती है। सब तीर्थ इसमें समाये हुए हैं। जिस प्रकार बीज में वृक्ष के भाग अर्थात् जड़, तना, डाली, फूल, फल सब समाये होते हैं। आवश्यकता है इस बीजाक्षर राम नाम मन्त्र का आराधन करने की।

मोहमायामय जगत में चित्त को न रमाकर एवं वृत्तिमय जगत में न विचर कर ब्राम्ही स्थिति प्राप्त कर जन सेवा में लगना ही उचित है। परमेश्वर को अपने अंग संग समझना ठीक है। जिस प्रकार हम परस्पर बात करते हैं इसी प्रकार भगवान को आह्वान करने के पश्चात् उसकी उपस्थिति अनुभव करनी भी चाहिए।

जब हमारा ही विश्वास न हो कि हमारी प्रार्थना सुनी भी जाती होगी अथवा नहीं तो वह क्या फल लायेगी? दुर्बल मन की दुर्बल तरंग दूर तक न जाकर बीच में ही टूट जाती है। अतः हमारी प्रार्थना में बल होना चाहिये।

प्रार्थना करते बड़ा बल आ जाता है। डाक्टर के कहने पर कि बिजली की मशीन के पास बैठो उससे तुम्हारे अन्दर विद्युत तरंग प्रवेश करके स्वास्थ्य प्रदान करेगी, हमारा विश्वास बैठ जाता है। और लाभ भी होता है। तो क्या शक्ति पुँज भगवान के समीप बैठने से (उपासना से) हम में शक्ति नहीं आयेगी? किन्तु ऐसा विश्वास लोगों को कम होता है। अतः हमें चाहिये कि हमारा विश्वास सजीव हो कि वह परम पुरुष हमारे सामने उपस्थित है।

प्रार्थना से लाभ

मैं आपको यह कहना चाहता हूँ कि प्रार्थना बड़ी [illegible]
और इससे बड़ा कल्याण होता है। मुझे हर्ष इसमें हो[illegible]
कोई न कोई साक्षी देने वाला होता है इस बात [illegible]
लाखों वाली सभाएँ भी हमने देखीं। तुम राम [illegible]
होगा पर मैं अपने भाईयों से बोलूँ तो वे कहेंगे कि [illegible]
में) तो बड़ा आनन्द आता है। तो यदि कोई [illegible]
देखा। देखने वाले लड़कियाँ भी और लड़के [illegible]
भी। श्री परमेश्वर का रूप बनाना हमारा [illegible]
का आकार है। यह क्यों बताएँ कि वृन्दा[illegible]
वही दिखे। शास्त्रों ने भी यही कहा कि [illegible]
तो तू जानता है कि किस रूप में तू [illegible]
आवाहन करते हैं। किसी पर [illegible]
अवतारों के रूप में और किसी पर [illegible]
प्रकट होता है)। मैं तो अपने भाई[illegible]
यह आवाहन करने से इतना ला[illegible]

धोबी के कपड़े धो देने से अपना अन्तःकरण तो नहीं धुलता। आप जो लोग (साधना)करते हैं, इन को बड़ा लाभ होता है। प्रार्थना कर्ता के अन्दर विश्वास की दृढ़ता उत्कृष्ट होनी चाहिऐ। लचक इसमें न आए। जप जो है यह प्रार्थना ही है। यदि संशयशील मनुष्य (हो जावे) तो भगवान का गीता में यह कहना कि "मनुष्य जो संशयशील है उसका न यह लोक, न परलोक, न जीवन का सुख"।

पाकिस्तान ने अमेरिका से हथियार मंगवाए, भारत ने पैसे, दवाईयां आदि। हथियार आ गये पाकिस्तान में और देहली में बैठा हुआ मनुष्य कांपे—क्योंकि यह भ्रम/भय कि पाकिस्तान ने मिसाईल छोड़ा तो हम क्या करेंगे। हथियार ऐसे आजकल कि सौ वर्ग मील को एकदम साफ कर दें और जहां बीसों वर्ष कोई जीवित न रह सके। प्रतिदिन प्रयोग करते रहते, फिर भी मनुष्य भली प्रकार रह रहा है।

तो जिसे भगवान में संशय हो जावे वह आराधना कैसे करे। इसलिये विश्वास की मात्रा जितनी अधिक उतनी साधना में सफलता। पूरे विश्वास से राम नाम सिमरन करे तो यह बिल्कुल सत्य है कि काया पलट दे। यह समझ लेना चाहिये। दूसरों में कहने की बात नहीं। हम चैतन्य वस्तु और भगवान सर्वत्र विद्यमान—यह विश्वास हो।

साधना से लाभ – अध्यात्मिक तथा सांसारिक

साधना से (परमेश्वर की) कृपा का अवतरण हम पर होता है। यह साधना आवे तो साधक को अवश्यमेव लाभ (होता है)। अध्यात्मिक लाभ अवश्य (होता है)। सांसारिक लाभ भी होता है। हम अध्यात्मिक लाभ को मुख्य मानते हैं। ईंधन तो पैदा होता ही है (गुड़ बनाते समय)। (गन्ने के छिलके रस को गर्म करने के काम आते हैं)। गेहूं तो होता ही है खेत में बोने से, पर चारा (तूड़ी)

भी साथ (हो जाती है)। तो (इसी प्रकार) भगवान की बातें मुख्य हैं। बाकी इन्द्रयों का भोग। ये तो अपने आप भी होते हैं। पूरा विश्वास करें, पूरी भावना के साथ (साधना करें) तो वह बड़ी फलदायक है।

तो सीधा साधन, देव का आराधन करना यह ऊंची बात है। ठीक भी वही रहते हैं। चोला जो पाप से काला भरा हुआ वह स्वयं पाठ से धोना होता है। आप जप करो, अपने कल्याण के लिये। पत्नी के हृदय से पति के लिये निकली बात तो ठीक है पर पैसे लेकर पाठ करने वालों का तो यही सिमरन कि पाठ की समाप्ति पर कितना मिलेगा।

टैलीफोन पर जिसे बुलाया उसी से बात तो ठीक। नौकरों के कहे हुए में बड़ा अन्तर होता है। उर्दू में एक व्यक्ति ने अपने सम्बधियों को सन्देश भिजवाया कि उसे बुखार हो गया है और वह मरी नाम पर्वतीय स्थान पर जा रहा है। संदेश देने वाले ने बोला कि उस व्यक्ति को बुखार हो गया है और वह मर ही जा रहा है। इससे संबंधी संतप्त हो उठे।

परमेश्वर की कृपा का हम पर अवतरण होता है। यह साधना आवे तो साधक को अवश्यमेव लाभ। आध्यात्मिक लाभ अवश्य, सांसारिक लाभ भी होता है, पर हम आध्यात्मिक लाभ को ही मुख्य मानते हैं। गुड़ तो होता ही है पर ईंधन भी पैदा होता है गरम करने के लिये। खेत में बोने से गेहूं तो होता ही है पर चारा भी साथ। तो भगवान की बातें मुख्य हैं। बाकी इन्द्रियों का भोग तो अपने आप ही होता है। पूरा विश्वास करो, पूरी भावना के साथ तो यह बड़ा फलदायक है।

साधना के मार्ग में श्रद्धा होनी चाहिये। श्रद्धा आस्तिक बुद्धि को कहते हैं। इसके साथ भक्ति। भक्तियुक्त श्रद्धा साधक की

इस प्रकार रक्षा करती है जैसे माता नन्हें शिशु की।

प्रार्थना का प्रभाव—राग द्वेष रहित होने पर

आप यह चाहें (कि आपकी प्रार्थना का प्रभाव हो तो) राग द्वेष को दूर करके किसी के साथ आपका राग है, द्वेष है। किसी भी मिलने वाले के लिए आप कचहरी में जाने को तैयार। तो हम तो नहीं उसके अधिकारी (प्रार्थना के)। पर सूक्ष्म स्तर में तरंग तव हो जव राग द्वेष न हो। एक-दो नहीं हजारों (लोग) करते—राग द्वेष से रहित (प्रार्थना)। वे (ऐसे राग-द्वेष रहित अध्यात्म चिकित्सक) डाक्टरों को चैलेंज देते। तो मैंने सुगम बात कही थी कि परिवार में किसी भाई से मोह भी वह करता है, पर लम्वी डींग नहीं मारता। यह वही बात है कि गोदड़ी बैठी, उसके पास उसके वच्चे भी बैठे तो उसका बच्चा कहने लगा कि मैं जाऊँ। वह जो शेर है उसको मार डालूं, तो गोदड़ी ने उसको कहा कि जिस वंश में तू पैदा हुआ है वहा शेर नहीं मारा जाता। जो हम वड़ी वात चाहते हैं तो इसके लिए विशाल हृदय आवश्यक। एक साधक विमार हुआ। लड़कियां लड़के उनके लिए प्रार्थना करते हैं। ऐसी जो निर्दोष बातें परिवार की फूट मिटाने के लिए। ऐसी निर्दोष बातों के लिए प्रार्थना करने का अधिकार सदा सब को ही रहा है। दूसरी बातों के लिए भी कौन रोके, पर उनके लिए तो ऊंचा ही प्रार्थना करता है।

विश्वशान्ति हो जावे—यह भाव तो अच्छा है पर यदि आपकी तरंग तीव्र नहीं है तो वह कैसे किसी अमरीकन या रशियन के हृदय में जाकर तरंग उत्पन्न करे (शांति का)। गांधी जी पक्षपात से पार थे। वे विश्व के ही बन गए थे। यद्यपि उन्होंने अंग्रेजी हकूमत के विषय में कहा कि यह शैतान गवर्नमैंट ऐसी है। यह वात 'आप की बेवकूफी है' और 'आप बेवकूफ हैं', इन दोनों कथनों में भेद है। उसको जो (गांधी जी को) साधक बनाया गया भारत को स्वतंत्र कराने के लिए। यह उस ने कहा कि

मुझे आदेश हुआ (भारत को स्वतंत्र कराने का)। दुनिया कहे कि यह मेरा भ्रम है पर मुझे विश्वास है कि मुझे ठीक ही कहा गया है। वह (गांधी जी) आज भी संकल्प करता यदि होता तो घोषणा नहीं करता। प्रार्थनाशील को इसका श्रेयस्, यश नहीं लेना चाहिए। वह तो भगवान की कृपा है।

दूर बैठे किसी के संकट को निवारण करना हो तो फिर तो स्टेशन ऐसा (प्रबल) तरंग वाला हो जो दूरगामी हो। सभी देशों में ऐसे आदमी (होते हैं)। हर एक आदमी यन्त्र है। थोड़े थोड़े कामों के वैसे किसी को परिवर्तन कर दें। यहां भी कई स्त्रियां हैं जिन को स्वप्न आदि में प्रतीत होता है कि तुम्हारा लड़का जो अमरीका में है वह पास हो गया है, तुम्हारा पति जो युद्ध में है वह सुरक्षित है, आदि। बाद में उस की पुष्टि के समाचार आते हैं। बहुत पेट भरा हुआ हो, खट्टे डकार आते हों तो ऐसी अवस्था में तो और ही प्रकार के सपने आते हैं नींद में। पर शुद्ध हृदय से जो प्रार्थना करने वाले हैं उनके शुद्ध मस्तक के यन्त्र में बहुत बातें प्रगट होती हैं।

विद्युत वाहनी तरंगें ले जाती और समाचार आते हैं। तो मस्तक भी तो यंत्र है, इसमें भी समाचार आते हैं यदि किसी को अच्छा बनाना चाहते हो तो प्रार्थना करो कि उस के चित्त में अच्छी बात आ जावे। यह हमारी बात समझ में आ गई। होमियो-पैथिक डाक्टर की एक बूंद औषधि से समुद्र टिंचर का। इसमें औषधि कितनी होती है! क्या होती!

यदि यह सूक्ष्म औषधि लाभ देती है तो आपका सूक्ष्म संकल्प क्यों प्रभाव न डाले। केवल खराब संकल्प ही खराब करते हैं। होमियोपैथिक तो दावे से कहते कि इसका प्रभाव होगा। तो इसी प्रकार दावे से कहा जा सकता है कि किसी का संकल्प किसी की काया को पलटा दे सकता है पर इसका संकल्प शुद्ध (होना चाहिए)।

एक बार एक मित्र को रुग्णावस्था में देखने के बाद मुझे उनके लिये प्रार्थना करने का विचार आया। क्योंकि मैंने सोचा कि इनका कुछ वर्ष और जीवित रहना आवश्यक है। किन्तु जब मैं प्रार्थना करने के लिए बैठा तो आवाज आई कि इतने हैं, उनके स्थान पर कोई और काम कर लेगा। मैंने समझा कि अब उसका ठहरना कठिन है, इस लोक में। कुछ दिन एक बार फिर चार पांच महीने लगातार किसी के लिये प्रार्थना की। वह व्यक्ति अब ठीक है। यदि आप त्याग को खो देते हैं तो आपने सब कुछ खो दिया। आपको त्याग तथा भावनाओं में वृद्धि करनी चाहिये। महात्मा गांधी की उनके निःस्वार्थ के लिये मैं प्रशंसा करता हूँ। उनका अपना कोई स्वार्थ नहीं है। वे चाहते तो गवरनर जनरल या प्रधानमंत्री बन सकते थे।

अखण्ड जाप द्वारा प्रार्थना

अखण्ड जाप का प्रयोजन हमने सोचा था कि क्या होना चाहिए। प्रयोजन पद निर्माण हुआ था—

"वृद्धि आस्तिक भाव की, शुभ मंगल संचार।
अभ्युदय सद्धर्म का, राम नाम विस्तार।।"

पहली बात है कि आस्तिक भाव की वृद्धि हो। यह उद्देश्य है—यह निष्काम कामना है। और शुभ मंगल का संचार हो। इसमें आप का अपना शुभ मंगल भी आ गया। सब संसार का शुभ मंगल, इसमें आप भी आ गए। सद्धर्म का प्रकाश हो। विशेषतया राम नाम का विस्तार हो। संसार में अपने को मिलाना। दो चार बार यह मंत्र पढ़ो। पढ़ कर (जप) आरम्भ कर दो। इस संसार का काम भी एक गुण। हमारा अस्तित्व इसी के बीच आ गया। बाहर हम रहे नहीं। ऐसी निष्काम प्रार्थना और क्रोध भी शान्त। आप अपने किसी भी मिलने जुलने वाले से विरोध नहीं करते, द्वेष नहीं करते। आप न्याय शील और सत्य का पालन करते हैं। फिर आप किसी जन के उद्धार की प्रार्थना करें। जीवन की ऊँची कला सुधर जावे तो पता लगेगा कि वह

प्रार्थना पूर्ण। पर लड़ाई की प्रवृत्ति से किसी का बिगाड़ने की प्रार्थना करने का अधिकार नहीं है। ऐसे आदमी पाँच सात हों, वे सात आठ दिन कामना करें।

मेरे मिलने वाले ऐसे हैं (जो कहते हैं) कि हमने कामना की और अगले दिन ही उसका (जिसके लिए कामना की) बहुत सुधार। कामना की और आदमी सुधर गया। मैं पूछता नहीं कि किस के लिए कामना करते।

प्रार्थना के लिए पात्रता

प्रेमनाथ जी जो प्रार्थना करते हैं वह पूर्ण हो जाती है। यदि प्रार्थना अनुचित हो तो इन्हें आवाज आ जाती है कि यह प्रार्थना अनुचित है। एक मिनिस्टर था। वह बड़ा अड़ने वाला। इसको (प्रेम जी को) विचार आया कि वह जीवित रहे। उसको (मिनिस्टर को) दिल की बीमारी। वह लीडर था। इसने (श्री प्रेम जी ने) चाहा कि जीवित रहे तो आगे जो वह अड़ जाता वह न करे। इसने (श्री प्रेम जी ने) उस मिनिस्टर के लिए प्रार्थना की तो इसे आवाज आई कि ऐसी बात नहीं। कोई और बात करो। यह विचार होना चाहिए कि आगे कोई प्राप्त कर लेगा (हमारी प्रार्थना को)। निष्काम प्रार्थना करने वाले इस संगति में हों। तो कुछ व्यक्ति वर्ष के अन्दर अन्दर दस लाख जाप करें। इसके लिए मैं दिल में विचार करूँ, यह तो सारी दुनियां करती है, पर सत्यानन्द को क्या पड़ी है। इसकी कोई जाति नहीं है। फिर मैं चुप हो गया क्योंकि यह मेरा मार्ग नहीं है। मैंने कहा कि लोक हित की प्रार्थना करो। मैंने अच्छे आदमियों के लिए, भारत सरकार के लिए भी, भारत की जनता के लिए भी, सदा कामना की। चाहे मैं किसी हालत में, चाहे मेरी काया कैसी ही हो जावे। तो चाहता हूं कि चार पांच व्यक्ति निष्काम प्रार्थना करने वाले हों।

प्रार्थना किसी व्यक्ति के लिये करनी हो तो पात्रता भी देखनी आवश्यक है। किसी अपराधी को न्यायालय में मुकदमे से छूट जाने के लिये प्रार्थना करना तो न्याय में विघ्न डालना है। पर

क्योंकि "वह मेरा साला है इसलिए प्रार्थना करना आवश्यक है", ऐसा नहीं सोचना चाहिये। जब साधारण लौकिक सज्जन अनुचित व्यक्ति का अनुमोदन करना पसन्द नहीं करता तो फिर भगवान को कांटों में क्यों खींचना? फिर प्रार्थना करने पर भी ऐसी प्रार्थना निष्फल ही रहती है। पहले इस बात की सावधानी से जांच करने की आवश्यकता है कि हम उचित व्यक्ति के लिए प्रार्थना कर रहे हैं। तत्पश्चात् ही हमें प्रार्थना करनी चाहिये।

ऐसे अवसर आते हैं कि परिवार के संबंधी, मित्र आते हैं कि अमुक के लिये आप प्रार्थना करें। चाहे वह फिर अपराधी ही क्यों न हो और मना करने पर रुष्ट भी होंगे परन्तु उनकी रुष्टता का विचार न करके अस्वीकार कर देना चाहिये। जगत की रुष्टता से न डर कर भगवान की रुष्टता से डरो।

प्रार्थना से आत्मबल बढ़ता ही है, मनोबल भी बढ़ता है। जिसका जितना मनोबल अधिक होगा उसका उतना ही तीव्र संकल्प- तरंग आकाश में दूरगामी होगा।

मनोबल बढ़ाने के लिये सावधानी बरतनी चाहिए। प्रार्थनाकर्ता में परम शुचिता, परम सत्य तथा परम विश्वास का होना आवश्यक है। इन तीन व्रतों के साथ साथ "हाँ" को "न" में और "न" को "हाँ" में नहीं बदलना चाहिये। जैसे मान लो कि आपने किसी को 50 रुपये देने को कहा किन्तु बाद में विचार आया कि यह लौटा नहीं सकेगा तो मना कर दिया। ऐसा करने से आपके पचास रुपये तो बच जायेंगे किन्तु आपका मनोबल कम हो जायेगा। अतः वचन देने के पूर्व भली प्रकार विचार कर लेना चाहिये और बाद में उसको पालन करने की पूरी चेष्टा करनी चाहिये।

किसी मित्र से उसके यहां जाने का कोई समय नियत किया तो फिर उस समय पर जाना चाहिए। यदि किसी कारण वश जाना सम्भव न हो तो उस समय के पूर्व उसे सूचित कर देना चाहिये। इंग्लैंड के नागरिकों के जीवन में ये बातें उतर गई हैं। किन्तु

भारतीयों में यह बात आई नहीं। वचन पालन करने में पूरी तत्परता बरतनी चाहिए।

मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि भक्त का हृदय शुद्ध हो तो भगवत् कला अवतरित होती है। अलौकिक है वह भगवत् कला। हम तो कला का ही आना मानते हैं। दास भाव से वह भगवत् कला ग्रहण होती है। मुझे एक प्रोफेसर ने कहा, स्वामी जी ! बड़े आश्चर्य की बात है कि दो लड़के, दोनों एम०ए० या बी०ए० के विद्यार्थी। रास्ते से जा रहे थे। थोड़ी दूर गए तो एक सांप पीछे दौड़ता आया। साईकल फैंक दी और पेड़ पर चढ़ गए। वह सांप पेड़ के नीचे आकर बैठ गया। चेष्टा करे पेड़ पर चढ़ने की और फिर गिर कर बैठ जावे। उन्होंने पत्ते वत्ते भी फैंके। अन्त में याद आया कि प्रोफेसर साहब कह गए थे कि राम नाम जपा करो। चलो इस मंत्र का उपयोग करके देख लें। राम नाम जपा और फिर आंखें खोल कर देखा तो वह सांप वहां नहीं था। भावना होनी चाहिये, जैसे प्राणी को प्राण की, भूखे को भोजन की। यदि ऐसे भाव से (प्रार्थना) करें तो पूर्ण होना स्वाभाविक है। इसको भी शान्ति, इसका मित्र करे तो उसको भी। अफ्रीका, यूरोप में स्थापित मन्दिर हैं जहां केवल प्रार्थना होती है। गरीब देशों में भी ऐसे प्रार्थना मन्दिर हैं। इस बात का विचार रखकर कि मैं संकट निवारण के लिए प्रार्थना कर रहा हूँ, प्रार्थना करें। श्रीमती का चाहना कि सास मर जावे तो पति मुझ से प्रीति करने लगे, यह सर्वथा अनुचित है। राम को ऐसे काम में न बुलावें। इस प्रकार का संकट तो संकट नहीं कहलाता है।

विपत्तियां आ जाती हैं। संकट में घिर जाते हैं। यदि राम का सहारा करें तो डगमगाती किश्ती में भी पार उतर जाते हैं। तो मुझे कहना यह है कि ऐसे (संकट) काल में भावना से राम नाम का जाप करे तो यह संकट राम नाम से दूर हो जाता है। कई लोग अभाव के लिए भी प्रार्थना करते हैं। जैसे एक साड़ी है मेरे पास — पांच साड़ी होनी चाहिये — यह संकट नहीं है।

निष्काम प्रार्थना-(i)

मेरा अपना विचार एक वैज्ञानिक आध्यात्मिक विचार है। आचार्य भी इसी कोटि में आते हैं। इसके अतिरिक्त तो निरा तर्क वाद है।

उपासना में प्रार्थना बड़ी चीज़ है। रामनाम जपना भी एक प्रार्थना है। माया में रात दिन रहकर हम आत्मा को प्रकृति रूप बना लेते हैं। भगवान का आह्वान करने पर आत्मा जागरित होती है। प्रार्थना करने का यह अर्थ नहीं कि आप अपने परिवार की गाड़ी न चलावें। इसमें तो सेवक भावना है। इसमें आडम्बर नहीं है।

भक्ति मार्ग में सबने "दासोऽहं कहा है" महात्मा गांधी ने आत्मशक्ति से ही ब्रिटिश सरकार पर अधिकार जमाया था। वेदान्ती अछूतों से नहीं मिलते तो वह व्यवहार में क्या रहा? वे बात केवल जीभ से उगलते हैं। उनका आत्मवाद समझ में नहीं आता। भक्ति का मार्ग उत्कृष्ट मार्ग है। हमारे यहां प्रत्यक्ष प्रमाण मस्ती आदि के मिलते हैं। और जगह 15 मिनट के लिए भी मस्त नहीं होते, जब कि हमारे यहां घन्टों मस्ती रहती है। प्रार्थना बहुत ऊँची चीज़ है।भगवान की इच्छानुसार ही रूप आता है। अपनी इच्छानुसार नहीं। फिर वह रूप ज्योतिस्वरूप हो अथवा अन्य।

किसी एक आकार को ही भगवान नहीं समझना चाहिए। जितने अवतार हुए सब गृहस्थ थे। हम गृहस्थ ही आह्वान करते हैं। किसी न किसी रूप में भगवत्-कृपा अवतरित होती है। अखण्ड जप करने का उद्देश्य यह है—

> वृद्धि आस्तिक भाव की, शुभ मंगल संचार।
> अभ्युदय सद् धर्म का, राम नाम विस्तार।।

हम अधिष्ठान रख कर निष्काम भाव से जाप करते हैं। इस पद को पढ़कर अखण्ड जाप प्रारम्भ करना चाहिए। विश्व-भावी होकर जप किया जाता है। राम नाम जपते समय आप में क्रोध,

अभिमान, ईर्ष्या, विरोधादि न होने चाहिएं। आप न्याय शील हों और सत्य का पालन करते हों। ऐसी वृत्ति हो तो आप रोगी के लिए और अन्य लौकिक कार्यों के लिए प्रार्थना करें तो वह सफल होती है। ऐसे पांच सात आदमी भी मिल कर समय निश्चित करें और प्रार्थना करें तो बहुत सुधार हो जाता है। प्रेमनाथ सेठी जी किसी के लिए प्रार्थना करें तो वह पूरी हो जाती है। अनुचित होने पर उन्हें आवाज आ जाती है कि यह नहीं कोई और बात करो। साधक का हृदय निर्मल, पवित्र होना चाहिए। मानस रोगी- प्रार्थना नहीं कर सकता। निष्काम प्रार्थना करने वाले को सन्त संगति में होना चाहिए।

एक वर्ष के अन्दर मैं ऐसे साधक चाहता हूँ। मेरा कार्य लौकिक नहीं है। मैं छोटे-छोटे लैकिक कार्यों के लिंए प्रार्थना नहीं करता। मैं देश विदेश के लिए, भारत के लिए, जनता के लिए, प्रधान लोगों के लिए, उनकी यात्रा पर प्रार्थना करता हूँ कि वे कुशलता से लौट आवें। इसके लिए कुछ नियम हैं जो लिखित रूप में आ जावेंगे। क़ुछ साधक साधिकाएँ उद्यत होने चाहियेँ।

(व्रत लेकर सदस्य बनने के पश्चात् मार्गदर्शन करने प्रार्थना करने पर महाराज जी ने कहा) प्रार्थना का व्रत लो, फिर परहित के लिए तुम प्रार्थना कर सकते हो। मण्डल बनाने की आवश्यकता है। यदि किसी को परीक्षा पास कराने के लिए प्रार्थना करनी हो तो उसको भी सूचित कर दो कि खूब पढ़े तथा प्रार्थना करो तो उसका अवश्य फल निकलेगा।

निष्काम प्रार्थना-(ii)

कल के कथन में प्रार्थना का आप के आगे वर्णन किया। इसके लिए तो अपने जीवन को संयम का जीवन बनाना होता है। हम सब बोलते हैं तो तरंग पैदा होते हैं। किसी भी रेडियो से ये प्रगट होते हैं। एक विशेष कथन से जो 5000 मील से भी हो – तरंग प्रकट रेडियो पर। इसलिए जब तक अपने हृदय को स्थान (प्रसारण केन्द्र) न बनाया जावे तब तक इस से लाभ कठिन है।

(जब तक शुभ संकल्पों को प्रसारित करने के लिए हृदय रूपी प्रसारण केन्द्र प्रबल न हो तो तब तक इससे लाभ कठिन) वे शुभ कामनाएं दूर तक प्रभावी नहीं होती।

हमने विश्व शांति के लिए यज्ञ देखे। वहाँ पर बहुत लोग एकत्रित होते। इतना रुपया, घी आदि लगता। पर यंत्र तो बना नहीं वह। (उस का कुछ प्रभाव नहीं) किसी समय स्थान बनाते थे। इनमें तो ढोंग, व्यापार चलता है। इस प्रकार का अपने अन्त:करण को यंत्र बनाएं। कोई अपने को कम नहीं समझता। पर जो स्वयं को यन्त्र बनाना चाहता है (शुभ संकल्प प्रसारण का) उसको अपने जीवन को बनाने योग्य स्थान बनाना चाहिए।

सकाम प्रार्थना-(i)

दूसरी सकाम प्रार्थना। बहुत प्रकार के यज्ञ होते हैं।यथा अग्नि में यज्ञ, ज्ञान यज्ञ। सभी सुकृत कर्म जो हैं,वे सब यज्ञ हैं। जप यज्ञ बड़ा है। यह मनु ने कहा था कि जप यज्ञ विधि यज्ञ से दस गुणा अच्छा है। मुख के अन्दर जप करना सौ गुणा अच्छा और जो चिन्तन करता है वह हजार गुणा अच्छा है। गीता में भगवान श्री कृष्ण ने कहा है कि मैं यज्ञों में जप यज्ञ हूँ। मुझे कहना यह है कि जप यज्ञ जो है वह साक्षात् परम-पुरुष का आह्वान है। उसकी विधि भी है। भगवती का पाठ, चण्डी पाठ करना है, किस कामना से, वह कोई बात कह देता है। धन के लिए कहा तो महालक्ष्मी, सात श्लोक हैं। इसको सम्पुट देकर पाठ करना। यज्ञ समाप्त तो इस कामना का सम्पुट देकर करना। आयुर्वेद की भाषा है सम्पुट। सारा चण्डी पाठ इस एक श्लोक से सम्पुट करते। वैसे पाठ करे तो निवारण मंत्र आदि में पढ़ा और अन्त में तो सारा ही सम्पुट।

यदि याजक में विचार आवे कि मुकदमे के जीतने के लिए प्रार्थना करे तो दूसरा कौन सा भगवती का शत्रु है। भगवती इसको कैसे खड़ा करे जो पहले ही गिरा हुआ है। (मुकदमे में प्रतिद्वन्द्वी को हराने के विचार से पाठ आदि करना अनुचित है)।

यदि कोई परिचित तो मुकदमा दूसरे के पास चला जावे, ऐसा भी प्रामाणिक जज करते। कितनी निकृष्ट भावना याजक और यजमान की यह है कि वह इसके लिए (दूसरे की हानि के लिए)पाठ करे। मुझे एक मेरठ का ग्रेजुएट कहने लगा कि मैंने पण्डित से कहा कि मुझे ऐसी पत्नी चाहिए। शिव मन्दिर में वह लाख का जाप करने के लिए बैठता। तो इसको यह पता नहीं कि इसमें संसार सागर तारने वाली शक्ति। कई दिनों के बाद शिव जी की पिण्डी के पास सांप आया। वह (सांप) उस पर लपका। अन्त क्या हुआ। धक्के लगे। लड़की वालों ने अपमान किया। वह रोया मेरे सामने। इतना ही धन्य हुआ। तो कितनी मति की हीनता है। सकाम यज्ञों में भी सोचना होता है कि वह कामना भद्र भी है या नहीं। यदि यह न सोचा जावे तो देवता को क्या पड़ी है कि आपके लिए दौड़ पड़े। झूठे काम के लिए यदि हम भी किसी से कहें तो कई नहीं चलेंगे।

मुझे कहना यह था कि सकाम प्रार्थना भी भद्र कार्य के लिए ही होनी चाहिए। कोई अभद्र कामना के लिए प्रार्थना करना अनुचित है। यदि कोई पत्नी अपने पति के चारपाई के पावे के पास बैठकर करती है तो इसमें कोई दोष नहीं। ऐसे ही माता बच्चे के लिये, बहिन बहिन के लिये। बन्धुओं के लिये कामना करने में कोई दोष नहीं। इस में जाप होवे, पीछे नमस्कार। पहले कामना मन में धारण करके, फिर नमस्कार करके, जप प्रारम्भ कर दें। सब प्रकार के मन्त्र प्रचलित हैं।राम नाम का भी जप चलता है। मुझे एक पण्डित ने कहा उसको टाइफाइड या इसी प्रकार का बुखार था। वह हस्पताल पहुंचा दिया गया। वह श्रमशील था। और मंत्र तो जपने का साहस हुआ नहीं। राम नाम जपा। फिर बुखार कम हो गया। किन्तु उसकी तीव्र भावना थी। आंसू बहाए (अर्थात् तीव्र अश्रुपूर्ण भावना सहित उसने राम नाम का जप किया)। रोग दवाई से या भावना से जाता है। पर जो (प्रार्थना की विधि जनता में) प्रचलित है इसमें ठेकेदारी बहुत है। आप करें तो कल्याण होगा, अन्यथा आप और बीबी जो क्लब और हास विलास में

लीन अनाप शनाप करते जायें और पण्डित बैठा हो (प्रार्थना स्वयं करनी चाहिए भावनापूर्ण होकर)। यजमान व्रत बंधन में स्वयं इतने दिन ओज, चरित्र, से रहे। यह परिस्थिति बनाई जावे।

अब मेरी कामना यह है कि मैं बहनों और भाईयों से कहूँ कि वे प्रार्थना भी किया करें। भावों को अच्छा बनाएं और समझें कि बिजली की बैट्री में धारा बांधी गई है। देव तो भावना में विराजमान है। मंत्र जो है वह देवता है। भावना जब होवे तब बात है। जप आप करना चाहिए। यहां यह प्रथा चल पड़ी कि दूसरा करे। काम करने वाले करते रहें और आप विलायत में, यह तो व्यापार की प्रथा। यहां तो सीधा कहा जाता है कि राम राम जपा कर। यजमान स्वयं बैठें या दूसरा बैठे, इसका भी उपयोग। यह सम्भावित है कि इससे भी अच्छे तरंग। पर अपने इष्टदेव को तो आप ही जपना चाहिए। तो जपना - फिर फल निकलना। संतों ने सभी बखेड़े हटा दिये, बस राम नाम जपो। कई लड़के कहते हैं कि पर्चे कठिन। सत्यानन्द ने कहा कि राम राम जपा करें। जो कुछ आ गया लिख देंगे। मैं तो कुछ जानता नहीं, सन्तों ने कही हैं यह सब बातें। संत लोग भगवान को बुलाते रहे हैं।

किसी की आजीविका के लिए भी ऐसी प्रार्थना की जा सकती है। किन्तु किसी की हानि के लिए प्रार्थना नहीं करनी चाहिए। जिनका जीवन प्रार्थनामय हो जाता है उनका पथ प्रदर्शन स्वयं ईश्वर करने लगता है, ऐसा ईश्वरी आदेश भी होता है कि इस विधि से चार दिन तक प्रार्थना करो अथवा इसके लिए प्रार्थना न करो, सप्ताह तक प्रार्थना करो या कोई और प्रार्थना करो।

प्रार्थना करते समय परमात्मदेव की उपस्थिति की प्रतीति भी होती है, शब्द भी सुनाई देता है। कहने का तात्पर्य यह है कि इस मार्ग में साधन आरूढ़ होने पर अनेक अद्‌भुत अनुभव होते हैं। करने से पता चलेगा। भक्ति भाव से तत्पर होकर साधन में लग जाओ। खूब साधना करो। प्रार्थना संगठन स्थापित करो। सेवा कार्य करने में जुट जाओ। रामकृपा तुम्हारी सहायता करेगी।

तुम्हारे में वचन बल बढ़ेगा। जीवन में सत्यता लाओ, झूठ से घृणा करो, इन्द्रिय संयम करो।

मैं यह पसन्द नहीं करता कि कोई डींग मारता फिरे कि मुझे यह सेवा कार्य सौंपा गया है। अपितु चुपके चुपके यह सेवा कार्य करे। मान की भूख न हो।

आज के समय में आवश्यकता है कि स्थान स्थान ऐसे केन्द्र स्थापित किये जावें जहां ऐसी प्रार्थना द्वारा समाज में सुख शांति का प्रसार किया जाय। धार्मिक ज्योति जगाई जाय। आस्तिक भाव का विस्तार किया जाय।

सकाम प्रार्थना (ii)

अपने अन्तःकरण को यन्त्र बनाया जाय। अपने लिए, बन्धुओं के लिए, जो जप करें वह सकाम कहलायेगा। जप यज्ञ सबसे ऊँचा है। हवन से दस गुणा अच्छा है। उपांशु जप सौ गुणा अधिक फलदायक है। मानसिक जप हजार गुणा श्रेष्ठ है। जप यज्ञ से साक्षात् भगवान को आह्वान किया जाता है। सम्पुट की रीति निर्मूल नहीं है। स्वार्थ के लिए, झूठी बातों को सही करने के लिए, जप यज्ञ करना निकृष्ट काम है।

भद्रकामना ही पूर्ण होती है। झूठे कार्य नहीं। अन्यायी दुर्भावनाएं सफल नहीं होतीं। इसमें मन्त्र का दोष न होकर उनके मलिन मन का दोष है।

किसी के स्वास्थ्य लाभ के लिए, उसके मां, पत्नी, भाई, बहन प्रार्थना करें, तो लाभ होता है। इसमें मन्त्र का जप हो। प्रथम कामना प्रकट करके नमस्कार पूर्वक जाप प्रारम्भ करें। सम्पुट दें अथवा न दें।

शुद्धि का भी एक आडम्बर ही है। जहां राम नाम है वहां शुद्धि ही शुद्धि है। भावना तीव्र होनी चाहिए। रोग दवा से या दुआ से जाता है। यह प्रथा चलनी चाहिए। जो प्रथायें चली हैं, उनमें ठेकेदारी बहुत है। जप तो स्वयं करना चाहिये। पण्डित से अनुष्ठान कराते और आप मौज उड़ाते रहें, यह रीति ठीक नहीं। पण्डित

लोग तो अपना स्वार्थ पूरा करते हैं । पण्डित जी अनुष्ठान करते हैं, उसका अर्थ है कि यजमान उतने दिन पवित्रता, संयम से रहे। देव तो भावना में ही रहता है। मंत्र देवता का शरीर है। अपने इष्ठ देव का आह्वान आप स्वयं ही करें तो कितना सुन्दर हो। उसका फल मिलना ही चाहिये। भक्त का हृदय बहुत शुद्ध हो तो भगवान की दया उसकी सहायता के लिए अवश्य ही आनी चाहिए। भगवत्-दया एक अलौकिक चीज़ है। जैसे भूखे को अन्न की, प्यासे को पानी की भावना होती है, ऐसी ही तीव्र भावना में प्रार्थना कहनी चाहिए।

भले कामों में मन्त्र जपना चाहिए। सास का चित्त शुद्ध हो जाय इसके लिए बहू जप करे तो ठीक है, किन्तु उसको मारने के लिए नहीं। संकट निवारण के लिए जप किया जा सकता है। विपत्ति में यदि फँस गया हो और कोई साथ न दे तो फिर राम का सहारा लेना चाहिए। अभाव के लिए भी जप किया जा सकता है किन्तु अभाव सच्चा होना चाहिये।

प्रार्थना और उस का प्रभाव

एक दिन एक साधक श्री महाराज जी से बोला, "१५ वर्ष हो गये आप से नाम दान लिये, जीवन में अभी तक रंग नहीं चढ़ा है और न ही मस्ती आई है।" श्री महाराज जी बोले," तुम ने प्रीत की रीत नहीं निभाई। मैं ने तो तुम्हें बहुत बुलाया, तुम ही नहीं आये। अब भी कुछ नहीं बिगड़ा। मेरी अन्तिम और लघु पुस्तिका, 'प्रार्थना और उसका प्रभाव' को पढ़ो। इस पर मनन, चिन्तन करो और प्रार्थनाशील व्यक्ति बनने का प्रयत्न करो। अवश्य तुम्हारा कल्याण होगा।"

सेवा

मानव जन्म सफल—दो प्रकार से

मानव जन्म सफल दो प्रकार से होता है। एक तो इस संस
व्यक्ति जहां कोई काम करता है वहां भला हो। अच्छे वि
वाला और कर्म धर्म में पक्का हो। यह एक प्रकार। पशुओं
बातें नहीं। बुद्धि का विकास केवल मनुष्य में। यह मनुष्
बहुत ही अच्छा बनाता है।

वही जन्मा है जिस के जन्म लेने पर किसी जाति
मनुष्य की उन्नति हुई। खेती वही अच्छी है जो कि फल
जिसको फल लग गया। जन्म वही अच्छा कि जिस में सेवा
फल लगा। नहीं तो यह जन्म मरण का चक्कर तो चलता र
है। यह अनिवार्य बात।

कौन है मनुष्य जो अपने लिए नहीं जीता। पक्षी बहुत अ
अपने घोंसले बनाते हैं। खरगोश की बिल ऐसी अच्छी
दूसरा जानवर पहुंच नहीं पाता। यह तो सब में पाया जाता
यदि मनुष्य भी ऐसा ही हुआ कि अपने ही काम लगा रह
पशुओं से कोई अच्छा जन्म नहीं हुआ।

जन्मा वह जो दूसरों के लिये

वही आदमी जीता है जो भलाई के लिए, दूसरे के हित के
जीता है। मनुष्य जन्म धारण करने से कोई बड़ा लाभ नहीं।
जीना तो वही अच्छा है जो दूसरों के हित में काम आवे। इस ल
का जीवन भी वही अच्छा जो भलाई का है। नेकी का है।

एक बार किसी गांव से बहुत सी स्त्रियां मिलकर किसी त
स्थान को गईं। एक ने कहा कि तीर्थ स्थान पर आकर कुछ सु
करो। कई स्त्रियां यहां आकर रहती हैं। उन की सेवा करना
कुछ ने कहा कि हम तो स्नान को ऊँचा (मानती हैं)। इस ने क
कि स्नान तो मेंढक भी, मछली भी, करते हैं। वह भी करो, यह
करो। तो इन्होंने एक मण्डली बनाई और स्वयं सेवक संघ

सहायता दी। भूली, भटकी स्त्रियों को यहां लाएंगे, इन की सेवा करेंगें। मेले के पश्चात् पहुंचा देंगे (उन को उनके घरों में)। एक वुढ़िया जिसे वे घाट से उठाकर लाए थे, बड़े दुःख, बड़े क्लेश में थी। वे सेवा करें तो नाम का नाम होवे। बुढ़िया कहने लगी, पीड़ा जो है, वह अब कैसे जावे। दवाई आपसे मिल रही है। वह यत्न तो आप कर रहे हैं। मेरा बाहर का कोठा तो क्षीण हो गया। पर मैं अन्दर को शक्ति वाला बना रही। इस कारण ही धक्कम धक्का में गिर गई। वे स्त्रियाँ उसे माई माई कहें और सेवा करें। कुछ दिनों के अन्दर वह स्वस्थ होकर भजन गाने लग गई। डाक्टर कहने लगा यह तो मैं समझता था कि मर जावेगी। बोली, तुम्हारी दवाई से बाहर के रोग और मेरी दवाई से अन्दर के रोग ठीक हुए। मुझे इसका भरोसा है। अन्त में यह दीवा तो (देहरूप दिया) किसी न किसी दिन बुझ जावेगा। इस झोंके से नहीं तो आधीं में। पर अन्दर के दीवे को जगाओ। डाक्टर ने उन स्वयं सेविकाओं के बारे में मेले के बड़े अफसर को बताया। और सब लोगों ने माना कि वास्तविक तीर्थ स्नान तो सेवा में है।

अपने लिए जीना, केवल अपने तन को पोषण करना, इस में कोई महत्त्व नहीं। जो गेहूं के ऊपर फल लगता है इसमें भी कीट। शाक पत्तों में भी कीट। तो यह समझना कि हम यह चीज़ें खाते हैं इसलिए इसमे कोई वड़प्पन नहीं। किसी पुरुष को किसी ने यह पूछा कि तुम्हें लोग बड़ा अच्छा कहते हैं। धन कोई है नहीं, न बिस्तर देने को। साधारण कपड़ों में गर्मी सर्दी काटते हो पर लोग अच्छा कहते। मुझे कहना है कि मैं जैसा हूँ तुम्हारे सामने खड़ा हूँ। मैं मित्रों को नगर में मिलता हूँ। मेरी आजीविका चल जाती। ज्यादा की मुझे इच्छा नहीं। फिर जो समय मिलता है इसको मैं फिर फिराकर यह देखता हूँ कि कौन आदमी है जो हरि साधना का अधिकारी है। जो धन भगवान ने मुझे दिया तो मैं अन्यत्र वह देता फिरता हूँ। सेवा भाव से देता हूँ। जिस प्रकार अपने बन्धुओं के लिए लोगों में प्रीति होती है, इसी प्रकार सब के प्रति मेरी प्रीति है। तुम्हारे नगर में कितने आदमी हैं जिनको पूरा अन्न नहीं मिलता।

मांगने वाले तो बहुत हैं पर अच्छे रहने वाले जिन के पास पूरा अन्न नहीं है और वे मांगते हैं नहीं, इनको ढूंढ निकालता हूं। चुपचाप उनको ढूंढकर स्त्रियों की सभा को बता देता हूं। इनका किसी वृत्तपत्र में समाचार नहीं।वे आए वर्ष हजारों रुपया ऐसे काम पर खर्च करती हैं। तो ऐसे काम ही करता हूँ। मैं किसी सभा में नहीं जाता। न मेरे कानों में रुचि है कि मेरी प्रशंसा करें। तो इसने कहा तुम बड़े ज्ञानी भी माने जाते हो। शास्त्रों को भी जानते हो। मैंने कहा, वह तो मैं अपने लिये करता हूं। तुमने किस से पूछा था। एक तुम्हारे मिलने वाले ने बताया, इसने कहा। तो मैंने कहा कि मैं तो मन भर में तोला भर हूँ। तो कहना यह कि परमार्थ का जीवन बड़ा अच्छा होता है। इस से बड़ा लाभ है। परमार्थ का जीवन नहीं तो अनर्थ, व्यर्थ कर्म होते हैं। बाग में से निकले तो छड़ी मारी और फूल गिरा दिया। एक फूल यदि टोपी पर रख भी लिया तो कौन सी बात। चलते चलते बैल को लाठी मार दी। अपने आप को कोई लाभ नहीं और फिर अनर्थ, अन्याय में ही रहना चाहें। छोड़ने योग्य तो वे कर्म हैं। (जो अनर्थ और व्यर्थ हैं)। किसी की गाड़ी पर बालक पत्थर फैंकते, तो यह अबोध। ऐसे कर्म बहुत मनुष्य से हों तो बड़ा समय व्यर्थ बातों में जाता है। घर के काम काज करने वाली, वे बचे समय को यूँ ही दूसरों की बातों में, निन्दा में नष्ट करती हैं। वे ऐसे ही भले समझ जावें पर बड़े व्यर्थ हैं ऐसे काम। यह सब देशों में हैं। जो सिधरे देश हैं वहाँ भी दो दो घण्टे यह जो क्रीड़ा है व्यर्थ। यह मनुष्य के जीवन को अच्छा नहीं बनाती, खराबी लाती है। एक जुए का शौकीन दिवाली की रात को खेलना चाहे (जुआ)।स्त्री के आभूषण लेने के लिए घर वालों को धमकी देता है कि नहर में डूब जाऊंगा, यदि आभूषण आदि बेचने के लिए नहीं दे दिए तो। पर डूबा न करे। ऐसे ही एक बालक मां को डराये कि नहीं मानोगी तो मैं छत से कूद पड़ूँगा। एक दिन इसका मामा आ गया। मामा ने कहा कि चल मैं तुझे छत से गिरा दूंगा। तू गिरने की धमकी ही देता है, गिरता तो है नहीं। तो कहने लगा, ना जी, ना जी

मैं मर जाउँगा। व्यर्थ, अनर्थ कर्म बहुत करते हैं। मिथ्या दोष लगाना (औरों पर)। असैम्बली में भी कोई बात न सूझे तो दूसरों पर दोष लगाने लग जाना। हिसार रोहतक के जिले में हर एक जो निर्वाचित हो गया इसके विरुद्ध याचना करता है। इलैक्शन पटीशन—इसमें भी हारता है। एक झूठ पर और झूठ। दूसरों की भी झूठी गवाही दिलवाता।

तो वे अनर्थ कर्म-इन से झूठ माया बहुत बढ़ती। ऐसे जितने कर्म हैं, दूसरों को हानि (पहुँचाने के) दुराचार को बढ़ाने के। अनर्थ कर्म और व्यर्थ कर्म छोड़ने के हैं। पतन इन कर्मों के करने से होता है।

परमार्थ के कर्मों से यह लोक भी अच्छा होवे और परलोक भी अच्छा।

देवियो और सज्जनो! मेरे कानों में राम गीत सुनते इतना जी भर गया है कि अपने लिए प्रशंसा वाक्य सुनने की बात ही नहीं रही। सब बहन भाई जानते हैं कि मेरा जो कर्तव्य मैंने पालन किया। किन्तु जहां राम गीत गाये जाएं वहां सत्यानन्द के लिए क्या? मैं अपने आप को इस योग्य नहीं समझता। मैंने मान लिया, साधक साधिकाओं में विशिष्ट हूँ फिर भी प्रशंसा ठीक नहीं। राम की धुनें सुनाते हो। सवेरे के सत्संग में आसावरी धुन इसका रस सत्संग में पैदा करना चाहिये। वृत्ति में जो बात उत्पन्न हुई थी इसकी। किसी का जन्म दिन कोई विशेष बात नहीं। कीट भी आते जाते हैं जबकि इसका विशेष काम नहीं। जिनके द्वारा देश सेवा, इनका मनाना तो बात अर्थ रखती है। पांव कब लड़खडा जावें, इसलिए। मैंने बहुत युग देखे हैं। यह बात संकुचित ही होनी चाहिये। तो मैं धन्यवाद के साथ यह कहना चाहता हूँ कि वह उत्पन्न हुआ जिसके उत्पन्न होने से जाति, देश, उन्नत हो। आप साधना आरम्भ करने से पहले चरित्र, पारिवारिक जीवन में, कर्तव्य पालन में। यह भावनाएं सत्संगों में यह वृत्ति पैदा करना। वैसे कौवा भी सौ वर्ष तक जीता है। नैपोलियन जिस द्वीप में बन्द था (सैन्ट हलीना में) इसमें कछवा अब भी 400 वर्ष का।

जीने का बडप्पन इसमें है कि उससे लोगों में उन्नति हो।

अन्न खाकर पड़े रहने में क्या बड़ाई। बड़ा उपयोगी राम जीवन और बहनों में मिलकर तो मुझे हर्ष रस रूप ही भगवान है। रस आता है, आंखें कहती हैं, राम रस की लाली बरसती। भर भर के कटोरे पी रहे हैं। तो मैं तो कोई समर्थ नहीं। सब की आखों से राम रस रूपी अश्रु बह रहे हैं।

जितना सेवक उतना ही ऊँचा

लोग तो यही समझते हैं कि जो ब्रह्म को मानता है, वह गृहस्थी कैसे हो सकता है। जितने आप के अवतार हुए, वे सब गृहस्थी थे। और शस्त्रधारी थे। तो यह जो बात मैं कह रहा हूँ समझ कर ही कह रहा हूँ। हमारे साथियों में बीस हों तो पांच तो जानने वाले होने ही चाहिएँ और यह है कि आदमी अपने को बहुत बढ़ाता है। मैंने तो कहा दास (भगवान के)। दास होने का भाव रखना चाहिए। अपने को बहुत बड़ा नहीं समझना चाहिए। श्री राम चन्द्र जी के पास ऋषियों ने आकर कहा कि, "आप हमारे नाथ हैं। राजा हैं। हमारा हनन होता जाता है। राक्षस क्रोध करके हमारे कामों में बाधा डालते हैं। हमारी रक्षा करो। अर्थ के प्रयोजन से हम ने यह निवेदन किया है।" शरभंग आश्रम में यह बात हुई। हम याचना करते हैं। ऐसे ऋषियों ने श्री राम चन्द्र जी को सम्बोधन किया। इसके उत्तर में महाराज रामचन्द्र जी ने कहा कि आप मुझे कहते हैं कि आप नाथ हैं। मैं तो कहता हूँ कि आप मुझे आदेश करो। पिता की आज्ञा पालन करने मैं बनों में आया हूँ। मैं मुनियों की सेवा भी करता हूँ।

द्रुपद ने कहा हम सभा लगाना चाहते हैं। पाँडवों के अधिकार छीने गए हैं। तो महाराज कृष्ण जी ने बड़ा सुन्दर उत्तर दिया। कहा कि मैं तो विवाह पर आया। आप गुरु के समान हो तो आप सभा करें। जब सब को बुला लो तो मुझे भी सूचना देना। जिनकी आप पूजा करते हैं वे भी दूसरों को कहते हैं कि हम तो दास हैं।

अच्छी बात कहने में झिझक क्यों

आप नाम का आराधन करते हैं—तो आराधन होता है, इसमें पक्कापन होना चाहिए। सुदृढ़ निश्चय हो जाना चाहिए। संशय आत्मा को दुर्बल बनाता है। देखो रस्सी को और समझो सांप, तो मनुष्य सारा कांप जाता है, इसलिए संशय को नहीं आने देना। जितना ज्यादा सुदृढ़ निश्चय, विश्वास जिसका होगा फिर उसको उतना ही लाभ होगा। आराधन करने वाले का परलोक अच्छा होता है।

पार्थ नैवेह नामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते ।
नहि कल्याण कृत्कश्चिद् दुर्गतिं तात गच्छति ।।

अर्थ यह है-''कि हे प्यारे। जो आराधन करने वाला है वह दुर्गति को कभी प्राप्त नहीं होता। केवल परलोक में क्या, इस लोक में भी उसकी अवस्था बड़ी अच्छी हो जाती है।" यह विश्वास का पौधा कभी भी कुम्हलाए नहीं-यह हुई एक बात।

अब कहना यह है कि इसमें झिझक नहीं होनी चाहिए कि हम किसी को राम राम जपने को क्या कहें। हुक्का पीने वाला हुक्का को, शराबी शराब को, जुआरी जुए के लिए कहता झिझक नहीं करता। बुराई के प्रचार से नहीं झिझकता तो कोई भलाई करने से क्यों झिझके! न मानेगा, न कर देगा (इससे अधिक तो और कुछ नहीं करेगा)। बोलचाल वाले परिवार में, साथियों में प्रचार करें। मैंने पिछली शताब्दी में एक पुस्तक पढ़ी। इसमें चीनियों की प्रशंसा की गई है कि वे पढ़ने के बड़े शौकीन हैं। तो गरीब लड़का जुगनू इकट्ठे कर लेता और उनके प्रकाश में वह अक्षर देख लेता। रात को तेल दिया जो न हुआ। तो जुगनू की चमक भी एक बार रोशनी दिखा देती है। रास्ता दिखा देती है। पग दिखाई दे जाता है। तो बुद्धिमान में बड़ी शक्ति। बुद्धिमान जो आदमी हैं उनका बड़ा प्रभाव होता है। इर्द-गिर्द, अपने परिवार में अपने इष्ट का प्रचार करना चाहिए।

साधना

साधन शीलता

परम गुरु श्रीराम

परम गुरु राम ही हैं क्योंकि वे देश काल से भी परे हैं। मानवी गुरु अथवा अवतार तो देश काल में ही रहते हैं किन्तु वह सर्वत्र व्याप्त है। उनकी परम सत्ता में परम विश्वास पूर्वक सेवा और करुणा भाव जागना चाहिए।

साधना से पूर्व भगवान को स्थापित करो

देवाधि देव भगवान को स्थापित करके जो साधन किया जाय उसमें कोई विघ्न बाधा नहीं आते। कर्म साम्य, गुरु साम्य हो तो भगवान साम्य हो जाता है। ध्यान में बैठने से पूर्व भगवान को नमस्कार करना चाहिये। नामयोग में यह विशेषता है कि इसमें भगवान स्वयं साक्षी रूप से होते हैं और विघ्न विनष्ट करते हैं। यह भावना होनी चाहिये। इससे सहारा मिलेगा।

नाम-भगवान का प्रतीक

नाम भगवान का प्रतीक है अर्थात् एक चिन्ह है। यह मूर्ति भी हो सकती है, मनुष्य भी हो सकता है किन्तु नाम का प्रतीक सबसे अच्छा है क्योंकि नामी नाम में होता है। वाच्य-वाचक एक होते हैं। साधक को समझना चाहिये कि वह वाचक में वाच्य का आराधन कर रहा है। नाम में नामी का आराधन कर रहा है। रूप का प्रतीक भी अच्छा है उसका निरादर नहीं है पर नाम का प्रतीक उत्तम है। सन्तों और महर्षियों ने नाम की शक्ति को समझा है। और उसको प्रकट किया है, ठीक उसी प्रकार जैसे वैज्ञानिकों ने परमाणु की शक्ति को समझा है। दूसरों को तो वह केवल नाम और एक तुच्छ परमाणु ही लगते हैं। केवल साधारण ढंग से नाम जपने वाले भी बहुत ऊंचे हो जाते हैं पर जो विधिपूर्वक नाम लें, उनकी तो बात ही और है।

जिसको नाम में नामी होने में भ्रम हो, जो नाम का विरोधी हो उसका संग कुसंग है। चाहे वह अपने अंश का हो या दूसरे वंश क

हो। यह भावना होनी चाहिये कि जो मेरे मन के मन्दिर की मूर्ति का अनादर करता है वह म्लेच्छ ही है। अध्यात्म मार्ग में श्रद्धा बड़ी चीज़ है।

राम नाम केवल श्रद्धा द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। अतः साधक के लिए श्रद्धावान अथवा तीव्र चाह वाला होना आवश्यक है। यह चाह बहुत प्रबल होनी चाहिये। रेडियो में भिन्न स्टेशनों के अपने-अपने बिन्दु होते हैं तथा किसी एक स्टेशन को सुनने के लिये उसका बिन्दु नियत होता है। सफलता प्रबलतम की होती है।

कुसंग श्रद्धा के मार्ग में एक मात्र बाधक है। मोटे शब्दों में कुसंग का अर्थ है बुरी संगति। दृढ़ इच्छा द्वारा इससे बचा जा सकता है। दुर्बल इच्छा का कोई महत्त्व नहीं। ऐसे भी व्यक्ति होते हैं। जो यद्यपि आपके मित्र होते हैं किन्तु वे आपके विचारों को भी अपने जैसा बनाने का यत्न करते हैं। राज्य सरकारें भी ऐसा करती हैं। राजनीति में भी कुसंग से सावधान रहने को कहा जाता है। पिछले महायुद्ध में एक अमेरिकन मंत्री को—उसके जर्मन जाति के साथ बहुत दूर के संबंध होने के कारण पदच्युत कर दिया गया।

नाम भावना उद्दीप्त करो

जिसमें भावना उद्दीप्त की, इसमें भगवान। नाम भावना उद्दीप्त करनी चाहिये। साधक को यह विचार करना चाहिये कि नाम में भगवान की कला प्रगट होती है और हम नाम की आराधना करते हैं तो राम की। फिर वह (राम) हमारे पास है। तो नाम जो स्थापित हुआ है वह राम ही हुआ। सालिगराम का क्या आकार है। भावना ही तो है कि सालिग्राम की पूजा, कृष्ण की पूजा। सो मूर्ति नित्य बनाते और प्रवाहित कर देते। जहां हमारी भावना, नाम और नामी एक होते हैं, यह तो महापुरुषों ने कहा ही है। किसी के अंग को हाथ लगा कर पूछें तू कौन है तो वह अपना नाम बताएगा। नाम जैसे सारे शरीर में, इसी प्रकार वह सारे संसार में है। राम मूर्ति स्थापित है (अपने हृदय में नाम द्वारा)।

जप करने वाले समझें, हम पूजन कर रहे हैं। राम को जप में (विद्यमान मानना)। इसको पास समझना।

पण्डित नेहरु जी दूसरी बार अफ्रीका गए। टेलीविजन का इन्तजाम कर दिया (इनके भाषण के प्रसारण के लिए)। जहां बोलने को कहा, वहां हज़ारों, पर भिन्न भिन्न देशों में रेडियों भी और टेलिविजन। तो पचास लाख आदमियो ने इसको सुना और देखा (नेहरु को टेलिविजन पर बोलते हुए)। कोई 400 मील और कोई हजार मील। बोलता हुआ भी आदमी दिखाई देता है और हाथ हिलाता है तो वह भी दिखता और फिरता हुआ भी दिखता (टेलिविजन पर) तो रूप और शब्द दोनों ब्राडकास्ट। शब्द भी आकाश में हज़ारों मील दूर और स्वरूप भी। एक जगह बोलना हुआ, लाख जगह बोलता हुआ दिखाई देता है। रूप देखने में अन्तर दिखाई नहीं देता है। यह विज्ञान से इस समय इतनी बात सिद्ध है भगवान आप के पास ही हैं, वे दूर नहीं हैं। यह भावना यदि कभी कभी आजावे तो इसको बड़ा लाभ होवेगा। इसमें क्या, बैकुण्ठ बैठे (यह समझो कि भगवान आपके समीप हैं नाकि यह कि वे तो दूर बैकुण्ठ में बैठे हैं)। विघ्न, रुकावटें—ये जरा सूक्ष्म होंगी। इस प्रकार की आराधना से बड़ा लाभ। इच्छा होती है, तो ही मछली तैरती है। पंछी टहनी पर बैठा हो। पर जब उड़ना चाहे तो ऊंचा आकाश। वह दूर नहीं है (परमेश्वर)। जितना दूर समझते हो उतना ही गलत विचार। उस में झूठ, अहंकार आदि होते हैं। साधना करने वाले साधक को यह बात रखनी चाहिये कि हमारे पास है राम। वैसे भी पास है और आराधना में हों तो हम उस को आराधन करते (ही हैं)।

विज्ञान मूलक साधना

हमारा मार्ग पूर्ण वैज्ञानिक है। यह राम नाम की विधि वैज्ञानिक है। विज्ञान में सन्देह नहीं किया जाता है। विज्ञान प्रत्येक वस्तु क्रियात्मक की जाती है। इसी प्रकार साधना क्रियात्मक करने से ही ज्ञात होती है। वेदान्ती तो केवल [illegible]

खरोंच ही निकालते हैं। हमारे सत्संग में ऐसे भी लोग हैं जो अनुभव से जान गये हैं। मिथ्या गुरु, मिथ्या शिष्य है तो मिथ्या ही उनकी बात होती है।

आजकल गृह त्याग करना आवश्यक नहीं है। जो ऐसा करते हैं, वे शीघ्र ही पतन में पड़ जाते हैं क्योंकि उनका भोजन श्रमहीन होता है। भोजन का प्रभाव चरित्र पर पड़ता है।

यह मार्ग विज्ञान के बाहर नहीं है। अभ्यास करना होता है। केवल वाद विवाद करना अच्छा नहीं। स्वरूप संकल्प से बनता है। भगवान का संकल्प ही स्वरूप बनता है। स्वरूप सूक्ष्म होता है, स्थूल नहीं। इस युग में भी ऐसी बातें अनुभव में आती हैं तो मीरा की बातों को हम क्यों न मानें?

यह विज्ञान मूलक साधना, भक्ति मार्ग है। इसका परम आचरण भक्ति में परम विश्वास होना है।

साधना में विश्वास

हमारा यह साधना का सिलसिला विश्वास की चीज है और करने की चीज है। अटल विश्वास करने से ही वास्तव में कृपा का अवतरण होता है। यह भूल है कि केवल किसी का परिश्रम ही ज्यादा कुछ करता है। यह तो मन्त्र के बल से ही अवतरण होता है। यह मन्त्र बल का अवतरण कहा। यह तो विश्वास की बात है, यह दलील का क्षेत्र नहीं है।

थियासाफिकल सोसाईटी ने चाहा कि इस लोक के अधिष्ठात्री देवता को एक बालक में स्थापित करने का प्रयास किया जाय। इस बड़ी शक्ति को अवतरित करने के लिये गोपाल नामक एक बालक को माध्यम बनाना चाहा। यह व्यर्थ था और एक अभद्र कल्पना थी। भला इतनी बड़ी शक्ति का अवतरण एक निश्चित व्यक्ति में क्यों हो? यह (उसका अवतरण) आप ही कृपा से हो जाय तो दूसरी बात हैं। मद्रास में एक महात्मा हुये हैं, श्री अरविन्द, जिन्होंने अनेक पुस्तकें लिखी हैं। मेरे कई मित्र उन पर लट्टू हो जाते थे और कहते थे कि अरविन्द जी बड़े

इन्टलैक्चुल हैं। किन्तु योग तो प्रैक्टिकल है, इन्टलैक्चुल
विश्वास के बिना मनुष्य पढ़ लिख कर भी कई बार भ्रम
भोंदू व्यक्ति से भी गया गुजरा हो जाता है।

कर्म साथ चलते हैं। यह सोचना कि जब रमण महात्म
लगने पर दो महीने तक अच्छे नहीं हुये तो वे भक्त नहीं थे—
है। (यह तो कर्मवश बात हुई) प्रकृति परिवर्तन का अनुमान
नहीं लगाना चाहिये। मुझे रमण जी की आत्मोन्नति में तनि
सन्देह नहीं और न ही संशय करने का विचार। विश्वास के
कर्म करने की बात है। साधक में यह भावना दृढ़ होनी चाहि
नाम में नामी है। यदि वह इसमें ढीला है तो फिर एक छो
दूसरे को भी छोड़े। फिर उसका उत्तरदायित्व नहीं लिया
साधकों का तो अपना विश्वास शुद्ध होना चाहिये। मेरे क
मैस्मेरिजम द्वारा आत्माओं को बुलाते थे। यदि एक आत्मा
तो मेज दोबार हिलता और दूसरी आत्मा आये तो तीन बार
एक बार सारा परिवार बीमार पड़ गया। तो आत्माओं को
से अवान्छनीय आत्मायें भी आने लग सकती हैं। मैंने उन
को आत्माओं को बुलाने से मना किया। मैस्मरेजम तो
खेलने की भान्ति है। यदि घर में जुआ खेला जाये तो फिर
घर पर भी आने लगेंगे। बुलाने पर अच्छी आत्मायें बार बा
आयें? हो सकता है बुरी आ जावें जो न जाने क्या संस्कार
जावें। मैंने एक बार पंजाब के एक राजनीतिज्ञ के लिए प्र
करने की सोची किन्तु जब (उसके लिए) प्रार्थना करने के
घुटने टेके तो पता चला कि कोई आवश्यकता नहीं। वह स
हो गया। विभाजन के पश्चात् फिर दो सज्जनों के लिए प्र
करने की कल्पना की तो एक के लिए प्रतीत हुआ कि
आवश्यकता नहीं। दूसरे के लिए प्रतीत हुआ कि सात दिन
फिर विचार करना। जो साधक विश्वास ढीला करता है,
थोड़ा भी अन्तर करता है वह ठीक नहीं। यह विश्वास
चाहिए कि नाम में नामी है और नाम द्वारा हम उस का आ
करते हैं। ऐसा विश्वास लाभदायक होता है।

राम नाम वीजाक्षर मंत्र

हमारे तो इष्ट राम ही हैं, इसका विस्तार हमारा उद्देश्य है। राम के विस्तार के साथ जगत में मंगल का संचार और आस्तिक भाव की वृद्धि होती है। सब तीर्थ इसमें समाये हुए हैं। जिस प्रकार वीज में वृक्ष के भाग अर्थात् जड़, तना, डाली, पत्ती, फूल सब समाये होते हैं। आवश्यकता है इस बीजाक्षर राम नाम मन्त्र का आराधन करने की।

मन्त्र में धारणा बनायें

आप यहां से कुछ धारणा करके ही जावें। मैं आप से अध्यात्मवाद की बातें थोड़े दिनों से कह रहा हूं। आप मंत्र का जाप करें। अपने मन में यह भाव और निश्चय लेकर जावें कि मंत्र में शक्ति है और जिस मंत्र का आराधन करते हैं वह शक्तिधाम से ही अवतरित होता है। इसीलिये इसमें शक्ति है। यह मंत्र चैतन्य है। यह भले ही स्याही के साथ कागज पर लिखा हुआ है। किन्तु इसमें भावना वहुत है और यह चैतन्य है। शास्त्र जानने वालों को मंत्र का निश्चय होता है। इसका बड़ा प्रभाव होगा। मंत्र देवताओं की काया है। उन्हीं से यह प्रकट होता है। मंत्र का दृश्य, जो देव का शरीर है देव इसमें ही निवास करता है और इसमें ही प्रकट होता है। न जानने वाले व्यक्तियों के पास युक्ति होती है किन्तु इसका बल नहीं होता। जो लोग युक्तिवाद में रहते हैं उनका क्षेत्र भिन्न होता है और जो अध्यात्मवाद में होते हैं उनका क्षेत्र भिन्न होता है। अध्यात्मवादियों को वाहर की युक्तियों से दुर्बल नहीं वनाना। अनुभवी व्यक्ति जो कहे वह सत्यज्ञान से कहता है। यह हमारा सौभाग्य है कि हमें ऐसे अच्छे साधना सत्संग के अवसर मिलते हैं। इस मंत्र का आराधन करना। अवश्य सफलता प्राप्त होगी।

आजकल लोग सब वुराइयां कलियुग का नाम लेकर मढ़ देते हैं। वास्तव में लोगों में अच्छी भावना ही नहीं रही। मंत्र का जाप करने में यदि उससे कोई लाभ नहीं होता तो यह मंत्र का दोप नहीं

अपितु यह समझो कि मंत्र के लिये वैसी धारणा ही नहीं रही। धारणा के अनुसार ही ऐसी कोई बात चला करती है। यदि वह ही न आवे तो कोई चीज़ ठीक नहीं। अपनी धारणा तो रहस्यवाद है। आप यहां पर आये हैं तो वही धारणा पूर्ण निश्चय और दृढ़ता को साथ लेकर जायें। यह मंत्र कोई सूखे अक्षर नहीं, यह तो देव का प्रकाश है।

साधन शील बनो

साधन शील जिसका जीवन हो वह व्यक्ति पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक और भक्ति मार्ग सभी में बहुत अच्छा रहेगा। वरन् लाला के लड़के जैसा होगा। लाला बरामदे की दीवार बनवाता, लड़का शाम को तोड़ देता। लाला राजों से बिगड़ता किन्तु राज मिस्त्री उत्तर देते कि हम तो दिन में बनाते हैं, शाम को लड़का साफ कर देता है। कहना यह है कि आपने यहाँ नियम बनाये और घर जा कर तोड़ दिये तो इसका तो परिणाम शून्य। नियम को तो सदा रखना चाहिये। यदि आप नित्य करते रहेंगे तो बड़े लाभ होंगे। यह तो स्पष्ट है कि इससे मनुष्य संतोषी हो जाता है।

साधना में चञ्चलता पूर्ण कुतर्क अथवा संशय नहीं होना चाहिए। साधना पर विश्वास करके श्रद्धापूर्वक उसका अभ्यास करना चाहिए।

कुछ लोग समाधि की खोज में फिरते रहते हैं कि समाधि लगाना सीख जायें। इस समाधि से क्या लाभ? जड़ बनने से क्या लाभ? यह तो सोने जैसा ही है। पांच घन्टे सोते हो—ज्यादा सोना चाहो तो सो सकते हो। किन्तु सोचो इससे क्या लाभ? ऐसी सुन्न अवस्था तो कीट, पक्षी, जानवरों को भी प्राप्त हो जाती है, इसमें कोई श्रेष्ठता नहीं। जीवन तो वही सुन्दर है जिसमें भक्ति भाव पूर्ण सेवा – प्रेम बसा हुआ हो। जन-कल्याण में अपना जीवन व्यतीत करो। देश का, समाज के व्यक्तियों का चरित्र ऊँचा हो। इसके लिये हमारे जीवन में प्रयत्न हो तो प्रशंसनीय है अन्यथा

कीड़े मकौड़ों के समान सन्तान पैदा करके कुछ खा पीकर मर जाने में कौन बड़ाई है। जियो तो कुछ बन कर जियो। राम काज में ही जीवन सफल है। आस्तिक भाव में दृढ़ता होनी चाहिए।

साधना स्वयं करो

भारत में विद्वानों ने कुछ ऐसा जाल फैलाया हुआ है कि उन्होंने लोगों में स्वतन्त्र बुद्धि नहीं रहने दी। प्रत्येक बात के लिये शास्त्र प्रमाण लोग चाहते हैं, स्वयं अनुभव नहीं करते। स्वयं के पुरुषार्थ से मुक्त होने की बात सोच ही नहीं सकते। दूसरों के द्वारा अनुष्ठान करके अथवा आचार्य की सहायता से ही पार होने की सोचते हैं। ब्राह्मणों ने भी वैसी बात शास्त्रों में लिख कर सब कुछ अपने हाथों में सीमित रखा हुआ है। यह ब्राह्मणों का स्वार्थ पूर्ण कार्य है।

किन्तु हमारे साधन में नाम की कुंजी सीधे आपके हाथ में दे दी जाती है। आपको सीधा सम्बन्ध परमेश्वर से मान कर आराधन करना चाहिए। आपका जाप, ध्यान, प्रार्थना आदि कार्यों में विश्वास होना चाहिये कि मैं अपने शुभ कर्मों से पार होऊँगा। गंगा यमुना आदि तीर्थ माहात्म्य द्वारा नहीं या वैतरणी में गाय, ब्राह्मण आदि आकर तारेंगे, ऐसी बात नहीं। हम गाय, ब्राह्मण के पराधीन न रह कर स्वतन्त्र रूप से अपने जप आदिक शुभ कर्मों पर जाना ठीक समझते हैं।

स्वयं की साधना का महत्त्व (है)। यह क्या कि (किसी व्यक्ति के लिए) पाठ करने वाले पाठ करते रहें और यजमान बम्बई में व्यापारी उसी प्रकार झूठा व्यभिचारी (बना रहे)। देवी का आराधन करना यह ऊंची बात है (स्वयं साधना करनी चाहिये)। ठीक भी वही रहते (हैं जो स्वयं अपनी साधना आप करते हैं)। चोला जो पाप से काला भरा हुआ वह स्वयं पाठ से धोना होता है। आप जप करो अपने कल्याण के लिए। पत्नी के दिल में पति के लिए, स्वतः वह दिल से निकली बात। (यदि पत्नी पति के लिए पाठ करे तो उसकी तो सच्ची, दिली भावना से वह पाठ होता है,

पर पैसे लेकर पाठ करने वालों को तो यही ध्यान रहता है कि पा
की पूर्ति पर हमें कितना पैसा मिलेगा)। (वह पाठ कोई हृदय क
पुकार थोड़े ही होता है)। टैलीफोन पर किसी व्यक्ति से बात
करनी हो तो स्वयं उससे बात करनी चाहिए। नौकर आदि से वैसी
बात थोड़े ही हो सकती है। यथा एक व्यक्ति ने उर्दू में सन्देश
लिख कर किसी और से अपने संबंधियों को दिलवाया कि मुझे
बुखार हो गया है। मैं मरी (हिलस्टेशन) जा रहा हूँ। और सन्देश
देने वाले ने सन्देश दिया कि मुझे बुखार हो गया है, मैं मर ही जा
रहा हूँ। जिसे पाकर उसके संबंधी संतप्त हो उठे।

साधन संकेत

यह जो सत्संगों में खुलकर कुछ कहने की बात का समय होता है यह इस सत्संग में अन्तिम कार्यक्रम है। इसमें जो बात या बातें कही गई हैं, वे अनुभव में आई हुई हैं। साधना करने के लिए इन पर विशेष ध्यान और खूब मनन करना बहुत आवश्यक है। मन्त्र का महत्त्व मैंने वर्णन किया है। इसका बहुत ही मनन और अध्ययन करना चाहिये।

तीन बातें हैं–

1. काल का विचार न करें।
2. अन्तर न डालें।
3. कमी न आने दें।

मैं तो यह चाहता हूं कि इसको न छोड़ें। किसी से मिलना व और काम हो तो फिर यह काम इन सब से पहले करें। भजन पाठ के काम को गौण न बनाएं। यदि कोई गौण बनाता है तो [illegible] भावना नहीं है।

यदि आप किसी के घर जाओ और वह आप से बात न करे और किसी और से ही बातें करता रहे तो आप बुरा मानोगे और यदि आत्म सम्मान का भाव है तो फिर कभी नहीं आओगे। इसी प्रकार आपने आवाहन किया और फिर ध्यान न दिया तो फिर वह मन्त्र का मन्त्रित क्यों आए।

इस काम को अच्छे से अच्छा सिनेमा न रोके, संबंधी न रोके। कोई और काम कितना ही आवश्यक क्यों न हो इसे न रोक सके। भक्त (भावना वाला) तो स्वयं जान सकता है कि वह इसमें अन्तर क्यों डाले।

यहां तो यह होता है कि मैं इसको नहीं छोडूंगा, करता रहूंगा। यदि वह पूरा निश्चय नहीं करता तो पक्का नहीं है। इसी प्रकार सत्संग में भी आना हो तो यह नहीं कि हो सका तो आऊंगा। जो ऐसे कामों में देर करता है वह अधिकारी नहीं। हमें तो प्रचार करने के लिए करना होता है। अन्यथा यह भी बात है कि अधिकार इसमें है नहीं। काल को तो ऋतु के अनुसार परिवर्तित किया जा सकता है।

निःसंदेह आजकल काम बढ़े हुए हैं। नयी नयी प्रथायें चल पड़ी हैं। पहले समय में तो केवल दही से रोटी खा ली इस प्रकार का साधारणपन था। अब चाय भी चाहिये और पहले तो लोग पान भी नहीं खाते थे। पान खाने वाले एक के घर सोपान को पौड़ियों की ओर देखें तो वहां होली खेली हुई सी होती है। यह बड़ा गन्दापन है। पान खाने वाले के दांत, मुंह बहुत बुरे लगते हैं। मैं आगे चला गया पान की बुराई में। कोई महत्त्व मैं देता नहीं। कहने का अभिप्राय तो यह है कि यदि प्रातः समय नहीं मिला तो बाकी फिर बाबू जी के दफ्तर जाने के बाद मिलता है।

काम होते हैं। काम तो स्त्रियां पहले भी बहुत करती थीं। प्रातः उठ कर चक्की चलातीं। दूध निकालतीं, दही बिलोतीं। पर ये सब काम होने पर वे समय पर उठती थीं।

तो फिर स्यानी स्त्रियां बाबू जी के दफ्तर जाने के बाद के समय को जप के लिये निकाल लेती हैं। यदि वे इसको सहेलियों का समय बना लें तो ठीक नहीं। और बाजार जाने का समय बनायें तो भी अच्छा नहीं।

समय को स्थिति की सुविधा के अनुसार बदल सकते हैं। लेकिन छोड़ना नहीं। देखो, जो अधिक प्रगति करते हैं वे विद्यार्थी समय पढ़ाई पर लगाते हैं। अन्य तो केवल कालेज में जीवन

बिताते हैं फिर कितनी बार फेल क्यों न हों।

जो विशेष समय न दे और फिर वह फल कितना चाहता है यह उसे सोचना चाहिये। उसकी आलोचना तो उचित है जो बारह बजे सोया और फिर तीन बजे प्रातः उठा। उसने यदि आधा घंटा भजन किया तो उसकी आलोचना उचित है। जो लड़के कम पढ़ते हैं वे ही हड़ताल करते हैं। जो निकम्मे होते हैं और चार चार सिनेमा देखते हैं उनको तो जीवन से भी प्यार नहीं और पैसे से भी नहीं।

कल ही मेरा एक मित्र कह रहा था कि लाहौर में यदि दस मिनट और मार्शल ला न होता तो सारी अनारकली लुट जाती। जो समय का ध्यान नहीं रखते, वे तो सब निकम्मे हैं। सत्याग्रहियों का यह काम नहीं। वास्तविक सत्याग्रही के साथ गुण्डे मिल जाते हैं। व्यापारी भला क्यों हड़ताल करें। भक्तिभाव वाला यदि प्रातः जल्दी उठना चाहे तो शीघ्र सो जावे। वह क्यों मेज पर बातें करता रहे। और फिर आलोचना करे तो उस आलोचना का क्या अर्थ? उसको तो अपनी परिस्थिति ऐसी बनानी चाहिये जो छैल छबीले व्यक्ति से एकदम न्यारी होती है।

अपने काम के अनुसार जो परिस्थिति को न बनावे वह अपने काम में ही सफल नहीं होता फिर भक्ति में कैसे हो? ऐसा समझना चाहिये और नियम को ठीक बनाना और फिर इसका पालन करना, ऐसा कोई समझ ले तो बहुत ठीक।

किसी ने एक साधू को कहा कि मन नहीं लगता। साधू ने प्रश्न किया कि कितना समय लगाते हो? भाई ने उत्तर दिया कि प्रति दिन तो नहीं पर कभी कभी पांच दस मिनट बैठता हूं। साधू ने कहा कि आपने जब यह समझ लिया है कि समय लगाना है तो फिर भजन के समय किसी शो में जाने का हठ क्यों करो? क्यों जेवर खरीदने जाने की हठ करो। और क्यों दूसरे हठों में मन को लगाये रखो। जब बादल गरजते होते हैं और बिजली कड़कती होती है तो रेडियो की आवाज अच्छी प्रकार नहीं आती। इसी प्रकार जब दिन में मन में बड़ा कोलाहल हो रहा हो

पैदा होती हैं। और फिर दैवी कृपा के तरंग टूटते हैं। इसी लिये साधू प्रातः के समय की प्रार्थना कहते हैं। किन्तु राम-कृपा की अन्त में दीवार भी बन जाया करती है। पर साधारणतः प्रातः का समय ही ब्रह्म समय होता है। इस बात का जो ध्यान रखकर बैठे यदि तब भी लाभ न हो तो फिर हरि दरबार की वह शान नहीं रहती। कृपा फिर अवश्य ही होती है।

सत्कार और आदर के साथ उसको विद्यमान जाने। शुभ कर्मों में उसकी कला सदा विद्यमान होती है और सहायक होती है। विश्वास के नेत्रों के सामने यह बात होनी चाहिये। हम कीर्तन में भी यह बात लाना चाहते हैं। हमारी तो यह भावना है कि भगवान कीर्तन में साथ गाये, बजाये।

"हे हमारे देव! हमारे कुण्ड के चारों ओर बैठ और आप तू हवन कर।"

मैं तो भक्त का ऐसा अधिकार मानता हूं। वेद तो कहते हैं "भक्त तो देव को सेते हैं"। यदि ऐसी लख परख न हो तो अनाचार से, भ्रष्टाचार से संसार डूब जावे।

स्वयं नाद सुनाई देता है जब भक्त इसके लिये हृदय खाली करता है। वेद में कहा है—मैं बोलता हूं, देव से सेव किया हुआ।" यह सत्य कहा है। लख परख कर कहा है। यू हीं कुछ हांका नहीं गया।

आचार्यों को मैं दर्शक नहीं मानता। वे तो दलीलों के क्षेत्र में रहते हैं। संत तो अध्यात्मिक क्षेत्र में रहने वाले हैं। वे तो जो जानते थे, वही कहते थे।

मुझे कहना यह है कि यह जो कहा गया कि "देव और मनुष्यों से सेव किया हुआ मैं बोलता हूं।" तो यह बहुत ऊंची बात है। "भक्त के धनुष को वीरता के समय" वे कहते हैं "मैं स्वयं तानता हूं"।

मुझे निवेदन यह करना था कि यह उस अवस्था में कहा है कि ब्रह्मद्वेषी जो हैं उनके लिये वीर के धनुष को भगवान स्वयं तानते हैं।

भक्त लोग तो इसको ऐसा ही समझते हैं। "हम चलते हैं तू हमारा लीडर बन"। यह कोई सत्य न हो, अनुभव में न आता हो तो सन्त क्यों कहें। हम भी सत्कार से सेवन करें। विश्वास को दृढ़ रखें तो ऐसा करवा सकते हैं। और फिर बड़े भाव स्फुरित होंगे और बड़ा बल आयेगा।

साधना करने से बड़ा लाभ होता है। अपनी स्थिति बनाना हमारे वश की बात है। यह क्या हुआ कि वही आसन जो स्थान स्थान मारा मारा फिरे वही साधना का फिर बन जावे।

अवतारों के चित्रों को भी ठीक स्थान देना चाहिये। हम एक इसका सिद्ध चक्र बना रहे हैं। फिर हम उसको सजावट के लिये नहीं लगाने देंगे। (अभी अधिष्ठान नहीं बना था)।

आत्म जागृति के पश्चात् भक्त को सिद्धियों के लिये कोई इच्छा नहीं होती। जो नाम अभ्यास करता है उस में सिद्धियां आ जाती हैं। यह भावना हो कि मेरे राम जिधर तेरी इच्छा हो, मुझे ले चल। सिर झुका कर कहना चाहिये कि मेरा मन तेरा मन्दिर है। मनुष्य बुरी भावना से कितना भी मलिन बन चुका हो, दो तीन महीने में अभ्यास करने से उसमें बड़ी स्फूर्ति आ जाती है। राम नाम की स्फूर्ति, राम नाम का गूंजना ब्रह्म नाद है। बाकी नाद, बादल की गर्जना, बांसुरी की ध्वनि, वीणा का नाद भी अच्छे हैं जिन को सुनने के लिये लोग कामों को बंद करते हैं। परन्तु नाम के अभ्यास से नाद अपने आप हो जाता है। राम, राम, ताल सहित होता है। जब सुषुम्णा खुल जाती है, कमल अपने आप खिलने लग जाते हैं। नाद दिन को भी और रात को भी सुनाई देता है। जिसको नाद सुनने का चाव हो उसे दो चार घड़ी रात रहते जागना चाहिये। जिस समय चुपचाप हो, शान्ति हो, वह दैवी समय है। तब नाद प्रकट होता है। भगवान की लीला है जिसकी झोली में डाल दे।

मैं डलहौज़ी पहाड़ में एकान्त में रहता था। प्राणायाम आदि किया करता। शारीरिक लाभ अवश्य हुआ।

हरि के अर्पण किया तो व्यास पूजा के दिन हरि ने नाम झोली में डाल दिया।

नाद कोलाहल में नहीं आता। यदि आ जाये तो भगवान की लीला है। नाद प्रकट कराने के लिये श्रद्धा और शान्त भाव चाहिये। प्रकट होने में कोई आश्चर्य नहीं है। यदि न हो तो समय लगाना चाहिये।

आत्मा उलझा न रहे इस के लिये साधक को किसी शान्त स्थान पर शान्त समय में घंटा-डेढ़ घंटा लगाना चाहिये। नदी के तट पर, किसी कन्दरा में, नदियों के संगम पर, यदि परिस्थिति न हो तो छत पर या कोठरी में जा बैठे। जप ही किया करे, अन्य काम न करे। नाम जाप से सब बातें हो जाती हैं। कान बन्द करने से मस्तिष्क एवं फेफड़ों पर बुरा प्रभाव पड़ता है। नाम जाप से नाद भी होता है, ब्रह्म नाद भी होता है, अजपा जाप भी होता है। पाप अपने आप धुल जाते हैं। हम किसी नाम का निरादर नहीं करते और न हमें किसी नाम से हठ है। पर राम नाम से हमें आशीर्वाद प्राप्त हुआ है इस लिये इस नाम से हम बंध गए हैं। भगवान किसी नाम में बंधा हुआ नहीं है। उसे तू ही तू कहो, वह सुनता है। सूरज चढ़ा है,झरोखे को बंद न करो। बड़ी श्रद्धा और धारणा से भजन करो मार्ग खुल जायेगा। लम्बे रोग के लिये उपचार भी लम्बा करना चाहिये। नाम रटने वालों को यह नाम की डोर उसके धाम में ले जाती है जहां वह आप विराजमान है। भगवान हमें अपना नाम दे और अपने नाम में रुचि दे।

"राम मेरा कल्याण करेगा," यह विश्वास जमाना चाहिए "मेरे में पूर्ण विश्वास रखते हुए नित्य चिन्तन करते हुए जो जीवन यापन करते हैं उनका योग क्षेम वहन मैं करता हूं"। गीता का ऐसा वचन है। सती अपने व्रत में दृढ़ रहती है। यह संशय न हो कि भगवान के अतिरिक्त भी कोई व्यक्ति है जो मुक्तिदाता है। हमें अपने आराध्य में संशय न हो। बच्चा जब भूखा होता है तो मां की ओर ही देखता है। किसी शक्तिशाली बड़े आदमी की ओर नहीं देखता। हम में ऐसा ही बाल विश्वास हो।

भगवान के ऊपर निर्भर रहना चाहिए। संशय रहित विश्वास हो। यदि विश्वास कच्चा हो तो सब काम कच्चे रहते हैं। अनामी भगवान के नाम युग युग में भिन्न भिन्न रहे हैं। नाम से पदार्थ का बोध होता है। हम उसी को राम नाम से पुकारते हैं।

साधना में सहायक कुछ बातें

(1) खाली समय को उपयोग में लाना—

नित्य के जीवन में कई समय ऐसे आते हैं जब हम कुछ काम नहीं करते होते—जैसे एक जगह से दूसरी जगह जाने के समय, रात को बिस्तरे पर पड़े हुए नींद न आने के समय, किसी की प्रतीक्षा करने के समय, इत्यादि। ऐसे समय को आलस्य में और यूं ही वृथा नहीं खोना चाहिये। ऐसे समय में भगवान के नाम "राम" का जप करना चाहिये।

(2) परमेश्वर की समीपता अनुभव करना—

वैसे तो प्रत्येक समय परमेश्वर की समीपता अनुभव करनी चाहिये, पर दिन में किसी-किसी समय विशेष रूप से उनकी विद्यमानता अनुभव करनी चाहिये। ऐसा प्रतीत हो कि वह हमारे सामने विराजमान है और हमें पथ-प्रदर्शन कर रहा है।

(3) प्रभु से प्रार्थना—

प्रभु से प्रार्थना करनी चाहिये, चाहे वह सन्तों और भक्तों के कहे हुये शब्दों में हो अथवा अपने शब्दों में। प्रार्थना भावमय हो और बहुत लम्बी न हो। उसमें प्रभु की प्रशंसा हो और उन की महानता का वर्णन हो, उनसे हमारा हाथ पकड़ कर हमें पथ-प्रदर्शन करने के लिये भावमय निवेदन हो।

(4) प्रभु पर निर्भरता—

हम में प्रभु पर और अपने साधन पर निर्भरता हो। यह विश्वास हो कि हम में जो नाम का बीज पैदा हुआ है, वह स्वयं हमें लक्ष्य स्थान पर ले जायेगा। इस नाम साधन को कोई छोटा साधन नहीं समझना चाहिये। ऐसा अनुभव करना कि स्वयं ईश्वरीय शक्ति हम में काम कर रही है।

(5) हर समय प्रभुमय वृत्ति होनी चाहिये–

वैसे तो हर समय प्रभुमय वृत्ति होनी चाहिये पर दिन में नियत समय पर विशेष रूप से ध्यान में बैठना चाहिये। उस समय ऐसा अनुभव करना कि ईश्वर की सत्ता का हमारी सत्ता से साम्य हो रहा है।

(6) आध्यात्मिक जगत् में देश और काल की दूरी नहीं होती–

आध्यात्मिक जगत् में देश और काल वाधित नहीं होते। कठिन समय आने पर हार्दिक प्रार्थना करने से हम संतों और महात्माओं से, चाहे वे स्थूल दृष्टि से हम से कितनी भी दूर हों, ऐसे ही सहायता प्राप्त कर सकते हैं जैसे वे हमारे सामने बैठे हों। यह सहायता हृदय में प्रेरणा के रूप में होती है। कभी कभी प्रत्यक्ष रूप से आकार भी दिखाई दे जाता है। इसके अतिरिक्त आकाश में अनेक लोक लोकान्तरों में सूक्ष्म रूप में सिद्ध पुरुष तथा मुक्त आत्मायें विचरती रहती हैं। उनसे भी साधन मार्ग में उनके सत्संकल्पों द्वारा हमें सहायता पहुंचती रहती है।

साधना में बाधक कुछ बातें

१. संशय–

संशय मनुष्य का बहुत बड़ा शत्रु है। यह साधन में बहुत हानि करता है। इसको हृदय में बिल्कुल स्थान न देना चाहिये। यह अध्यात्म मार्ग का बड़ा भारी रोग है। इससे बचना चाहिये। संशय का स्वरूप यह है कि साधन में विश्वास न होना, दूसरों से कोई और साधन सुनकर या पुस्तकों में और साधनों की प्रशंसा पढ़कर अपने साधन के संबंध में यह विचार होना कि पता नहीं यह ठीक है या दूसरे साधन ठीक हैं, इत्यादि, इत्यादि। एक बार एक साधन ग्रहण करके उसको किसी भी मूल्य पर नहीं छोड़ना चाहिये। जो कुछ सोचना है उस साधन को लेने से पहले सोच लें। जब ले लिया तब जीवन की बाजी लगा कर भी उसको निभाना चाहिये।

संशय का स्वरूप यह है कि यह बात ठीक है या नहीं, मैं इस काम को करूं या न, मैं ने जो नाम धारण किया है वह मुझे मुक्ति दिलाएगा या कोई और नाम यथा गोविंद, हरि, आदि। संशय मनुष्य को निर्णय पर नहीं पहुंचने देता। इस जगह यह लिखा है, उस जगह यह लिखा है। प्रमाण वृत्ति संशय को पैदा करने वाली है। जब तक प्रमाण वृत्ति को न जीत लो, उन्नति नहीं कर सकते। संशय या भ्रम वृत्ति शत्रु के समान है जो हमारे रास्ते में बाधा बनकर उपस्थित होती है। जहां तक हो निःसंशय होकर किसी काम में पूरे दिल से कूदना चाहिये। ऐसा करने से हानि नहीं होती। पहले किसी पुरुष या वस्तु की जांच कर लेनी चाहिये। पर जब एक बार जांच कर ली और उसमें कूद पड़े तो फिर संकोच से नहीं पूरे दिल से कूदना चाहिये। हिन्दू धर्म में तो इस दुनिया के संबंध भी टूटने वाले नहीं हैं। और जब भगवान से संबंध जोड़ लिया तो इस पर तो और भी दृढ़ता से स्थिर रहना चाहिये।

आध्यात्मिक मार्ग में संशय बहुत बुरी चीज़ है। और है बड़ी प्रबल। एक बार पैदा हो जाने पर नस नस को हिला देती है। यह शत्रु बनकर हर समय हृदय में बैठी रहती है। यदि नाम से संबंध जोड़ कर उसे तोड़ दिया जाये तो फिर दूसरी जगह भी शांति नहीं मिलती। भ्रम बना ही रहता है। इसलिये नाम की शक्ति में कदापि संशय नहीं करना चाहिये।

२. कुसंग—

मनुष्य जैसा संग करता है वैसा ही हो जाता है। भले पुरुषों के संग से मनुष्य भला बनता है और बुरे पुरुषों के संग से मनुष्य बुरा बनता है। संग का मनुष्य के जीवन पर बहुत प्रभाव पड़ता है। इसलिये कुसंग से सदा बचना चाहिये।

३. व्यभिचार—

साधक कोचाहे वह ब्रह्मचारी हो अथवा, गृहस्थी, दांपत्य (Sexual) पवित्रता रखनी चाहिए।

४. नशीली वस्तुएं–

हर प्रकार की नशे की चीज़ें छोड़नी चाहियें।

५. साधन में मिश्रणता–

अपने साधन में दूसरे किसी साधन को नहीं मिलाना चाहिये। इससे साधन की सिद्धि में बाधा होती है।

६. अविश्वास–

साधक को अपने आप में तथा भगवान में अविश्वास नहीं होना चाहिये। यह कभी विचार नहीं करना चाहिये कि अमुक काम मैं नहीं कर सकूंगा। अपितु यह सोचना चाहिये कि यदि एक काम को दूसरा कर सकता है तो मैं भी कर सकता हूं।

७. साधन में अन्तर–

कोई भी कारण हो जाये साधन में अन्तर नहीं डालना चाहिये। अन्तर डालने का अर्थ है साधन को गौण मानना और भगवान की अवज्ञा करना। इससे साधन में उन्नति रुक जाती है।

साधना में कठिनाइयां

१. आसन–

पहली कठिनाई आसन की है। इस सहज योग में आसन चाहे कोई भी हो, यदि एक आसन में थक जाएं तो आसन बदला भी जा सकता है। टांगें लम्बी करें या सहारा लेकर भी बैठा जा सकता है। जब अभ्यास दृढ़ हो जाता है तो शक्ति प्रसार की आवश्यकतानुसार अभ्यासी, इच्छा के बिना भी आसन स्वयं बदलने लगता है। पर यह सब में नहीं होता।

२. विचार तरंग–

दूसरी कठिनाई विचारों के बिखरने की है। ध्यान के समय मन में जो संकल्प विकल्प आते हैं वे मन की व्यवहारिक अवस्था की छाया मात्र होते हैं। उनको आत्मा में नहीं मानना चाहिये। अपने आपको अलग साक्षी रूप में मानना चाहिये और इन

विचारों में अपने आप को जोड़ना नहीं चाहिये। यह विचार तरंग टूटे हुए होते हैं। किसी सिलसिले वार नहीं होते। आत्मा सिलसिलेवार सोचता है। इसलिए आत्मा को इनसे अलग मानना चाहिये। जब अभ्यास दृढ़ हो जाता है तो ये विचार तरंग भी शांत हो जाते हैं।

साधना में बनावट नहीं चलती

यदि आप बनावटें बनाते हैं तो आप ने साधना को समझा नहीं। एक मेरे मित्र थे। इन्होंने अपना एक आश्रम भी बनाया हुआ था। मेरे एक मित्र इन को मेरे पास लाए। मैंने उनकी आवभगत की। जितनी मेरे से हो सकती। मेरी यह रीति है कि मैं जहां ठहरा हुआ होऊं, उनको मेरे कारण बोझ न बने, यह मैं ध्यान रखता हूँ। मेरा मिलना निष्काम भाव से था। जो मेरा मित्र लाया था, वह उनसे प्रभावित भी किसी प्रकार हुआ होगा। बड़ा अच्छा बोलना भी। उन के साथ एक शिष्य रहता था। इन्होंने पैसा मांगना था। पहले थोड़े लिए भी, पर फिर अधिक (की मांग की) तो इस शिष्य ने कहा, "आप जानते नहीं कि वे बहुत बड़े महात्मा हैं। मैंने बीच में आंखें खोलीं तो जहां वे बैठे थे वहां श्री कृष्ण। वे कृष्ण बन गए। इनकी तो महिमा अपार है। यह तो परमेश्वर (का रूप हैं) ऐसा लोग कहते हैं।" आज भी छलिये आदमी कृष्ण बनकर रहते। हजारों रुपये आते हैं उन के पास (चढ़ावा चढ़कर)। यह तो सब लोक दिखावा है।

मुझे कहना यह है कि वह सन्त अब परलोक सिधार गए। शिष्य कहते, इन्होंने तो बरस भर पहले कह दिया। मरने का तो इनको पहले ही पता था। वे तो आपरेशन थोड़े ही कराने गए थे। वह तो डाक्टर को आपरेशन के बहाने पैसे दिलवाने थे। आपरेशन टेबल पर उनका मरण हुआ। यदि कोई साधक समझने वाला न हो तो कहना व्यर्थ हो जाता है। देश के देश रंगे हैं नास्तिकवाद में। एक अच्छी संख्या के भारतवर्ष जैसे पिछड़े देश में यह सन्देश, जहां राजनीतिज्ञों से कुचला हुआ, वहां पर

रीति रिवाज से भी दबा हुआ। तो ऐसे देश में राम नाम का सिमरन आश्चर्यजनक है। अब मैंने इस बात को आगे नहीं बढ़ाना है-यही कहना है कि साधना करने वाले जन में साधना होनी चाहिये।

असफलता का कारण खोजो

जो बातें साधक को धारण करनी हैं, वे ये कि साधक अपने आपको निराश न बनाए। समझना तो यह चाहिये कि मैं सफल न हुआ तो कारण इसका क्या है। कारण को खोजना चाहिये। खोजने से पता चलेगा कि उसके करने में या उसमें कोई दोष है। यदि न खोजे तो दूसरा कोई उसके लिए क्या करे? अपने कर्म का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेना चाहिये। यदि आदमी अशांत रहता है और अशांति का कारण ढूंढने लगे तो यह पता चल जाता है। कुछ दु:ख तो मानस-दुर्गुण के कारण (हैं), कुछ क्या, बहुत से कल्पित हैं (अनेको दु:ख तो मानस कल्पना जनित हैं)।

यदि वह राम दरबार में बैठे—जिसका आराधन हम करते, वह विद्यमान (होता है), इसलिए रामदरबार हुआ और कहा गया। साधना में मन न लगा तो इसमें यह देखना कि क्यों—कारण खोजना—यदि दूसरे विचार ही आएं तो कल्पना के ही। कोई और तो अन्दर बैठा है नहीं—आप ही तो कर रहे हैं—मन को क्यों दोष देना। मनन करता है तो मनुष्य होता है। गर्मी सर्दी निवारण के वस्त्र तो उसके पास भी हैं और उसके बधुंओं के पास भी। पर ऐसी तड़क भड़क वाले नहीं जैसे दूसरों के पास देखे। इस कारण फुरना अशान्ति का (इस प्रकार सोचना अशांति उत्पन्न करता है)। हम कहते हैं कि माया धोखा देती है। अपनी जिम्मेवारी नहीं लेते। इसका भी सरल उपाय यह है कि भगवान का अधिक जाप करें, कि भगवान मुझे शान्ति दो।

पाठ लड़के को याद नहीं हुआ तो कारण यह कि वह तो नावल जो पढ़ता रहा। याद आये प्रायश्चित्त रूप से या संशोधन रूप से। फिर तो ठीक हो जाए। जिन के पास कम समय है वे भटकते भी

कम हैं। अवारा एक बार चण्डाल चौकड़ी में बैठा तो फिर भटकता ही रहता है। इसको राम ही सुधारे। अधिक जप करो, अधिक पश्चात्ताप करो कि यह अशान्ति का कारण क्यों दूर न करें। फिर अभ्यास से हो ही जाता है। कहते हैं कोई कितने चिर में पण्डित बनता है। यदि शीघ्र कोई बात न आवे तो समझना चाहिये कि हो जावेगा (अभ्यास से)। लोग तो कहते हैं इस जन्म में न सही फिर अगले में सही। यह ठीक कि कारण समझना चाहिये और फिर उसे दूर करने का उपाय करना चाहिये। कलम ठीक नहीं लिखती तो आप समझ जाते हैं कि स्याही नहीं या निब खराब। रेडियो खराब (हो) इसमें आवाज़ नहीं आती तो आप समझते हैं कि इसमें खराबी है। यदि आप में राम धुन नहीं आती तो सोचें कि आप के यन्त्र में खराबी कुछ है। बिगड़ी मोटर में दो दिन बैठे रहो तो भी वहीं रहोगे। मेरी तो यह भावना है-मेरे जैसे आदमियों का निश्चय है कि आदमी आराधन करता है तो फल आता है। पर आराधना करने वाले को (अपनी) कमी का भेद समझने की चेष्ठा करनी चाहिये। आप, हम में से नावल पढ़ते दिन बिता देते हैं। कभी भक्ति के ग्रंथ पढ़ते पढ़ते (भी) आप ने दिन बिताए हैं? (यदि) नहीं तो फिर इन के संस्कार सिनेमा के कैसे ठीक हो जावें, कैसे भूल जावें। किसी किसी का ठीक हो जाता है। यह आश्चर्य की बात। राम कृपा से ऐसा हो जाए, यदि न होवे तो समझे कोई प्रबल संस्कार है वासना का।

नचिकेता को निश्चय हो गया तो इसके पिता ने कहा तो वह समाधिस्थ हो गया। उसके पिता ने न जाने किस किस को कहा होगा। पर किसी को हुआ नहीं, जैसे दलदार शीशे में ग्राह्य शक्ति। योग्यता का भी शीशा बनाओ। भक्ति के ग्रंथ पढ़ना, प्रेम भरे प्रभु के गीत गाना, ये साधन हैं। कई बार प्रतीत नहीं होता। आन्तरिक चेतना ठीक चलती है पर बाहर प्रतीत होने में नहीं आती। कई ऐसे बिगड़े हुए भी हैं।

साधन में विरोधी शक्तियां

साधन में जब कोई बढ़ने लगता है तो प्रकृति

रीति रिवाज से भी दबा हुआ। तो ऐसे देश में राम नाम का सिमरन आश्चर्यजनक है। अब मैंने इस बात को आगे नहीं बढ़ाना है-यही कहना है कि साधना करने वाले जन में साधना होनी चाहिये।

असफलता का कारण खोजो

जो बातें साधक को धारण करनी हैं, वे यें कि साधक अपने आपको निराश न बनाए। समझना तो यह चाहिये कि मैं सफल न हुआ तो कारण इसका क्या है। कारण को खोजना चाहिये। खोजने से पता चलेगा कि उसके करने में या उसमें कोई दोष है। यदि न खोजे तो दूसरा कोई उसके लिए क्या करे? अपने कर्म का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेना चाहिये। यदि आदमी अशांत रहता है और अशांति का कारण ढूंढने लगे तो यह पता चल जाता है। कुछ दुःख तो मानस-दुर्गुण के कारण (हैं), कुछ क्या, बहुत से कल्पित हैं (अनेको दुःख तो मानस कल्पना जनित हैं)।

यदि वह राम दरबार में बैठे—जिसका आराधन हम करते, वह विद्यमान (होता है), इसलिए रामदरबार हुआ और कहा गया। साधना में मन न लगा तो इसमें यह देखना कि क्यों—कारण खोजना—यदि दूसरे विचार ही आएं तो कल्पना के ही। कोई और तो अन्दर बैठा है नहीं—आप ही तो कर रहे हैं—मन को क्यों दोष देना। मनन करता है तो मनुष्य होता है। गर्मी सर्दी निवारण के वस्त्र तो उसके पास भी हैं और उसके बधुंओं के पास भी। पर ऐसी तड़क भड़क वाले नहीं जैसे दूसरों के पास देखे। इस कारण फुरना अशान्ति का (इस प्रकार सोचना अशांति उत्पन्न करता है)। हम कहते हैं कि माया धोखा देती है। अपनी जिम्मेवारी नहीं लेते। इसका भी सरल उपाय यह है कि भगवान का अधिक जाप करें, कि भगवान मुझे शान्ति दो।

पाठ लड़के को याद नहीं हुआ तो कारण यह कि वह तो नावल जो पढ़ता रहा। याद आये प्रायश्चित्त रूप से या संशोधन रूप से। फिर तो ठीक हो जाए। जिन के पास कम समय है वे भटकते भी

कम हैं। अवारा एक बार चण्डाल चौकड़ी में बैठा तो फिर भटकता ही रहता है। इसको राम ही सुधारे। अधिक जप करो, अधिक पश्चात्ताप करो कि यह अशान्ति का कारण क्यों दूर न करें। फिर अभ्यास से हो ही जाता है। कहते हैं कोई कितने चिर में पण्डित बनता है। यदि शीघ्र कोई बात न आवे तो समझना चाहिये कि हो जावेगा (अभ्यास से)। लोग तो कहते हैं इस जन्म में न सही फिर अगले में सही। यह ठीक कि कारण समझना चाहिये और फिर उसे दूर करने का उपाय करना चाहिये। कलम ठीक नहीं लिखती तो आप समझ जाते हैं कि स्याही नहीं या निब खराब। रेडियो खराब (हो) इसमें आवाज़ नहीं आती तो आप समझते हैं कि इसमें खराबी है। यदि आप में राम धुन नहीं आती तो सोचें कि आप के यन्त्र में खराबी कुछ है। बिगड़ी मोटर में दो दिन बैठे रहो तो भी वहीं रहोगे। मेरी तो यह भावना है-मेरे जैसे आदमियों का निश्चय है कि आदमी आराधन करता है तो फल आता है। पर आराधना करने वाले को (अपनी) कमी का भेद समझने की चेष्ठा करनी चाहिये। आप, हम में से नावल पढ़ते दिन बिता देते हैं। कभी भक्ति के ग्रंथ पढ़ते पढ़ते (भी) आप ने दिन बिताए हैं? (यदि) नहीं तो फिर इन के संस्कार सिनेमा के कैसे ठीक हो जावें, कैसे भूल जावें। किसी किसी का ठीक हो जाता है। यह आश्चर्य की बात। राम कृपा से ऐसा हो जाए, यदि न होवे तो समझे कोई प्रबल संस्कार है वासना का।

नचिकेता को निश्चय हो गया तो इसके पिता ने कहा तो वह समाधिस्थ हो गया। उसके पिता ने न जाने किस किस को कहा होगा। पर किसी को हुआ नहीं, जैसे दलदार शीशे में ग्राह्य शक्ति। योग्यता का भी शीशा बनाओ। भक्ति के ग्रंथ पढ़ना, प्रेम भरे प्रभु के गीत गाना, ये साधन हैं। कई बार प्रतीत नहीं होता। आन्तरिक चेतना ठीक चलती है पर बाहर प्रतीत होने में नहीं आतीं। कई ऐसे बिगड़े हुए भी हैं।

साधन में विरोधी शक्तियां

साधन में जब कोई बढ़ने लगता है तो प्रकृति विरोध करती

प्रकृति बाहर की वस्तु में भी होती है और अपने संस्कारों की बनी हुई भी होती है। ये संस्कार बहुत प्रबल होते हैं और जीने के लिए हठ करते हैं। इनसे दबना नहीं चाहिए अपितु इनको दबा देना चाहिये। इनसे दबने पर ये जी जायेंगे और हमें गिरा देंगे। ये कई वर्षों से और अनेक जन्मों से चले आते हैं और हम पर अधिकार जमाए हुए हैं। ये कई रूपों में भय से, प्रलोभन से और मोह का रूप धरकर हमें गिराने और बहकाने की चेष्ठा करते हैं। पर हमें इनका मुकाबला करना चाहिये और अपने साधन में डटे रहना चाहिये। ऐसा होने से वे कमजोर होते जायेंगे और हम अपने साधन में दृढ़ होते जायेंगे। कैसी भी अवस्था हो, साधक को कभी चलायमन नहीं होना चाहिये।

मोह का संस्कार भी बड़ा भयंकर होता है। मोह कई प्रकार का होता है। धन का मोह, तन का मोह, सम्बन्धियों का मोह आदि। यह साधक के पावों को जकड़ लेता है। उसको आगे बढ़ने नहीं देता। यह उसको ध्यान में, भजन में, आराधन में रोकता है पर साधक तो सूरमा होता है। उसको इसे जीतना चाहिये। माया बहुत बलवती होती है। बड़े बड़े ऋषि मुनियों को चलायमान कर देती है। शेर और चीते को जीत लेना सुगम है, दुनिया को जीतना सुगम है, पर माया को जीतना बहुत कठिन है। इसको जीतना बड़े सूरमों का काम है। इसको जीतना चाहिये, ध्येय के लिए।

पर जहां विरोधी शक्तियां काम करती हैं वहां भगवत्-कृपा भी सदा सहायता करती है। जहाँ दैत्य आता है वहाँ देव भी आता है। अशुभ के साथ शुभ भी आया करता है। कभी कभी अपना इष्ट भी आया करता है। भगवत्-कृपा की अनुभूति साधक को कई प्रकार से होती है। कभी कभी शाब्दिक आशीर्वाद भी होता है। यह कभी एक बार भी हो जाय तो साधक हिमालय के समान दृढ़ हो जाता है। कई बार साधक को विलक्षण अनुभव होते हैं पर वह उनके महत्त्व को नहीं समझता और उनको यूं ही समझकर उनकी अवहेलना कर देता है। इससे उसकी उन्नति रुक जाती है। उसका नीचे चले जाना भी संभव है। फिर जो बात बनी होती

है, वह नहीं रहती। दुबारा उसके लिये बहुत प्रयत्न करना पड़ता है। इसीलिए अपने मार्ग-दर्शक से मिलते रहना चाहिये और उसको अपनी आन्तरिक स्थिति से परिचित कराते रहना चाहिये। इसीलिये महापुरुष सत्संग का माहात्म्य मानते आये हैं।

अपनी जागृति का निश्चय होना चाहिये। यह मार्ग निश्चय व विश्वास का मार्ग है। कोई लाख कहकर इसके विरुद्ध बहकावे, साधक को अपना आप स्थिर रखना चाहिये। साधक जब मैदानों में जाये, सबकी सुने पर अपने आप को खोये नहीं। उसका निश्चय बलवान होना चाहिये।

माया बाधा बनकर साधक के सामने आ जाती है। पर माया के छुपे हुये संस्कार उदासीनता व मोह पैदा करते हैं। जन्म जन्मान्तरों से बनी हुई अपनी इस प्रवृत्तिमयी अवस्था से अभ्यासी का सग्राम होता है। लड़ाई का ढंग भी अभ्यासी का निराला है। एक ढंग विरोध का यह है कि विरोधी शक्तियों को कुचल दिया जाय, उनका हनन कर दिया जाय। यह ढंग किसी समय ही सफल होता है।

एक दूसरा उपाय है जो अपने घर में घटता है। जब लड़की या भाई बात नहीं मानता, उस समय उसको हनन कर देने का विचार नहीं आता, समझाना होता है।

जो संकल्प विकल्प उठें, उन्हें आत्मा द्वारा स्फुरित न सोचें अपितु उनकी उपेक्षा करें। उनके संबंध में यह समझना कि मैं ही उन्हें सोच रहा हूँ, उनको पुन: सजीव करना है। उनकी उपेक्षा करने से अपना बल बढ़ता है और ऐसे विचारों और संस्कारों का बल कम होता चला जाता है। हम केवल उनके द्रष्टा बनें, उनके चिन्तन करने वाले न बनें।

ध्यान में बैठे हुए किसी बाहर की ध्वनि का सुनाई देना ध्यान की त्रुटि नहीं है, न सुनाई देना तो सुन्न हो जाना है। सुन्न होकर बेजान होता है। इसलिए साधक का लक्ष्य सुन्न होना नहीं है।

सुन्नता की नींद तो कितने ही चीतों को हिमस्थलों में प्राप्त है। इसका भगवद्-भक्ति में कोई महत्त्व नहीं है। हाँ, लय दूसरी चीज़ है। देश और काल का ज्ञान न रहना लय अवस्था है। यह आध्यात्मिक चीज़ है।

जब कपड़ा धोते हैं तो पहले उसकी मैल बाहर उबल पड़ती है। ऐसे ही कभी कभी पुराने संस्कार अभ्यास के समय उभरा करते हैं। अभ्यासी को इससे घबराना नहीं चाहिये। ये बुरे विचार निकल जाने के लिये, मिट जाने के लिये ही आते हैं। इन्हें रास्ता देना चाहिए। उनका पल्ला नहीं पकड़ना चाहिए। पल्ला पकड़ने से वे पुनर्जीवित हो जाते हैं और मुकाबला करने लग जाते हैं।

जैसे गाड़ी चलाने वाला पथ पर दृष्टि रखता है वैसे ही हमारी दृष्टि वृत्तियों पर होनी चाहिए। बुद्धि की विवेकवती वृत्ति मार्ग पर रहनी चाहिये। यदि वह कभी मार्गच्युत हो जाय तो विचारना चाहिये कि ऐसा क्यों हुआ। दृष्टि ही ऐसी बना लेनी चाहिये कि बिना विचारे ही अपने आप पता लग जाय कि ऐसा क्यों हुआ। इससे यह ऐसे ही अपराध को दिखा देगी जैसे लैम्प चीज़ को दिखा देता है। जो चीज़ें संयम को बिगाड़ती है उनके आगे दीवार खड़ी करनी चाहिये।

यदि कभी जानकर या अनजान से कोई भूल अथवा अपराध हो जाय तो उसका प्रायश्चित करना चाहिये। इससे अन्तःकरण निर्मल होता है और पाप का कांटा निकल जाता है। स्वाध्याय, जप, उपवास आदि प्रायश्चित हैं। जिनका ध्यान में मन नहीं लगता उन को दस, पन्द्रह, इक्कीस, इक्तीस लाख अथवा इससे अधिक जप करना चाहिये। नाम का सवा करोड़ जप करने से तो वैसे ही मन शान्त हो जाता है और मंत्र सिद्ध हो जाता है।

अपने कार्यों पर दृष्टि रखनी चाहिये। इसके लिए पहले-पहले कुछ समय तक श्रम करना पड़ता है। फिर यह स्वभान बन जाता है तथा इसके लिये श्रम नहीं करना पड़ता, फिर ऐसी वृत्ति ही बन जाती है। पर यह वे ही कर सकते हैं जिनमें लगन अधिक है।

, है।
चीज़
। यह

पड़ती
उभरा
विचार
रास्ता
पकड़ने
हैं।
। हमारी
त्ति मार्ग
व
कि
यों हुआ।
को दिखा
खड़ी

। अपराध
:करण
स्वाध्याय,
मन नहीं
थवा इससे
से तो
है।
-पहले
बन जाता

ऐसा सोचना चाहिये कि हमने जो साध
किया उसके लिये कितना श्रम किया औ
कितना श्रम किया है।

मनु ने कहा है कि ब्रह्म मुहूर्त में ज
समय, धर्म, अर्थ तथा शास्त्र के तत्त्व का

प्रातः काल उठना उपयोगी होता है।
करने से अधिक लाभ होता है क्योंकि उ
नहीं होते तथा प्रकृति भी शान्त होती
विक्षेप नहीं होता। आकाश में मानस
वातावरण को खराब करती है किन्तु प्रात
रोकने वाले तरंग कम होते हैं। उस सम
होते हैं। इसलिये प्रातः काल साधन के
दिव्यलोकों के नाद भी अवतरित होते
सुनाई देते हैं, कोलाहल के समय नहीं।
होता है। उनसे मन स्थिर हो जाता है,

साधना के लिये श्रम करना चाहिये।
के लिये भी श्रम करते हैं।

हमारा साधन मन्त्रयोग है। मन्त्र में
मन्त्र मूर्ति है। यह भगवान् कृपा का म
बाध्य नहीं करना चाहिये। इसमें तो
खिड़की खोलता है, फिर उसमें भगवत्
आती है।

बहुत से साधक समझते हैं कि मन क
किन्तु रोकने से वह अधिक चंचल होता
इसको ढीला करना। इससे वह अपने अ
व्यवहारिक मन की उपेक्षा करनी चाहिये
स्फूर्ति होती है। जिस प्रकार नींद का चि
आती अपित भावों को शिथिल कर देने

मन अधिक चंचल होता है। विवेक अधिक होना चाहिए, खींच नहीं होनी चाहिए। भगवत्कृपा का मार्ग मन को घेरने का मार्ग नहीं। इसमें मन को शिथिल करना चाहिए, उसकी उपेक्षा करनी चाहिए। यह समझना चाहिए कि मैं तो नाम का ध्यान करता हूँ। मन के इधर उधर जाने को व्यर्थ समझना चाहिये। स्वभाव से जो काम होता है वह प्रयत्नपूर्वक किए जाने वाले काम की अपेक्षा अधिक अच्छा होता है।

साधना से वृत्ति स्वयं शांत

यदि ध्यान में एकाग्रता आदि कम होती है तो साधक को समझना चाहिये कि उसमें कोई त्रुटि है जिससे उन्नति नहीं होती। यह त्रुटि शारीरिक अथवा मानसिक अवस्था में हो सकती है। ऐसा होने पर साधक को धरना लगा देना चाहिये और डट जाना चाहिये। फिर देखें सफलता कैसे नहीं होती। सिरदर्द, दिल धड़कन या किसी और कष्टों की चिन्ता न करें। यदि ध्यान में मन नहीं लगता तो जप करें और खूब करें। काम काज करते और चलते फिरते समय धुन लगी रहे। तात्पर्य तो वृत्ति लगाने से है, विधि चाहे कोई हो। चाहे बैठकर लगे, चलते फिरते लगे, जैसे भी लगे, वृत्ति लगानी चाहिये, एकाग्रता होनी चाहिये। जप से भी वैसे ही लाभ होता है जैसे ध्यान से। इस प्रकार श्रद्धा और विश्वास से एक क्रोड़ जप करने से वृत्ति स्वयं शान्त हो जाती है।

उन्नति न होने के कई कारण हो सकते हैं। भोजन इत्यादि भी विघ्न डाल सकते हैं। ऐसे ही अर्थात् पैत्रिक दुर्बलतायें भी हैं जो विघ्न डाल सकती हैं। ऐसी और भी कई बातें हैं। अपने माता-पिता की ओर अपना बर्ताव, स्त्री व बच्चों से वर्ताव, मन में क्रोध की अधिकता, विषय सेवन की अधिकता, इत्यादि। इन सब बातों को साधक को स्वयं सोच कर विचारना चाहिये कि उसमें कौन सी त्रुटि है। इसको दूर करने का यत्न करना चाहिये। गुरु भी साधक की इस में सहायता कर सकता है। पर जब साधक

अपना मन खोलकर उसके आगे रख दे। क्योंकि एक डाक्टर रोगी का तब ही उपचार कर सकता है जब रोगी उसको अपनी स्थिति से पूरा परिचित कर दे।

ऊंचे स्वर से नाम उच्चारण करने से भी एकाग्रता हो सकती है। बैठना आवश्यक नहीं, लेट कर ध्यान किया जा सकता है। जिस आसन से वृत्ति ठीक हो जाये वही ठीक है। फिर भी बैठना अच्छा ही है।

अपने आपकी आलोचना भी करनी चाहिये। ऐसा करने से आत्मा सब बुराईयों को चीर कर ऊपर आ जाती है। क्योंकि आत्मा प्रबल है। आलोचना करने का यह तात्पर्य नहीं कि हर समय ध्यान दोषों की ओर ही लगा रहे।

आधे पेट भटकते फिरना बड़ी त्रुटि है अर्थात् पूरी लगन व उत्साह से साधन न करना। हरिद्वार पर धरना लगा देना चाहिये, फिर वह आप सब संकट हरेगा और मार्ग स्पष्ट कर देगा।

बन्धु भावना

सब सम्बन्धों से अध्यात्मिक सम्बन्ध मूल्यवान है और आगे भी साथ जाता है। सांसारिक सम्बन्ध उसके सामने कोई मूल्य नहीं रखते। प्रत्येक साधक को दूसरे से बन्धु भावना करनी चाहिये और उसकी यथा शक्ति सहायता करनी चाहिये।

साधना स्वभाव बने

साधना सत्संग से जो सज्जन अपने घरों को जाते हैं, उनमें यह तो है ही कि वे अपने कार्य नियम से करते हैं, वे सब कार्य करते हुए जाप का करना बनाये रखते हैं। वास्तव में साधना जब व्यक्ति करे और उसके स्वभाव में बात बसे तो ही समझना चाहिये कि साधना का लाभ।

हम कोई बहुत वर्णन भी नहीं करते फिरते, हम अर्थात् सत्संग में एकत्रित होने वाले। न ही किसी पत्रों द्वारा ही प्रचार किया जाता है। पर शुभ बातें सहज से फैलती हैं, ऐसा यह होता है। अमृत-वाणी माहात्म्य या इसके संबन्ध में बहुत बोलना —ऐसी

बात की नहीं जाती। ऐसे प्रचार में इस बात को लाभ नहीं। पर अमृत-वाणी का पाठ वे भी करते जो इस को पढ़ते। वे मुझ से मिले भी नहीं। इस युग की जो रीति है वह प्रचार की है। वह राजनीति के हिसाब में ठीक पर अध्यात्मवाद के लिए यह कभी पिछले युगों में भी बरती नहीं गई। बहुत बोलें या पत्र कोई निकालें तो जिन बातों को लोग नहीं जानते उनको भी बोलना।

अच्छाई यदि बस जावे तो अपने आप फैलती है। अध्यात्मवाद गणित शास्त्र के समान है क्योंकि यह सभी देशों में एक जैसा है। शब्दों के नाम यद्यपि भिन्न हों पर परिणाम एक जैसे हैं। अध्यात्मवाद काल्पनिक बात नहीं। गणित शास्त्र में यदि एक अंक ओझल करने से एक भूल हो जावे तो वह अन्त तक जाती है।

बहुत लेख निकलने लगें तो वह सन्तवाद नहीं रहता। इसमें अर्थवाद आ जाता है। वर्णन करने वाला बड़ा सिद्ध होकर बोलता, फिर उसमें अभिमान आ जाता है। मेरे एक मित्र थे। वे लाहौर में रहा करते। धोती, नेति आदि योग साधन सिखाया करते। हर एक से उसकी अनुभूतियां पूछते। समझो मैं पूछने लगूं तो कौन कह दे अपनी अनुभूतियां या त्रुटियां। इससे व्यवहारिक मन और मायाभरी वृत्ति खुल जाते। इसलिए सन्तों ने गुण ही गाये हैं प्रभु के, अपनी बातें कम कहीं हैं। योग पर भाषण होते हैं पर वे अधिकतर रोग ही होते हैं। एक प्रिंसिपल ने कहा किसी से कि योग पर बोलो। वहां संस्कृत की बड़ी शिक्षा थी। तो यही कहा अपनी रीति से कहूंगा। एक तो है अन्य पुरुष (Third person) वाली रीति—जैसे, जो लोग अनुभव करते हैं उन को ज्ञान। पीछे प्रिंसिपल ने व्याख्यान के पश्चात् यही कहा कि उसने किताबों में भी ऐसे ही पढ़ा। विद्यार्थियों ने भी वैसा ही कहा। साक्षी दूसरे की भी होनी चाहिये, मिली चाहिये। आप एक ऐसे पैदा हुए ऐसा क्यों कहो। वे प्रिंसिपल भी दूसरे की साक्षी से बोले। तो मुझे कहना यह है कि योग सिद्धि सदा वर्णन से गुप्त ही रही है। गुण ही गाए। पर अभी तो मैं यही कह रहा हूँ कि इस नास्तिकता के यौवन युग में सबसे उत्तम साधन है संतवाद। संस्थाओं आदि में तो पाखण्ड भरा पड़ा है।

भावना प्रबल बनाओ

राम नाम के आराधन के लिये मन पूर्णतया एकाग्रित होना चाहिये। व्यवहारिक मन को दबा कर अंतरात्मा को जागृत करना चाहिये। पवन पानी में लहरें उत्पन्न करती है। इसी प्रकार अन्तर्मन की जागृति तथा व्यवहारिक मन का वशीकरण मन के आनन्द को उत्पन्न करता है। मन को जबरदस्ती कभी आनन्दित नहीं किया जा सकता।

भक्ति मार्ग में बिना निश्चय के अधिक लाभ होना संभव नहीं। किसी भी व्यक्ति अथवा साधक अथवा दर्शनाभिलाषी की इच्छा परमेश्वर को अपने सम्मुख उपस्थित देखने की होगी। वेदान्तियों की धारणा है कि भगवान तो सर्वव्यापी है। यदि वह रूप धारण करके किसी एक व्यक्ति के सम्मुख उपस्थित हो जाए तो वह सर्वव्यापी कैसे रहेगा। किन्तु हमारा निश्चय है कि जिस प्रकार कोई भी बोला हुआ शब्द वायु-मंडल में सर्वत्र प्रसारित हो जाता है, किन्तु वह तभी सुनाई देता है जब रेडियो की सुई एक विशेष बिन्दु पर आये। इसी प्रकार हम जिस किसी भी रूप में परमेश्वर को देखना चाहें, उसे देख सकते हैं। वे आपका कष्ट निवारण करने के लिये व आपके साथ खेलने के लिये आपको दर्शन देंगे।

यदि आपका निश्चय दुर्बल हो तो भी परमेश्वर से प्रार्थना करने पर वह आपको सहायता करेंगे तथा आपको पूर्ण निश्चय देंगे।

भजन पाठ के संबंध में जो कुछ कहा गया है आपको उसका मनन करना चाहिये। भावना को जितना प्रबल बनाया जावे उतना ही लाभ है क्योंकि अंत में हमारा जगत भावनामय ही है, जो कुछ हम हैं वह भावना से ही हैं। भावनाएं संस्कारों से भी बनती हैं। पर कुछ भावनाओं के मूल में सच्ची बातें भी होती हैं। जैसे कि हम ऋषि-सन्तान हैं। भावना में बड़ा बल है। भजन पाठ में भावना प्रबल बनानी चाहिये यह हमारे कथन का सारांश है। लूईकोन के स्नानों में भी भावना से ही लाभ होता है नहीं तो पाण्डे

लोग पानी में कितनी-कितनी देर रहते हैं उनको उससे कोई लाभ नहीं होता क्योंकि उनकी उस में स्वास्थ्य की भावना नहीं होती।

जब उपासना में बैठो तो समझो, देवता सामने विद्यमान है और भगवद्-कृपा अवतरित हो रही है। भावना सजीव होनी चाहिये, निर्जीव नहीं।

आत्मा में दुख नहीं है और न ही प्रकृति में दुख है। दुख तो विकार में है। भावना करनी चाहिये कि प्रकृति माता के समान पालन करती है। यह मधुमती है। इसकी गोद में बैठना चाहिए। यह भावना करनी चाहिये कि जो नदियां चलती हैं वे मधुओं भरी हैं। इससे जल अनुकूल हो जाते हैं इसी प्रकार प्रकृति की अन्य वस्तुओं में भावना होनी चाहिये। संसार भावनामय है। जैसी भावना की जायगी, वैसा ही संसार बन जायेगा। आत्मा तो बड़ी ऊंची वस्तु है पर शरीर को भी हीन नहीं मानना। अपने संसार को अपने विचार बल से, अपने बौद्धिक बल से भद्र बनाना चाहिये।

भजन ध्यान करते समय भावना लानी चाहिये कि जिस महाशक्ति का हम ध्यान करते हैं वह यहां विद्यमान है। मैं तो, जब हम कीर्तन करते हैं, ऐसा अनुभव करता हूं, कि वह महाशक्ति यहां विद्यमान है। और भी सज्जन हैं जो ऐसा अनुभव करते हैं। पर यह केवल भावना की ही बात नहीं है, वास्तव में वह शक्ति विद्यमान होती है पर उसका अनुभव भावना से ही होता है। यदि इतने दिनों का (छः दिन का) अखण्ड जाप भावना से हुआ है तो उस स्थान में एक विशेष शक्ति पैदा हो जानी चाहिये जिससे जो भी वहां जाय प्रभावित हो जाय।

साधन को जीवन का मुख्य अंग बनाना चाहिये। इसमें कभी आलस्य व प्रमाद नहीं करना चाहिये। इसको कार्यों से अधिक महत्त्व देना चाहिये। इसको गौण नहीं बनाना चाहिये। इसको गौण बनाना इसकी अवहेलना करना है और जिसकी अवहेलना की जाय तो फिर वह भी अवहेलना करता है।

अपना निजी काम केवल उपासना का काम ही है। बाकी

काम दूसरों के लिये हैं—परिवार के लिए, बरादरी के लिये, देश के लिए। ये भी सभी अच्छे हैं पर अपनी आवश्यकता अपना काम करने से ही पूर्ण होती है।

श्रद्धा हृदय का भाव है। यह आन्तरिक वृत्ति है। बाहर तो इसका प्रकाश होता है। प्रातः का समय बहुत ही निर्मल होता है। यदि उस समय मनुष्य कोई सेवा का व्रत ले तो वह व्रत अधिक फलेगा। सोकर उठते हुए आदमी का मन दूसरे जगत में होता है। यदि किसी समय में सदा ही वसंत रहती है तो वह प्रातः का समय है।

ब्रह्म मुहूर्त में जगकर आदमी संसार यात्रा का अथवा अपनी कमियों का चिन्तन करे तथा साथ ही उनको दूर करने का चिन्तन भी करे। प्रातः काल उठते ही भगवान की आराधना करना तथा अपनी आन्तरिक भावनाओं को जगाना चाहिये।

श्रद्धा पैदा करना साधना का काम है। यह व्यक्ति प्रातःकाल क्रिया करे। श्रद्धा देवी का पूजन प्रातःकाल होना चाहिये। इसके मन्दिर में बैठना अवश्य चाहिये। मध्याह्न समय में भी श्रद्धा का स्मरण करना चाहिये। फिर सूर्यास्त के समय श्रद्धा का आह्वान करना चाहिये। यह समय विश्राम करने का हैं।

साधन की जीवन में प्रमुखता

सत्संग में बताई बातों का ध्यान, मनन तथा आदर करना चाहिये। साधन काल दीर्घ होता है। उपासना प्रथम, बाद में मिलन। पहले प्रमुख रूप से अपने प्रभु से नियत समय पर मिलें। बाद में मित्र से यदि मिलना हो, तो मिलें। उपासना को प्रथम स्थान दें।

अन्य वस्तु गौण समझो। साधक के घर दैवी शक्ति आती है। यदि उसका आदर न किया तो भविष्य में कृपा रुक जाती है। प्रतिज्ञा में "जहां तक" का शब्द हानिकारक है। यह प्रतिबंध नहीं चाहिये। साधना अवश्य करूंगा, मृत्यु पर्यन्त नहीं छोडूंगा ऐसा वचन देना चाहिये। वचन देने पर वचन का पालन होना चाहिये।

यह दुर्लभ मनुष्य-जन्म पाकर काल को जीतना है। साधना को सर्वश्रेष्ठ मानना चाहिये। सब काज तज कर पहले साधना करे, वह श्रेष्ठ अधिकारी है। निरन्तर साधन करना चाहिये। ऋतु अनुसार ध्यान का समय बदला जा सकता है। जो विशेषता चाहते हैं उन्हें विशेष समय देना चाहिये। जो विद्यार्थी विशेष नम्बरों से पास होना चाहता है, उसे अधिक परिश्रम करना पड़ता है।

अपने आपको कुलक्षयी, दुराचारी न वनाओ। जो सिनेमा दूषित है, उसे नहीं देखना चाहिये क्योंकि उससे बुरे संस्कार पड़ते हैं। कर्महीन व्यक्ति ही आलोचना करते हैं। उनकी आलोचना उचित नहीं। छैल छबीले न बनो, खान पान सब अपनी स्थिति के अनुसार वनाओ। नियम को पालने की चेष्टा करो। जब तक ऐसी भावना न हो तो अच्छा नहीं है। संसारी वस्तु के लिए हठ करते हो, भजन के लिए क्यों नहीं? बादल गरजते समय रेडियो प्रोग्राम की आवाज नहीं आती। इसलिए शान्त समय में साधन करो। दिन के कोलाहल में ईश्वरीय तरंगें पकड़ने में नहीं आतीं, आदरपूर्वक भगवान का सामीप्य अनुभव करते हुए उपासना करनी चाहिए।

सन्तों ने रागद्वेष रहित होकर निष्पक्ष स्पष्ट वर्णन किये हैं। वे अध्यात्म में रहकर अनुभूत बातें कह गये हैं। ब्रह्म द्वेषी को मारने के लिए भक्त का धनुष भगवान स्वयं तानते हैं। जीवन को सीधा, सच्चा, सरल वनाओ। वड़े भाव से, श्रद्धा से नाम की उपासना करो। आसन चौकी विछा कर रखो। नाम सजावट के लिए नहीं वरन् पूजन के लिए है।

ब्रह्म मुहूर्त में साधना

जिन्हें बहुत लगन हो और जो अपने में कोई परिवर्तन करना चाहें उन्हें चाहिये कि वे ब्रह्म मुहूर्त में उठकर साधन करें। वह समय बड़ा उत्तम होता है। आधी रात के बाद का समय सारा ही बड़ा उत्तम होता है।

जप बहुत करना चाहिये। अन्त:करण के पुराने संस्कार जप से निकलते हैं। जिस प्रकार जब तक कोई चीज़ पहले खाली न कर ली जाय तब तक उसमें कोई नई चीज़ नहीं भरी जा सकती, इसी प्रकार पहले मन को अहंभाव से खाली करना चाहिये, फिर उसमें राम बसेगा। साइको-एनलिसेस (psycho-analysis) एक चिकित्सा है। इसमें रोगी को लिटा देते हैं और उसको कहते हैं कि "तू बोलता जा, बोलता जा"। पहले रोगी झिझकता है, पुन: झिझक जाता है, पर फिर बोलने लग जाता है। अपने जो पाप ताप उसने अपने मित्रों से छिपाकर रखे होते हैं वे भी उसके मुंह से विवश निकल जाते हैं। उन्हीं विचारों से डाक्टर लोग उसकी बिमारी का कारण ताक लेते हैं। उन विचारों के निकल जाने से रोगी अच्छा हो जाता है। जो डाक्टर बनता है उसको भी पहले ऐसे ही लेटना पड़ता है और बोल पड़ता है। जब उसके अपने सब विचार निकल जाते हैं और अन्त: करण निर्मल हो जाता है तब वह डाक्टर बनने के योग्य होता है। राम नाम के जपने से भी ऐसे ही कुसंस्कार बाहर निकलते हैं और उनके निकल जाने पर अन्त में हृदय निर्मल हो जाता है। साधक को धैर्य से जप करते रहना चाहिये। यह नहीं समझना चाहिये कि मुझ में यह विचार पैदा होते हैं और मेरा मन नहीं लगा अपितु यह समझना चाहिये कि यह हमारे कुसंस्कार निकल रहे हैं। जिस प्रकार बच्चे को अपनी मां पर निर्भरता होती है उसी प्रकार साधक को अपने पथ प्रदर्शक तथा साधन पर निर्भरता होनी चाहिये। बच्चे को संशय वृत्ति नहीं होती। इसी प्रकार साधक में भी निर्भरा भक्ति होनी चाहिये। यह (निर्भरा भक्ति) आ जाने पर फिर भगवान को स्वयं साधक की चिन्ता हो जाती है। संसार में तूफान आते रहते हैं। पर जब नाम के जहाज में बैठ गए तो तूफान से नहीं डरना चाहिये। उस पर भरोसा करना चाहिये। नाम की चिकित्सा बड़ी ऊँची चिकित्सा है। देर लग जाय तो घबराना नहीं चाहिये और यह भावना दृढ़ होनी चाहिये कि अब नामी को हमारी चिन्ता है, हमें कोई चिन्ता नहीं।

साधन की दृढ़ भूमि

साधन में प्रीति होनी चाहिए। साधन में दृढ़ भूमि प्राप्त करने के लिये ये तीन बातें होनी आवश्यक हैं–

1. दीर्घकाल तक करना चाहिये।
2. निरन्तर करना चाहिये।
3. प्रेमपूर्वक करते रहना चाहियें।

समय की अवधि नहीं बांधनी चाहिये। दो मास या छै मास या वर्ष कोई समय नियत नहीं करना चाहिये। साधन में बाधा डालने वाली बहुत सी चीजें होती हैं पर उनसे निराशा नहीं आनी चाहिये। नामयोग में यह समझना आवश्यक है कि इसमें भगवत्-कृपा से ही सब कुछ होता है। यह मेहनत से प्राप्त होने वाली वस्तु नहीं है। यह तो भगवान की कृपा से ही सुलभ है। मुझे भी यह भगवत्-कृपा से ही प्राप्त हुई है पर फिर भी परिश्रम करना ही चाहिये। किसी के अन्दर अपनी शक्ति का प्रकाश होना बादलों में बिजली के प्रकाश के समान है। और यह उसकी कृपा नहीं तो क्या है? इसलिये भगवान की कृपा पर बड़ा विश्वास होना चाहिये। जो बात बड़े परिश्रम से पैदा होती है कभी कभी वह सहज में भी मिल जाया करती है। यह भगवत्-कृपा ही समझनी चाहिये। नामयोग ऐसा ही साधन हैं।

किसी प्रकार भी कोई कर्म करते रहने से आदमी में कोई न कोई कला पैदा होती है। किन्तु भगवत्-कृपा का मार्ग बहुत निराला है और सोचने की बात यह है कि किस सवारी से कितने समय में पहुंचते हैं। इसलिये भावना बड़ी प्रबल बनानी चाहिये और यह समझना चाहिये कि भावना का मार्ग बड़ा उत्तम है और प्रंशसनीय है। पूरे दिल से अन्य कोई भावना रखे बिना इस मार्ग पर चलने से कोई आश्चर्य नहीं कि एक दम स्थिति हो जाय और बाद में उसे वह स्थिर करने के लिये निरन्तर साधना करता रहे।

यह कृपा का मार्ग है। आत्मा की स्थिति ऐसी होनी चाहिये कि शब्द आया और ग्रहण किया। बालक बनना चाहिये। हमारी

बुद्धि भिन्न-भिन्न पुस्तकें पढ़ने से चंचल हुई है उसे स्थिर करना आवश्यक है।

साधन में प्राप्त हुई स्थिति को स्थिर करने के लिये भूमि दृढ़ होनी चाहिये। जब भूमि दृढ़ हो जाती है तो फिर पतन का भय नहीं रहता। जिस प्रकार स्वास्थ्य प्राप्त हो जाने पर भी कुपथ्य करने से फिर स्वास्थ्य बिगड़ जाया करता है। किन्तु यदि स्वास्थ्य की जड़ प्राप्त हो जाये तो फिर जल्दी स्वास्थ्य नहीं गिरा करता। यही अवस्था दृढ़ भूमि की है। जब भूमि दृढ़ हो जाती है तो फिर विशेष क्रिया की भी आवश्यकता नहीं रहती, पर साधक प्रायः करते रहते हैं। भूमि दृढ़ करना कुछ अपने आधीन भी है। इसके लिये प्रयत्न करना चाहिये।

चेतन मन ने अपने आपको लोभ से, मोह से, ईर्ष्या से युक्त कर रखा है। जब आप कोई काम करने लगेंगे तो कोई भाव विरोध का भी पैदा होगा और ऐसे तो आकाश में भी विरोधी तरंगें होती हैं। विरोध होता ही है। सूक्ष्म दुनियां में भी कोई ऐसी धारा होती है कि जब आदमी बढ़ने लगता है उसे वह अनेक प्रकार से बहकाती है। माया का बना हुआ अपना मन भी भूत बनकर लक्ष्य से गिरा देता है। यह विरोधी बातें आसुरी कहलाती हैं। जब मनुष्य का पतन होता है तो होता ही चला जाता है। जब व्यक्ति को अपने लक्ष्य पर पूरा निश्चय हो तो वह गिरा नहीं करता। यह निश्चय होना चाहिये कि मेरा लक्ष्य है भगवान की कृपा।

ऐसा निश्चय होने पर भीतरी और बाहरी विरोध उसे गिरा नहीं सकते और व्यक्ति लक्ष्य पर स्थिर रहता है। जिन्होंने छोटे-छोटे मंत्र सिद्ध किए हुए हैं, (जैसे हनुमान, भैरव, व सांप आदि के), वे भी किसी से भय नहीं खाते। फिर जिसने परम पद का मंत्र सिद्ध किया हुआ हो वह क्या नहीं कर सकेगा? उसको भय किससे हो सकेगा? भूत इत्यादि जो अपने सामने खड़े हो जाया करते हैं, अपने ही मन की वृत्तियों से पैदा हुआ करते हैं। उनसे डरना नहीं चाहिये। आसुरी वृत्तियों को मारने के लिए भगवान का नाम परम सिद्ध मंत्र है।

मन्त्र योग

मन्त्र में बड़ा बल है। हर साधक को इसे खूब मनन करना चाहिये। ऐसा न करे तो मन्त्र में मन्त्रित नहीं आता। अब आप इसको जपने लगे तो समझना चाहिये कि मन्त्र बड़ा बलवान है। प्रणाम करना चाहिये। शब्द प्रणाम एक साथ बोलना चाहिये। नहीं तो शुद्ध उच्चारण नहीं रहता।

मन्त्र शक्तिशाली है। ऐसा इस बात का मनन हो कि यह दृढ़ीभूत हो जावे। यह राम, जो परमात्मा है, यह सर्व शक्तिमान है, ऐसा साधक का विचार रहे। इसका अर्थ ही शक्तिमान है। इस बात को अधिक मनन करे। यह भावना यदि न हुई कि वह परम पुरुष शक्ति का भण्डार, बलिष्ठ, इस मन्त्र में ही विद्यमान है तो फिर कुछ बात नहीं हुई। जब आराधन करने के लिये बैठो तो नमस्कार करके बैठो।

पैर पकड़ने जैसे रिवाजों में देखा गया है कि पैर पकड़ कर छोड़ने का नाम नहीं लेते। मैं तो इसको कुरीति समझता हूँ। इसमें कोई बड़ा महातम नहीं। कोई बड़ी सिद्धि नहीं। जब हम किसी दूसरे मित्र या मनुष्य को मिलते हैं तो झुक कर नमस्ते करते हैं। किन्तु कुछ ऐसा संस्कार है कि भगवान के दरबार में सर झुकता नहीं। ऐसी बड़ी भूल क्यों? वही हाल हुआ न –

तोड़कर बुतखाने को मस्जिद बनाई शेख ने।
वहाँ तो कोई सूरत थी यहाँ तो साफ वो भी।।

देवता को स्थापित करना चाहिये। जहाँ का रेडियो सुनना होता है वहाँ सूई जानी चाहिये। और आप तो उस देव के सामने बैठते हैं जहाँ एक नहीं संसार भर की तरंगें आती हैं।

कहने का तात्पर्य यह है कि देवता की स्थापना करनी चाहिये। एक गले सड़े मनुष्य को भी हम मिलते हैं तो नमस्ते करते हैं। ऐसा रिवाज बनाया है। किन्तु मैं तो कहता हूँ कि मन्त्र के सामने झुकना चाहिये। और इस बात का खूब मनन करें। इतना करें कि कभी भूल न हो।

एक सेठ का लड़का तो पैसे की कीमत को नहीं जान पाता जब तक धन स्वयं न कमाया हो। जिन्होंने इस प्रसाद के ज्ञान, आध्यात्मिक ज्ञान को जाना है उन्हीं में यह बात कहने की है। ऐसी ही संगति में यह कही जाती है। सामूहिक कहने की नहीं है। मन्त्र का महत्त्व समझना चाहिये। मनन करना चाहिये। मनन कराना चाहिये।

मूलाधार से उपरि चक्र तक शक्ति का स्फुरित करना तो मन्त्र ही की शक्ति है। यह तो मन्त्र योग से ही होता है। जैसे जवाहरलाल जी हवाई जहाज में ही चढ़ कर इतना शीघ्र इतनी लम्बी यात्रा करते हैं। मोटर पर चलकर थोड़े समय में इलैक्शन की देश भर की यात्रा करनी सम्भव नहीं है।

मन्त्रयोग से सुरती, नाम में सवार होकर पहली बारी में दसों चक्रों से पार हो जाती है। यह तो महाराज की अपनी लीला है। यह उनकी कृपा का प्रसाद है। यह तो बिना परिश्रम है। यह तो ऐसा है जैसे मेरे जैसा कंगाल किसी के द्वारे गया और उसने झोली में हीरा डाल दिया और फिर उसने किसी और को दे दिया।

मैंने तो निवेदन किया है आपके आगे कि खूब मनन करो, खूब मनन करो। मनन करो और यह समझो कि जितना मनन करोगे उतना ही लाभ होगा।

स्वप्न में भी ऐसा विचार न आवे कि कोई और मन्त्र कल्याण करेगा या कोई और पथ है। किञ्चित् भी यह विचार करना तो पथ से गिरना है। जिसने स्वप्न में भी ऐसा सोचा उसने महत्त्व जाना ही नहीं। यहाँ तो ऐसा होना चाहिये जैसे सीता ने कहा कि मैं सिवाय राम के कोई पुरुष नहीं देखती। रामचन्द्र जी ने कहा कि सीते! तुम्हारे जाने के बाद तो मुझे कोई अन्य स्त्री दिखाई नहीं देती।

मीरा को तुलसी जी ने लिखा है, जब मीरा की पत्रिका मिली कि राणा तंग करता है, मैं क्या करूँ —

जाको प्रिय न राम वैदेही।

ताको तजिये कोटि बैरी सम, यद्यपि परम स्नेही।।
जाको प्रिय न राम वैदेही।

वह ही भगवान का भक्त होता है जो इस प्रकार सोचता है। फिर उस भगवान के भक्त में तो भगवान की कृपा होती है। अनन्य भक्ति इसी को कहते हैं। जिसमें यह आ गई, उसका बेड़ा पार हो गया।

नोट– (उस समय प्रायः सारे साधक सजल नयन थे। स्वामी जी ने शान्त करते हुए कहा) "प्रेमाश्रु जो आगये, इसमें तो पाप धुले।"

अनन्य भक्ति

रात्रि के समय भजन करने वाले को सन्तकृपा प्राप्त होती है। भक्त रात को रामधुन गाता है, आकाश लोक का कोई दर्शक सुन ले "सारी दुनिया इक पासे, मेरा राम अकेला इक पासे" तो गायक आशीर्वाद पाता है। सन्तकृपा का एक क्षण जीव की जन्म भर की कमाई से अधिक महत्त्व रखता है।

बी० ए० और एम० ए० की परीक्षा के लिये अधिक से अधिक समय लगाते हो किन्तु राम भजन में नहीं। विचार शक्ति से काम लो। रामकृपा सहज नहीं है। वह अधिक से अधिक श्रम करने से ही संभव है। अविराम निरन्तर साधना करनी चाहिए। बड़े मान और आदर के साथ ध्यान में बैठना चाहिये। चारों ओर शान्ति हो ऐसे समय में अभ्यास करो। भावना ऊँची होनी चाहिये। इस कार्य के लिए अधिक से अधिक समय दो। समय प्रशान्त होवे। अखण्ड जाप भी पुरुषार्थी के लिए है। जप करते करते अनुभूतियाँ होती हैं। यह एक शिक्षण है।

भगवान में अनन्य भाव यदि हो तो उद्धार हो ही गया। मरने से बचने की चिन्ता की कोई बात नहीं है। भगवान का वचन है, भक्त को विश्वास दिलाया है। प्रामाणिक वचन भगवान के विश्वसनीय हैं। फिर सन्देह की बात इस भगवद् वाक्य में क्यों हो?

लिखे पढ़े आदमी में संतोष बहुत कम है। कारण कि उसकी इच्छाएं बहुत हो गई हैं जो पूरी होनी असम्भव हैं। मनुष्य में धारणा नहीं रही। धार्मिक जगत भी बहुत चंचल है। इस कारण भगवान की विभूतियों का अवतरण नहीं होता। भगवान तो उद्धार करते हैं। किन्तु तब, जब कि हमारी भक्ति अनन्य हो, अन्यत्र दृष्टि न हो। जब मंन बुद्धि भगवान में लग जाये तो भगवान में ही भावना से भावनामय जगत में, मनुष्य भगवान के समीप रहता है। भंवरा दूर वन से आ जाता है कमल में, किन्तु पानी में रहने वाला मेंढक कमल में नहीं आ पाता।

अनन्य भक्ति वड़ी ऊंची है, मनन करने से वह आती है। भगवान के द्वार पर जाकर, फिर अन्य द्वार जाकर खटखटाता फिरे तो शोभा नहीं देता। अनन्य भक्ति सर्वश्रेष्ठ भक्ति है, सर्वोच्च है। परा विद्या ही अनन्य भक्ति है।

नारदभक्तिसूत्र में कहा है "परमेश्वर में परम प्रेम हो" पातंजलि ने कहा है, "यज्जपत्तदर्थभावनम्।" बार बार आराधित किया हुआ भगवान उसी व्यक्ति पर अनुग्रह करने लगता है। सब ग्रन्थ इस बात को दुहराते हैं। अतः अनन्य भक्ति की साधना करो। अवश्यमेव कल्याण होगा। गीता, अध्याय 12 में वर्णित अनन्य भक्त के लक्षणों का पाठ करो, कण्ठाग्र करो और जीवन में उतारो, तब लाभ होगा।

उन्नति चिन्ह

आत्मशक्ति जगने तथा भगवत्कृपा अवतीर्ण होने के ये लक्षण हैं-देहपात होना, कम्प होना, हर्ष होना, हँसने लग जाना, पसीना आ जाना व रौंगटे खड़े हो जाना। यह सब लक्षण सब में नहीं होते किसी में कोई और किसी में कोई प्रकट होता है। कीर्तन में शिथिलता होनी चाहिये अर्थात् जो हरकतें होती हैं उनको रोकना नहीं चाहिए।

जव हृदय की ग्रंथि खुलती है तब सुषुम्णा जगती है। कम्प होना, पसीना आना, हर्ष होना, हंसना, सूक्ष्म लोक में जाना,स्थूल

देह से बाहर होना, देहपात होना, रोमांच हो आना, प्रकाश का प्रतीत होना आदि किसी को प्रतीत होना कि नीचे से कोई चीज़ ऊपर जाती है, किसी किसी का लम्बे पड़ जाना, ये सब—आत्मजागृति के चिन्ह हैं। इसको शक्ति की जागृति भी कहते हैं—मूलाधार से सहस्त्रार तक। भगवत शक्ति का जब अवतरण होता है तो स्वशक्ति का उत्थान होता है। यह (आत्मा) पुकारता है, वह (भगवान) आता है। अवतरण की अवस्था को जानने के लिये विश्वास होना चाहिये।

हमारा नाम केवल नाम नहीं अपितु हम नाम में देवता को स्थापित करते हैं। जिसमें शक्ति जागरण का कोई चिन्ह प्रकट न हो उसे और अधिक जप करना चाहिये। न जाने उसका कौनसा संस्कार बाधा डाल रहा है। जप से वह बाधा हट जायगी। सूर्य का प्रकाश तो आ रहा है, बिजली की धारा तो आ रही है, और जप करो, और जप करो। विश्वास करो, भगवान से संबंध तो उस दिन ही जुड़ गया जब हमने नाम लिया। इधर उधर नहीं देखना चाहिये।

शक्ति को जगने देना चाहिये। खिड़की को सिकोड़ना चाहिये, किरण को आने देना चाहिये। अपना मान, आदर, बड़प्पन ढीला करो। ध्यान में एकाग्रता होनी चाहिये, नाम का स्पष्ट उच्चारण करना चाहिये। मेरा जीवन विलक्षण है। मैं और भाव से रहता हूँ। वह पहले वाली बात नहीं रही। मैंने कितने समय से अनुभव किया है कि मैं अपने से बाहिर हूँ।

साधना लगन से करनी चाहिये। ऐसी भावना लानी चाहिये कि जो साधन मुझे प्राप्त हुआ है, बड़ा उत्तम है। नित्य प्रति नियम से कुछ स्वध्याय भी करना चाहिये। जिस साधक की भावना दृढ़ हो उसकी शक्ति पहले दिन ही मूलाधार से उठकर सहस्त्रार तक पहुंच जाती है। किसी-किसी साधक में शक्ति की गति बहुत तेज हो जाती है और कई अवस्थायें बीच की छूट जाती हैं और साधक यह समझने लग जाता है कि मुझे यह प्राप्त नहीं हुआ, वह प्राप्त नहीं हुआ, पर उसको इस प्रकार भटकना नहीं चाहिये अपितु यह

समझना चाहिये कि वे अवस्थायें पीछे रह गई हैं। जितना विश्वास अधिक होगा उतनी शक्ति शीघ्र जगेगी, आगे बढ़ेगी और खिलेगी। विश्वास तो किसी भी स्थिति में ढीला न होने देना चाहिये। जो आत्म शक्ति जागृत हुई है उस पर पूरा भरोसा होना चाहिये नहीं तो भटक जाने का डर है। आत्म-भरोसा बड़ी आवश्यक चीज़ है।

बहुत लोग कहते हैं कि मन एकाग्र नहीं होता। इसके लिये राम नाम का अधिक जाप करो। यह तो भगवान की लीला है कि किस को क्या और कब दे पर अपनी ओर से पुरुषार्थ पूरा होना चाहिये। जप करने वालों का अपना अनुभव है कि एक करोड़ जप करने से तो मन कैसा ही अशान्त क्यों न हो, शान्त हो जाता है।

चिन्ता दूर कैसे हो? भगवान का भरोसा करो और नाम का चिन्तन करो। जो होना है वह हो जायेगा ऐसा सोच कर निश्चिन्त हो जाओ। क्रोध जब बहुत आता है तो सोचो कि मैं यह नहीं करूंगा। यदि आयेगा तो उसे रोकूंगा और इसके लिये भगवान से बल की प्रार्थना करो।

ले मन लगता था, अब नहीं लगता। ऐसा भी होता है। ऐसा हो पर सोचना चाहिये कि जब भावना बनती थी उस समय क्या परिस्थिति थी और अब क्या कारण है कि नहीं बनती।

कुछ एक साधकों को भगवान की प्रतीती का परिचय मिलता रहता है। मैं देता तो नाम हूं पर यदि किसी को रूप की प्रतीती होती है तो उसका आदर करता हूं।

प्रतीकोपासना में प्रतीकों का भेद हो सकता है, पर नामोपासना में भेद नहीं है। प्रतीक थोड़े थोड़े साम्प्रदायिक हैं। ये समयानुसार बने और अपने अपने विचार और मतानुसार बनाये गए हैं। पर नाम का प्रतीक वास्तविक है। नाम किसी भी चीज़ का न रखो तो उसका बोध नहीं होता। नामोपासना में यह गहराई है कि नाम की ध्वनि अन्दर बस जाती है और साधक का मन मन्दिर बन जाता है। इस उपासना में बहुत बाहर की सामग्री नहीं चाहिये।

चरित्र निर्माण

साधक कैसा हो

मैं अपने आपको अच्छा बना लूं। जब तक मैला धब्बा मेरे दुपट्टे पर है, दूसरे के धब्बे क्यों देखूं? जो अपने अन्त:करण को देखते हैं, उनका कल्याण हो जाता है। पाप ताप उनसे दूर हो जाते हैं। चरित्र निर्माण करना बड़ी ऊंची बात है। यह धर्म से होता है, राजनीति से नहीं। द्वेष की चादर को फेंक कर देखो फिर आत्मा बोलता हुआ सुनाई देगा। तुम्हारा पथ-प्रदर्शन अपना आत्मा करने लगेगा।

मनुष्य तीन प्रकार के होते हैं—उत्तम, मध्यम तथा अधम। अधम मनुष्य का वैर पत्थर की लकीर के समान होता है, मध्यम का बालू की लीक की भांति और उत्तम का जल की लीक के समान होता है। इसी प्रकार उत्तम जन की प्रीति पत्थर की लकीर की भांति, मध्यम की प्रीति बालू की लीक जैसी और अधम की प्रीति जल की लीक की भांति होती है।

जो जन परमार्थ को व्यवहार में नहीं लाते, जो अपने जीवन में नहीं बसाते, वे अपने को ही नहीं भगवान को भी धोका देते हैं। अपने चरित्र को बनाना चाहिये। साधक में सत्यवाणी—सत्य वचन—विशेष होना चाहिए।

मनुष्य को अपने जीवन को संयमी बनाना चाहिए। अहंकार को दूर रखना चाहिये। मान नहीं आने देना चाहिये, उससे साधना में बाधा आती है। विनय बहुत आनी चाहिये। मान को विनय से और क्रोध को प्रीति से जीता जा सकता है। मान और क्रोध को जीतने का और कोई उपाय नहीं है। जब तक विनय, प्रीत और सेवा नहीं तब तक साधना चलती नहीं। उसमें वे बाधक हो जाते हैं। अत: क्रोध को प्रीत से, मान अहंकार को विनय और सेवा से जीतना चाहिये। सेवा घर का शृंगार और सत्संग की शोभा है। बड़ा वही जो बड़ा सेवक हो। जो सेवक होगा वही निरभिमानी होगा। गोस्वामी जी में भक्ति और सेवाभाव श्री राम के जीवन से

आये, जैसे भील भीलनी से मिलना, निषाद को गले लगाना, उन की सेवा स्वीकार करना, आदि। उदाहरण स्वरूप, गोस्वामी तुलसीदास जी का श्री नाभादास जी से जूते में भोजन मांगना।

साधकों में विशेषता होनी चाहिए। वृत्तियों में भी उबाल आता है जैसे दूध आदि में आता है। माला जपने वाले साधकों में उबाल आता है। उनमें विशेषता होनी चाहिए कि उबाल को कैसे शांत करें। एक दूसरे को बढ़ता देखकर ईर्ष्या होती है। उसके पास इतना धन है, उसके पास इतना ऊंचा पद है, वह बड़ा है, आदि। इस ईर्ष्या को दमन करने का उपाय यह है कि जिससे ईर्ष्या हो उसके गुणों की प्रशंसा करनी चाहिए, ईर्ष्या नष्ट हो जाएगी। साधक में ईर्ष्या, डाह नहीं होनी चाहिये। उसे जीतना चाहिये। निन्दा भी बड़ा अवगुण है। सत्संग में धन-कथा, जन-कथा और भोजन-कथा नहीं होनी चाहियें।

किसी आदमी तथा अन्न की निन्दा कभी नहीं करनी चाहिये। अन्न सामने आने पर चाहे जैसा हो ठुकराना नहीं चाहिये और न छोड़ना चाहिये। चाहे कैसा भी भोजन हो, खराब हो या अच्छा हो उसकी प्रशंसा करके खाना चाहिये। बहुत अच्छा है, बहुत अच्छा है ऐसा कहकर खाना चाहिये। ऐसा करने से विशेषता आ गई। भोजन धीरे-धीरे चबा-चबा कर खाना चाहिये। अधिक शीघ्र भोजन करने से मनुष्य अपने आपको धोखा देता है। वह अपने साथ, अपने शरीर के साथ, अपनी बुद्धि, दांत, आंतों और हृदय के साथ, अन्याय करता है। भोजन सामने आने पर क्रोध नहीं करना चाहिये। क्रोध भोजन में विष उत्पन्न करता है।

यदि घर में कोई अतिथि आये तो ठीक बात यही है कि घर का ही व्यक्ति, लड़का या लड़की, अतिथि के सामने भोजन की थाली लाये, नौकर के हाथ से नहीं रखवाये। यही एक हिन्दुत्व की बात है। इससे गृहस्थ जीवन में सुंदरता आ जाती है। भगवान कृष्ण ने स्वयं यज्ञ के अवसर पर साधुओं के पैर धुलाये थे।

पहले जो बरातें आती थीं उनमें बरादरी के लोग बरताते थे।

दूसरे को कोई ऐसी बात न कहनी चाहिये जो असत्य हो। सत्य का अर्थ है, "जैसा समझना वैसा कहना"।

उदाहरण के रूप में, कई बार कोई हमें पूछता है, "कहां जा रहे हो?" हम जा कहीं रहे होते हैं, यूं ही कह कहीं देते हैं। खाने के लिए कोई व्यक्ति कहता है तो झूठ कह देते हैं, "मैं खा के आया हूं।"

वाणी को ऐसे-ऐसे अकारण झूठ से रोक लेना, इसी से हम उस शाश्वत सत्य की ओर बढ़ने का और उस अनन्त सत्य में विभोर होने का प्रयास कर सकते हैं।

सत्य बोलने में किसी को झूठी बात प्रिय लगने के लिये भी न कहनी, यह भी वाणी का तप है। प्रायः हम किसी को प्रसन्न करने के लिये झूठी बात कह देते हैं। ये छोटे-छोटे असत्य हमें अनजाने ही बड़े असत्य की ओर धकेल देते हैं। किसी को आने के लिए समय देना, उस पर पहुंचना नहीं, यह बात भी बड़ी असत्य है। उसकी बजाय यह कहना अधिक उचित है, "मैं पहुंचने का प्रयत्न करूंगा।" शब्दों को सोच समझ कर कहना, फिर उन पर पूरा उतरना, यह ही आपकी सच्चाई का मुंह बोलता चित्र है।

क्रोध में संयम से रहना, यह काया का तप है। बहुत से लोग क्रोध में आपे से बाहर चले जाते हैं।

मुझे एक जमींदार अपने गांव ले गए। उनकी धर्मपत्नी ने मुझे कहा, "इन्हें क्रोध के लिये समझाओ। छोटी-छोटी सी बात पर आवेश में आ जाते हैं"। मैं उन्हें क्या समझाता, वे स्वयं बोल उठे, "क्या करूं स्वामी जी! क्रोध में तो बावला हो जाता हूं। वाणी के अतिरिक्त हाथ पांव भी काबू से बाहर निकल जाते हैं। आप सोचें, जब वे यह बात कह रहे थे, उस आर्य महिला की दशा क्या हो रही होगी? क्या यही देश है जहां नारियां पूजी जाती हैं और देवता निवास करते हैं? उस बिचारी पत्नी की हालत इतनी बात से ही मिट्टी हो गयी थी।

यह क्रोध का संयम ही काया का बड़ा भारी तप है। यही सनातन धर्म है। धर्म वही जिसे धारण किया जाये। कोई बहुत

ज्ञानवान हो गया पर इस धर्म को धारण नहीं करता तो वह ज्ञान का भार ही ढोए फिरता है।

गीता का सोलहवां अध्याय.........प्रसंग सुनाता हूं—इसमें आचार का वर्णन है—कि मनुष्य का आचार बड़ा ऊंचा होना चाहिये—दो श्रेणियों के जन वर्णन किए जाते हैं, देव और असुर—लोग ऐसा वर्णन किया करते हैं कि वे (असुर) बहुत सींगों वाले—डरावनी शक्ल के होते हैं और देव जो आकाश में रहते हैं। यह कम ही लोग विचार करते हैं कि जैसे हम हैं, वैसे ही मुंह, नाक, कान वाले और हम में से ही देव होते हैं और हम में से ही असुर होते हैं।

देवों का गुण वर्णन करते हैं—अभय—निर्भय—वास्तव में यह ही दैवी गुण है। (जो) निर्भय है तो समझो (उसे) परमेश्वर में विश्वास है। आत्मिक बल है—निर्भयता के गुण के कारण आदमी देव ही तो है।

जिन जातियों में भय आया वे दासता में आ जाती हैं। मेरी वस्तु न रहे (कहीं छिन जाए) मेरा गौरव न रहे—मैं क्यों यह बात सच्ची कह दूं—झूठ भी डर कर बोलता है (मनुष्य)। दूसरी सत्य सम-बुद्धि—अन्दर की पवित्रता—दिखावा पवित्रता का वे बहुत रचते हैं पर विचारों में उनके कितनी निर्मलता है यह वे ही जानें। छल कपट बहुत, बगुला बहुत स्वच्छ परों वाला होता है पर यह तो उसकी बाहर की शुद्धि है। इसमें देवत्व नहीं लाती, इसकी सफेदी। देवत्व तो आन्तरिक शुद्धि से आता है। तीसरे ज्ञान-योग में स्थिरता—हर बात में हानि लाभ को सोचने वाला, ज्ञानपूर्वक काम करने वाला होना। बहुत लोग भावनाओं से काम करते हैं। क्रोध से, अहंकार से, यह वृत्तियों से जो काम करते हैं तो वृत्तियों से तो पशु भी, कुत्ता भी, जानवर भी करते हैं। ज्ञानपूर्वक काम करना कि मेरा कर्तव्य क्या है, इसमें (मेरे इस काम से) क्या हानि, क्या लाभ (होगा)। सदा कल्याण के योग को प्रचलित रखना। बाकी लोग (कार्य) वृत्तियों से करते हैं। भले आदमी ज्ञानपूर्वक—यह हमारा कर्तव्य (है कि हमारे कामों से) देश का,

बंधुओं का (लाभ हो)। वृत्ति वाला केवल स्वार्थ (की दृष्टि से कार्य करता है)। हमारी (इच्छाएं) ही वृत्ति। देवत्व ज्ञान में रहता है। आप चाहें कि आप के देश के लोग देवता बनें तो आप देखें कि इनमें कितनी निर्भयता, शुद्धि और इसी ज्ञान-योग की स्थिरता है।

प्रत्येक अपने आपका साक्षी है कि उसने कितना उन उपदेशों का अनुशीलन किया। यहां कर्तव्य बुद्धि कम है। विदेशों में जब किसी का विवाह होता है तो वह अपना कर्तव्य ज्ञान पहले करता है। किन्तु यहां तो वैसा होता नहीं। भेड़चाल ज्यादा है। सभा में चरित्र निर्माण होना चाहिए। राजभाषा नियमित होनी चाहिए। भारत में उसकी कुछ कमी है। मानस साधना में विश्वास और सत्य का बड़ा दर्जा है।

आदमी अपना कर्तव्य सोचे और करे। दूसरों की निंदा नहीं करना चाहिए। परनिंदा में समय नष्ट न करो। चरित्र निर्माण होना चाहिए। आदमियों को तोलने का तरीका उनके गुण होना चाहिए, जातीयता नहीं। चुनाव के समय में जातीयता के आधार पर बात नहीं होती। ऊंचा बोल नहीं बोलना चाहिए। जैसे मलेरिया बुखार फैलता है तब अनचाहे लोगों को भी सताता है। इसी प्रकार कभी कभी साधक में भी निंदा आदि दोष संगत से आ जाते हैं।

"वह सब से घटिया है जो अपने आप को परमेश्वर मानता है और जो उनको परमेश्वर मानते हैं वे भी घटिया हैं।"

भगवान नाम में परम विश्वास हो। कपड़े की रग रग में जब रंग न जाये रंग चढ़ता नहीं। इसी प्रकार हमारे रग रग में राम नाम का विश्वास दृढ़ हो। ऐसा कभी संशय न आये कि राम मेरा सहायक नहीं। नाम आराधन करने से विश्वास बढ़ता है।

इष्ट में धारणा तीव्र हो। सूरदास, तुलसी के एक इष्ट कृष्ण, राम। अन्य को शीश नहीं झुकाते थे। एक में अनन्य निष्ठा होनी चाहिए। वृंदावन का नचैया इस राम-चरित्र को जीवन में कैसे उतारे। इष्ट को सर्वोपरि माने, बहुत साधन न करे। अन्यथा

पहले से लाभ नहीं होता और दूसरा नहीं मिलेगा। अत: प्रथम साधन को ही पकड़े रहो।

गीता में देव और असुर क्या होते हैं इसका वर्णन किया गया है। कई ग्रन्थों में तो अलौकिक बातों का ही वर्णन किया गया है। ऐसी बातें जो इस देश में नहीं, इस युग में अथवा इस संसार में नहीं परन्तु ऐसे युग की बातें हैं उन देवों के विषय में जो कि आकाश पर रहते हैं और परमाणु पर चलते हैं। हिन्दू साहित्य तो एक विशाल सागर है।

देव और असुर अलौकिक भी हैं और लौकिक भी। हमें सर्व प्रथम इस युग को देखना चाहिये। यहां देवों को देखना चाहिये, मानव जगत का राज्य देखना चाहिये। भगवद्गीता कोई भी अलौकिक बात नहीं कहती। इसमें सभी लौकिक बातें वर्णन की हुई हैं। मानव जगत् कैसा है? देवों के क्या चिह्न होते हैं? यह सभी बातें भगवान श्री कृष्ण चन्द्र जी महाराज ने भगवद्गीता में वर्णन की हैं। सारी पृथ्वी, यह सारा विश्व एक लट्टू की भांति लटक रहा है और वह भी बिना किसी आधार के भगवान की शक्ति से ही। यह ऐसे निराश्रय लटक रहा है और इसका संबंध दूसरे युग के साथ है। मान लो ऐसा लाटू जो किसी कमरे में छत और फर्श के बीच बिना किसी आधार या बांधने के लटक रहा हो। ऐसे जगत् के भीतर जो देव मनुष्य का स्वरूप है उसका पहिला परिचय-चिन्ह निर्भय होना है। निर्भयता में बड़ा बल है। भय प्राणी को नीचा करता है। जो डरता है, वह झूठा भी होगा, धोखा भी देगा और चाल भी चलेगा। डरने वाले साधारणत: उलझनी होते हैं। ठीक ऐसे जैसे बिल्ली, खरगोश और गीदड़ भीरु होने के कारण कई चालें चलते हैं और भय खाते हैं। किन्तु दूसरी ओर शेर हैं, हाथी हैं जो कि बिल्कुल निर्भय हैं और अपनी मस्त चाल चलते हैं। जो डरते हैं वे मानव पद से नीचे ही रहने वाले होते हैं। निर्भय जातियों में दैवत गुण होता है। [illegible] नहीं होती। उनमें परिवार का डर नहीं होता।

निर्भयता ही है। किन्तु इस युग में कई लोगों के मन में भय खूब बसा हुआ है।

एक स्त्री बड़ी ज्ञान चर्चा करती थी, खूब पाठ किया करती थी। रात को सोते समय गहनों का डिब्बा अपने सिरहाने के पास रखा करती थी। डिब्बा भी इस प्रकार से रखती थी कि जब सोते समय उसका कभी हाथ भी हिले तो उस डिब्बे पर अवश्य लगे ताकि उसे सोते हुए भी ध्यान रहे कि वह डिब्बा सुरक्षित है। उसकी पुत्रवधु पढ़ी लिखी थी। एक दिन उसके कमरे में रात को बिल्ली आ गई। दीवे की लौ मध्यम थी, बिल्ली ने कुछ खटका कर दिया। वह स्त्री डर गई और डर से अकस्मात् उसका हाथ गहनों के डिब्बे पर न लगा। उसका कलेजा कांप गया और जोर से चीख मारी। आंगन में लेट गई। चोर चोर कहने लगी। पुत्रवधु भागी-भागी कमरे में आई और अपनी सास की विचित्र मारधाड़ की अवस्था देखी, द्वार भी संयोग से खुला था। उसने कहा, "यहां तो कोई चोर नहीं, यह तो केवल बिल्ली है। आप इससे भी डर गईं?" सास ने कहा, "वास्तव में गहनों के डिब्बे को मेरा हाथ नहीं लगा था, इसलिये मैं समझी कि खटका चोर का हुआ है। दरवाजा खुला है और वह डिब्बा ले गया है।" पुत्रवधु ने कहा "माता जी, आप ग्रन्थ अवश्य पढ़ती हैं किन्तु आप को अभी तक आत्मज्ञान नहीं हुआ।" सास को बहू की बात बहुत अखरी। कहने लगी, "बड़ी आई है मुझे ज्ञान सिखाने वाली। यदि तेरे गहने जाएं तो तुझे पता चले। बड़े परिश्रम से ये खरीदे गये हैं" बहू वहां से चली गई। एक दिन सास ने बहू की परीक्षा लेनी चाही। उसके गहनों का डिब्बा अलमारी में से रात को छिप कर निकाल लिया और किसी दूसरे स्थान पर अपने पास छिपा लिया। वधू जब प्रातःकाल उठी तो उसने अलमारी में से डिब्बा गुम पाया। किन्तु वह घबराई नहीं। चीख या पुकार नहीं की। चुपके से ढूंडा भी पर किसी को बताया भी नहीं। वह चुप रही। सास को उसी समय न बताया। यह विचार कर कि सब ससुराल की ओर से मिले हुए गहने थे और यह भी सोचा कि सास का न जाने सुन कर क्या हाल

हो जायेगा। निश्चिन्त अपना काम करने लगी। सास भी मन में चकित थी कि इसने अभी तक पूछा भी नहीं। जब सभी दोपहर का खाना खा चुके तो बहू ने बड़ी नम्रता से सास से कहा कि रात से गहनों का डिब्बा गुम है। सास बड़े आश्चर्य से बोली कि इतनी बड़ी हानि हो गई और माथे पर जरा भी बल नहीं। बहू ने कहा, ''चिन्ता करने से क्या बनता है। जो होना था हो गया। भगवान जो करता है अच्छा ही करता है। यदि गहने न भी पहने तो कौन सा पहाड़ टूट पड़ेगा? मैं ऐसे भी खुशी-खुशी ही रहूंगी। सास बड़ी चकित हुई और अपनी बहू की वीरता को मान गई। उठी और उसके छिपाये हुए गहने दे दिये। कहने लगी कि, ''मैंने तो तेरी परीक्षा ली थी। सचमुच तुझ में निडरता है। तुझ में आत्म-ज्ञान है, पर-निर्भरता नहीं।'' यह निर्भयता का बड़ा बल है। इस प्रकार की बातें कहने से, जिसमें निश्चय न हो, कोई भी लाभ प्राप्त नहीं होता। साथ साथ मनन भी होना चाहिये। देव पूर्णतः निर्भय होते हैं। जो इस आत्म-ज्ञान को मनन करता है, हरि-यश वर्णन करता है उसमें निर्भयता आ जाती है।

लोग आज भी यही कहते हैं कि अंग्रेज का काल अच्छा था। राज्य अच्छा था। अपने राज्य को कोसते हैं। ठीक बात यह है कि राज्य मिलने के साथ-साथ लोगों के मन नहीं बदले। उनमें परिवर्तन नहीं आया। दुर्बल जातियों में अवगुण ही अवगुण होते हैं। जो निर्भय जातियां हैं उनमें अधिक गुण होते हैं।

यदि कोई रोटी खाता हुआ भी दुर्बल रहे तो [illegible] चाहिये कि उस पर खाया हुआ भोजन प्रभाव नहीं [illegible] भोजन लगा नहीं। इसी प्रकार यदि सत्संग में [illegible] बना रहे तो यही समझना चाहिये कि [illegible] हुआ और सत्संग लगा नहीं।

आप जो राम नाम आराधन करते हैं। [illegible] आए कि राम नाम तारक है (तारने वाला है)। [illegible] काल के चक्र को काटता है। [illegible] सामाजिक जीवन में, पारिवारिक जीवन में [illegible]

सत्संगी ने देवत्व सम्पादन किया। देवत्व पृथ्वी पर ही है। अलौकिक नहीं बनाना। (देवता पृथ्वी पर हैं, इनकी अलौकिक स्वर्ग आदि लोकों में कल्पना मत करना)। दान (जो दूसरे को दिया जावे), दूसरे को आदर देना। मीठी वाणी बोलना भी दान है। हरिद्वार में पाण्डे को पैसा देने तक ही दान को सीमित नहीं कर देना। यदि आप सेवा करते हैं तो (यह तो) बहुत बड़ा दान (है)। पैसा भी देना चाहिये। यह पैसा तो सारे देश की वस्तु है (इसे केवल अपनी पूंजी न जानो)। दान और भी।

यदि आप ने अपने मिलने वालों में राम नाम का दीपक जला दिया तो आप ने जन्म जन्मांतर काम आने वाली पूंजी दे दी। सेवा की (किसी की) तो यह भी दान (है)–श्रम दान। कई देशों में, जिन्होंने बहुत शीघ्र उन्नति की, धन और श्रम को वहां सरकार ने अपने वश किया। (कुछ ही) वर्षों में हजारों मील सड़कें, नहरें (आदि वहां बन गईं)। श्रम इन्होंने तन्त्र द्वारा वश कर लिया (सरकार ने)। गांवों में कीचड़ बहुत होता है। बुरा हाल होता है उसमें (कीचड़ में)। यदि (ग्रामीण) श्रमदान करने लगें, गांव में एकता से तो फिर स्वच्छ कर लेना (गांव को कीचड़ आदि से) कठिन नहीं। हजारों ने मार्ग पर श्रमदान दिया। कई उत्तम बातें हो गईं (श्रमदान से)। यह जो श्रम देना है, यह बड़ी ऊंची चीज़ है। कौन है जिसकी बोलने को मीठी वाणी, करने को कोमल कर्म नहीं है।

किसी युग की बात है कि प्रजापति के पास तीन श्रेणी गईं–और कहा कि उपदेश दो। तो उपदेश वे ऐसे दिया करते। अब तो लोग कहते हैं कि (सिनेमा में रामायण) धार्मिक सिनेमा यह तो पाखण्ड है। (धार्मिक सिनेमा आदि से उपदेश की बात) यह व्यापारियों की आरम्भ (की हुई बातें हैं)। यह तो हिन्दू धर्म की अवहेलना है। राधा कृष्ण बनना, गांव में लड़के बनते हैं, फिर पैसे मांगते हैं। मुझे यह कहना है कि लोग यह कहते हैं कि बड़ा उपदेश है। बहुत सुनने में कुछ नहीं रखा। चलने में है। यहां लोग लम्बे भाषण देते हैं। बाहर (देशों में) लोग कभी बीस मिनट से

अधिक नहीं बोलते। दो दो घण्टों की व्याख्यान की झड़ी वे बहुत नहीं देते। उन के वचनों का बड़ा प्रभाव। यहां बहुत सुनने का रिवाज है, करने का है नहीं। जब तक बनिया सेना में नहीं जावे वीरत्व (उसमें) कैसे आ सकता है। आदमी को चलना चाहिये। (उपदेश) बहुत लम्बे नहीं हुआ करते। देवत्व का गुण दान है।

(प्रजापति ने) उपदेश तीनों श्रेणियों को दिया--द,द,द। फिर तीनों को पूछा (कि उन्होंने क्या समझा) तो देवों ने कहा कि दमन करो। दमन न हो तो १५ मिनट में सारे विश्व का नाश हो जाय। ऐसे हथियार बन चुके हैं (कि यदि उनके प्रयोग की इच्छा का दमन न किया जाय) तो प्रलय अपने हाथों (हो जाय)। आप के प्रधानमंत्री को सौभाग्य प्राप्त है कि उन्होंने रोक दिया है।

असुरों को पूछा, इन्होंने कहा कि आप ने हम को कहा है कि दया होनी चाहिये।

मनुष्यों ने कहा, कि दान देना चाहिये। जगत स्वार्थ से नहीं, दान से (चल रहा है)। मन का दमन करना है, अपने आप को काबू करना।

उपासना वाले के लिए अपना स्वरूप पहचानना आवश्यक है।

यद्यपि राजपूत भी पांच तत्त्व का पुतला है किन्तु शब्द राजपूत से भावना होती है कि वह युद्ध भूमि से कभी नहीं भागता।

योरुप में जर्मन लोगों का भी विचार था "हमारा रक्त बहुत शुद्ध है"।

यद्यपि शरणार्थियों में धर्म का इतना अधिक अंश नहीं किन्तु फिर भी यह भावना है कि मैं हिन्दु हूं। केवल भावना ही थी तो वे लोग उधर से इधर आने लगे।

भावना में बल है। आत्मिक भावना को मनन करने से बड़ा बल आता है। बल्ब के टूटने से तो केवल बल्ब ही मिटा न कि बिजली की धारा। इसी प्रकार शरीर के हनन होने से तो केवल शरीर ही मिटा न कि आत्मा। अपने वास्तविक स्वरूप को समझना चाहिए। शेर द्वारा अपने स्वरूप को ठीक से न समझे

जाने के कारण तो सर्कस में उसकी पीठ पर बकरी भी बैठती देखी गई है।

जीवनसार-कर्तव्य पालन

देवियो और सज्जनो! अपना कर्तव्य पालन करना यही जीवन का सार है। पाप क्या है? यह समझने के लिये पण्डितों ने बड़ा यत्न किया है। पर अन्त में इसी निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि प्रत्येक मनुष्य को अपना कर्तव्य ही पालन करना चाहिये। यह ठीक ही श्रीमद्भगवद् गीता में कहा है कि कर्म का पालन ही परमेश्वर का पूजन है।

जो ईश्वर सब प्राणियों के हृदय में रहता है, सर्वत्र विद्यमान है और सब विश्वों को चला रहा है, उसको अपने कर्मों से पूजना।

हम पूजन को पत्तों और जल तक ही सीमित कर देते हैं। हम कर्म में कितने ही हीन हों पर हम समझते हैं कि किसी के बागीचे से फूल चुरा कर ले आना और फिर उन फूलों से पूजन का तो हमें विचार होता है पर कर्म का नहीं। फूल चढ़ाना कोई बुरा नहीं पर एक मनुष्य कर्महीन, चरित्र उसका मैला हो और मन उसका गिरा हुआ हो और वह फूलों से भगवान का पूजन करे तो समझो कि वह यह नहीं समझता कि बाहर जो फ़ूल बागीचों में हैं उनमें तो भगवान पहले ही विराजमान हैं। कर्म ही भगवान का पूजन है।

संत नाभा दास जी एक बार गोस्वामी तुलसीदास जी को मिलने के लिये गए। उस समय श्री गोस्वामी जी मन्दिर में पूजा कर रहे थे। श्री नाभा दास जी खाँस कर चले गए पर गोस्वामी जी उठे नहीं। पूजा से कैसे उठते? परन्तु पीछे जब उन्हें पता चला तो वे नाभा दास जी के यहां गए। नाभा दास जी ने उनसे आंख नहीं मिलाई। अपमान किया। भोजन का समय हुआ तो तुलसी दास जी भी बैठे। जो व्यक्ति पत्तलें बांट रहा था उसे नाभा दास जी ने गोस्वामी जी के आगे पत्तल न रखने का संकेत किया। नाभा दास जी परोसते हुए जब तुलसीदास जी के पास आए तो उन से कहा, "तुझे किस पत्तल में परोसूं" पास बैठे एक सज्जन की जूती उठा

कर गोस्वामी जी ने कहा, "मुझे इस पत्तल में दे दीजिये।" नाभा दास जी बहुत प्रभावित हुए और संत तुलसीदास जी की नम्रता देख कर उन को गले लगा लिया।

हम नाम में नामी को देखते हैं। नाम में ही नामी प्रकट होता है। वह हम में न खेले तो रसमयी रास नहीं हो सकती। 'भक्ताँ दे कारज़ आप खलोता', यह केवल भजन का ही वाक्य नहीं, यह वास्तविक सच है। भगवान स्वयं भी कहते हैं, "मैं आता हूं। मैं देवों और मनुष्यों द्वारा बोलता हूं।" भक्तिधर्म में भगवान भक्त की भावना अनुसार फल देते हैं। एक सब-जज थे, उनको ध्यान में बैठने पर प्रकाश दृष्टिगोचर होता था। उन्होंने आयुभर यह अवस्था स्थिर रखी। एक सज्जन ने जब नाम लिया तो उसे अपनी रगों में हजारों राम नाम प्रतीत हुए। जब तक मत, आयु, विद्या, धन की ऐंठन न छोड़ी जाए तब तक यह अवस्था प्राप्त नहीं होती, क्योंकि ये चीजें भगवान के दरबार में झोली पसारने नहीं देतीं। जो कुछ मिलता है देनेवाले की कृपा से मिलता है। यह उसी का प्रसाद है।

यह समाज का बड़ा सौभाग्य होता है जब उसमें सेवकों की संख्या अधिक हो। अभिमान के सर्प को कुचलने का यह एक बड़ा साधन है। साधक विनय पूर्वक सेवा करे। मातृभाव ग्लानि को जीतने के लिये होता है। जब बच्चा गोद में होता है और लघुशंका कर देता है तो माता को ग्लानि नहीं होती। यह सेवा है। साधक को ऐसा होना चाहिये। प्रत्येक मनुष्य के भीतर छिपी हुई आग होती है—क्रोध की आग, अभिमान की आग। इस से बचना चाहिये।

जिस प्रकार एक खेत का क्यारा अच्छा हो। घास फूस उस में न हो, खाद खूब हो, तब बीज उस में फलीभूत होगा। इसी प्रकार आधार के मन में मन्त्र में श्रद्धा, विश्वास और बहुत दृढ़ धारणा हो, विविध वृत्तियों का कूड़ा करकट न हो तो नाम फलीभूत होता है।

एक आदमी धोखा देकर पैसा कमा कर यदि मंदिर में ले गया

तो उसने क्या पूजा की? एक कोई भाई से लड़ा, घर में मां बाप से लड़ाई की और ठाकुर द्वारे फूल ले गया तो राम तो ये सब जानते हैं। अपने कर्मों से भगवान को पूजने से ही सच्ची भक्ति होती है।

तुलसी रामायण में एक कथा आती है कि कोई स्वयंवर था माया का। नारद ने सुना कि राजा की लड़की ने मनचाहा वर वरना है। उनको वह धुन समा गई। हरि लीला से इन का चेहरा भद्दा बन गया। वह मन में समझता कि मैं बड़ा सुंदर हूं। जब वर माला लिये राजकुमारी घूमे तो गर्दन उठा उठा कर नारद उसे देखे। वह तो विष्णु की माया थी। किसी ने कहा, "महात्मन्! अपना मुखड़ा तो देखो।" जब देखा तो बड़ा भद्दा। इससे इतना ही कहना है कि व्यक्ति अपने चरित्र को देखे। शीशे में जब तक मुख न देखे पता नहीं लगता कि मुख कैसा है। इंसी प्रकार चरित्र को देखना और जीवन को अच्छा बनाना होता है। जिसका चरित्र अच्छा और जीवन अच्छा, वह आप भी अच्छा और भगवान का पूजन भी उसका अच्छा।

बाप अच्छे बेटे से बड़ा प्रसन्न होता है। यदि वह निकम्मा हो तो पिता को अन्तिम समय तक सुख की नींद नहीं आती। ऐसे ही समझो, राम के समीप सेवा भाव और सत्य कर्म वाला ही उसका अच्छा भक्त है। जो आस्तिक भाव से आराधन करते हैं राम का आशीर्वाद उनके अन्तःकरण में बसता है। यही भगवान का पूजन है। इसी से मानव मण्डल सुधरता है और यह भगवान का पूजन आपके सन्मुख, शास्त्र अनुसार पूजन बताया है।

माया के कारण संसार काला कीचड़ है और कीचड़ से परे रहना ही अच्छा है। पारिवारिक और सामाजिक जीवन को जितना आगे बढ़ाया जा सके इसी से श्रीराम का आशीर्वाद प्राप्त होता है। यहां जो सत्संग लगाया है और उसमें जो सम्मिलित हैं वे यहां यही सीखते हैं कि अपने अच्छे कर्मों की सामग्री से मन मंदिर में श्रीराम का पूजन करें।

ज्ञान को बढ़ाना और आत्मा को ऊंचा उठाने के लिये उसे

बरतना और आगे बढ़ाना यह विद्यार्थी का काम है। यह जो चार रात की पाठशाला है, इसमें जीवन को बनाने की बातें ही कही जावेंगी। जो काया से भगवान का पूजन किया जाता है, वह आज वर्णन किया।

कर्मशील बनो

निष्क्रियता धर्म नहीं है। धर्म तो कर्मात्मक है। वह पुरुषार्थ से उपार्जित है। क्रिया से निष्पन्न होता है। इसलिये ज्ञानियों ने धर्म का लक्षण "प्रेरणा" वर्णन किया है। उसे ऐहिक और पारलौकिक सुख सिद्धि का साधन बताया है। स्मार्त धर्म के व्याख्याता भगवान मनु भी धर्म के लक्षण क्रिया रूप में ही वर्णन करते हैं।

यदि अक्रियारूप धर्म हो तो भेड़ें और बकरियां कभी असत्य भाषण नहीं करतीं। ममियाने के बिना वे दूसरा कोई शब्द नहीं बोलतीं। तब तो वे सत्यवादियों में सर्वशिरोमणि हो जाएं। भोले-भाले मृग मनुष्य के पांव की आहट सुन कर कोसों दूर भाग जाते हैं। कभी किसी की हिंसा नहीं करते परन्तु कोई अकर्मवादी उनको परमदयालु नहीं मानता। एक अंधा, बहिरा, मूक और विकल शरीर मनुष्य वन में जीवन के दिन काटता हुआ न अशुभ बोलता है और न अशुभ करता है, परन्तु वह मुनि नहीं कहला सकता। उन्मत्त अथवा मूर्छित मनुष्य अशुभ संकल्प विकल्प से शून्य तो होता है पर वह महात्मा नहीं माना जाता। गहरी नींद से कोई अशुभ क्रिया नहीं होती परन्तु वह समय पुण्य-उपार्जन का समय नहीं समझा जाता।

अशुभ विचारों को शुभ विचार और शुभ आचारों द्वारा धक्का देकर भीतर से निकाल देना, उनको अपने निकट न आने देना, शुभ सम्पत्ति सम्पादन का क्रियाजन्य सर्वोत्तम साधन है। यही धर्म है।

आर्यों में जब से निष्क्रियावाद ने घर किया है तभी से इनका विनिपात होना आरम्भ हुआ है। जातियों में जो नर-रत्न होते हैं

वे प्रायः धार्मिक भी हुआ करते हैं। समाज के लिये उनका जीवन अत्यन्त उपयोगी होता है, उनका समाज से पृथक् हो जाना समाज को अवनत करना है। निष्क्रियावाद के निष्ठावान् सज्जन जन समूह से दूर भागते हैं। उनको समाज संशोधन, समाज सुधार और समाज संरक्षण कर्तव्य कर्म ज्ञान नहीं होते। अपितु वे उलटे इन कर्मों से घृणा करने लग जाते हैं। यही कारण है कि अकर्मवाद की पोषक पुस्तकों में धर्म पुरुषार्थ का निरादर है। गृहस्थ को पाप और बंधन वर्णन किया है। माता-पिता पुत्र कलत्र आदि संबंधों को दुःख का कारण माना है। क्षात्र धर्मादि उत्तम धर्मों को प्रशंसित नहीं समझा गया। आर्य प्रजा के अनेक दीप्तिमान् रत्न इसी अकर्मवाद की उलझन में उलझ कर अपनी उपयोगिता नष्ट कर गये हैं। उनकी उज्जवल कान्ति से किसी ने कुछ लाभ नहीं उठाया।

इसी निष्क्रियावाद की बेल के फल का नाम त्यागवाद है। त्यागी कहलाने में लोग जब से मुक्ति और महत्ता मानने लगे हैं तब से आर्य जाति में नाना अनिष्टों की, दुःखों की और अभावों की सृष्टि हुई है। यहां लाखों त्यागी वास करते हैं। उनकी आंखों के पास, उनकी कन्दराओं के निकट और उनके आश्रमों के समीप दिन-दोपहर में उनका धर्म-धन लूटा जा रहा है। लोग अपना पुरातन धर्म परित्याग कर रहे हैं। अनाथों की बिलबिलाहट और कृश प्रजा का करुणाक्रन्दन हो रहा है। इसे देख कर पराये भी पिघल गये हैं। परन्तु ये ऐसे सर्वत्यागी हैं कि दुर्दिन-दलित दरिद्र बंधुओं पर, दूर खड़े, दया दिखाने में भी आनाकानी करते हैं। इस संकीर्णता का प्रबल कारण है, वहां के त्यागियों ने त्याग के अर्थ छुआछूत समझ रखे हैं। इसका तात्पर्य घृणा करना, पृथक हो जाना, संकुचित बनना और पीड़ित प्राणियों को भी क्रियात्मक सहायता न देना निकाला है।

सच्चा त्याग वही है जिसमें घृणा का त्याग है, वैर-विरोध का त्याग है, अभिमान का त्याग है। दूसरे को सुख देने के लिए, परोपकार करने के लिये अपने प्राणों तक की ममता न करना

सच्चा त्याग है। यह परम त्याग ईश्वर भक्ति और प्रजा प्रेम से उत्पन्न होता है। भक्ति और प्रीति पुरुषार्थ और शुभ क्रिया के बिना प्राप्त नहीं होते हैं।

परमार्थ बसाओ

कल मैंने आपके सम्मुख चार प्रकार के कर्मों में से तीन प्रकार के कर्मों का वर्णन किया। व्यर्थ और अनर्थ कर्म को त्यागने का ही धर्म का उपदेश है। चौथा प्रकार जो है वह है परमार्थ का—परम प्रयोजन को सिद्ध करने वाला धर्म। इसका निरूपण ग्रन्थों में स्थान स्थान पर हुआ है। यह आत्म कल्याण का कर्म है—अपना कल्याण करना। ऐसा कर्म जिससे आत्मा को संतोष हो, अज्ञान दूर हो, और बुराई अन्दर में इसको न पकड़ने पावे। इसके लिए संत लोग—पुरुष, स्त्री—जो आए वे कह गए। यह सुगम बात है। आदमी जो काम धंधे में फंसे हुए हैं इनको यह बात बहुत अच्छी लगती है। इनका अगला लोक सुधर जावे।

बहुत से पुरुष इकट्ठे होकर गंगा जी जाने लगे। पहले रेलगाड़ियां नहीं होती थीं। लोग मिल कर जाते थे। इन युगों की यह बात है। वे मिलकर चले। सैंकड़ों कोस से खड़ा हुआ गंगा-गंगा कहे तो वह पापों से छूट जाता है। यह उनमें बात थी। तो हर स्वभाव के आदमी संगों में होते हैं। तो एक आदमी बहुत से रुपये लेकर चला। (इस विचार से कि) मैं वहां जाकर किसी और जगह चला जाऊंगा। गठरी में रुपये बहुत थे (वह) नोटों का युग नहीं था (रुपये धातु के होते थे)। हुण्डी तो चलती थी व्यापारियों की। जब आधी रात हुई तो गठरी इसकी एक आदमी ने जिसको पता था कि इसमें रुपये हैं, चुरा ली। जब प्रातः इसने देखा कि गठरी गायब तो बड़ा दुःख हुआ। कहे कौन हत्यारा जिसने यह कर्म किया। हे भगवान! तूने क्या बुराई मेरे साथ की। अब सब लोग जो उसके साथ चले थे, सोचने लगे कि इसकी गठरी कहां गई। सब गठरियां दिखाईं।

किसी को विचार नहीं आया कि एक आदमी नहीं है, उनमें
(जो वास्तव में चोरी करके चलता बना था)। बहुत उस
गालियां दीं, पर जब वह नहीं मिला तो बहुत कोसने लगा।
एक बूढ़े ने कहा कि हमने तो अपना सब सामान तुम्हें दिख
दिया। अपने अज्ञान को कोस कि क्यों रुपया लेकर चला। य
हमें बता दिया होता कि तेरी गठरी में इतने रुपये हैं तो ह
चौकीदारी भी करते उसकी। तो उस व्यक्ति ने कहा कि मु
क्या पता था कि तुम सब चोर थे। एक स्त्री ने कहा कि सब
बुरा बनाने में क्या बात है। अपने आप को कोस कि परदेश
जाता था (इतने रुपये साथ लेकर)। इसने कहा, बुढ़िया! तुझ
नहीं पता कि मुझे छुरी लगी है। कोई मनचला बोला कि च
गंगा में नहाएं। लड़ाई तो हमने की नहीं। हमने हाथ न
हिलाए (तो तुझे छुरी कैसे लग गई)। इसने कहा तुम कित
आदमी चले थे। उत्तर मिला पता नहीं। फिर पूछा कि ढाबे
जहां सबने इकट्ठा भोजन किया था कितने के पैसे दि
थे–कौन पैसे देता था सबके, वह बता। कहने लगा सब लो
को गिनकर देखो। गिनने से पता लगा कि उनमें से एक व्यवि
कम था तब पता चला कि चोर तो निकल गया है। लाला
सबको हाथ जोड़ कर कहा कि मुझे भी इसी पर संशय था।
मैंने सबको कोसा। गई सो गई अब राख रही को। कहने लगा
पहले दे देता। मेरी तो चली गई (मैं अपने हिस्से का खर्च पह
ही दे देता तो अच्छा था। अब तो मेरी सारी गठरी ही चोरी
गई है, कहां से दूंगा)। तो किसी जगह कथा वार्ता हो रही थी
किसी ने कहा आदमी के पीछे चोर लगे रहते। (कोई कथाक
कहीं कह रहा था कि आदमी के पीछे दुष्टकर्म रूपी चोर ल
रहते हैं)–तो यह सुन कर यह व्यक्ति जिसकी चोरी हो गई
कहने लगा कि मेरे पीछे भी एक चोर लगा था। सब से ब
चोर अज्ञान। दूसरा चोर दुराचार। तीसरा वैर-बुद्धि। इ
प्रकार इस ने एक कर्म को कहा।

आत्मा का धन हरण हो तो फिर आदमी कंगाल। तो फि

इसने पूछा कि क्या आत्मा का भी कोई धन होता है? आत्मा का धन शांति, संतोष, धीरज है और राम भजन है। जिसके पास यह धन है वह मालामाल है। इसके लिए संसार की सभी हालत अच्छी है। कथाकार ने उस व्यक्ति को कहा कि ऐसे ही तुझे बोध नहीं है। इस लिए माया ने तेरे आत्मिक धन को (लूट रखा है)। अच्छा, गंगा स्नान करेंगे तो चोर सब मर जावेंगे। यह आत्मिक। कहने लगा कि अब पता चला। यदि क्रोध लेकर, अभिमान लेकर प्रवेश करेगा गंगा में तो फिर क्या लाभ होगा? ऐसे तो स्वर्ग तो क्या, यह लोक भी नहीं मिलेगा। यही है कि पाप छोड़ दे, अपने भीतर दिया जला। उसके मन में कुछ बात लगी। धर्मशाला में नहा कर आए तो वह चुपचाप बैठ गया। थोड़ी देर के बाद सोचा कि सबसे क्षमा मांगूं। शराब ही मतवाला नहीं बनाती। अपितु शोक भी मतवाला बना देता है। शराबी का कौन बुरा माने। कहने लगा गंगा तो बोलती नहीं है, सत्संग से पता चला करता है। अब मैं गांव जाकर सत्संग में जाया करूंगा। सायंकाल फिर नदी के किनारे गए तो कुछ यात्री झगड़ रहे थे। तो यह ज्ञान और सत्संग, ये बड़ी चीजें हैं जो मनुष्य को बड़ा अच्छा बनाती हैं। जो होना था वह हो गया। पहले भी कमाई की थी, आगे भी करेंगे। सत्संग से इसको यह बुद्धि आई। इस उपदेश के प्रभाव से इसने माफी मांगी उनसे जिनको इसने कोसा था, अपनी गठरी चोरी हो जाने पर। औषधि के समान अच्छी और ऊंची बातें प्रभावित करती हैं। इनका संस्कार रहता है। ये प्रभाव अवश्य करती हैं चाहे देर से करें। तो कहना यह है कि परमार्थ के जो कर्म हैं वे धैर्य, धीरज, संतोष—जितने ये हो सकें उतना ही व्यक्ति (परम) पद की ओर जाता है। पानी पहाड़ पर बरसे तो वह नीचे की ओर जाता है। इसी प्रकार मंदिर के कलश से भी यदि मशीन लगा दी जावे तो ४०-५० मील तक पानी को पहुंचाती है।

रॉकेट, फेंकने वाली मशीन द्वारा कई सौ मील दूर गया। गन्दे जोहड़ का पानी भी सूरज की किरणों से

आकाश में चला जाता है। सत्संग के प्रभाव से मलिन आत्मा पुरुष भी इस परम पद को जा पहुंचता है। भगवान के नाम को लेना अपनी आत्मा को उठाना है। इससे व्यवहार भी अच्छा होता है, परलोक भी और परमार्थ की तो पदवी सिद्ध। इसलिए हर स्त्री पुरुष को सिमरन, जप करना चाहिये—स्वाध्याय करना चाहिये। (वड़ाई) कोई अच्छे आभूषण ही में नहीं, अपितु ज्योति को निर्मल वनाना चाहिये। कहते वह छोड़ गया। मरता तो कोई है नहीं। घर से खेत में गया, घर में तो है नहीं। रोना अपने सुख और स्वार्थ का है। पर वह आता तो है नहीं। वल्ब फ्यूज हो जाये तो क्या विजली ही बंद हो गई। इस आत्मशक्ति को (जागृत करना)। स्वाध्याय, सत्संग, जप, पाठ, आराधन करना। अनर्थ और व्यर्थ कर्म छोड़ना। वहनो और भाइयो! इन वातों को स्मरण रखना, इनको (पालन करना)। राम कृपा सव पर करें। सब को आशीर्वाद।

व्रत लेकर निभाओ

एक बार न कह दो तो फिर हां कहना ठीक नहीं। मैंने इसलिए भी कहा (रोहतक जाकर बोलने को मैंने इसलिए भी ना कर दी) कि रोहतक में कई बार मैं बोला। बहुत लोग मिले भी। नाम लिया पर इन्होंने न जाने क्यों पालन नहीं किया। फिर कभी आना हुआ, वे मिले नहीं। (अर्थात् फिर कभी मैं रोहतक गया तो जिन्होंने वहां नाम लिया था वे मिले नहीं और न ही इन्होंने नाम का आराधन किया) मैंने इससे यही जांचा कि लगन वाले नहीं। दूसरा मुझे इसमें कोई बात जंची नहीं। ऐसी बात दिखाई दी नहीं। इसका एक यह भी कारण कि बहुत बरस हुए, नगर के आदमी आए तो फिर कई बार गया। तो लोग फिर आए नहीं। रोहतक का निवासी क्यों विचलित हो जाता, कोई कारण। तो फिर ऐसे तो मैं बोलता नहीं। इस प्रकार के ढीले ढंग में। यही एक कारण जिससे मैंने न कर दी। कि जो नाम को ले और आराधना न करे तो मुझे विचार होता है कि इन में दृढ़ता नहीं। तो जिनने नाम लिया, इन्होंने प्रण लिया (आराधना करने का)। प्रण फिर तोड़ा, कोई

बात नहीं। मैं अपने हृदय के अन्दर अनुमान किया करता हूँ जितना कौन विश्वासी और कितना इस मार्ग में बढ़ा। आपको बड़े प्रीति वाले, बड़े प्रण वाले रहना चाहिये। अब तो उस बात को दृढ़ता से जगाएं – व्रत लिया है – हंसकर उसे प्राणों में पालन करेंगे।

भक्ति में दृढ़ता

श्री महाराज जी एक साधक के गांव में जाया करते थे। उस साधक ने एक सत्संग हॉल बनाया था और वहां प्रातःकाल प्रतिदिन सत्संग लगता था। एक बार श्री महाराज जी कुछ दिन वहां ठहर कर जब जाने लगे तो उन्होंने उस साधक से कहा "देखो! यह सत्संग प्रतिदिन समय पर लगाते रहना, कभी विघ्न न पड़े।"

एक दिन सत्संग लगने से पहले जब वह साधक अपनी खेती का भरा ट्रक ला कर अपने गैरेज में रखने लगा तो पीछे से उसका लड़का ट्रक के नीचे आ कर कुचल कर मर गया। वह साधक बहुत घबराया पर अपने आप को संभाला। शव को एक ओर गैरेज में रख कर उसका दरवाज़ा बन्द करके ताला लगा कर सत्संग में ठीक समय पर पहुंच गया। जब सत्संग समाप्त हुआ तो उसने सब सत्संगियों को अपने बच्चे के कुचल कर मर जाने की घटना सुनाई और कहा कि मैं ने तो श्री महराज जी की आज्ञा का पालन किया कि सत्संग ठीक समय पर लगे और कभी विघ्न न पड़े। तत्पश्चात् बच्चे का अन्तिम संस्कार सब ने सम्मिलित हो कर किया।

आचार

आजकल आचार इस बात को गिनते हैं कि अचार नहीं खाना, शलजम नहीं खाना, प्याज नहीं खाना, इत्यादि। अमुक वस्तु नहीं खाना, इसको लोग आचार मानते हैं। आजकल इसमें अपने आप को बांध देते हैं। ये तो इस दुनियां के लोगों ने अपने आचार की बातें बनाई हुई हैं। ये कोई शास्त्रों की बातें नहीं हैं। ये

अपने विचारों की बातें बनाई हुई हैं। ग्रन्थ लिखने वाले अनेक व्यक्ति होते हैं जो शास्त्रों की व्याख्याएं करते हैं और अपने मत के अनुसार व्याख्या करते हैं। शास्त्रों की भिन्न-भिन्न ग्रन्थों में भिन्न-भिन्न व्याख्या होती है। इस प्रकार के आचार की बातें वैष्णव काल से चली हुई बातें हैं—बहुत पुरानी नहीं। कोई आश्चर्य नहीं कि कोई व्यक्ति अपने आपको भगवान के समीप मानता हो परन्तु उसके आचार ऐसे हों कि वह भगवान के दरबार में जाने योग्य ही नहीं हो। आजकल ग्रन्थों की भरमार है। कोई काशी में बनता है तो कोई वृंदावन में—उनमें एकता नहीं पाई जाती।

अपनी वृत्तियों को कोमल, मधुर, शान्त बनाना आचार है। विजयिता होना यह बड़ी बात है। यह बड़ा आचार है। किसी ने अपने पारिवारिक जीवन को नहीं बनाया तो वह आचार नहीं। यदि अच्छा पुत्र नहीं—अच्छा पिता नहीं—पुत्र ने माता-पिता का अनुशासन नहीं माना, उनकी बात नहीं मानी, घर में कलह हुआ तो क्या आचार रहा? यह आचार तो नहीं हुआ। कोरी बाहरी वस्तुओं से कुछ नहीं बनता। यदि कोई कुरूप हो और अपने मुंह पर कुछ भी लगाये तो वह सुन्दर नहीं हो सकता। कुरूप ऊपर की वस्तुओं से ठीक नहीं हो सकता। जैसे कोई बाहरी चीज़ों से कुरूप को ढकने से सुन्दर नहीं हो सकता ऐसे ही बाहर से दुराचार ढका नहीं जा सकता—बुरे आचार ढकने से कोई अच्छे आचार वाला तो नहीं बन सकता। लकड़ी धोकर जलाने वाले ने क्रोध को नहीं जीता, पारिवारिक जीवन को नहीं बनाया तो उसकी आत्मा मलिन ही है। आचार तो अन्दर से ही होता है। अन्दर में शीतलता हो, क्रोध, अहंकार, ईर्ष्या, द्वेष की वृत्तियां दूर हों, तब आचार होता है। मनुष्य का जीवन अन्दर से शुद्ध होना चाहिये—आडम्बरों से नहीं। उड़द की दाल नहीं बने—यह कोई आचार नहीं। वह युग बीत गया—किसी समय यह बात होगी। अपने पारिवारिक जीवन को अच्छा स्वरूप देना चाहिये। कोमलता, मधुरता पैदा होनी चाहिये। इस दृष्टि से मनन करके

देखोगे तो स्वरूप का पता लगे। अचार तो परम्परा से चला आया है। जिसका आचार नहीं उसका धर्म कौन माने।

ऐसा ही समझना चाहिए, मनुष्य का जीवन अन्दर से विकृत होता है, बाहरी पदार्थों से नहीं। कोई मंत्री बन गया और वह यह चलाये कि उसके राज्य में दाल नहीं बने तो यह कोई आचार नहीं। मनुष्य जीवन में तो जो अन्दर को बनाता है और अपने जीवन में लाता है वह आचार है। आचार्यों और ऋषियों ने कोई बुरी बातें नहीं कही हैं।

भगवान राम ने कहा कि जो यहां के देवता अर्थात् मनुष्य को नहीं मानता वह अलौकिक देवता की पूजा करता है इसका क्या प्रमाण है?

अन्दर का जीवन बाहर प्रकट होने लगता है उससे प्रतीत होता है कि उसका आचार कैसा है? साधक का जीवन निराला होना चाहिये। उसका जीवन सर्वसाधारण जीवन से अच्छा होना चाहिये। क्रोधी, झगड़ालू जीवन होवे तो विशेषता क्या रही? यदि घर में अनबन होवे तो वह दूसरों से मिलाप क्या करेगा? यदि अपनी सन्तति उसके अनुकूल नहीं तो वह दूसरों के क्या सुधार करेगा? आपका यह सामाजिक नाद है। आपका प्रभाव अपनी सन्तति पर नहीं तो दूसरों पर क्या होगा? आचार न होवे तो फिर यह प्रभाव नहीं होता। जैसे ज्वालामुखी से आग निकलती है और वह आसपास की वस्तुएं नष्ट कर देती है। क्रोधी क्या आचार सिखा सकता है? साधक के जीवन का प्रभाव उसके बन्धुओं पर, उसके परिवार के लोगों पर होना चाहिए। मनुष्य को वृत्तियों पर पूर्ण विजयी होना चाहिए। अभिमान को जीतना हो तो सेवा करके विजय प्राप्त करें। जिस प्रकार अपने बच्चे की सफाई करते हैं, वैसे ही हरिजनों के बच्चों की अपने हाथ से सफाई करने से छुआछूत का भाव नहीं रहता। जिस स्त्री ने अपने सास-ससुर के पैर नहीं दबाए और वह यह आशा करे कि उसकी पुत्रवधू उसके पैर दबाए तो यह तो मिथ्या हुआ न। उसने अहंकार को क्या जीता? वह तो गुलाब के पेड़ में कीट पैदा हुआ। लोगों ने अहं को

जीतने के लिये बड़ा कार्य सेवा का किया, लोगों की जूतियां तक साफ कीं—संगठन पैदा किया, दूसरे देश वालों ने भी सेवा की। प्रेमनाथ मेरे पास एक अमेरिकन महिला को लाए। उसका रहन-सहन सादा, आचार व्यवहार अच्छा। थोड़े ही दिन में उसने यहां की भाषा सीख ली और उसने मुझसे हिन्दी में ही बातें कीं जैसे यहां लोग करते हैं। कपड़े भी—धोती पहने थी—उसने बताया उसके पास दो धोती हैं, दो जोड़ी कपड़े हैं इससे अधिक नहीं। एक जोड़ा धो दिया और एक जोड़ा पहन लिया। खाना भी साधारण—तो उसने भी भारत में ग्रामों में बहुत सुधार का काम लोगों (ग्रामीणों) के साथ रहकर धूप में, वर्षा में, परिश्रम करके किया—यह है सेवा—आचार।

साधक चरित्र—

(i) नियमितता

हिन्दी भाषा का ही प्रयोग करना चाहिये। अंग्रेजी को अन्ततः यहां से जाना है। चाहे १० या २० वर्ष में जाये। युग बदल रहा है। अब हिन्दी का युग आना है। उर्दू भाषा पंजाब प्रान्त में चलती थी और उसके कारण पंजाबियों का बुरा हाल हो रहा है।

हमें कैम्प शब्द के स्थान पर सत्संग का प्रयोग करना चाहिये। साधक साधिकाओं की मनोवृत्ति बने कि हमें नाम आराधन करना है, हमें यही सीखना है, इसी में सत्संग की महिमा है।

जीवन नियम के अनुसार चलाना सीखना चाहिये। अधिकारी, कर्मचारी, कचहरी में समय पर जाते हैं किन्तु रविवार को सब काम अनियमित हो जाते हैं। यह बुरी बात है। सोने खाने का भी नियम होना चाहिये। समय पर खाने वाले के शारीरिक अंग भी नियमपूर्वक समय पर काम करने लगते हैं। समय पर भूख लगने लगती है। समय पर नींद खुलने लगती है। स्वास्थ्य भी सुन्दर बनता है।

विशेष जागृति वाले पुरुष के साथ अर्थात् जगे हुए अंतःकरण वाले के साथ सत्संग करें तो उन्नति निश्चित होती है। जितनी

जागृति वाला साधक होता है, उतना ही उसका भाव-स्पन्दन दूर दूर तक प्रभाव डालता है। इसलिये सामूहिक सत्संग की आवश्यकता है।

अनियमितता आने पर मृत्यु की आशंका हो जाती है। यह शारीरिक यंत्र प्राकृतिक रूप से व्यवहार कर रहा है। किन्तु हम लोग इस पर अनियमितता लादते हैं क्योंकि आलस्यमयी वृत्ति से विवश हैं। ये संस्कार हमने अपना लिए हैं जिनसे अन्तड़ियों और फेफड़ों पर बुरा प्रभाव पड़ता है। हमें नियम कठोरता से पालन करना सीखना है। कपड़े चुस्त हों, ढीले न हों। जिससे काम काज में बाधा न हो। इसी प्रकार साधकों को भी घंटी बजने पर उपस्थित होना आवश्यक है।

भोजन सादा होना चाहिये। मसालों से पौष्टिकता नहीं आती। चाट आदि भोजन में आवश्यक नहीं। आहार अल्प हो, अधिक भार बढ़ाने के लिये लोग अधिक भोजन करते हैं। किन्तु आध्यात्मिक सत्संगी को नियमित भोजन करना चाहिये।

जहां तहां थूकना नहीं चाहिये। पुरुषार्थ आवश्यक है। सफाई सीखने की चीज़ है। मकान मन्दिर से भी अधिक स्वच्छ हो। मराठा स्त्री मकान को खूब साफ रखती है। मद्रास में रेस्टोरेन्टस् बहुत साफ सुथरे होते हैं किन्तु पंजाबी होटल गंदगी का घर होते हैं। आध्यात्मिक सत्संग में बाहर भीतर दोनों साफ रहते हैं। बाहर से कुवेष बनाये रहने वाले अन्दर से निर्मल होंगे यह भावना समझ में नहीं आती।

स्वच्छता

जो साधन बतालये जावें उनको आप लोग स्मरण रखें तथा जीवन में प्रयोग में लावें। अपना स्वभाव बनाना चाहिये। हम पढ़ते तो बहुत हैं परन्तु सब नियमों का पालन नहीं करते। यह अच्छा नहीं। पुस्तकों में स्वच्छता की बातें पढ़ते हैं और सीखते हैं परन्तु वर्तते नहीं हैं। जब तक व्यक्तिगत स्वच्छता नहीं, तब तक कोई बात नहीं आती। किसी में आदत होती है कि चाट खाई, पत्ता

वहीं फैंक दिया। जिस प्रकार साधना सत्संग में आकर स्वच्छ रहते हो, उसी प्रकार घर में भी स्वच्छता रहनी चाहिये। व्यक्ति के स्वच्छ होने से देश भी स्वच्छ हो सकता है। स्वच्छ रहना बहुत उत्तम है। दूसरे देशों की माताएं बच्चों को बनाने में जिम्मेदारी समझती हैं। बच्चा जाति की शोभा हो, निर्मल और कोमल स्वभाव वाला हो, संयमी हो, अन्यथा घर को अनाथालय बनाने से क्या लाभ? भारत में संयमित जीवन नहीं है। यदि साधक माला बहुत फेरता है परन्तु मैले कपड़ों पर साबुन नहीं लगाता, स्वच्छ नहीं रहता तो क्या भली बात है?

पूर्वी लोग बर्तन तो बहुत साफ रखते हैं किन्तु कपड़े बहुत मैले रखते हैं। स्वच्छ रहने की आदत सभी को बनानी चाहिये। वाणी को नहीं बदलना चाहिये। जो बात कह दी उसमें बदली करना चोरी करने के बराबर है। अपने वचन पर रहना चाहिये। दूसरों की निन्दा करना बहुत खराब है। अपनी बड़ाई का गोबर जमा नहीं करना चाहिये। जब भला आदमी गंदे आसन पर बैठना पसन्द नहीं करता तो भगवान हमारे राग द्वेष पूर्ण अन्तःकरण में कैसे बैठ सकेंगे।

नाम का सिमरन बड़ा ऊंचा साधन है। यदि साधन में राम कृपा अवतरित न हो तो समझो कि साधक के अन्तःकरण में शुद्धि नहीं। कई व्यक्तियों को इस नाम के जपने से बहुत लाभ व शांति मिली है। राम नाम बड़े गहरे घाव को भर देता है। चरित्र निर्माण के साथ साधना करते रहने से व्यक्ति बढ़ता जाता है। चरित्रवान को जो सुख व शांति मिलती है, वह दूसरे को नहीं प्राप्त होती। जिस साधक के पास राम नाम की परम औषधि है उसका परम कल्याण हो जाता है।

सफाई-तौलिया मैं मैला देखूं, बदन पोंछने का, तो मैं आपत्ति करता हूं। प्रति दिन मैल निकाले तो निकल जावे। किन्तु पांच दिन का मैला हो जावे तो निकालना कठिन है। तो यह सफाई की बातें हैं। इसमे पुरुषार्थ चाहिए। मैंने एक को कहा, धोती मैली (है

तुम्हारी) इसने कहा कि प्रतिदिन धोता हूं। पर धोना तो वह है कि वह चिट्टी हो।

यहां दस लाख (लखपति) वाले का घर भी उतना साफ नहीं जितना मराठा स्त्री साफ रखती है, अपने घर को। मराठा गरीब हो तो भी उसकी स्त्री मंदिर से ज्यादा साफ घर को रखे। पंजाबी का होटल मक्खियों का ढेर। मद्रासी का बहुत साफ। तो मुझे कहना यह है कि स्वच्छता की वृत्ति होनी चाहिए। मैं तो यह जानूं कि जिसका अन्दर साफ होगा वह बाहर को भी साफ बनाएगा। पहले होशियारपुर (साधना सत्संग) लगाए तो लोग आते थे, ढीले ढाले। फिर (बाद में) तेजी से चलने लगे। इन दिनों मैं भी बहुत तेज चला करता (था)। मैं नैनीताल में गया, 1941 में तो देखा करता, गढ़वाली जो भरती हुआ वह कैसे और दफ्तरी कैसे चला करें। लाहौर में लड़कों को देखता। देखता हिन्दु कैसे चले और मुसलमान कैसे। साधना सत्संग का प्रयोजन वर्णन किया। मैं किसी को ना भी करता हूं (सत्संग में सम्मिलित होने से) तो उन्हीं बातों के कारण। बीमारी भी (अर्थात् जो बीमार हो) विचार करता हूं (कि बीमार व्यक्ति न आए)। मुझे यह अच्छा नहीं लगता कि बिना बीमारी के भी बीमारी के ठाठ बनाए रखना। (नीरोग होते हुए भी बीमारों की भांति ढीला-ढाला रहना)। बर्ताने वाले कैसे हों। एक बार मैं समझूं कि गलती ही की (ऐसा करके)। एक की धोती लटक रही थी (साधना सत्संग में बरताते समय) मैंने कहा यह निकल जावे बरताने वालों में से। वह फिर आया भी नहीं। आगे वह आया तो पायजामा डाल कर।

(iii) शुचिता—

जैसे कोई अधिकारी है और उसे लड़की के विवाह के लिए रुपयों की आवश्यकता है, और वह यदि सोचे कि घूस ले ली जावे तो क्यो बुराई है। सरकार की दृष्टि बचाने के षड़यन्त्र रचकर घूस ले लेता है। हर चोरी की तो जांच होती नहीं। फिर जांच होने पर चोरी भी सिद्ध नहीं हो पाती क्योंकि वह पहले ही

वचने की व्यवस्था बना रखता है। किन्तु इसमें अशुचिता तो है ही। सरकार की दृष्टि से बचाया जा सकता है किन्तु ईश्वर की दृष्टि से नहीं। इससे मनोबल घटता है। ऐसे लोग कभी सत्यसंकल्प नहीं हो सकते।

जो चोरी करते हैं वे पकड़े जाने पर घूस भी बहुत देते हैं क्योंकि चोरी में कमाई प्रचुर होती है। अनुचित कमाई का पैसा आता है उसे खर्च करने में भी दर्द नहीं होता। ठेकेदार अभियन्ताओं को घूस देते हैं और अपना बचाव करते हैं, अर्थात् सरकारी चोरी करते हैं, अशुचिता से रुपया बचाते हैं। कुछ उसमें से अभियन्ताओं को घूस में देते हैं। ऐसा व्यक्ति प्रार्थना के लिए उपयुक्त नहीं।

रेडियो यदि ठीक हो तो दूर दूर के केन्द्रों की ध्वनि पकड़ सकता है और प्रसारण केन्द्र बड़ा हो तो दूर दूर तक शब्द फैंक सकता है।

आकाश में किसी सत्ता से शब्द स्फुरित हुआ और सुनने वाले पर उतरा, यह मिथ्या नहीं। कई हमारे मिलने वाले बताते हैं कि हमारा इष्ट हम से बात करता है। जो रूप उपासना करते हैं वे इष्ट से मिलते हैं और उसका आदेश सुनते हैं। जो नाम उपासना करते हैं, रूप उपासना नहीं करते उनका पथ प्रदर्शन शब्द किया करता है। आत्मा साक्षी जाना करता है कि मेरे अन्दर स्फुरण हुआ है। पश्यंती वाणी परा से भिन्न है। यह अंत :करण की ध्वनि होती है। सूक्ष्मता के स्तर पर यह परा से कम होती है। आराधन करते करते कई साधक नाद सुन कर नादोपासना करते हैं। नादोपासना का वर्णन भी शास्त्रों में आता है। हम ने तो भगवान का आराधन करना है। नाद हमारा लक्ष्य नहीं है। हमारा लक्ष्य है परमात्मा। विविध प्रकार के शब्द प्रकट होते हैं। कुछ एक मतों वाले इसी को बहुत मानते हैं। नाम तो ऊंचे पद पर जा कर हाथ लगाता है।

जितनी शिष्य में आत्म समर्पण की भावना होगी, जितना वह अपने आप को गुरु के साथ एक कर लेगा, उतना ही गुरु उपदेश

उस में विकसित होगा और पूर्णता होगी।

जिस शब्द को मनन किया जाय, वह मन्त्र हो जाता है। जिस शब्द पर बहुत चिन्तन किया जाय, वह यन्त्र बन जाता है। उस में शक्ति पैदा हो गई। बीजाक्षर साथ मिला देने से मन्त्र का तान्त्रिक यन्त्र बनता है।

लोभ को जीतो

लोभ को जीतना चाहिये। धन मनुष्य को प्राणों से भी अधिक प्यारा है। दान करना लोभ को जीतना है। धन देना चाहिये। दीन, अनाथ और दरिद्र को धन या दान देना चाहिये। साधक को लोभ जीतना चाहिये।

सफाई का ध्यान रखना चाहिये। अन्दर की सफाई का अधिक ध्यान रखो। इस लिये साधकों से कहता हूं कि अपने को बना कर रखो। साधारण मनुष्य से साधक में विशेषता होनी चाहिये।

संतोष

बनावटी भूख अपने आप में पैदा नहीं करनी चाहिये। पदार्थों की बनावटी बाजारी भूख की तृप्ति यदि सारा संसार भी आग में पड़ जावे तो भी नहीं हो सकती। राम-भक्त आलसी दरिद्री नहीं होता। अच्छे साधकों की यह बनावटी भूख समाप्त हो जाती है।

सन्तोष न हुआ तो पहले न जाने कैसे कमाया और फिर भी टैक्सों के समय सरकार को कोसना, न्याय से परे जाना है। हम अनाचार करते हैं और फिर यदि सरकार का हाथ पड़ जाय तो फिर उसको बदलना चाहते हैं। वे जो सिफार्शी, अनाचारी की सिफारिश करते हैं, कहते हैं, कि जाना ही होगा, वोट जो लेना है। वे सिफार्शी तो न्याय पर अपने बूटों की मेखें रखते हैं। साधक में यह दोष कम आना चाहिये। जो होना होगा हो जावेगा।

साधक तो अपने किये को भगवान की दृष्टि में जांचता रहता है। अमीर और गरीब दोनों श्रेणियों के नाम जाप करने वाले अच्छे रहते हैं। यह हम देखते हैं कि संसार में रहते हुए उन्हें सब कुछ प्राप्त हो जाता है।

जीवन में प्रसन्नता के लिए हर वस्तु में सन्तोष की आवश्यकता है।

उपस्थित देवियो और सज्जनो ! भगवान की सृष्टि में पाप ताप नहीं हैं। दैनिक कार्यों को लेकर मनुष्य अपनी जैसी सृष्टि की रचना करता है, किन्तु मनुष्य इसी अपनी सृष्टि में एक और तीव्र सृष्टि की रचना भी करता है जो दुख और शोक देती है। जीव का यह धर्म है कि इस प्रकार की सृष्टि करे ही नहीं।

निन्दा अच्छी नहीं

स्त्री पुरुषों की निन्दा करना अच्छा नहीं। रावण जैसे कार्य करो और राम बनना चाहो तो यह संभव नहीं। कोई काम लिया हो तो उसे अच्छा करके बताओ। सत्संग में आने पर सीखना चाहिये। यह एक पाठशाला के समान है। निन्दा को प्रशंसा से जीतना चाहिये। इससे साधक अच्छा बनता है। किसी की निन्दा करना मुझे अच्छा नहीं लगता। यदि कोई अपना काम आप करे तो जिसमें कुशलता हो वह उसे ठीक करे। जब आप में यह कौशल नहीं कि भाई बहिन बन कर उसके चरित्र को सुधारें तो उसकी निन्दा करके उस पर वार करने से क्या लाभ ?

मेरा अपना तो भाव है कि जो राम नाम जपता है वह अवश्य अपना सुधार करता है। इस बात का निश्चय करना चाहिये। "जपात् सिद्धि" यह शास्त्र वचन है।

किसी की निन्दा करके किसी को भला नहीं बनाया जा सकता अपितु इससे उल्टे उसमें हठधर्मी आती है और वह और भी कोसों दूर हो जाता है। किसी के सुधार के लिए उसे प्रेमपूर्वक समझाना चाहिए। उसके आगे भला बनने की महिमा को रखना चाहिए।

समय का सदुपयोग

किसी काम का महत्त्व देने से उसके लिए समय निकल आता

है। जिस कार्य में रुचि होती है, उसके लिए हम समय निकाल ही लेते हैं। समय बहुत है। उसका उपयोग होना चाहिए। हाथ में काम मुख में राम होना चाहिए। भगवान को पाने का मार्ग बड़ा सरल है, बाकी तो पण्डितों की बातें हैं। परमेश्वर के दरबार में जाने से पहले उन्हें नमस्कार करना चाहिए। इससे विघ्न विनाश होते हैं।

मनुष्य की भावना ऊंची होनी चाहिए। भावना में देव विराजमान होता है। सीधा सरल मार्ग हरि-भक्ति पर श्रद्धा हैं। इस प्रकार कोई भी आराधन करे उसको लाभ होना चाहिए। यदि लाभ नहीं होता तो उसे अपने आपको टटोलना चाहिए। उसे स्वयं पता लग जाएगा कि कहां त्रुटि है।

मोह से पतन

थोड़े दिन पहले मेरे पास एक वृद्ध सज्जन आया था। कहने लगा, नौकरी से रिटायर हो गया हूं और पांच सौ रुपये पैंशन पाता हूं। जब पैंशन की रकम आती है तो मेरा बेटा सारी की सारी रकम मुझ से ले लेता है, और यदि मैं देने में आनाकानी करता हूं तो मुझे छड़ी से मार कर ले लेता है। उसने मुझे अपनी पीठ पर छड़ी के निशान दिखाये। मैं ने उस से कहा कि मैं तुम्हारे लिये एक ऐसे आश्रम में रहने की व्यवस्था कर दूंगा जहां पांच सौ रुपये में तुम बड़े आराम से रह कर स्वाध्याय, जाप, दान, सेवा आदि कर सकोगे और अपना बाकी का जीवन सार्थक बना सकोगे। मार खाने और अपमान सहने से बच जाओगे। पर उस सज्जन ने कहा कि वह अपने बेटे को छोड़ना नहीं चाहता, इसलिये मैं उसके बेटे को समझाऊँ। मोह मनुष्य को कितना गिरा देता है और भीरू बना देता है।

भगवान सृष्टि में रहो, माया तथा संकल्प की सृष्टि त्यागो।

भगवान ने संकल्प से ही जगत को रचा। दुख का जगत हम स्वयं बनाते हैं। दो आदमी आमने सामने से आ रहे थे। एक हीरा मार्ग में पड़ा था। एक को वह मिल गया, जिसे मिला वह उसको

पाकर हर्षित हुआ। दूसरा न पाकर शोक ग्रस्त और एक तीसरा व्यक्ति जो दृष्टि टिकाए हुए देखता था, न हर्षित हुआ न शोकित। न पाने वाला रोया क्यों? क्योंकि उसने ममता बांध ली थी (हीरे से) अपनी सृष्टि रची थी (मोह की)। दूसरा पानें वाला हर्षित इसलिए कि हीरा मुझे मिल गया, यह तो बड़ा कीमती है, इससे लड़की का विवाह ऐसा करूंगा कि (सारी बिरादरी देखती रह जायेगी) इस प्रकार की उस ने अपनी ही मोह की सृष्टि रची।

तो वात यह है कि हमारी सृष्टि तो संकल्प की बनाई हुई है। जिस से हम ने कल्पना का सम्बन्ध बांधा नहीं। वह यदि रेल के नीचे कट गया तो वृत्तपत्र में उस का समाचार पढ़कर दुख होता है नहीं।(यह हमारी) मोह और संकल्प की सृष्टि ही दुखमयी है। (तो) जो भगवान का यन्त्र बनाना चाहे (अपने आप को) तो उस को तो भागवत सृष्टि में रहने वाला होना चाहिए।

सात्त्विक बनने की चेष्टा करो

सत्गुणी अच्छे आदमियों में बैठेगा। देवों में बैठेगा। जो रजोगुणी है वह खानपान और माया रूपी मनुष्यों को मिलेगा। जो तमोगुणी है, वह असुरों की पूजा करेगा। संगति का लोग इसी लिए उपदेश देते आए हैं। सत्गुणी की पहचान, वह देवों का। रजोगुणी छली, कपटी, तमोगुणी महाअज्ञानी—बुराई में लगे, क्रोधी, बड़ा हठी, जो शास्त्र ने वर्णन न किया वह करना। धरना लगाना, हाथ उठाए रखना, शरीर को मारना, ठीक नहीं। कबीर साहब बिल को पीट रहा। बिम्बी को पीटे क्या बने। सांप न मारा जाए। शरीर को मारने से क्या, यदि अहंकार का सांप जो अन्दर फन फैलाये बैठा है (उसे न मारा जाये)। (महाराज ने गीता में कहा है कि) मैं जो सब प्राणियों में रहता हूं (काया को सुखाने वाले) मुझे ही दुःख देते हैं। एक स्त्री को किसी ने कहा, एक आदमी कांटों पर लम्बा लेटा हुआ है। चलो देखें। इस (स्त्री) ने कहा, कांटों पर पड़ा है, क्या देखें। यह सब दिखावे की चीज़ है। यह तो चढ़ावे के लिए। इतनी देर (इसको देखने की अपेक्षा) मैं

रामनाम जपती तो लाभ होता। अन्दर
चौराहे में क्यों पड़ता। यह तो तमोगुणी
जप-तप तो आत्मा को जगाने की चीज़
(काया को) कष्ट देने से तो भगवान की ही
सात्त्विक भाव तो निर्भयता, सन्तोष
सात्त्विक बनने की चेष्ठा करनी चाहिए
चलता है कि क्या अच्छी क्या बुरी। दीपव
चीज का पता चल जाता है। अंधेरे में अ
विष भी खा लेते हैं।

एक आदमी बीमार था। अल्मारी से यूं
उठा लाया। बड़ा विद्वान डाक्टर, पर शी
उसका भाई वकील, दवाई का नाम नहीं प
अपने अन्दर चान्दना करना चाहिए। अ
पढ़ने से (होता है)।

वाणी

साधक की वाणी में रस होना चाहिये
तथा इसी प्रकार परमेश्वर को प्रभावित क
वाणी में रस होना चाहिये। आजकल भा
की कमी है। केवल कोई वीर पुरुष
प्रभावशाली वाणी बोल सकता है। कोई
निश्चय पूर्वक कहनी चाहिये।

जिस समय जर्मनी ने क्षेत्रों का विजय क
समय हिटलर ने रेडियो द्वारा दो घंटे तक
जर्मनी में बोला जो मुझे समझ न आती थी
उतार चढ़ाव ऐसा सुन्दर था कि उस भा
रखा। साधक की वाणी में इतना रस हो

आत्मनिरीक्षण –

आप स्वच्छ वस्त्र धारण करते हैं और यह अच्छा है कि आप अपने आप को स्वच्छ रखते हैं। किन्तु अधिक मूल्यवान वस्त्र साधकों को नहीं पहनने चाहियें। वे तो केवल दूसरों को दिखाने के लिये होते हैं और हमारा उनसे कोई प्रयोजन नहीं। वस्त्र स्वच्छ तथा अधिक समय तक चलने वाला होना चाहिये। तड़क भड़क आदि दूसरों को दिखाने की चीज़ें होती हैं। हमें उनकी ओर नहीं देखना चाहिये अपितु अपने अन्दर की ओर देखना चाहिये अर्थात् आत्मनिरीक्षण करना चाहिये और अपने मन को साफ रखना चाहिये। हमें अपने दैनिक व्यय का हिसाब रखना चाहिये क्योंकि यह लाभदायक है।

इसी प्रकार हमें सवेरे जल्दी ब्रह्म समय में उठना चाहिये तथा अपने अन्दर की दुर्बलताओं, अनेक भूल परिणामों को सोचना चाहिये। तथा भविष्य में ऐसी भूलों से बचने तथा आगामी दिन के लिये अच्छे कार्यक्रम के विषय में सोचना चाहिये। साधक को विचारना चाहिये कि जो कार्य वह करता है उससे उसकी उन्नति होगी या गिरावट।

अपना मन साफ रखना चाहिये तथा फिर यदि दूसरे लोग आपकी बुराई भी करें तो उनकी परवाह नहीं करनी चाहिये। यह अच्छा नहीं है कि यदि आप वास्तव में अच्छे नहीं है तो भी लोग आपकी झूठी प्रशंसा करें।

अंग्रेजों का प्रैस यही कहता रहा है कि कांग्रेस वाले गुण्डे तथा बदमाश हैं। किन्तु उनके कहने से ऐसा हुआ तो नहीं।

अहंकार – साधना में बाधक

एक बार कुछ साधकों के बीच श्री महाराज जी विराजमान थे । सम्भवत: उनमें कोई महत्त्वाकांक्षी होंगे । श्री महाराज जी कहने लगे, "लोगों का झगड़ा रहता है कि मैं बड़ा, दूसरा कहता है कि मैं बड़ा। वास्तव में बड़ा कैसे बनता है, यह सुनो। एक बार दाल और बड़ा आपस में झगड़ने लगे । दाल ने कहा कि

तू मेरे से ही निकला है तो मुझ से बड़ा कैसे हो गया। तब बड़े ने कहा—

पहले थे हम उड़द, उड़द से दाल कहाई।
फिर किया गंगा स्नान, त्वचा दी गई उतराई।।
कर पत्थर से युद्ध, अंग-अंग चूर बनाए।
फिर कूदे तप्त कड़ाह में, घाव बरछी के खाए।।
लाल हो निकल बाहर, तब हम बड़े कहाये।।

इस प्रकार श्री महाराज जी ने उन साधकों को बड़ा बनने का रहस्य सहज स्वभाव में बड़े विनोद तथा सरल ढंग से बताया ।

अपना जीवन स्वयं अच्छा बनाओ

हमारा यह सत्संग राम भजन के लिए होता है पर और भी मिलने जुलने वाले आएं तो थोड़ा समय दिया जाता है। यहां राम को प्रेरणा करनी होती है। इसमें जितना संयम हो उतना ही अच्छा होता है।

बहुत बोलने और बहुत सुनने की बजाय, करने की रीति अधिक अच्छी है। सिनेमा से कोई व्यक्ति सुधर जाए ऐसी बात नहीं। सभा कैसे रीझे यह इन का (सिनेमा वालों का) उद्देश्य होता है। क्योंकि इसमें पैसा अधिक आता है। हमारे यह छोटे से साधन हैं। इसमें जो स्वयं करने की बात है वह बहुत ही अच्छी है। सभा की उपेक्षा की नहीं जाती। करना जो है वह बहुत ही अच्छा है। देहली जाने की बात— बीच में रोहतक आता है — चलने से ही (आदमी) पहुँचता है। करने की प्रवृत्ति होनी चाहिये। यह एक बड़ी बात है जो हृदय में रखनी चाहिए। यहां सुनने की रीति इसी लिये अधिक है कि पढ़ने वाले बहुत नहीं अपितु सुनने वाले अधिक हैं। आदमी यह चाहता नहीं कि मेरे मुकाबले में कोई हो। आगे चलने की ओर प्रवृत्ति होती नहीं। तुलसी रामायण कई सुनें और एक चौपाई याद नहीं तो बात यह हुई कि जनता वहीं खड़ी है जहाँ पांच सौ साल पहले थी। यह स्वयं न करना ही इसका कारण है। आप करने को बहुत महत्त्व देना चाहिए। स्वयं सीखना

चाहिये, सीखने से विस्तार होता है। यह किसी ऋषि (सनत्कुमार) का वहुत पुराना वाक्य है कि जब कोई करता हो तो उसका ज्ञान बढ़ता है। यहां तो जप में भी दूसरे को बैठाने की रीति, दूसरों से कराने की आदत। अपनी प्यास दूसरों को पानी का गिलास पिलाने से तो नहीं मिटती। इस (पण्डित आदि) को अपने लिए जप करवाने बैठाना, कोई महत्त्व रह नहीं जाता। थोड़ा सा यह रह जाता है कि संस्कार अच्छा फैलता है। नहीं तो यूं ही समझो कि यह तो भगवान तक को रिश्वत देने का रिवाज हुआ। किसी को रिश्वत देकर अपना व्यर्थ काम पूरा करवाना हुआ। देवता तो फिर इस बात के भूखे नहीं। दवाई किसी और ने खाई और आराम किसी और को हो – यह तो नहीं। एक तो कारण वर्णन किए। मुझे कहना यह है कि हर एक की रुचि यह होनी चाहिए कि अपने शुभ कामों को मैं आप करूँ। यह बात अच्छी नही कि वह अपने आचार संवारे नहीं और दूसरों को रिश्वत देकर अपना कल्याण चाहे। यह थोड़ा थोड़ा सत्संग इसलिए कि अपने आप को अच्छा बनाया जावे। सारी जनता का यह कर्तव्य है कि अपने जीवन को आप अच्छा बनाए। आदमी के पास समय वहुत होता है। पर समय का उपयोग बड़े थोड़े करते हैं। एक साधु नगर में आया। उसने कहा कि जैसे भेड़ें, बकरियां, बैल रहते हैं उसी प्रकार तुम तो नगरों में रहते हो। एक ने उठकर प्रश्न किया कि महाराज, आप को तो पता नहीं कि समय हमारे पास है नहीं। साधु ने पूछा यदि समय नहीं तो बताओ कितने बजे उठते हो? उत्तर मिला, महाराज! कालिज पढ़ता हूँ, इसलिए साढ़े सात बजे उठता हूँ। फिर दातुन, कुल्ला आदि करते नौ बज जाते हैं। फिर नाश्ता आदि किया तो दस बज जाते हैं। इस प्रकार सारे दिन का काम कह डाला। साधु बोला, अच्छा, तो हम वतलाएं कि तुम सात बजे उठा करो और इसी प्रकार फुर्ती से काम करके गिनवा कर साधु ने एक घंटे से अधिक समय बचा हुआ दिखा दिया। फिर वह (लड़का) कहने लगा कि ऐसे होता नहीं। फिर साधु ने कहा कि बात तो यह हुई कि लगन तुमको है नहीं।

इसी प्रकार एक नगर में एक ने एक बड़ा गढ़ा देखा। इसमें गन्दगी और मच्छर इतने। इसने कहा, यहां तो यह गढ़ा रहना नहीं चाहिए। इससे बदबू, मच्छर, दुर्गंध फैलती है। कहने लगे कौन करे? सरकार बड़ी खराब है। उसने श्रमदान गांव वालों से मांगा और कहा कि दस मिनट मुझे देवें। कहने लगे, क्या करोगे, बाबा? बाबा लगा और शाम तक सब ने मिलकर गढ़ा बंद कर दिया।

श्रमदान बड़ा उचित है और फिर अपने कल्याण के लिए तो बहुत ही उचित है। अब श्रम के दिन आए हैं। श्रम के यज्ञ पुराने काल से भी चलते आए हैं। पहले मैंने देखा है कि कटाई भी मिलकर करते थे। यज्ञ किसी समय थे। मेरे देखने में भी आए। श्रम करने लगें तो समय तो बड़ा होता है नगरिकों और ग्रामीणों के पास भी। इतना जो खाली समय ग्रामीणों का हुक्के आदि पर और नागरिकों का ताश और नावल पर नष्ट होता है, यह ग्रामीण और नागरिक समय पर छुरी चलाते हैं। अपने कल्याण के लिए अवसर निकालना चाहिए। एक कोई बूढ़ा बावा था। जाट का छोहरा साधु बनने उसके पास आया। साधु ने कहा, भाई! मेरा गुरु जो था वह जब बूढ़ा था तो ऐसे ही एक छोहरा आया और वह पैर दबवाया करता (मेरा गुरु)। जब बहुत बूढ़ा हो गया तो एक दिन पैर दबाते में गला दबा दिया। छोहरा बोला ना बाबा। बाबा ने कहा कि फिर साधु बनने से तो तू आलसी हो जाएगा। बोला, नहीं बाबा। अस्तु, अन्त में चेला बना लिया।

बिना परिश्रम का भोजन सब को बोदा बना देता है। जो काम नहीं करता, परिश्रम का रस उसमें रहता नहीं। पर लड़के ने कहा, नहीं मैं तो अवश्य करूंगा। बन गया चेला। दो वर्ष हो गए। साधु आलसी था नहीं। कहा, बहुत (लोग) बुढ़ापे का विचार नहीं भी करते। यह तो हिन्दुस्तानियों का रिवाज है कहना कि अब तो बूढ़े हो गये। हर समय ऐसे कहना भी खराब करता है। चौधरी! तेरी तो मूंछ सफ़ेद हो गयी। तो यह कह कर इसको तो बूढ़ा बना दिया। हंस के बच्चे भी तो सफ़ेद होते हैं। तो सर्दियों का मौसम आया। वर्षा हो रही थी, कीचड़ था, तब ठाकुरद्वार की रोटी

खाकर छोकरा आलसी हो गया। गुरु जी ने कहा कि आज ठाकुर जी की रसोई बनानी है, जाओ, आटा मांग कर लाओ। बोला, आज तो जुकाम हो गया। निमोनिया हो गया तो फिर सेवा करने वाला कोई रहेगा नहीं। आज आप ही जाओ। अन्त में गिरता पड़ता बूढ़ा ले आया आटा। ऐसे ही पकाने के आदेश को भी टाल दिया। फिर भोग लगाने का आदेश टाला। फिर खाने को कहा (तो सब से पहले)। समय सबके पास है। आलस्य न हो तो सब सीख लेता है। पंजाब में उर्दू का बहुत रिवाज। एक किताब मैंने लिखी, 34 वर्ष हुए। पंजाबियों ने कहा उसका उर्दू अनुवाद करवाओ। मेरे मिलने वाले सैकड़ों ने हिन्दी सीखी किन्तु लोग न माने। अन्त में पांचवें प्रकरण में अनुवाद कर ही लिया। फिर दूसरी पुस्तक मैंने 1926-27 में लिखी। अनुवाद नहीं होने दिया (इसका उर्दू में)। यत्न करे तो सब सीख लेता है। तोते पढ़ जाते हैं। मनुष्य तो लगन करे तो आकाश की बातें जानने लग जावे। बड़ा निश्चय हो तो इस प्रकार थोड़ा थोड़ा समय देने से बड़ा अन्तर पड़ जाता है। दिन में आधा घंटा दे तो यह सब कुछ हो जाता है। चीन जब आजाद हुआ तो हर एक के लिए यह कर्तव्य लगाया। मुहल्ले के लड़के स्कूल जाने से पहले और बाद में मजदूरों और व्यापारियों, सब को जो इकट्ठे हों, स्थान स्थान पर मुहल्ले में पढ़ावें। दो वर्ष में ही इस प्रकार इन्होंने सारी जनता को पढ़ा दिया। बड़ी आयु के सब पढ़ गए। तो पुरुषार्थ से बहुत कुछ हो जाता है। इस कारण अपना कर्तव्य पालना, केवल सुनने पर नहीं रहना। उन पर चलने का प्रयत्न करना। खाली सुनने से तो कोई लाभ नहीं। शास्त्र के वाक्यों को सुनना, फिर मनन करना और उन पर चलना—यह है परिश्रम का फल। करने की चेष्टा करनी चाहिये। इस चेष्टा पर उदाहरण सादा, मनोरंजक देकर मैं बोला, एक विचार होता है कि आदमी थोड़े ही हों। बाहर के तो फिर दूसरी बात कही जाती है। अच्छा भगवान का आशीर्वाद हो कि हमारे कर्म करने की ओर विचार बढ़ें। हम चाहते हैं, चलने वाला लाभ सब को होवे।

साधना सत्संग

साधना सत्संग – पार्श्वभूमि

सत्संग का तात्पर्य यह है कि खाली समय का उपयोग करे। तो यह सत्संग सन् 1936 में हरिद्वार में लगाया गया पहले। दो वहां लगाए। प्रारम्भ में केवल अच्छे 10 या 12 आदमी बैठे। ऐसा ही विचारा गया। वहां भीम गोडे के पास धर्मशाला अमृतसर वालों की थी। मेरे मिलने वाले, वे कमरे रिजर्व कर देते थे। वैसे भी दिसम्वर के माह में लोग कम जाते हैं। पत्र इनको लिख दिया जाता तो बड़े अच्छे रिजर्व कर दिया करते। इसके बाद तीन सत्संग होश्यारपुर, फिर लायलपुर और फिर कपूरथला में। फिर होश्यारपुर में नियमित लगाने लगे। फिर सांपला में लगाने लगे, यह दूसरा था, चौथा ग्वालियर में। दो तीन साल से मेरठ। दो सत्संग देहली शहर में भी राम नवमी से पूर्ण-मासी मिलाकर। मुख्यतः तो यह थी हरिद्वार में। हम पांच आदमियों ने, भीम गोडे से ऊपर सप्तसरोवर कहलाता है, वहां फिर आचमन किया स्नान कर के ही। सम्भवतः एक ने स्नान न किया हो। फिर व्रत लिया कि हम राम सेवा किया करेंगे। उनमें से दो चले गए। तीन वाकी, एक तो काफी करता। तात्पर्य इसका यह था कि कुछ आदमी सद्ध जाएं।

साधना सत्संग

जो साधक साधिकाएं अपने स्थानों से आए हैं, राम नाम के नाते से। उसी नाते से मैं आप सब का स्वागत करता हूँ। यहाँ रहना नियम संयम की बात है। तपोभूमि में तप का जीवन व्यतीत करना बड़ा अच्छा है। यह गंगा स्थान तपोभूमि है। जो इस भूमि में राम नाम का आराधन करते हैं वे बड़े भाग्यशाली हैं। यह तप बाहर भीतर दोनों को अच्छा बनाता है। श्री राम नाम आराधन से बुद्धि, मस्तक, शरीर का आत्मिक बल बढ़ता है। आत्मिक जागृति होती है।

पंच रात्रि का साधना सत्संग अब प्रारम्भ होता है। आप लोग दूर दूर से आये हैं। मार्ग के कष्ट भी होते हैं। यहां का खाना पीना सब तपस्या का ही है। फिर भी लोग बहुत पहले लिखने लगते हैं। इससे चाव जो सत्संग में सम्मिलित होने का है उसका परिचय मिलता है। मैं आप सब का हार्दिक स्वागत करता हूं और यह आशा करता हूं कि साधना सत्संग के नियम आप ठीक प्रकार निभायेंगे और अपने में नाम का संचय करेंगे। राम नाम बसायेंगे।

यह साधना सत्संग है। भजन करने का साधन सीखना है। केवल अपने अन्दर नाम को बसाना है। हमारे यहां [illegible] सत्संग इसी नाम को अन्दर बसाने के लिये लगाते हैं। [illegible] ठीक है कि कइयों के अन्दर यह रम जाता है। रूप की [illegible] का निषेध नहीं है, पर यहां नाम की आराधना बताई [illegible] यदि कोई हीन रूप रखता हो तो उसे वर्जित भी [illegible]

आप यहां सीखने के लिए आए हैं।आपने सत्संग [illegible] को, निन्दा को, ईर्ष्या को जीतना सीखना है। [illegible] स्वार्थी लोग झगड़े बढ़ाते हैं, आप तो पर[illegible] जीवन का अंग बनाना है। समय पर सब [illegible] पालन करें।

तो मैंने सत्संगों का इतिहास वर्णन किया। [illegible] में यहां आता है वह भी वर्णन कर दिया। [illegible] यह कि जितना राम नाम का आराधन [illegible] सके, हर एक को करना चाहिये। उतना ही [illegible]

ऐसी कोई धारणा यहां नहीं बनाई कि [illegible] यह तो साधना की चीज़ है और सीखने की है। [illegible] है। दूसरों के भी सत्संग लगते हैं-कार्यकर्ताओं [illegible] हैं और काम करते हैं। यही भावना साधना [illegible] कि यहां हम नियमबद्ध जीवन बनावें। [illegible] प्रकृति बन जावे और जहां तक बन सके [illegible] हो।

यहां आने से कल्याण होगा ऐसा [illegible]

स्वप्न में आई नहीं। साधना है और आप अपने शिक्षक आप ही हैं। यहां से जाकर भी यह बात आपके जीवन में बनी रहे ऐसा भी मैं चाहूंगा।

राम नाम बसाओ

साधक साधिकाएं जो यहां एकत्रित हुए हैं उन को यह सोचना चाहिए कि हमारी मनोवृत्ति ऐसी बने कि हम में राम नाम बसे। यह तो सीखना है। वैसे (बिना सीखे) इसका माहात्म्य नहीं। सीखने में ही इसका माहात्म्य है।

जीवन नियमित हो

दूसरी बात सीखने की है, नियमित जीवन। बड़े नियमित होते हैं सरकारी नौकर। सवेरे साढ़े नौ बजे अजमेरी गेट पर देखो, साईकलों, की गंगा, मनुष्य की नदी, वह दफ्तर का समय,इस प्रकार छः दिन तो बड़े नियम से। पर जब इतवार आया तो पेटी खोल दी। इस दिन जितनी अनियमितता हो सकती है करेंगे (करते हैं)। हिजामत भी देर से, रोटी भी देर से, मुझे कहना यह है कि इतवार को बहुत ज्यादा अनियमितता। यदि सरकार उनको अनुमति दे तो वे 12 बजे दफतर लगावें और ढ़ाई बजे बन्द करें। अंग्रेज हालीडे (Holiday) हो तो उस दिन भी उसी समय खाना (नित्य की भांति) और गिरजाघर से भी कदम मिलाकर निकलते हैं। और यहां (भारतीय लोग) ढीले ढाले (सब काम करते हैं)। छः दिन का नियमित जीवन, सातवां दिन इन के (अंग्रेजों के) जीवन में अनियमितता नहीं ला सकता। मुझे निवेदन यह करना है कि नियमितता सीखनी चाहिये। और भी यहां जितना रहना सहना है यह जीवन में लाना चाहिये। यह स्वास्थ्य की कुंजी है। समय पर भूख लगती है, रस इस प्रकार ठीक बनता है। पर यह श्रीमान मनुष्य अनियमित बड़ा है। प्रकृति को दबाता है। रक्त यदि हमारे कहने से बहने लगे तो हम कहेंगे कि इधर ज्यादा बहना चाहिये। वह तो भगवान के आदेश से (बहता है)। अन्यथा ये तो कहेंगे कि

इसको भी जरा आराम (मिलना चाहिये)। या किसी और प्रकार से गति को बन्द या खराब करके हटें।

प्रकृति जो है वह नियम से रहना सिखाती है। प्रकृति में नियम है। ज्यों ही आपके फेफड़ों में अनियमितता आई, और आप हस्पताल में गए। अनियमितता का आना तो मृत्यु का आना है। शारीरिक शास्त्र आपको नियम सिखाता है। नियम से जीवन व्यतीत करें, यह रहना चाहिये। प्रमाद नहीं होना चाहिये। नियम का जीवन यहां सिखाया जाता है। यहां जो कड़वापन है (निश्चयपूर्वक रहने का) वह (नियम) सिखाने के निमित्त है। सादापन भी बहुत अच्छा है। जो नौकर बहुत रखते हैं वे आदमी आलसी। यहां का भोजन स्वास्थ्य के लिए बहुत अच्छा है। पर चाटें (चाट मसाले) इसमें नहीं। मसालों से दिमाग की नस कोई तेज हो जाती है ऐसा किसी डाक्टर ने अथवा किसी बुद्धिमान ने कहा नहीं। रस भी होना चाहिये (भोजन में)। शास्त्रीय भाषा में नमक है। ग्वालियर वाले तड़का भी लगाते हैं, हींग का। वह अपने ढंग से। वह भी सादा, घी भी इस प्रकार कम, यहां दूध ज़रा ज्यादा। मेरे विचार में ज्यादा दूध की आवश्यकता भी नहीं। खराब (अशुद्ध, पानी मिला हुआ) दूध फिर क्यों पीना। आधा सेर से क्या ज्यादा। चन्द एक खा जावें तो क्या मतलब। (यदि खाने पीने के पदार्थों को देश के कुछ लोग अधिक मात्रा में खा जावें तो गरीबों के लिए क्या शेष बचेगा)।

साधना का अर्थ इसीलिए तो खाली समय के उपयोग का कहा। हम जानते हैं कि कोई जमींदारी छोड़कर, कोई पढ़ना छोड़कर (यहां आता है) तो फिर समय का पूरा उपयोग करें। यहां सब काम नियम से होते हैं। साधारणतया भारतीयों में स्वभाव नहीं है नियम का। वैसे यहां पर कोई विशेष रोक नहीं। घूमने को भी कोई चला जाए। मील डेढ़ मील तक तो भी समय। किन्तु उसको घंटी का विचार हो। नियम भंग न हो। यदि बहुत आदमी नियम का स्वभाव बनायें, नियम आ जाए। प्रातः काल उठने का

नियम फिर बहुत आदमियों में आया भी। पेट के रोगी यहां अच्छे रहते हैं। पश्चिम पंजाब का एक आदमी, उसने किसी संस्था को जीवनदान दिया। फिर आसाम में भी वह काम करता। साधना सत्संग, नांगल पहली बार आया। उसको पेट की तकलीफ बहुत होती। पर भोजन सादा इतना अच्छा कि वह बहुत ही अच्छा रहा। घी की आवश्यकता उसको रह नहीं जाती, जब तीन पाव दूध हुआ। फिर भी यदि घी खाया भी तो उसकी या तो चर्बी बन जाए या वृथा जाए। दूध की मात्रा यहां अधिक है, नांगल भी। ग्वालियर वाले एक पाव प्रातः एक शाम को सोते समय। वे तो वहां के अनुसार, हमने आपत्ति नहीं की। यहां जितना दूध मिलता है, इतना नगरों में तो बाल बच्चेदार को मिलता नहीं। यह भोजन तो बहुत ही अच्छा। मसालों की कमी से स्वाद बेशक कम।

जो भी शिक्षण शिविर होते हैं वहां स धाए जाते हैं। नियम के पालन का स्वाभाव और फिर नाम जपने का अभ्यास हो जावे। फिर तो चार दिन में स्फुरित हो जाता है और फिर तो पीछे (घर पर) भी करते हैं, जिन को आदत हो गई (नाम जपने की)। फिर उसके प्रभाव की प्रतीक्षा नहीं होती। राम जाप के कारण रेल कब पहुंचेगी, ऐसा मालूम हो नहीं पाता। समय अखरता नहीं। दूसरे जिन को नींद कम आती है, दिमाग के रोगी होते हैं। उनको नींद बहुत अच्छी (आती है यहां) हर एक को चाहिये कि नाम स्फुरित करे। इसलिए कहा जाता है कि कुछ सीख कर जाएं। बहुत लोग बहुत आगे बढ़कर घरों को जाते हैं। वे स्वयं अनुभव करते हैं कि हमारे जीवन में बहुत अच्छाई आ गई। जो पहले सोची भी नहीं थी, वह भी आने लग गई।

अखण्ड जाप

ऊपर कमरे में शाम से ही अखण्ड जाप आरम्भ हो जावेगा। अखण्ड जाप से तात्पर्य यह है कि टूटे नहीं। रात्रि को

अखण्ड जाप पुरुषों द्वारा चलता रहेगा। वे पंक्तियां बना लें। चाहे चार बैठें चाहे कम ज्यादा। बारियां भी अखण्ड जाप की लिख कर लगा दी जावेंगी।

नांगल में जो सांपला वालों का अब सत्संग लगता है वहां से एक ने अखण्ड जाप से उठने पर मुझे कहा कि बहुत मण्डलियां साधुओं की जा रही हैं। यह संसार लोभ, मोह का है बूढ़े बैल को जोतना बड़ा पाप है। कितनी लाठी उसकी पीठ पर पड़ती हैं। जमीन सब बोते ही हैं। तो फिर जिस खेत में जाएं, जगह जगह पर लाठी। तो यह कोई पुण्य का काम नहीं। आदमी को अपने भावों को अच्छा बनाना चाहिये। दूसरे ने उठकर बताया कि बहुत से संत वहां आ रहे हैं। दिव्य कान खुल जाते हैं। भावना से जाप करना चाहिये, बहुत लाभ होता है। प्रतीति न होवे तो भी अखण्ड जाप में दो चार बार बैठने पर इसमें आदत हो जाती है। नियम भी प्रतिदिन चलाने पर खुरदरा नहीं लगता।

पहले सत्संगों में केवल 24 घंटों का अखण्ड जाप अन्तिम दिन हुआ करता। अब हर एक भाई को अवसर मिलता है दो बार। ध्यान में थोड़ी संगति हो (साधक संख्या कम हो तो फिर दो बार जाप में बारी आती होगी) **नाम बसने पर ध्यान और जाप एक हो जाता है।** यह बड़ी उत्तम बात है, अखण्ड जाप की। बहुत तो साधना सत्संग में साधन रहने सहने के हैं और सबसे उत्तम साधन आध्यात्मिक कमाई है जो जन्म जन्मान्तरों तक काम आती है। जैसे रुपया बैंक में जमा और फिर चला गया तो भी (डिपोस्टि रुपया उसे) मिल जाता है। यह (नाम जाप पूंजी) तो उस बैंक में जमा कराई जिसका दिवाला कभी नहीं निकलता। तो इस कमाई को खूब कमाना। खूब आराधन, मनन करना।

गीत

सत्संग में गीत गाने के लिए पुराने भक्त सन्त कवियों के गीत

ही चुनना चाहिए। क्योंकि उन गीतों में उन्होंने अपनी आत्मा उड़ेली होती है। वे मन्त्र का काम करते हैं। ये गीत उनके हृदय कमल से निसृत हुए होते हैं। सूर और तुलसी के पद भक्ति प्रधान हैं। मीरा ने विरह वेदना के पद गाये हैं। उनकें गीतों से ऐसा प्रतीत होता है कि सब उनको दृष्टिगोचर हुए हैं। उनकी यह अनुभूत घटनाएं हैं। आजकल के भजन गीतों में शब्दों का खेल है। उनमें आत्मा नहीं होती। गीत में शब्दों का परिवर्तन नहीं करना चाहिये।

यहां डाक्टर भी हैं। वे ध्यान रखेंगे। हमारे यहां तो खाना अधिक नहीं होता। भगवान सब का स्वास्थ्य आप ठीक रखते हैं। पर परम्परा चलती है।

यहां सभी काम समय पर होते हैं। यह मैंने कहा था कि यहां ही चाय पिला दो। न मालूम कौन कितना बाजार में जावे और खावे। फिर शाम को भूख न रहे। तो इस बैठक के बाद चाय आपको यहीं मिल जायगी। और यहां से-इस बैठक से ही-आप साधना सत्संग में सम्मिलित हो गये।

यहां गंगा का भी बड़ा प्रताप है। वहां जावें, घूमें, साढ़े छः बजे फिर यहां एकत्रित होना है। आधा घन्टा ध्यान होगा, फिर गीत।

बर्तन यहां आप ही साफ करते हैं। खाने के बाद थोड़ा विश्राम भी होगा।

सफाई भी बहुत अच्छी होती है। वरताना भी बड़ी चुस्ती से यहां होता है। ढीला ढालापन मुझे पसन्द नहीं। रामायणी सत्संग में लड़कियों ने वरताया, बड़ी चुस्ती से, मुझे उस का सिमरन है।

मैं इतना कहना चाहता हूं कि इसको हम साधना सत्संग कहते हैं। कोई इसको कैम्प आदि के नाम से न पुकारें। अंग्रेज चले गए। कैम्प वाली बात निकालने की है। पंजाबी रेडियो की भाषा

(हिन्दी) को भी बड़ा कड़ा बताते हैं। उसमें (रेडियो में तो) केवल मिडल तक की हिन्दी ही आती है। जिन्होंने मिडल तक भी नहीं पढ़ी वह हिन्दी पर छिद्रान्वेषण का क्या अधिकार रखते हैं? वे हिन्दुओं में एकता नहीं आने देते। अब हिन्दुओं का विखरना उन ही के कारण। वे तो सौदा बाज पक्के। हिन्दुओं को वह मार्ग सुझाते हैं कि दिनों दिन कम कम होती जावे (हिन्दी) इस से कम और क्या होगी। एक पंजाबी स्त्री आई (वह कहने लगी) "साडा इत्थे कैम्प लगना है"। तो यह छोड़ना (कैम्प कहना छोड़ना चाहिये)। यह तो साधना सत्संग है।

मुझे स्वागत करने का हर्ष है। इस तपोभूमि में आप लोगों के आने जाने और आपके भावों की प्रशंसा करता हूँ। आप सब साधक अपने साधना शिविर में संयम के साथ समय व्यतीत करें। भगवान सबको बल दें।

यह एक सेवक का स्थान है। उन्होंने सत्यानन्द के नाम कराना चाहा, मैंने इन्कार कर दिया। यहां दूसरी भावना पैदा न हो। इस स्थान में एक ही भावना हो-राम नाम की। जो प्रतिदिन 20-25 हजार नाम जप करें, आ सकते हैं। जब इसकी नींव रखी गई थी, मुझसे कहा था परन्तु मैंने इंकार कर दिया था। जब यह बन गया, उस समय एक करोड़ जाप यहां हुआ था, तब प्रवेश हुए थे। यह सत्संग का स्थान बड़ा सुन्दर बन गया है। उसी सेवक ने बड़े चाव से यह धर्मशाला बनाई है। आप बहन भाई यहाँ आ कर राम नाम का लाभ प्राप्त करते हैं। शान्ति का राज्य आप बनाते हैं। अपना राज्य है, अपनी श्रेणी बनाई है। सूत्र मैंने विस्तृत किया है—ऐसा समझता हूँ।

आदरणीय देवियो और सज्जनो ! यह तो आपका स्वागत ही करना था सो किया। मैंने उद्देश्य भी आपको बता दिया कि राम नाम का संचय। इसको दृढ़ करने के लिये फिर भी बोलता रहूंगा। बड़े भाग्यशाली हैं जो यहां एकत्रित हुए। परमेश्वर की कृपा हम सब पर रहे। प्रबन्ध हर एक आप ही करता है फिर भी कोई बात हो तो उसके लिये व्यक्ति नियत किया जाता है।

श्रीरामशरणम्

------------------------------यह स्थान केवल भजन पाठ करने वालों के लिये बनाया है। यह सब का स्थान है यह मैं घोषणा करता हूं। और इन्हीं भावों से उद्घाटन किया है। यह उद्घाटन जो बहिन भाई सत्संगी सब के लिये हो, इन शब्दों के साथ इसका नाम "श्रीराम शरणम्" ठीक इसके कार्यों के अनुसार है। मैं तो अपनी जीवन–यात्रा समाप्त कर चुका था पर कोई काम राम ने लेने होंगे इसके लिये उसने इस देह दिये में अपनी शक्ति का तेल डाला है। मुझे हर्ष है कि यह उद्घाटन मुझसे हुआ। मुझे यह बात बड़ी अच्छी लगती है कि राम धुन जहां हुआ करे वहां बैठूं और उसके रस का स्वादन करूं। मुझे इस स्थान विशाल को देखकर हर्ष हुआ है।

किसी का थोड़ा किसी का बहुत इसमें भाग है। ऐसी बात मुझे बहुत सुहाती है कि आप इसको अपनाते हैं और थोड़ा बहुत जैसा जिससे हो सके वह श्री राम के चरणों में अर्पण करते हैं। यह भावना आपकी बनी रहे, मैं जानता हूं कि इसमें देने वाले बहुत धनाढय भी नहीं पर बड़ी प्रीति वाले, दिल वाले। धन भी आता है, लोग बिन मांगे देते हैं, यह बात बहुत उत्तम है। मांगने को जाना यह अपने आपको और कार्य को नीचा बनाता है। पर कोई सामग्री आप ही आये ऐसी बात यहां हुई। इसके लिये मैं यहां के नर-नारियों को बधाई देता हूं।

इसके लिये मेरी प्रेरणा बहुत नहीं थी। पर मुझे कहा गया तो मैंने कहा इतने पैसे इकट्ठे कर सको तो आगे बढ़ो। उन्होंने उसी समय बात चलाई और उसी समय उन्होंने "हां" उत्तर दिया। स्थान बनाने पर पैसा लगने लगता है तो लगता ही जाता है पर विवेक विचार से तो थोड़े में ही बहुत सुन्दर ऐसा यह हुआ। परिश्रम भी किया स्त्रियों ने पुरुषों ने भी इसमें भाग लिया। काम करने वालों को बधाई देता हूं।

सेवकों ने बड़ा श्रम किया है। वे यहां रहे। वह हम सबके धन्यवाद के भागी हैं। मुझे यह कहना है कि यह तो सब राम लीला

है। आज यह चीज़ बनी है आप हर्ष मनाते हैं। चीजें बनती हैं पर मुझे कहना यह है कि किसी बात पर घमण्ड नहीं करना। मत किसी को घमण्ड हो जाये। यह तो श्री राम कृपा, उन्हीं का धन्यवाद। तभी तो संत सयाने कहते हैं–

"भगतां दे कारज आप खलोया, काम करावन आया राम।"

वह आप चलाता है। उसी का यह चलाया हुआ है। आप सबने इसमें सहयोग ही दिया है। बहिनो और भाईयो! इस समय इससे अधिक नहीं बोलना है। इतना जो बोला हूं इसमें भी मैं अपने डाक्टरों की सम्मति लांघ कर बोला हूं। क्षमा करें आप। जो थोड़ा इस समय मैं बोला, मैंने अपने सच्चे भावों को, उद्गारों को उपस्थित किया है। श्री राम हम सब पर कृपा करें। हम सबको भक्ति भाव और अपने नाम का सहारा, विश्वास दिलाये।

मंगल नाम जय जय राम, २।

साधना सत्संग में साधक

ढीले ढीले होकर नहीं रहना चाहिये। चुस्त होकर रहना चाहिये। सत्संगियों को आपस में प्रेम से मिलना चाहिये पर यह मिलना प्रयोजन का न हो और फिर ऐसा भी न हो कि अधिक समय बातों में ही व्यतीत हो जाये। अधिकतर समय भजन ध्यान में ही व्यतीत हो और यहाँ आने का मुख्य उद्देश्य भी साधना करने का हो। कीर्तन में बोलने वालों के पीछे स्वर मिलाकर बोलना चाहिए। बोलने में व ताली आदि बजाने में संकोच नहीं करना चाहिये। खुल कर बोलना चाहिये। जब कोई आवेश आए तो उसे रोकना नहीं चाहिये। इससे शक्ति का प्रसार होता है। भोजन के समय अधिक गंभीर नहीं होना चाहिये। उस समय कुछ विनोद होना चाहिये।

साधना सत्संग का अभिप्राय है साधना करना। आसन आदि भी साधन है और किसी स्थान पर नियम पूर्वक रहना भी साधना है। घर में रहते हुए यह विचार कम आता है कि समय का उपयोग किया जावे। यहां साधना सत्संग में हल्का खाना, जप अधिक

करना, न किसी की निन्दा करना—यह बातें घर में कम होती हैं। इनको यदि घर में भी बरतें तो उनकी जीवन में बड़ी उपयोगिता आती है।

प्रातः को दूध, दोपहर को साधारण भोजन, सायं को दूध दलिया—साधक का भोजन है। मुझे ऐसा भोजन मिले तो दो माह में स्फूर्ति आ जाए। सब्जी भाजी में अधिक घी नहीं डालना चाहिए कि थाली में लग जावे। बहुत सी बीमारियां ज्यादा खाने से होती हैं, कम खाने से नहीं। नियमों का पालन करना बहुत अच्छी बात है। जो इस प्रकार का भोजन करेगा वह व्यक्ति 70 वर्ष का होते हुए भी 50 वर्ष का प्रतीत होगा।

खाना जीवन का बड़ा आवश्यक अंग है। इसको खूब अच्छी प्रकार चबाना चाहिये। अंग्रेज किसी बुढ़े के साथ चलता हो तो उस बूढ़े से भी कदम मिलाकर चलेगा। नहीं तो उसके साथ न चलेगा। इसी प्रकार पंक्ति में जो धीरे खाए उसके साथ चलना चाहिये। दलिये का भी मुंह में पानी बना लेना चाहिये। आप कहेंगे कि यह बात आप ने बड़ी साधारण कही। यह है भी साधारण परन्तु जीवन के साथ अन्याय है, शरीर के साथ अन्याय है कि आप बिना चबाकर जल्दी जल्दी खाएं। प्याज लाभदायक है। वैष्णवों को इसका पता नहीं। मेरे विचार से तो चबाकर न खाना (प्याज खाने की अपेक्षा) अधिक पाप है। खाना नहीं सीखा तो जीना नहीं सीखा। इन बातों को बहुत विचारना चाहिये। मैं समझता हूँ कि जल्दी खाने वाला संगति में थोड़ा बहुत अपराध करता है।

नियम पालन से जीवन में सौन्दर्य

मैं आदर और प्रेम से सब साधकों से कहना चाहता हूँ कि आपकी यह साधना बनी रहे। अब कल हम सब अपने अपने स्थानों को चले जावेंगे। संयम, सिमरन, सादगी आदि जो हमने यहाँ सीखे और सीखते हैं वे बने रहने चाहियें।

यहां प्रातः सब उठते हैं। कोई जगाता नहीं, हिलाता नहीं। तो

यह बना रहना आवश्यक है। यह बड़ा लाभदायक है। यदि यह केवल साधना सत्संग में ही रहे तो यह पांच दिन का समय वर्ष में ऐसे ही है जैसे कुँएं में थोड़ी सी खांड। यह तो फिर पंजाबी वाली बात हुई, "असी गीता पढ़ छड्डी है", अर्थात् पढ़ के छोड़ दी है।

अन्त में आपके परिवार के अन्य मित्र आदि सभी कहते होंगे कि सत्संग में क्या सीख कर आया है। पत्नी यह समझे कि बड़ा सदाचारी है, सच्चा है और वचन का कठोर नहीं। इसी प्रकार पुत्र आदि। मित्र को भी पता हो कि झूठ का कभी पक्ष नहीं करता। बात का धनी है। ऊँचे कर्म करने वाला है। यदि आप वैसे ही हेर फेर वाले बने रहते हैं जैसे पहले थे या दूसरे होते हैं तो गंगाजल में रह कर वही पत्थर का पत्थर रहा का उदाहरण आपके लिये होगा।

साधक के संगी साथी यदि साक्षी देवें कि अच्छा है तो अच्छा। अन्त में कांटे पर तोला जाता है। दूसरों की दृष्टि तराजू है। मेरा कहना नियम के पालन करने वालों की साक्षी से है।

लाहौर के एक सज्जन का वर्णन है कि जब वह प्रातः सैर करने जाता तो लोग यह कहा करते कि निःसन्देह घड़ी मिला लो। वह व्यक्ति पूरे तोल का जिसकी साक्षी नियम के पालन करने वाले लोगों की दृष्टि की तुला में पूरी है। यदि इसमें अधूरा है तो अधूरा।

साधक तो फूल के समान सुगन्धि देवे। बिना सुगन्ध के फूल को पसन्द नहीं किया जाता। नियमों का पालन करना चाहिये और दूसरों के नियमों में बाधा बनने की बात को छोड़ना चाहिये। जहाँ का कार्य क्रम नहीं वहाँ पर व्यर्थ नेता को रोकना ठीक नहीं। यदि ऐसा रोका जाय तो न नियम से खाना न नियम पीना। फिर जहां का कार्यक्रम वहां तीन घन्टे देरी से हुँ ऐसे नेता को रोकना नेता की जड़ मारने की बातें हैं।

नेताओं को भी चाहिये कि वे नियमों का पालन लिये ऊँचा उठने का कारण बनेगा।

साधकों में भी सौन्दर्य इसी में है कि वे नियमों का पालन करें। नियम का पालन दूसरे देशों में अधिक किया जाता है। यह नियम का पालन ही इन लोगों के सौभाग्य के सूर्य को फिर से उदय करता है। देखिये, जर्मनी आज फिर कारखानों से भरपूर है। जब एक जर्मन से प्रश्न किया गया कि कैसे तुमने नष्ट भ्रष्ट होने के बाद भी, बिना अच्छी आर्थिक अवस्था के, इतना शीघ्र अपने देश में कारखाने चालू कर लिये? उसने उत्तर दिया कि हम जीना चाहते थे। लोग तो जीवित थे। जो कुछ जिसके पास था वह लेकर सब जुट गये। पुरानी मशीनों को जोड़ जोड़ कर काम शुरु किया गया और नई मशीनें तक बन गईं।

मनुष्य का जीवन बनाना आवश्यक है। मुझे एक मित्र ने कहा कि आपके मिलने वाले जेल में भी भक्ति-प्रकाश आदि पढ़ते थे। जिससे जेलर भी प्रसन्न, सुविधायें भी बहुत और बहुत लोग इकठ्ठे होते थे।

सत्संग के नियम घर में भी चलायें

घरों पर जाकर नियम से उठना, जैसे अब यहां सब चार बजे उठते हैं। यह नियम घर पर भी क्यों न चलाया जावे। एक मित्र ने एक बार मुझ से कहा कि अमुक सिनेमा बड़ा अच्छा है, आप चलें। किन्तु मैंने कहा कि यह तो खाने का समय है। उसने कहा यह सिनेमा बड़ा अच्छा है तो मैंने कहा कि मेरे लिये तो खाना) अच्छा है। जीवन को अच्छा बनाना अपने अधीन है। उठता है उसका सारा जीवन अच्छा रहेगा। यह साधना सीखो । यह मोटी बात अवश्य है किन्तु है पालन करने

यहां गाना हुआ। इसमें भी मिलकर चलना। जब दो हैं तो औषधि बनती है। इसी प्रकार जब सुर तो इस में विचित्र रस होता है। गाने भाव पैदा चाहियें। ताल-शब्द हाथ की तली से बनता है, चाहे किसी और जगह पर। जी हर एक का

चाहता है कि मैं गाऊं किन्तु मैं हर एक से (गाने को) नहीं क
क्योंकि गाने वाला भजन में नीरसता पैदा न करे। खंडित फूल
कोई पूजा में भेंट नहीं करता। भाव देखना चाहिये, नहले
दहले वाली बात गड़बड़ डालती है। यह भावना गाने वाल
नहीं होनी चाहिये कि उसने ऐसा गाया तो मैं उससे बढ़
गाऊं। अपितु उसे चाहिये कि उसका गाना आवश्यक हो त
तुलना स्पर्धा से रहित हो। हे हृषीकेश ! यह बात उचित है
तेरी कीर्ति से जगत खुश होता है, आनन्द की लहर होती है,
मनोरंजन होता है, बड़ा हर्ष होता है, राक्षस भयभीत हो
दिशाओं को भाग जाते हैं। यह हो नहीं सकता कि प्रेत उस स्थ
से कम से कम एक फर्लांग तक रह जाय जहां राम नाम का
हो। पिछली जनवरी की बात है कि मेरा एक मित्र राम नाम
छोड़कर दूसरी जगह जाने लग पड़ा। वह एक एम०ए०
किन्तु बाद में ऐसा बेहाल हुआ कि उसे छुट्टी लेनी पड़ी।
एक मित्र उसके मकान पर ले गया। उसको मैंने कहा कि न त
पागल, न ही कोई और बात। मैंने उसको केवल इतना ही
कि तू उस संगति में (जिसमें वह बैठने लग गया था) न बैठा क
जब फरवरी में मैं फिर आया और उससे पूछा तो उसने कहा
अब बहुत ठीक हूँ। तो फिर मैंने खोलकर कहा कि वहां अ
लोगों के साथ न बैठा करो।

औषधि में तो बल है किन्तु यदि बहुत अधिक उल्लंघन कि
जाये खान पान में तो औषधि क्या करे। "वहां तेरी कृपा होत
जहां तेरा कीर्तन होता है, वहां मंगल होता है, वहां शुभ का सं
होता है। राम नाम का जप जहां मुक्ति देता है वहां परिवार
के दुःखों का नाशक है। यह बात तो आपमें दृढ़ता के साथ हो
चाहिये।

चार बजे प्रातः घन्टी बजेगी तो आप इस बात का बड़ा ध्य
रखेंगे और बड़ी सावधानी से सभी नियमों का पालन करें
बाकी देखिये मेरे मिलने वाले भी यहां बहुत हैं। आपके मि
वाले भी हैं। पर यह जगह भी तो थोड़ी है। और भी कई

हैं। गम्भीरता भंग हो जाती है यदि सब को अनुमति दें। इस लिये नियम यही है कि केवल साधक जिनको कहा गया वही सम्मिलित हों। आप संयम करेंगे। संयम का बड़ा रस है। यह रस भी लेना चाहिये। तो मैं आपके लिये जो शब्द कहना चाहता था वे मैंने कहे।

भगवान की बड़ी कृपा है। बड़ी दया है कि उसका यशोगान करने के लिए हम एकत्रित हुए हैं। ऐसे अवसर पाना सौभाग्य है। यह जीवन में ही सौभाग्य की बात है। जीवन में राम नाम संचित हो। वह श्री राम सबको अपने नाम में रुचि दे। सबको प्रीति दे और सब में उसका प्रकाश हो।

गाने वाले जो ऊपर बैठते हैं उनका मुख व्यक्तियों की ओर हो या बराबर में हो जाये, केवल पीठ अधिष्ठान की ओर नहीं होनी चाहिये। केवल दो बातें कहने की हैं। एक तो यह कि मैंने सुना है प्रातराश नौ बजे करने से देर हो जाती है। तो आप साढ़े आठ बजे रख लें यह ठीक रहेगा। एक आलोचना यह है कि लोग जल्दी जल्दी खाते हैं। खाना तो धीरे धीरे होता है। बहुत जल्दी करना कोई अच्छा नहीं। गपशप में हम अधिक समय लगा देते हैं। फिर मूल पदार्थ तो खाना पीना है ही, जरा देर लगाया करें। आज सवा तीन बजे घन्टी बजेगी तो समझना कि अमृतवाणी का पाठ होगा। अमृतवाणी होनी चाहिये। यह सूचना थोड़ी सी मैंने दी। उस समय का बोलना न हो और अमृतवाणी हो यह मैंने अच्छा समझा।

आप सब यहां साधना सत्संग में सम्मिलित हुए हैं तो जो जो आराधना के कार्य हैं उनमें मुख्य तो राम नाम का आराधन है। गीतों में, कथनों में, फिर जाप में यह बात ही मुख्य रहती है। अखण्ड जाप में भी राम नाम का मुख्य स्थान है। पांच रात्रि का यह अखण्ड जाप है और साधना है। इस साधना को जितना निभाया जाये उतना ही अपने विकास का कारण होगी। हम जाप कम न करें और व्यर्थ बातों में अपना समय न लगा दें। दूसरे देश और प्रकार के हैं। वहां शासन भी और प्रकार का है। समय का

वे भी बड़ा उपयोग करते हैं और यहां भी लोग करते हैं। मे
देखते देखते प्रत्येक क्षेत्र में विचरने वाले को अधिक काम करन
पड़ रहा है। प्रत्येक बाबू दफ्तर में जाता है। नियम से जाता है
घड़ी की सूइयों के समान उसका यह नियम है। पहले शासन व
रीति और थी, अब और पद्धति है। लिपिक बहुत बढ़ गए हैं
इसमें कोई बहुत वैसी बात नहीं। अन्ततः देश में बेकारी की भ
समस्या है। जलप्रवाह के समान सड़क साढ़े नौ बजे के आस-पा
साईकलों से भरी होती है। नियम से बंधे हुए समय पर वे जाते हैं
ऐसा उनकी नौकरी का नियम है। और उस नियम पर ही चलन
होता है। पर जब उन्हें अपनी इच्छा के अनुसार स्वतन्त्रता हो त
ऐसे बहुत थोड़े व्यक्ति होते हैं जो समय पर आते हैं। मद्रास
पिछले दिनों हमारे प्रधान मन्त्री दो घन्टे लेट पहुंचे। उन्हों
शोक प्रकट किया। मुझे कहना यह है कि प्रधान मनुष्य से लेक
साधारण मनुष्य तक समय का उल्लंघन करते हैं।

मेरे मित्र (विनोबा जी) भिवानी गए तो शहर निवासी सब
सब बाहर आ गए। उस प्यारे को चलना मुश्किल हो गया। त
बात यह हुई कि **जिह्वा पर तो रखते हो पैर और पैरों प
सिर।** इस प्रकार से भीड़ और हुल्लड़ बाजी से समय बहुत नष्
होता है। समय का सदुपयोग होना चाहिये। यहां सब काम समय
पर होते हैं। और जो समय बच जाता है उस में बीस हजार जा
नियत है और लोग अधिक भी करते हैं। यहां साधकों को चिन्त
नहीं करनी चाहिये। चित्त को वे क्यों घुन लगायें कि चीन क
मित्रता हट गई तो कौन हमारा मित्र होगा। मुझे तो कहना यह ह
कि यह समय नष्ट करने की बातें हैं।

एक व्यक्ति ने प्रधान मंत्री पर बड़ा कटाक्ष किया। मैंने कहा
भाई! तेरे पास एक ही तो काम था। तू उसको भी नहीं कर सका
तेरी उस बीमा कम्पनी में थोड़े ही तो व्यक्ति थे। तू उन प
नियन्त्रण नहीं रख सकता। तेरा क्या अधिकार है कि तू उन प
कठाक्ष करे जिनके पास बहुत बड़े काम, बहुत बड़ा देश, भिन्न
भिन्न विचार और भाषाएं हैं। जब सभ

्रकार के प्रबन्ध करने हों। उनकी आलोचना वे क्यों करें जो
ीवाले निकाल देते हैं ? यह तो ठीक नहीं है कि हृदय के आवेश
मित्रों के आगे निकालें। यहां तो राम नाम ही जपना है और वह भी
ऐसे कि अन्य बातों का अवसर ही न मिले। मन जो छलांगें लगाता
है उसके लिये बीस हजार जाप उस अवकाश के समय के लिये
रखा गया है जो नियत समय से बच जाता है। यहां साधना का
मुख्य उद्देश्य राम नाम की आराधना है। ये हमारे श्रीराम और
हम उनके, यह वृत्ति बनी रहे। इसी दृष्टि से यह साधना सत्संग
रखा गया है।

फिर यह स्थान हरिद्वार-यहां गंगा की धारा साक्षात् बहती है।
यहां तिल तिल पर समाधियों के स्थान हैं। यह तो निर्मल रखने
का स्थान है। मालवीय जी को यह यश प्राप्त है कि वे नालियां
बनवा गये। नहीं तो काशी जी में लोटा भरें तो गन्दगी आ जाती।

एक बार, मैं एक मित्र के साथ अश्वमेध घाट, काशी में,
गया। वहां अनेक बार गन्दगी हटाने पर भी गन्दगी बनी रही।
यहां हर्ष के साथ गंगा के साथ साथ घूमो, फिरो, जप करते रहो,
इसकी विभूति को देखो। ऐसी कोई एक आध नदी होगी। यहां की
पवन भी बहुत अच्छी है और संस्कार भी बहुत अच्छे हैं। ऐसा
विचार आया कि साधक गंगा पर जावें। इसीलिये कुछ खुला
समय रख दिया गया। फिर भी मुझे कहना है कि इस खुले समय में
जितना जाप उतना ही लाभ। हमारी मुख्य साधना यहां राम नाम
की है। यहां साधकों को ऐसा अवसर ही नहीं आता कि घर की
बातें सूझें।

आदमी को अवलम्बन होना चाहिये। अवलम्बन न हो तो मन
की तरंगें बहुत उछलती हैं, इसके लिये यह सब अनुष्ठान होता
है। करने योग्य काम को कृत्य कहते हैं। जितने कृत्य हैं वे आप
करने के होते हैं। यजमान से कराने की यह अन्य पुरुष की रीति
व्यापारियों की चलाई गई है। इसीलिये तो कहा है कि "आयन्तु
नः पितः"। "हमारे पितर आवें"। जो हमारे स्थान पर कृत्य
करेगा उसके पितर तो कोई और होंगे। तो जप आदि ये सब

अनुष्ठान आप करने के हैं और आप ही करने चाहियें। वकील कानून में किसी के केस को लेकर लड़े यह तो ठीक, पर ये काम जो जापादि के हैं ये सब स्वयं करने के हैं। यहां कीर्तन को और अखण्ड जाप को भी महत्त्व मैंने अवश्य दिया है। अखण्ड जाप की जो प्रार्थना है यह भी बड़ी उत्तम है।

वृद्धि आस्तिक भाव की, शुभ मंगल संचार ।
अभ्युदय सद् धर्म का, राम नाम विस्तार ।।

यह बहुत ऊंची प्रार्थना है। जो यह अखण्ड जाप की प्रार्थना रखी इसमें आस्तिक भाव, परमात्मा के प्रति विश्वास की वृद्धि और सुख मंगल का संचार हो तोअपने आप को भी सब में मिला कर इसमें सम्मिलित कर लिया है। तो यह प्रार्थना वहां होती है।

दूसरे देशों में भी लोग प्रार्थना करते हैं। पर जो भावना इसमें दर्शाई है, वह, अन्य स्थानों पर जो भावना होती है उनसे नीची नहीं है। हमें यहां किसी बात को समझाने के लिए युक्तियां नहीं देनी पड़तीं। युक्तियां तो संशयशील को देनी होती हैं। आप तो बड़े विश्वासी हैं। विश्वास इस मार्ग में बड़ा काम करता है। जितना प्रबल आपका प्रसारण केन्द्र होगा उतना ही प्रबल तरंग आप भेज सकेंगे। अरब में अरबी में, फारसी में समाचार पहुंचाने के लिये फगवाड़े के पास जालंधर आकाशवाणी केन्द्र को अधिक बल देने के लिए यन्त्र लगाये हैं। वे दूर दूर तक तरंगें भेजते हैं जो प्रबल होती हैं। देहली का प्रसारण केन्द्र भी बहुत बड़ा है। तभी दूर दूर तक उसके समाचार सुने जा सकते हैं। तो आपकी भावना जितनी ऊंची होगी, जितना आपका चित्त विश्वास से भरा होगा उतना ही प्रबल तरंग आप उत्पन्न कर सकेंगे। ऐसी समझ वाले कुछ साधक होने चाहियें। वे अपने हृदय को शुद्ध करें। कुछ को ऐसा बनाया जाये कि उनका तरंग प्रतिहत न होवे। दूसरा कोई रोक न सके। इसके लिए परम सत्य का होना अत्यन्त आवश्यक है। अभियन्ता (Engineer) पानी का बहाव आघात लगाकर बदलते हैं। तो संसार में भी छल, कपट, [illegible] में [illegible] है जो परम सत्य पर चलने वाले के मार्ग के

प्रकार के प्रबन्ध करने हों। उनकी आलोचना वे क्यों करें जो दीवाले निकाल देते हैं ? यह तो ठीक नहीं है कि हृदय के आवेश मित्रों के आगे निकालें। यहां तो राम नाम ही जपना है और वह भी ऐसे कि अन्य बातों का अवसर ही न मिले। मन जो छलांगें लगाता है उसके लिये बीस हजार जाप उस अवकाश के समय के लिये रखा गया है जो नियत समय से बच जाता है। यहां साधना का मुख्य उद्देश्य राम नाम की आराधना है। ये हमारे श्रीराम और हम उनके, यह वृत्ति बनी रहे। इसी दृष्टि से यह साधना सत्संग रखा गया है।

फिर यह स्थान हरिद्वार-यहां गंगा की धारा साक्षात् बहती है। यहां तिल तिल पर समाधियों के स्थान हैं। यह तो निर्मल रखने का स्थान है। मालवीय जी को यह यश प्राप्त है कि वे नालियां बनवा गये। नहीं तो काशी जी में लोटा भरें तो गन्दगी आ जाती।

एक बार, मैं एक मित्र के साथ अश्वमेध घाट, काशी में, गया। वहां अनेक बार गन्दगी हटाने पर भी गन्दगी बनी रही। यहां हर्ष के साथ गंगा के साथ साथ घूमो, फिरो, जप करते रहो, इसकी विभूति को देखो। ऐसी कोई एक आध नदी होगी। यहां की पवन भी बहुत अच्छी है और संस्कार भी बहुत अच्छे हैं। ऐसा विचार आया कि साधक गंगा पर जावें। इसीलिये कुछ खुला समय रख दिया गया। फिर भी मुझे कहना है कि इस खुले समय में जितना जाप उतना ही लाभ। हमारी मुख्य साधना यहां राम नाम की है। यहां साधकों को ऐसा अवसर ही नहीं आता कि घर की बातें सूझें।

आदमी को अवलम्बन होना चाहिये। अवलम्बन न हो तो मन की तरंगें बहुत उछलती हैं, इसके लिये यह सब अनुष्ठान होता है। करने योग्य काम को कृत्य कहते हैं। जितने कृत्य हैं वे आप करने के होते हैं। यजमान से कराने की यह अन्य पुरुष की रीति व्यापारियों की चलाई गई है। इसीलिये तो कहा है कि "आयन्तु नः पितः"। "हमारे पितर आवें"। जो हमारे स्थान पर कृत्य करेगा उसके पितर तो कोई और होंगे। तो जप आदि ये सब

अनुष्ठान आप करने के हैं और आप ही करने चाहियें। वकील कानून में किसी के केस को लेकर लड़े यह तो ठीक, पर ये काम जो जापादि के हैं ये सब स्वयं करने के हैं। यहां कीर्तन को और अखण्ड जाप को भी महत्त्व मैंने अवश्य दिया है। अखण्ड जाप की जो प्रार्थना है यह भी बड़ी उत्तम है।

वृद्धि आस्तिक भाव की, शुभ मंगल संचार ।
अभ्युदय सद् धर्म का, राम नाम विस्तार ।।

यह बहुत ऊंची प्रार्थना है। जो यह अखण्ड जाप की प्रार्थना रखी इसमें आस्तिक भाव, परमात्मा के प्रति विश्वास की वृद्धि और सुख मंगल का संचार हो तोअपने आप को भी सब में मिला कर इसमें सम्मिलित कर लिया है। तो यह प्रार्थना वहां होती है।

दूसरे देशों में भी लोग प्रार्थना करते हैं। पर जो भावना इसमें दर्शाई है, वह, अन्य स्थानों पर जो भावना होती है उनसे नीची नहीं है। हमें यहां किसी बात को समझाने के लिए युक्तियां नहीं देनी पड़तीं। युक्तियां तो संशयशील को देनी होती हैं। आप तो बड़े विश्वासी हैं। विश्वास इस मार्ग में बड़ा काम करता है। जितना प्रबल आपका प्रसारण केन्द्र होगा उतना ही प्रबल तरंग आप भेज सकेंगे। अरब में अरबी में, फारसी में समाचार पहुंचाने के लिये फगवाड़े के पास जालंधर आकाशवाणी केन्द्र को अधिक बल देने के लिए यन्त्र लगाये हैं। वे दूर दूर तक तरंगें भेजते हैं जो प्रबल होती हैं। देहली का प्रसारण केन्द्र भी बहुत बड़ा है। तभी दूर दूर तक उसके समाचार सुने जा सकते हैं। तो आपकी भावना जितनी ऊंची होगी, जितना आपका चित्त विश्वास से भरा होगा उतना ही प्रबल तरंग आप उत्पन्न कर सकेंगे। ऐसी समझ वाले कुछ साधक होने चाहियें। वे अपने हृदय को शुद्ध करें। कुछ को ऐसा बनाया जाये कि उनका तरंग प्रतिहत न होवे। दूसरा कोई रोक न सके। इसके लिए परम सत्य का होना अत्यन्त आवश्यक है। अभियन्ता (Engineer) पानी का बहाव आघात लगाकर बदलते हैं। तो संसार में भी छल, कपट, विरोध में आघात है जो परम सत्य पर चलने वाले के मार्ग को बदलते हैं। यह सब को

कहना तो बड़ा कठिन है पर किसी को न कहें यह भी ठीक नहीं। सत्य का उपासक होना बड़ा आवश्यक है। श्री राम चन्द्र जी ने कहा है–

"सत्यं एवेश्वरो लोके" कि जगत् में सत्य ही ईश्वर है। यह तो गणित के समान है। गणित में एक राशि में भूल हो जाये तो सारा वहीखाता अशुद्ध हो जाये। साधकों में एक दो ऐसे व्यक्ति तो अवश्य हुआ करें जिनके हृदय की तरंग खूब दूर तक जाया करें और उसको खूब प्रवृत्त करें। ऐसे कुछ व्यक्ति जिन्होंने हृदय को खूब ऊंचा उठाया हो हम में हों।

मुख्य जो साधना है वह राम की है। चलते फिरते उठते बैठते राम नाम की साधना का भाव बनाये रखना चाहिये। खाली समय निन्दा या चुगली में ही जाया करता है, वह राम नाम आराधन में बिताने लग जायें तो उसका बहुत फल है। अब ऐसा बहुत लोग करने लग गए हैं। लिपिक जो ऐसा करने लग गए हैं वे भी बहुत अच्छे हो गए हैं। अधिकारी के भी भूलग्रस्त अभियोग कम हो जाते हैं। कोई व्यापारी है तो वह भी बहुत अच्छा रहता है। राम नाम का आराधन कभी भी व्यवहार व्यापार में अन्तर नहीं डालता। आराधन करने वाला तो अपने कार्यों में उत्साह की झलक दिखाता है। राम नाम की आराधना होती रहे ऐसी परिस्थिति हमें बनानी चाहिये। श्री राम हम सब पर कृपा करें।

सुनने की अपेक्षा बरतने का रिवाज कम

कुछ बातें ऐसी होती हैं जो जीवन में बरतने में आएं तो ही अच्छा होता है। यहां भारतवर्ष में ये बरतने में कम ही लाते हैं। सुननी बहुत, ऐसा समझते हैं (करने की अपेक्षा लोग सुनते अधिक हैं) मैं रामायण पर बहुत बोलता था तो लोगों ने बताया कि जोश आता। रोने भी लग जाते। यही (मन में) आता कि राम अच्छे, सीता अच्छी सती, लक्ष्मण (बड़ा अच्छा) भ्राता, किन्तु अपने जीवन में उसे बसाया नहीं, क्योंकि वीरता नहीं। जब डाकु आते रहे और एक सिरे से दूसरे तक लूटपाट और अत्याचार करते रहे

तो किसी ने रोकने का साहस नहीं किया। छोटा सा देश है हंगरी। जिसने रूसी टैंकों का आना रोका। इसमें बच्चे भी और औरतें - मरे भी - फिर स्वतंत्र।

हरयाणा के इलाके में आया, लोगों के कहने पर। एड़ी घिस जाती चलते चलते। जूते बार बार न लाने पड़ें तो कीलें लगवाया करता। बनिया व्यापार में चमड़ी उतार लेता। राम नाम, गीता को समझते हैं सुनने की चीज़ है। इनके लिए बरतने की कम है। मन में कह दिया किन्तु वैसे के वैसे। तो यह बात एक त्रुटि की बात रही है (केवल सुनना पर बरतने में न लाना)। गांधी की बात में बड़ी बात यह थी कि वह इन को बड़ी शक्ति के सामने खड़ा करने लगा। इतने पीटे नहीं जाते थे। वह कदाचित होता और थोड़ा। गांधी की लड़ाई में बन्दूक किसी स्थान पर नहीं चली। यहां (अब) तो बम्बई में चली। 12 को मैं गया था। 18 को चली, रेल न चलने दी। मेरा मित्र मुझे फिर लेने आया। मेरा भी अनुमान यही था कि चलेगी अवश्य (गोली)। मेरा अन्दर भी यही कहता। जब लोग रास्ता रोकें। अंग्रेज़ के समय में गोली, बिहार में 500 मरे। उस बनिये गांधी में वीरता थी। इसने बनियों को लोहे का बना दिया था। वह लोगों को वास्तविक जीवन में ले आया था। यह थोड़ा सा दृष्टान्त (दिया)। मुझे कहना यह है कि ऐसा हुआ। वह केवल उपदेश नहीं देते थे (गांधी जी)। वे कहते थे कि ऐसा करो। तो हमारा प्रयोजन तो यहां यह है कि यही सीख कर जावें। स्वच्छता—सीखने की चीज़। जगह स्वच्छ रखें, थूकना नहीं, कपड़े स्वच्छ रखें। खांसते को देखते ही दूसरे भी खांसते। लुधियाना में पहले दिन बहुत आदमी खांसे। तो मुझे कहना यह कि कई आदतें हैं—इसमें सभी—क्या गौड़ ब्राह्मण, क्या जाट, स्वच्छता का विचार अन्दर होवे। जेहलम व रावलपिण्ड़ी – वहां के कपड़े स्वच्छ। साफ रहने की आदत होनी चाहिये। गरीब भी स्वच्छ सकते हैं। बम्बई में जब पहले अंग्रेज़ आया तो उसने देखा, मुंह में लहू (जैसा)। पूछा क्या बिमारी। तो पता चला कि पान खाने की आदत। यू०पी० का आदमी कितना ही अच्छा हो। किसी के घर

(आप) ठहर जावें तो देखेंगे (कि) दिवारें पान से लाल। यह आदतें खराब। पान चबाना हो तो इसको अन्दर ले जावें। यह शिविर ऐसा नहीं कि यूं ही चलेगा। यहां सिखाया जाता है कि कुछ छोड़ना नहीं चाहिये (जूठा)। जूठा किसी को नहीं देना चाहिये, यद्यपि कोई कितना ही अमीर। नियम से जागना, नियम से आराधन, यहां कैद की बातें नहीं। वहां कैदी, डाकू का डाकू, बारह साल बाद।

यदि यहां प्रभाव न पड़ा (नियम पूर्वक रहने का) तो फिर तो जेल (जैसी ही बात हुई)। नियम से रहना - बारह साल मिलिट्री में रहकर भी यह नहीं कि घर में नियमितता। नैनीताल में लाहौर मैडीकल कालिज का मेरा मित्र। बाद में सेवा में वह रहा। नियम से रहता। यह तो एक जीवन है। जप की आदत होनी चाहिये और अच्छे कर्मों की। मुझे कहना है यहां सीखना (चाहिये नियम से रहना) किसी किसी को मस्ती। उसका आत्मा साक्षी दे कि मैं पहले से अच्छा।

मेरे पास होशयारपुर में, सितम्बर के अन्तिम सप्ताह की बात है, इसी साल। तो कुछ स्त्रियां, किसी के सत्संग में जाया करतीं तो वे मेरे पास भी आईं। मैंने इन से पूछा कि तुम में से कौन कौन बाज़ार में गई नारे लगाने। तो फिर तुम औरतें कहां रहीं। आदमी जब धड़े बन्दी में आ गया तो वह साधक कहां रहा। अपना अन्दर साक्षी दे। समय पर जगना, समय पर खाना, क्रोध पर काबू रखना, धड़े बन्दियों की युक्तियों में फंसकर अपने आपको गन्दा नहीं करना, चाहे जमींदार के नाम से वोट देना सो देना, पर हर युक्ति में न फंसे। जितना कम दिखावा उतना अच्छा।

ईर्ष्या, द्वेष, यह पाना वह पाना, यह क्या? हिन्दुस्तान इसलिये ऊँचा नहीं कि प्रधान मन्त्री बहुत धुरन्धर विद्वान अपितु इसलिए कि वह किसी दूसरे में नहीं मिला तटस्थ (Non-aligned)। वह रूस की भी और अमेरिका की भी टांग के नीचे से नहीं निकला। हमारे पास आकर सीखा क्या, यदि अपना वोट अमुक को दो (इसी में रहे)। थोड़े आदमी हैं अन्त में प्रजा के हितैषी। तो यहां सीखना

कि ईर्ष्या न हो। जो आपका मार्ग नहीं इसमें (दखल न दें)। न कोई राज न राजा। दुर्बल की रक्षा सरकार का कर्तव्य। न्याय पर साधक जितना रहे उतना ही अच्छा। तो मैंने आपको कहा, सब भाइयों को जो यहां सत्संग में आए कि इसी प्रकार नियम पर सोना, जागना। खाली समय जो चिन्ता में व्यतीत होता है उसे जप में लगाना।

भोजन जो किया जाता है, यज्ञ, तप, दान, यह सब तीन प्रकार के होते हैं। तीन प्रकार का भोजन - सत् गुणियों का भोजन न्यारा। वह आयु को बल और बुद्धि (देने वाला) और रुचि को बढ़ाने वाला। नीरोगता देने वाला और सुख देने वाला (होता है)। (ऐसा भोजन) सात्विक भोजन है। हृदय को प्रसन्न करने वाला। चिकनाहट मर्यादा की। मर्यादा लांघ कर तो अमृत भी विष। रजोगुणी ऐसे भोजन को पसंद करते हैं जो अति कड़वा, अति नमकीन, अति गरम, बहुत मसालेदार। रोग दाह पैदा करने वाले नशीले पदार्थ, यह भोजन दुख, शोक और रोग का देने वाला (है)। अधिक समय तो आमाशय को दुर्बल बनाता है। आन्तरिक शक्ति को दुर्बल करता है। इसी प्रकार अति उष्ण - बहुत जलती चीज़ को खाने से आन्तरिक हानि। विधाता ने ऐसी मशीन बनाई जो बोलती नहीं। पहरेदार तो हैं। वे बचपन से पहरा देते हैं। मां बाप प्यार में डालते हैं। बुद्धि तो उसकी प्रवृत्त नहीं हुई। पर स्वाभाविक पहरेदार जिव्हा। पर जब मां ने खिलाया, पिता ने खिलाया, तो पहरेदार कहना छोड़ देगा। (चपड़ासी) भी सुस्त हो जाता है। ये इन्द्रियां पहरेदार हैं। नाक बताता है, जीभ बताती है, पहले किन्तु, बाद में, यदि इनके बताने पर ध्यान न दिया जाए तो यह बताना छोड़ देते हैं। मीठा रस भी अन्दर पैदा होता है और खट्टा रस भी (शरीर के अन्दर)। जवानी में तो पता चलता नहीं (अनाप शनाप खाने से) (पर बुढ़ापे में) इन की हानि का पता चलता है। सब नशे अन्त में दुर्बल बनाते हैं। कहना यह है जो लोग जवानी के जोश में इसको खुरदरे रास्ते पर चलाएं तो जब यौवन की दोपहर ढलने लगेगी तो यह मशीन (शरीर की) यात्री

को खराब करने लगेगी। अन्दर गया हुआ निकलता कम है। लालच पैदा होता है इसे खाने से—तो यह मन को दुर्बल बनाने वाली है। हमारे यहां (भारत में) मर्यादा कम है। योरुप में भी हरियाने जैसे इलाके हैं (खेतीहारी के)। वहाँ लोग दीर्घायु वाले होते। जो आदमी सादा रहते हैं, वे देर तक जीते हैं। पर हिन्दुस्तान में यह चीज़ें ही खाते पीते मरते हैं। कारण, नहीं खाना (स्टारवेशन) और खाना तो बहुत खाना (ओवरईटिंग)। मर्यादा में सब चीज़ें होनी चाहिये। मारवाड़ के आदमी की कम आयु (होती है)। कोई आश्चर्य नहीं, मिर्च (का बहुसेवन) इसका कारण हो। मेरा एक मित्र कराची में 60 मिर्ची की सब्जी खाता था। ऐसे ही (राबड़ी) बहुत ही खमीर। (ठीक नहीं)। आंगन में सिर्फ इतना पानी छिड़कना चाहिये जिससे धूल जम जाये न कि इतना कि कीचड़ हो जाए। बच्चे फिसलें। ऐसे ही अधिक खाने से पेट में भी कीचड़।

जेलों से मर्यादा के कारण ही लोग स्वस्थ होकर निकले। लीडरों का बुरा हाल। आदमी को बोध होना चाहिये। निन्दा से कभी कोई चीज़ छूटी नहीं। मैं कई हज़ार के समूह में खड़ा हुआ। कालिज के लड़के थे। उन को देखकर मन प्रसन्न होता था। दुर्भिक्ष पड़ा था हिसार में। रोहतक से चला। रास्ते में दुःखी होता चला गया। यू०पी० की ओर बछड़े ही बछड़े जाते थे। जो अन्दर साहस है वह है बल न कि बहुता मांस। काँटे के पेड़ बोकर, शत्रु के लिए, तो अपने भी पैरों में कांटे। जैसे खेत की बाड़ काटने वाले को भी कभी कभार लगती। गुण दोष बता दिये जावें। जो अज्ञानी है, हठी है, मूर्ख है, बड़ा द्रोही है और बड़ा निन्दक है, ऐसे तमोगुणी व्यक्तियों को वह भोजन प्यारा होता है जो बहुत बासी हो अर्थात् जिसका रस बदल गया हो। तो कहना यह था कि बहुत ऐसी चीज़ें हैं जिनमें खमीर उठता है, वे अनुकूल नहीं। जिस का रस चला गया, जिसमें दुर्गन्ध पैदा हो गई हो, ऐसा तामसिक भोजन सेवन करने वालों में क्रोध अधिक। यह तो अपने आप से शत्रुता है। हिरणी जो है वह मांग कर नहीं खाती, भेड़ तम्बाकू

नहीं पीती तो क्या वह कल्याण वाली हो गयी। ज्ञान आना चाहिये।

मनुष्य संस्कारों से बनता है

आप लोग यहां एकत्रित हुए। इसमें अधिक तो राम नाम जाप ही है। 20 हजार जाप प्रतिदिन करते हो। फिर अखण्ड जाप में और ध्यानों के समय। अधिक (जाप) करने से नाम बस जाता है। संस्कार प्रबल इसका होता है। बार-बार के अभ्यास का बड़ा लाभ। संस्कार बहुत अच्छे (बनते हैं इससे)। मनुष्य जो है वह संस्कारों का ही बना हुआ है। जैसे शब्द सुने, जैसे कहे, जैसे पढ़े, वह इन्हीं से प्रवृत्त होता है और वही फिर उद्भूत होते हैं। वैसा ही वह बन जाता है। रिकार्ड जो भरे जाते हैं वही फिर इनमें से उद्भव होता है। तो इसी प्रकार मनुष्य के जैसे संस्कार (वैसे ही अद्भूत होते है) अच्छे शब्द और गीतों का रिकार्ड तो फिर इस रिकार्ड से वही निकले।

संस्कार अच्छे बनाओ

संस्कार अच्छे बनाना अपने—यह भजन, पाठ, कीर्तन का लक्ष्य। अन्तःकरण ऐसा हो जावे कि इसमें राम नाम बसा हुआ हो और वह अपने आप स्फुरित हो। हमारे इन सत्संगों में बहुत लोग ऐसे जो बैठे तो नाम इनमें स्फुरित हो जाता। आप समझो कि हमें लाभ हो इसी समय पर (यहां सत्संगों में) और फिर वह ऐसा ही बना रहे। दो मन होते हैं—आन्तरिक मन और व्यवहारिक मन। व्यवहारिक मन ऐसे जैसे दूध पर उफान। पर इनमें (उफानों में) हवा भरी (होती है)। दूध वास्तव में इतना नहीं होता जितना फूल कर (उफान आने पर) दिखाई पड़ता। तो व्यवहारिक मन इस प्रकार से उफान—अहंकार का, शत्रुता का, आदि। अब आदमी आराधना भी करे—लाभ भी हो, संस्कार भी बनें, (सत्संगों में और फिर वही काम करने लग जावे तो इससे ह हो जाता। इसमें झूठ, इसमें स्वार्थ, इसमें विरो भलाई जो संचित की थी वह दब जाती है।

को खराव करने लगेगी। अन्दर गया हुआ निकलता कम है। लालच पैदा होता है इसे खाने से—तो यह मन को दुर्बल बनाने वाली है। हमारे यहां (भारत में) मर्यादा कम है। योरुप में भी हरियाने जैसे इलाके हैं (खेतीहारी के)। वहाँ लोग दीर्घायु वाले होते। जो आदमी सादा रहते हैं, वे देर तक जीते हैं। पर हिन्दुस्तान में यह चीज़ें ही खाते पीते मरते हैं। कारण, नहीं खाना (स्टारवेशन) और खाना तो बहुत खाना (ओवरईटिंग)। मर्यादा में सब चीज़ें होनी चाहिये। मारवाड़ के आदमी की कम आयु (होती है)। कोई आश्चर्य नहीं, मिर्च (का बहुसेवन) इसका कारण हो। मेरा एक मित्र कराची में 60 मिर्ची की सब्जी खाता था। ऐसे ही (राबड़ी) बहुत ही खमीर। (ठीक नहीं)। आंगन में सिर्फ इतना पानी छिड़कना चाहिये जिससे धूल जम जाये न कि इतना कि कीचड़ हो जाए। बच्चे फ़िसलें। ऐसे ही अधिक खाने से पेट में भी कीचड़।

जेलों से मर्यादा के कारण ही लोग स्वस्थ होकर निकले। लीडरों का बुरा हाल। आदमी को बोध होना चाहिये। निन्दा से कभी कोई चीज़ छूटी नहीं। मैं कई हज़ार के समूह में खड़ा हुआ। कालिज के लड़के थे। उन को देखकर मन प्रसन्न होता था। दुर्भिक्ष पड़ा था हिसार में। रोहतक से चला। रास्ते में दुःखी होता चला गया। यू०पी० की ओर बछड़े ही बछड़े जाते थे। जो अन्दर साहस है वह है बल न कि बहुता मांस। काँटे के पेड़ बोकर, शत्रु के लिए, तो अपने भी पैरों में कांटे। जैसे खेत की बाड़ काटने वाले को भी कभी कभार लगती। गुण दोष बता दिये जावें। जो अज्ञानी है, हठी है, मूर्ख है, बड़ा द्रोही है और बड़ा निन्दक है, ऐसे तमोगुणी व्यक्तियों को वह भोजन प्यारा होता है जो बहुत बासी हो अर्थात् जिसका रस बदल गया हो। तो कहना यह था कि बहुत ऐसी चीज़ें हैं जिनमें खमीर उठता है, वे अनुकूल नहीं। जिस का रस चला गया, जिसमें दुर्गन्ध पैदा हो गई हो, ऐसा तामसिक भोजन सेवन करने वालों में क्रोध अधिक। यह तो अपने आप से शत्रुता है। हिरणी जो है वह मांग कर नहीं खाती, भेड़ तम्बाकू

नहीं पीती तो क्या वह कल्याण वाली हो गयी। ज्ञान आना चाहिये।

मनुष्य संस्कारों से बनता है

आप लोग यहां एकत्रित हुए। इसमें अधिक तो राम नाम जाप ही है। 20 हजार जाप प्रतिदिन करते हो। फिर अखण्ड जाप में और ध्यानों के समय। अधिक (जाप) करने से नाम बस जाता है। संस्कार प्रबल इसका होता है। बार-बार के अभ्यास का बड़ा लाभ। संस्कार बहुत अच्छे (बनते हैं इससे)। मनुष्य जो है वह संस्कारों का ही बना हुआ है। जैसे शब्द सुने, जैसे कहे, जैसे पढ़े, वह इन्हीं से प्रवृत्त होता है और वही फिर उद्भूत होते हैं। वैसा ही वह बन जाता है। रिकार्ड जो भरे जाते हैं वही फिर इनमें से उद्भव होता है। तो इसी प्रकार मनुष्य के जैसे संस्कार (वैसे ही अद्भूत होते है) अच्छे शब्द और गीतों का रिकार्ड तो फिर इस रिकार्ड से वही निकले।

संस्कार अच्छे बनाओ

संस्कार अच्छे बनाना अपने—यह भजन, पाठ, कीर्तन का लक्ष्य। अन्तःकरण ऐसा हो जावे कि इसमें राम नाम बसा हुआ हो और वह अपने आप स्फुरित हो। हमारे इन सत्संगों में बहुत लोग ऐसे जो बैठे तो नाम इनमें स्फुरित हो जाता। आप समझो कि हमें लाभ हो इसी समय पर (यहां सत्संगों में) और फिर वह ऐसा ही बना रहे। दो मन होते हैं—आन्तरिक मन और व्यवहारिक मन। व्यवहारिक मन ऐसे जैसे दूध पर उफान। पर इनमें (उफानों में) हवा भरी (होती है)। दूध वास्तव में इतना नहीं होता जितना फूल कर (उफान आने पर) दिखाई पड़ता। तो व्यवहारिक मन इस प्रकार से उफान—अहंकार का, शत्रुता का, आदि। अब आदमी आराधना भी करे—लाभ भी हो, संस्कार भी बनें, (सत्संगों में) और फिर वही कार्य करने लग जावे तो इससे व्यवहारिक प्रबल हो जाता। इसमें झूठ, इसमें स्वार्थ, इसमें विरोध, इसमें शत्रुता। भलाई जो संचित की थी वह दब जाती है। यह समझना चाहिये

कि अपना संस्कार ऐसा प्रबल करो कि वह व्यवहारिक मन को वश कर ले।

यहां साधना की और फिर जाकर वैसे के वैसे हो गए तो यह परिश्रम की हुई बात दब जावे। संस्कार तो रहेगा। यहां तो (साधना सत्संग में) जो आप संस्कार बनाएं वह इतना प्रभावी हो, प्रबल हो कि आपके व्यवहार में भी काम करे। यह क्या, रिश्तेदार ने कहा कि आपके झूठी गवाही देने से मेरा काम बन जाएगा, तो फिर अन्याय हुआ यह तो और समझा जाए कि मन गिर गया। (रिश्तेदार के कहने से झूठी गवाही दे दी तो यह तो अन्याय हुआ, मन का गिरना हुआ)। यह प्रभावी हो गया व्यवहारिक मन। बुराईयां इस प्रकार फैलतीं। यह ऐसे होता है कि तृप्त हैं—फिर मित्र कहे यह पेड़ा है, एक तो ले लो। आप ने पहले तो कहा ना—फिर कहा चलो अच्छा। है यह साधारण, पर इस प्रकार से झूठ बस जाता है और कमाई हुई मन की आन्तरिक वृत्ति चली जाती है। यह (साधक) व्यवहार को जहां तक हो सके शुद्ध करे नहीं तो खेती पकने लगी और आप इसमें डंगर को छोड़ दें तो फिर तो वह बीज डालने की, हल की, गोडी की, सब परिश्रम बेकार। जो कभी हमने भलाई की खेती लगाई, इसको अपने आप ही नष्ट किया। ऐसा पक्का हो जावे जैसे हांसी का रहने वाला, समझो कि वैश्य, हरद्वार में 12 हजार आदमी में पुकारो तो दौड़ कर आए। या जब कभी विचार करे तो यही कि तुम कौन हो तो इस को यही विचार कि बनिया। नाम बदल भी लेते। स्कूल में अपना नाम। नाम जो रखा गया वह इतना आदमी में रस जाता कि प्रोफेसर जब कहे राम प्रकाश आओ तो राम प्रकाश सब में से निकल कर दौड़ कर आता है।

क्रिया और नाम दो ही हैं । इन दो में ही सब ज्ञान ओत प्रोत है। 8 वर्ष के लड़के में इतना नाम प्रवृत्त हो गया कि वह शिक्षक के पुकारने पर सब लड़कों में से आ जाता है। इसी प्रकार संस्कार प्रबल होवे। फिर नास्तिक भी मिले, खेल तमाशा वाले भी, इनकी संगति में साधना जो की थी वह रुल न जावे। 12 साल

बैठकें करे, पहलवान दण्ड निकाले और फिर एक ही दाव में चित हो जावे तो सारी पहलवानी राख में। इतना जप करते रहे, साधना में आते रहे, पर फिर भी थोड़ी सी बात पर उबल गए तो यह साधना किस बात की। वहां शान्त रहे।

सत्य और न्याय की शीलता बनी रहे। पक्षपात करने पर न्याय नहीं रहता। न्याय न रहने से आत्मा में जो बल आता है वह नहीं रहता। यह साधारण बातें हैं पर साधनशील में होनी चाहियें। जो इन को जीते न वह कोई ऐसा पहलवान नहीं (जो अन्याय, झूठ आदि को नहीं जीतता उसमें तो कोई विशेष बात नहीं आई)। नास्तिक भी ऊंचे हो जाते (कई नास्तिक भी न्याय और सत्य में बढ़ जाते हैं)। यह तो दुर्बलता है कि इतनी साधना करके भी गिर जावे तो क्या बात हुई? राग द्वेष से ऊपर उठना कठिन बात है। और कठिन नहीं भी है। कठिन इसलिए नहीं कि बहुत साधारण बात है। कोई कष्ट नहीं होता। एक हत्या करता है। इसके रिश्तेदार और मिलने जुलने वालों का 400-500 का चक्कर। वे सब इसके अपराध को छुपाने की चेष्टा करते हैं। पैप्सू के डाकुओं के सिलसिले की बात। मिनिस्टर लोग सहायता करते (डाकुओं की)। डाके पड़ा करें और वे (डाकू) छूट जाया करें। झूठी गवाही बहुत (प्रचलित) तो केन्द्रिय सरकार ने एक मद्रासी नियुक्त किया उन डाकुओं से निपटने के लिए। उसने पूछा तो अफसरों ने कहा कि पकड़ते भी हैं पर छूट जाते हैं। उसने कहा तुम पकड़ो ही नहीं, देखते ही गोली मार दो। मुकाबला किया न किया। वे अन्ततः मुकाबला तो करते ही हैं।

हरयाणा में भी इसी प्रकार एक बार शोर, पुलिस राज, पुलिस राज। (इसी प्रकार हरयाणा में भी लोग एक बार पुलिस के अत्याचारों पर विरोध करने लगे) वे परिस्थिति को नहीं देखते। किन्तु यदि पुलिस सख्ती न करती तो दो चार महीने में डाकू सज्जन लोगों का रहना कठिन कर देते। लोग कहते कि पुलिस ने स्त्रियों को भी कहा कि तलाशी दो। तो यह तो होती है बात।

अन्ततः जो औरतें डाकूओं को रोटी और सुरक्षा देतीं (उनकी तलाशी तो लेनी ही थी) लोग न्याय से नहीं सोचते। आदमी न्याय में रहने की चेष्टा करे। अन्याय बहुत बसा हुआ है।

यहां (साधना सत्संग में) आप एकत्रित होकर बातें बहुत करते हैं। पर यह बातें रहें तो ठीक, नहीं तो गिर गए तो कुछ नहीं। जिमनास्टिक में आसन सीखे तो जब चाहे उसी प्रकार कर सके। जब पढ़ गए तो इच्छा अनुसार शब्द बोल सकें। परन्तु हो सकता है कि दूसरी नई नई बोलियां सीखते समय अपनी पढ़ी हुई बोली भी भूल जावे। वह संस्कार की क्रिया, स्वार्थ की क्रिया से आप उठा न देवें (साधना को आप अन्य बातों से दबा न देवें)। इतना मेरा कहने का तात्पर्य। तो फिर यह साधना फलवती होती है नहीं तो संस्कार तो कुछ न कुछ बने ही रहते हैं। मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि साधना को आप और सब बातों से ऊपर रखें। ऐसा करने से साधना फलवती होगी।

यदि ऐसा न किया तो फिर इतनी बात नहीं होगी। हां, फिर भी यहां की हुई साधना का शुभ संस्कार तो रहेगा ही, जैसे सुगंधि तो रह ही जाती है, केसर की बोतल में। इसी प्रकार दवाई की (बोतल में भी दवाई की सुगंधि रह जाती है।) पर इस से सुगंधि उड़ भी जावेगी यदि कार्क खोलकर रख देवें। तो ऐसे ही जब भी अपने अन्दर से वह संस्कार निकाल देवें तो तभी यह संस्कार (यहां की हुई साधना का) जा भी सकता है। पक्का मन हो सब चीज़ों में। दृढ़ व्रत का हमारे में बहुत आदर है। वह आदमी किस काम का जिस ने व्रत लिया कि मैं पत्नी-व्रत हूँ और वह बाजार में इधर उधर देखता फिरे (अन्य स्त्रियों को)। वह स्त्री भी बुरी (जो अपने पति के अतिरिक्त अन्य पुरुषों की ओर देखती फिरे)। मैं दोनों ही को बुरा समझता हूँ। प्रायः लोग स्त्री को ही (दोष देते हैं)। पुरुष के लिए तो यह भी बहुत लोग (उचित समझते हैं) कि तीसरी पत्नी मरी तो भी वह चौथी शादी किसी लड़की से करे। पर मैं तो (यदि ऐसा) कोई करे तो भी खराब और महा

खराब समझता हूँ। यह तो व्रत के माहात्म्य को न समझना है। अपनी एक रेल की यात्रा में एक इंजीनियर मिल गया। इस (डिब्बें) में हम दो ही थे। बड़ा वह हैरान सा था। बराबर बेचैनी प्रकट करे। मैंने पूछ लिया तो आंखें भी भर लाया। उसको रोग लग गया। कारण, मकान में एक अन्य पुरुष रहता था। उससे वह रोग उसके घर में आया। यह भी पता लग गया। अब क्या मेरा होना चाहिये, इस प्रकार दुखिया रहता हूँ। अब आदमी (ऐसी स्थिति में) क्या बताए। निकाल दे (पत्नी को)। यह कहना भी बड़ा कठिन। मुझ पर इतना विश्वास कि घरेलू बात प्रकट की यद्यपि पहले से परिचय नहीं। मैंने कहा वह आगे को क्या कहती है। तो उसने बताया, कहती है कि भूल हो गई। आगे अच्छी रहूंगी। मैंने कहा कि तुम क्या समझते हो। उसने कहा मैं समझता हूं वह ठीक कहती है। मैंने कहा यदि तुझे कभी विचार नहीं आया तो फिर तो (ठीक है) नहीं तो, यदि तुम ने विचारों में कभी लाया तो फिर इतना बेचैन तो नहीं होना – समझो अब से दवा शुरु।

जाट घर में यदि कोई पलटन में मर जावे तो उसकी पत्नी का विवाह उसके दूसरे भाई आदि से करने की प्रथा है। पर यदि बनिया, ब्राह्मण के घर में चाहे 12 वर्ष की आयु में कोई लड़की विधवा हो जावे तो उस बेचारी को अपना सारा जीवन रो रो कर वैधव्य में ही काटना पड़ता है।

मेरा कहने का अभिप्राय यह है कि अपनी पत्नी की पर पुरुष से अवैध नाते की बात उस इंजीनियर के मन में बस गई थी। यह स्मरण करके उसी समय मुखड़ा उस का बदल गया। अब उस अवैध सम्बन्ध से उत्पन्न लड़के को देख कर उस को यह बात स्मरण हो आती। उसका गिला करना भी ठीक जो स्वयं न्याय पर स्थिर रहा हो। मैंने इसे कहा कि तुम साफ रहे हो तुम जो फिसले नहीं, कीचड़ में कूदे नहीं। दूसरे का कुकृत्य विचार कर क्यों दुखी होते हो। बाद में इसने अपने जीवन को ठीक बनाया।

पक्का रहना चाहिये। दो बातें नहीं होतीं कि भगवान की बात भी रहे और आसुरी वृत्ति भी। आश्चर्य भी होता है कि बहुत

फिसल जाते हैं, पर बहुत बच भी जाते हैं।

अनुशासन—

साधना सत्संग में कोई बहुता तो बंधन नहीं—पर किसी-किसी बात का बंधन। वास्तविक प्रयोजन है कि साधक अनुशासनपूर्वक निपुण हो भजन पाठ में। कई और प्रकार के भी शिविर (होते हैं)। वहां भी सिखाते.हैं कि एकत्रित जो हों उनको यह शिक्षण मिले कि कैसे अनुशासन का पालन करें। यही हमारा (प्रयोजन) है कि जो इस सत्संग में (सम्मिलित हों) वे सुशिक्षित हों। जीवन को कैसा बनाया जावे। तो यही बात आप लक्ष्य में रखें कि जो कुछ आप यहां सीखें उसे घर जाकर भी बनाये रखें। जप आदि के अभ्यास को भी बनाए रखें। नियम से यहां रहते हैं तो वहां (घर पर) भी जीवन में नियम (का पालन करें)। अपने मित्रों आदि में भी राम नाम की प्रीति फैलाएं। जो प्रयोजन है, उद्देश्य है (साधना सत्संग का) वह तभी सिद्ध (जब) कि भावना वाले (लोग) आवें—रोगी न आवे—बालक भी (न आए), वृद्ध भी (न आवें)। छांटें नहीं तो दूसरे स्थानों पर संख्या भी (अधिक हो जावे)। हरिद्वार में बड़ी सावधानी से प्रवेश। वहां विशेष बात यह भी कि स्त्रियां भी आती हैं (अतः) वहां आने वाले आदमी अच्छे हों।

आप अपने जीवन को जहां तक हो सके ऐसा बनावें और दूसरों में भी संचार करें। रिश्तेदार को भी कहें कि खाने में जूठन न छोड़ें। आप कहेंगे कि लेने वाले भी तो जूठन लेते हैं। वे तो इसं लिए लेते हैं कि भूखे होते हैं। पर जूठा भोजन क्यों दिया जावे। लोग बूढ़े गाय बैल को खुला छोड़ देते हैं। यह अधर्म है। उन पशुओं का बड़ा निरादर (होता है)। इस प्रकार आवारा वे निचड़-निचड़ कर मरते हैं। मैं एक मित्र के पास ठहरा था। उन के मित्र आये और रोटी खाकर थालियां बाहर रख दीं। कुत्ते चाटें। मुझे यह बात बुरी लगी। पूछा तो कहने लगे कि थाली कुत्तों के चाटने से अधिक साफ हो जाती है। किन्तु उनको यह ज्ञान नहीं कि कुत्ता तो मुंह में सड़ी हड्डियों को भी लगाता है—तो इस प्रकार जर्म लगे थालियों में। यह तो अच्छे घर की हालत।

मेरा कहने का भाव यह है कि जूठन घरों में भी नहीं होनी चाहिये। जैसे यहां (साधना सत्संग में) नहीं (होती)। बन्धुओं को भी कोमल ढंग से यह समझाना चाहिये कि (जूठन छोड़ना) दोष है। इसी प्रकार सवेरे उठने के स्वभाव को वहां भी (बनाए रखना चाहिये)। व्यायाम भी और वही स्वभाव बंधुओं में फैलाने की चेष्टा (करनी चाहिये)।

घरों में भी समय पर खाने का स्वभाव बनायें। तो भोजन (का रस) रक्त में भी समय पर जाता है। अंग्रेजों में (यह बात है)। वे लोग जब युद्ध में जाते, वहां भी अनुशासन में खाते। काम क्या करेंगे जो खाएंगे नहीं। सब सामान साथ होता है। रसोइये भी साथ मार्च करते। अब आप मिर्चें खाते हैं। अमृतसर में दो कारखाने (मिर्चों के), बहुत बारीक पिसी हुई अदरक मिर्च ऐसी पुड़ियों में जो बारिश में भी खराब न हों। समय पर उनको रोटी मिलती—अंग्रेज सैनिकों को। यह बात ऊट-पटांग है कि हम जमींदारी करते हैं तो कभी दो बजे रोटी मिलती है। लाला जी को रोटी दुकान पर भी (ठीक समय पर पहुंच जाती है)। समय पर खाने का स्वभाव (बनाना चाहिये)। इससे शक्ति भी (आती है), बल भी। यह पेट कोई बोरी तो नहीं कि लाला ने इसमें चीज़ें जमा कर दीं। स्वास्थ्य इस लिए भी खराब होता है कि समय पर नहीं खाते और खराब वस्तुएं खाते। गरीबी से तो और बात। जमीन तो बढ़ी नहीं। (लोग) कहां से खाएंगे। जन संख्या बहुत बढ़ने से देश में गरीबी फैल रही है। मुझे कोई उपाय भी नहीं सूझता (इसको दूर करने का)। समय पर खाए सूखे चने, बिन समय के हलवे से अधिक लाभदायक। समय का परिपालन करें। समय पर जगो—समय पर सोवो।

पहले सत्संगों में मैंने कहा कि मैली धोती नहीं होनी चाहिये। इनमें (साधकों में) जज भी होते। अमीर भी जिनके घरों में दो तीन नौकर। पर सत्संगों में अपने हाथ से अपने कपड़े धोते। तो यह तो करने से होता है। उद्‌यमी पुरुषार्थी हो तो मैला कुचैला क्यों रहे। साधना सत्संग कैसे—साधना का अर्थ है शिक्षण। श्रेष्ठ बातें यहां

कही जाती हैं। कैम्प का नाम मेरे कानों को अखरे। यह साधना सत्संग है। साधक जप में, आराधन में, सवेरे उठने में, खान पान में, चलते फिरते साधन सम्पन्न हो। जमींदार ने जब भूमि संवार कर बीज डाला तो वह उगा नहीं तो बीज खराब। तो आपके पास रहने से नया पेड़ (साधना तरंग) बंधुओं में नहीं हुआ तो आप में कमी। नाम जपने का बड़ा समय है—यदि नाम लेकर जपा नहीं तो यह नाम का बड़ा अनादर है। जिस का प्रभाव मित्रों पर नहीं, समझो उसका मनोबल नहीं। साधना सत्संग में आने से साधन सम्पन्न हो यही प्रयोजन (है साधना सत्संग का)।

सत्संग में साधक सीखने के लिये आते हैं। सत्संग में आने का लाभ तभी है, जब यहां से वापिस जाकर भी नियम से रहें। यहां तो अनुशासन से रहना ही चाहिये। यदि किसी में क्रोध है और उसने क्रोध को नहीं जीता तो सत्संग में आने का कोई लाभ नहीं। गन्दे घर में रहना तुम भी पसन्द नहीं करते हो तो श्रीराम आपके मलिन हृदय में कैसे रह सकते हैं? जहां क्रोध होता है वहां मैल होता है। मैली आत्मा में राम कैसे आ सकता है? राम और क्रोध एक साथ नहीं रह सकते। अन्तःकरण कपटरहित होना चाहिये।

आत्मभाव की जागृति

यहां जो साधना सत्संग में आए हैं उन्हें जिस प्रकार रहना है वह साधारण दिनों से भिन्न होता है। यहां हार्दिक वृत्तियां जागृत होती है। और जब वे जागृत होती हैं तब आदमी आगे बढ़ता है। हार्दिक वृत्ति यह है कि एक को अपने किये पर पश्चात्ताप हो। और उनके उद्धार का प्रयत्न करे, जाने और समझे। अन्तर प्रेरणा से जब कोई काम करने लगता है उसकी उन्नति होती है। भिन्न भिन्न प्रकार के वक्ता इसका भिन्न भिन्न प्रकार से वर्णन करते आए हैं। यह सत्ता है इसको ऋषि लोग जानते आये हैं, मैं तो यही कहना चाहता हूं कि उसके दरबार में आन्तरिक वृत्तियों को उपस्थित करके खड़े हों तो लाभ अवश्य है। मैं नहीं रहूंगा—यह बाहर के जगत की बातें हैं। ऐसा विचार डराता है। आदमी अपने

को शक्तिशाली होते हुए दुर्बल मान लेता है। तो इस को दबाना—यह साधक का काम है। पर जब आत्म भाव जागे तो यह सहज हो जाता है।आत्म भाव न जागे तो माया से ऊपर आदमी नहीं जाता। यहां मैं बताना चाहूंगा कि गोस्वामी जी ने ठीक ही कहा है कि माया हरिभक्त के पास नहीं आती। यह ठीक है भक्त परमेश्वर के पास जाये तो माया अपने आप हटती है। सत्संग में यत्न किया जाता है कि आन्तरिक, आध्यात्मिक वृत्ति देवे। उसके चिह्न भी प्रकट होते रहते हैं। किसी में हर्ष का उद्गार, किसी के रोंगटे खड़े हो जाते हैं। किसी में कुछ बातें स्फुरित होती हैं। जो बात उनमें बसती है वह धीरे धीरे उनको स्पष्ट होती जाती है। भीतर के जगत का जागृत होना, इधरउधर की जो बहुत बातें हैं उन से भिन्न है। केवल बाहरी बातों में रहकर हम हरिदरबार में जाने के भागी नहीं हो पाते। अन्तःकरण वाली बात कुछ और ही है। साधना को घरों पर जा कर बसाना भी चाहिये। मिलट्री में तीन मास रह कर समय पर परेड करे और फिर भी वैसा ही रहे तो उसने क्या सीखा? जितने भी कैम्प, चाहे वे स्काउटों के चाहे किसी और के—वहां लोग सीखते हैं कि कैसे सेवा करना, कैसे ग्राम सुधार। तो साधना सत्संगों से भी सीख कर जाना चाहिये, आन्तरिक वृत्तियों को जागृत करना चाहिये। जितनी माया की वृत्तियां हें उन्हें सिधावें। देश जाति की बात भी उनमें गहरी आनी चाहिये। निकम्मा सा क्यों बनें। जागृत सा अनुभव होवे। उसको विचार होवे कि जाति और देश के शरीर में फोड़ा क्यों हो। साथ साथ साधना सत्संग में यह बताऊं। इसी दृष्टि से मै बोलता हूं।

रूसी उपग्रह (Satellite) से कोई संकेत आने पर उनक अर्थ दूसरे क्या जानें क्योंकि Code Word उपयोग होते। गणेश की मूर्ति, हाथी की सूंड, चूहे पर बैठा मनुष्य का मुख—ये स संकेत की बातें हैं। जिसने वह मूर्ति बनाई वह ही जाने। तो मु कहना यह है कि इतनी दूर से एक जड़ वस्तु संकेत भेज रही है

आपकी चेतना कोई क्रिया पैदा क्यों न करे। उपग्रह में कोई संचालक नहीं है। पर समाचार आते हैं। तो आप कोई समाचार आकाश में संचित करें तो वे क्यों न आवें। समाचार पत्र मैं कुछ कम ही पढ़ता हूं। आप पढ़ते होंगे। लिखा होता है कि हमने प्रार्थना भवन देखे। डाक्टरों से निराश हुए लोग उन्हें लिखते। वहां प्रार्थना होती और लोग अच्छे हो जाते। जगह जगह प्रार्थना घर बने हुए हैं। प्रार्थना घरों में केवल प्रार्थना ही की जाती है। प्रार्थना करने के इच्छुकों में चरित्र शस्त्रित होना चाहिये। चरित्र निर्माण करना चाहिये। मुझे कहना यह है कि सिद्धि चाहने वालों में बुराई तो निकट भी नहीं होनी चाहिये। परमेश्वर से चरित्र शस्ति योग्य पथ पर होने की दृष्टि मांगनी चाहिये। जो प्रार्थना करते हैं वे समझते हैं। कहते हैं उन्हें मार्ग दर्शन (guidance) भी मिलती है। मुझे भी इस का कुछ ज्ञान है। और जब वे कहते हैं कि मार्ग दर्शन मिलता है, मैं कहूंगा कि वे कोई नाटक नहीं करते। आप भी भगवान की कृपा मांगा करें। आज कल मैं प्रतिदिन कोई ऐसी बात भी करता हूं, और लोग भी करें, ऐसा चाहता हूं। आन्तरिक वृत्तियां उनकी जागतीं, सुधरतीं और जितनी सुधरतीं उतना ही भगवत् प्रसाद ज्यादा।

भक्ति भी जिस जीवन में हम हैं उसी में देखनी चाहिये। तो भाईयो! यह सत्संग का भाग समाप्त होता है। मैं समझता हूँ कि यह जो सम्पत्ति आपने यहां एकत्रित की है, वह आपके साथ जायेगी। ऐसी मैं भावना रखता हूँ। यही मेरी आशा है और राम ऐसा ही करेंगे।

हम यहां समय का जिससे धन भी कमाया जाता है, बलिदान करके एकत्रित हुए हैं। इसलिए हमें इसका पूर्ण लाभ उठाना चाहिये और मेला, गढ़ अथवा प्रयाग के मेले में जाने वालों के समान—ऐसे ही यहां से नहीं लौटना चाहिये।

हमारी इच्छा है कि एक ही प्रकार के व्यक्तियों के छोटे छोटे साधना सत्संग लगें तथा अमीर लोग कम पैसे वालों के मध्य में सम्मिलित न हों ताकि उन में हीनता की भावना पैदा न हो। लोग

कहते हैं कि हमने 30 बार स्नान किए, इत्यादि किन्तु ऐसा कहने से कोई लाभ नहीं।

मैं भगवान के विश्वास में बड़ा दृढ़ हूं। यह भावना है, मैं स्वयं आपकी प्रशंसा करता हूं कि आपने इन दिनों में अच्छी निभाई है। कोई त्रुटि हो किसी की ओर से, समझो मेरी ओर से है। सभी से हाथ जोड़ कर क्षमा मांगता हूँ। मैं दास हूं—इस दरबार का, राम का। मैं तो हर भाई बहन के जूते भी झाड़ने के लिये तैयार हूं। बड़े आदर, बड़े सम्मान से नमस्कार करता हूँ।

जोत से जोत जला लो जी

(साधना सत्संग की समाप्ति के अवसर पर प्रार्थना आदि के पश्चात् अखण्ड जाप में रखी ज्योति को थाली में लेकर श्री महाराज साधकों के आगे घुमाया करते थे और कहते जाते थे, ''जोत से जोत जला लो साजन, जोत से जोत जला लो जी।'' साथ-साथ सब साधक भी बोलते थे। बड़ी श्रद्धा और प्रेम से साधक ज्योति की लौ पर हाथ फेर कर अपने मस्तकों पर लगाते थे। ऐसा लगता था मानो श्री महाराज जी कह रहे हों कि ''मेरे हृदय में जो ज्ञान और भक्ति की लौ जल रही है उसे आप अपने हृदय में जगा लो।'' सच्चे संत के पास जाकर ही अन्तरात्मा जागृत होती है।

ज्योति घुमाने के पश्चात् साधक कतारों में खड़े होते और श्री महाराज जी प्रत्येक साधक के पास जाकर विदा होने से पहले एक-एक को आलिंगन करके मिलते और साथ कहते जाते थे,'' वार-बार मिले राम, मेला सजना दा।'' बड़ा मार्मिक दृश्य होता था और साधकों के नेत्रों से अश्रु बह रहे होते थे और यह ध्वनि गूंज रही होती थी, ''बार बार मिले राम, मेला सजना दा।''

योग स्थिति

मारा उद्देश्य - नाम में स्थिति

आप खूब आराधन भजन करने को यहां एकत्रित हुए। जो ट्टेश्य जहां का होता है इसको ही पूरा करने का वहां महत्त्व। सरी जगहों पर जहां दूसरे उद्देश्य-सिनेमा आदि—वहां उनका वासा। यहां तो भजन ही उद्देश्य है। बहुत भाषण—ऐसी बात ो नहीं। जो बोलना वह यहां मैं बोलता ही हूँ। इस समय यही कहना है कि नाम आपने लिया, लेते हैं, सुना और आपने धारण किया, आपको खूब अपने अन्दर रमाना। यह ही उद्देश्य और यह ट्टेश्य पूर्ण तभी होता है जब इसको महत्त्व दिया जाय। यदि सरा उद्देश्य तो वृत्ति बिखरी रहती है।

यहां तो इसी पथ (राम नाम) का भजन कीर्तन और जो बोलना ह भी इसी पथ का। मुख्य उदेश्य राम नाम का आराधन करना है। वह ऐसे कि पूरा विश्वास हो जावे और नाम अंदर रम जावे। ो फिर चैतन्य शक्ति जग जावे। जब चैतन्य शक्ति जग जावे, ो वह कभी न कभी काल चक्र से पार। यहां रोहतक से एक सज्जन आए हुए हैं। इनका सत्संग तो बड़ा अच्छा होगा। इन्होंने सोचा होगा। महाराज आवें, बोलें तो इनका सत्संग पुष्ट हो जावेगा। इन्होंने मुझे चलकर बोलने को बहुत कहा। बाहर बोलना अब मैंने बहुत कम कर दिया। सत्संगों के लिए ही फिरता हूँ। नाम की महिमा गायन करता हूँ।

भक्त हर एक पदार्थ में प्रभु को देखता है क्योंकि सृष्टि प्रभु की है। रचना में रचयिता रहता है। चित्र में चित्रकार निवास करता है। इसलिए सृष्टि में उसको बसाओ। प्रभु की वस्तुओं में अपने आपको बसाना ज्ञान की आँखों पर पट्टी बांधना है। यह सब उपयोग की वस्तुएं हैं। ममता करने की नहीं, गठरी बांधने की नहीं।

'ईशावास्यमिदं' इस उपनिषद् वचन में उपनिषदों का सार

समाया हुआ है। यह हिन्दु अध्यात्मवाद का मुख्य स्वर है। पर यह तब जब इस पर मनन किया जाए।

योग चित्त वृत्तियों का निरोध है। योग का फल अपने स्वरूप में स्थिति है। योग क्या है और क्या इसका फल है यह महर्षि पातंजलि जी ने योग-शास्त्र में प्रारम्भ में ही बता दिया है। बाकी जो कुछ है वह यह है कि इस स्थिति को कैसे प्राप्त किया जा सकता है।

एक भाई ने किसी महात्मा को कहा कि मुझे ध्यान में कुछ एकाग्रता तो हो जाती है और कुछ शान्ति भी अनुभव होती है पर मुझे मिला कुछ भी नहीं। महात्मा ने कहा कि 'भोलिये! जब एकाग्रता और शान्ति हो जाती है तब और तुझे क्या मिले ?'

ध्यान में एकाग्रता और शान्ति प्राप्त होती है। नाद, लोक लोकान्तरों की गति से होता है। कभी-कभी कोई उनको सुन लेता है। स्वर्गीय नाद भी कभी-कभी आ जाता है। पर जो केवल नाद को ही अपना ध्येय मान ले वह वहीं तक रह जाता है। **हमारा ध्येय तो 'आत्मा की अपने स्वरूप में स्थिति' होना चाहिए।** और सब कुछ हुआ किन्तु यह न हुआ तो कुछ भी न होने के बराबर है।

राम में प्रीति मांगो

पहले कहीं नदियां थीं, वहां अब रेत के पहाड़। पर नीचा स्थान कोई आवे तो नदियां फिर बहती हैं। नीचे भी नदियां बहती हैं। मैं सब जानता नहीं इसके बारे में, पर जो जाना वह बताता हूं। नीचे जो इतना पानी आ गया, ट्यूबवैल आदि का। तो लोग कहते हैं समुद्र से आ गया। पर यह तो मीठा और समुद्र का खारी। नीचे भी पानी (है)। हिमालय पर जो इतना पानी (बरसता है) वह नीचे भी नदियों के रूप में चलता है। नीचे की नदी मालूम नहीं होती। तो इसी प्रकार प्रतीत न हो पर अन्त समय सुधर जाता है। हो सकता है कि मेरे मन की धरती भी ऐसी हो जिसमें जल ऊपर न आ सके। **पर जो सुन्न होने की बात है यह तो सोने से भी हो जाता है—पांच**

घंटे न सोए, छः घंटे सो गए। (सुन्न होना तो सोने के समान है। पांच घंटे सोए और एक घंटा सुन्न रहना तो छः घंटे सोने के समान है)। मन में चेतनता हो और प्रभु का नाम हो—भक्ति तो यही है। भक्ति के गीत गाए, सुन कर मग्न हो जाए। बाकी रहा सो जाना—यह तो क्लोरोफार्म सुघां कर भी। स्थानीय इन्जैक्शन भी ऐसा कर देते हैं कि अंग सुन्न हो जाएं। यह क्या मांगना। मांगना तो यह कि राम में प्रीति हो।

विश्वासपूर्वक आराधन से महिमा स्वयं अनुभव होती है

एक बात और है। जो स्वयं विश्वास वाले लोग हैं वे रामनाम की महिमा स्वयं अनुभव करने लग जाते हैं। दूर के दृष्टान्त क्या देनें। यह सब बातें होती हैं। इसी साधना करने वालों में ही, यह अनुभव की बातें आती हैं अवश्य। फिर कई बातें ऐसी होती हैं कि ये साधारण व्यक्ति यहां लाभ करते हैं जो घोर तपस्या करने वाले को कदाचित (ही प्राप्त) हों। और यहां मस्त जो हो जाते हैं। बहुत मस्ती भी कोई ऐसी (मामूली) बात नहीं। व्यवहारिक मन (Conscious mind) बन्द हो जाता है। आन्तरिक मन (Sub-conscious mind) काम शुरू कर देता है। ऐसे अनुभव जो हैं, साधारण नहीं हैं। यह अवस्था असाधारण—विशेष अवस्था है। इस अवस्था में व्यवहारिक मन जो वृत्तियों का, भावनाओं का बना हुआ होता है, वह सो जाता है और चेतना जागृत हो जाती है। पर इसको निभाए रखे तो अच्छा, नहीं तो फिर ढीली पड़ जाती है। यदि इसको मामूली या यूं ही समझ लिया जावे तो चली भी जाती है, जा सकती है।

सन्त कृपा

सन्तजन स्पर्श से, देखने से तथा ध्यान से दूसरे के अन्दर तरंग पैदा कर देते हैं। दीक्षा तीन प्रकार से होती है, सूक्ष्म जगत् में। स्थूल जगत् में भी प्रगति इन तीन ही प्रकारों से होती है। ऐसे ही बुराई भी तीन ही प्रकार से आती है—स्पर्श, दृष्टि और ध्यान से। कभी कभी संगी साथी भी बुद्धि को बिगाड़ देते हैं और

अनादर पैदा कराकर उस की हानि का कारण बनते हैं।

जैसे पक्षी अपने पंखों से बच्चों को पालता है, ऐसे ही संत लोग अपने समीपवर्ती लोगों को उठाया करते हैं। जैसे कुर्मि (कछुआ) अपने अंडों को देखने से, दृष्टि से सेता है, इसी प्रकार संतजन देखकर भी दृष्टि द्वारा दूसरों पर प्रभाव डालते हैं। मच्छ ध्यान मात्र से अपने बच्चों को सेता है। इसी प्रकार दूर देशस्थ आदमी को ध्यान द्वारा संतजन की सहायता मिलती है।

स्वात्म प्रतीति—

अपने आप की प्रतीति होने को स्वात्म प्रतीति कहते हैं। अपने अस्तित्व को ऊंचा करना साधन में लाभदायक है। आत्मा को नीचा नहीं करना चाहिये। यह इसका अपमान है और इससे आत्मा दब जाता है। यदि पहले सफलता न हो तो अपने आपको दुर्बल न समझना चाहिये। मनु महाराज कहते हैं कि अन्त समय तक सफलता की आशा करते रहना चाहिये। आत्मा के अस्तित्व में पूर्ण विश्वास होना चाहिये। विश्वास और दृढ़ धारणा से ही आत्मा अभिव्यक्त होता है। आत्मा की अभिव्यक्ति ज्ञाता और ज्ञेय भाव से नहीं होती अपितु ऐसी प्रतीति होती है कि मैं हूं। यह अभिव्यक्ति ऐसे भी होती है जैसे मैं आकाश में हूं, मेरे देह नहीं है, वह मेरा देह पड़ा है, मैं देह से भिन्न हूं, मेरे हाथ पांव बड़े बोझल हो गए हैं, मेरा शरीर सुन्न हो रहा है, मेरा शरीर छोटा सा हो गया है, मेरा तन बड़ा विशाल है, इत्यादि, इत्यादि।

यह आवश्यक नहीं कि सब साधकों को सब प्रकार की प्रतीति हो। किसी को किसी प्रकार की अभिव्यक्ति होती है, किसी को किसी प्रकार की। यदि किसी को इनमें से किसी प्रकार की भी प्रतीति न हो और उसको एकाग्रता हो जाती है, तो उस को यह नहीं समझना चाहिये कि मुझ में कोई कमी है या मेरी उन्नति नहीं हो रही। उसकी आत्मा भी जागृत हो रही है इस बात में उसे विश्वास रखना चाहिये।

अजपा जाप वह हैं जिसमें वाणी से जाप न किया

जप हो रहा हो। जब ऐसा हो तो उसका अर्थ

वोल रहा है। आत्मा में बोलने की शक्ति है। देह में कैद होने पर आत्मा इन्द्रियों द्वारा विषय ग्रहण करता है और स्थूल अंगों में तरंगें पैदा करता है। और जिह्वा इत्यादि से शब्द आदि उच्चारण होता है। पर देह से पृथक होकर आत्मा सूक्ष्म प्रकृति में संकल्प द्वारा क्रिया उत्पन्न करता है। पातंजलि महर्षि का वाक्य है कि आत्मा अपने संकल्प द्वारा चित्र पैदा कर लेता है। दिल, फेफड़े इत्यादि स्वभाव की इच्छा से काम करते हैं, संकल्प से नहीं। ऐसे ही आत्मिक इच्छा स्वभाव से है, संकल्प से नहीं। यह वात ठीक नहीं कि हम केवल बुद्धि और इन्द्रियों से ही काम ले सकते हैं। हम इनसे भी परे जा सकते हैं। बार बार आत्मा का उद्‌बोधन करना चाहिये। मैं सत्, नित्य, शुद्ध, चैतन्य, शक्तिमय आत्मा हूं ऐसा बार बार चिन्तन करना चाहिये। इससे आत्मा प्रबुद्ध और जागृत होता है और स्वरूप में चमक उठता है।

मस्ती एक प्रकार की समाधि

राम नाम की किरण पड़ी तो अपना अन्तःकरण विकसित हो गया। फिर विकसित होने पर (यदि) संकोच न रहे तो आदमी मस्त (हो जाता है) (यह मस्ती) एक प्रकार की समाधि की अवस्था (है)। यदि बिजली का करंट अन्दर ले जाने से इलाज होते हैं। यह तो फिर आध्यात्मिक (Spiritual) बिजली की धारा (current) हुई। पर (लोग) इन बातों पर विश्वास कम (करते हैं)। इससे तो शरीर का परमाणु आत्मिक विद्युत से उज्जवलित हो जाता है-जगमगा जाता है-और भागवत भक्ति के वह योग्य हो जाता है। भक्ति धर्म भी इसी में है। इतना नाम बसा कि आदमी वाहरी सुधवुध भूल गया। जो चुप रहता है (मस्त नहीं होता) इसको अपने में घटियापन नहीं समझना चाहिए—हां, झिझक बन्द होनी चाहिए।

एक जगह (कीर्तन करते समय) बिजली बन्द कर दी जाती और फिर लोग पांव हिलाते। फिर मैंने कहा कि बिजली बन्द क्यों ? जब नाचने लगे तो फिर घूंघट काहे का। अब वे अपनी

विद्या और सब ही प्रकार का विचार भूलकर धुन में मस्त होकर झूमने लगे। भगवान कृपा के पात्र बहुत आदमी हैं जो अलौकिक बातें देखते हैं। शान्ति के रूप में, दिव्य प्रकाश के रूप में, सिद्ध अवतारों के स्वरूपों के दर्शनों में विश्वास होना चाहिए।

एक डी०ए०वी० कालेज के प्रिंसिपल कौंसिल के मैम्बर थे। मुझे कहने लगे रामनाम दो। तो मैंने कहा कि तुम कालेज के प्रिंसिपल हो, तुमने बड़ा काम किया है समाज का। मुझे तो कहने की आवश्यकता नहीं कि मैंने नाम दिया है। या यह कहने की कि मुझ से उसने नाम लिया है। मैं तो इसमें कोई बड़ाई समझता नहीं। यह (नाम) तो दाता की चीज़ है। उसने मुझे दी, मैंने बरता दी। तो मैं तो कहता नहीं। कभी सत्संग में कह भी दूं किन्तु प्रायः कहता सत्संग में भी कम (ही हूं)।

मुझे एक सोसाइटी का सैक्रेटरी जालंधर में मिला। कहने लगा कि तुम्हारी पुस्तक के विरुद्ध हमने एक प्रस्ताव पास किया है। शर्त यह है कि आप एक साल तक नाम न देवें। वह मेरा बड़ा मित्र था। मैं अब भी उस ही नाते से देखता हूं। मैंने उससे कहा कि एक ओर तो आग हो, जलती हुई आग हो और एक ओर सोसाइटी की खूब मान्यता हो, बड़ी कीर्ति हो तो मैं तो कदाचित राम-नाम न छोड़ूं। आग की ओर चला जाऊं। कई आर्यसमाज के पुरुष आते हैं। कई आए हैं तो मैं तो मिले प्रसाद को देने में (बांटने में)-मांगने पर-संकोच करता नहीं। तो वह प्रिंसिपल ध्यान में बैठा तो उसको स्वरूप श्री रामचन्द्र जी का दिखाई दिया और किसी ने पीछे से कहा कि यह रामचन्द्र जी आ रहे हैं। मैंने उससे पूछा (कि तुम्हें ध्यान में क्या प्रतीति हुई), प्रायः पूछ लिया करता हूं। तो इसने कहा कि यह रामचन्द्र जी का स्वरूप क्या और फिर यह आवाज़ क्यों ? और फिर ये क्यों आए ? तो मैंने कहा कि तुम्हें नहीं पसन्द तो नहीं आवेंगे।

मेरा एक मित्र पहाड़ी पर गया। वह वहां ध्यान में बैठा। उसने बाद में मुझे कहा कि सामने कृष्ण जी आए। वह खड़ा हो गया।

वास्तव में वह तो बैठा ही रहा किन्तु उसकी आत्मा उठी।

ग्वालियर में एक साधक ने कहा कि मैं खड़ा हो गया हूं और देखता हूं कि श्री राम का स्वरूप मेरे पास आता है। शरीर इन अवस्थाओं में सोया होता है। ऐसी अवस्थाएं कन्दराओं में भी कदाचित आती हैं यदि भगवान देवें तो।

नाम का आराधन पावर हाऊस की बिजली के समान है।

यह जो देवभाव का आना है, यह अवस्था आगे पुरस्कृत भी होती जाती है। यह तो देव अवस्था है। यही अवस्था है जिसमें आदमी को अलौकिक ज्ञान शुरू हो जाता है। वह दूर की आवाज को ग्रहण करने लग जाता है-अर्थात् यंत्र हो जाता है उसका मन। (रेडियो के) यंत्र भी ग्रहण करते हैं (आवाज को) शीशे भी ऐसे हैं जो सूरज ग्रहण को बहुत निकट दिखाते हैं। बहुत दूर के प्रतिबिम्ब देखने में आते हैं और वे भी बड़े स्पष्ट रूप में। मेरा एक मित्र दूरबीन लाया, अमरीका से तो वह कोई बहुत बड़ी शक्ति-पूर्ण (powerful) नहीं थी। फिर भी इसमें मुझे चांद दीवार के समान दिखाई दे, जैसे एक फर्लांग पर। चांद में अपनी रोशनी नहीं। तो यह जो दाग दिखाई देता है चांद में, यह बड़ा पहाड़ है। इसमें चांद बड़े विशेष विस्तार में दिखाई देता था। जो दूरबीनें विशिष्ट प्रयोगशालाओं पर हैं वे तो और भी शक्ति-पूर्ण होती हैं। शीशा बना तो रेत आदि से, ऐनक भी इसी नियम पर। प्रतिबिम्ब बिखरता हो, ऐनक से वह इकट्ठा होकर ठीक दिखाई देता है। मुझे कहना यह है कि वह अनुभवी साधक योग्य बन जाता है। दैवी बातों को जानने की योग्यता भी धीरे-धीरे आ जाती है। यह बात जो कही, इसको हंसी में नहीं समझना। यह कही भी यहां पर ही जाती है (केवल साधना सत्संग में)। जिसको ऐसा नहीं होता (मस्ती नहीं आती) वह अपने में कमी नहीं समझे। इसको चुप रहने में ही लाभ। पर लोग संकोच करते हैं, आयु के विचार से, स्थिति के विचार से अथवा आसपास के लोगों के कारण।

ईश्वर दर्शन

भगवान के रूप की कल्पना भिन्न-भिन्न साधकों में भिन्न-भिन्न होती है। वैष्णव लोग नाम के साथ भगवान के श्रीकृष्ण, विष्णु आदि रूपों की आराधना करते हैं। उनके सामने यदि अभिमत रूप आ जाए तो वह इसे भगवद् दर्शन मानते हैं और बात भी ठीक है। ये रूप भगवान के संकल्प से स्फुरित होते हैं। जो साधक भगवान को निराकार मानते हैं उनके लिए भगवान की अभिव्यक्ति में विश्वास करना जरा कठिन होता हैं क्योंकि यदि भगवान प्रगट हो तो किस रूप में।

साधक को ध्यान में कई रूप आते हैं। उसे यह समझना चाहिये कि यह रूप परमात्मा के संकल्प से प्रकट होते हैं और यह उसी की अभिव्यक्ति है जैसे धुआं, कोहरा, सूर्य, अग्नि, चांद, दिव्य ज्योति, पवन आदि। कई बार अवतारों के दर्शनों और उन द्वारा उत्साह लिया जाता है। शाब्दिक अभिव्यक्ति भी किसी किसी साधक को होती है। इसी को इलहाम भी कहते हैं। आदेश भी इसी को कहते हैं। शान्त अवस्था अथवा लय अवस्था, सुन्नावस्था—निराकार उपासकों को यह अवस्था भी आती है। इसमें चेतनता बनी रहती है। शब्द के साथ रूप का स्वाभाविक संबंध है। शब्द के उच्चारण के साथ ही सूक्ष्म लोक में एक रूप बन जाता है और इसीलिये भगवान के सकल्प के साथ ही उनके रूप की अभिव्यक्ति होती है।

भगवान की समीपता की भी अनुभूति हुआ करती है। प्रतीत होता है कि भगवान हमारे पास है, हमारे अन्दर है। यह नहीं समझना चाहिये कि मेरे अन्दर कोई विशेष चिह्न पैदा नहीं हुए तो मेरी अवस्था नीची है। एक साधक के अन्दर सारी बातें पैदा नहीं होतीं और न ही हर एक साधक के अन्दर एक ही बातें पैदा होती हैं।

उन्नति चिह्न

(i) अजपा जाप

अब अभ्यास में उन्नति के चिन्ह वर्णन किए

का स्फुरित होना—अथवा अजपा जाप—इस योग में नाम से शक्ति जगाई जाती है। कई बार यह होता है कि बिना किसी प्रयत्न या इच्छा के नाम स्वयं कभी मुख में, कभी हृदय में कभी किसी और अंग में स्फुरित हो जाता है। तब साधक को यह समझना चाहिये कि यह नाम मेरे व्यवहारिक मन में नहीं जपा जा रहा वरन् स्वयं अन्दर ही अन्दर गूंज रहा है। यह बड़ी ऊंची अवस्था है। इस अवस्था के आने पर साधक को प्राप्ति से गिरने का भय नहीं रहता। इसे सिद्ध अवस्था भी कह सकते हैं क्योंकि साधक का काम नाम से समता (मिलाप) पैदा करना ही है।

(ii) एकाग्रता—

अपने स्वरूप में स्थिति हो ज़ाने को कहते हैं। इसी का नाम समाधि है। इसमें चेतनता बनी रहती है। सुन्न हो जाना समाधि नहीं। यह तो निद्रा जैसी ही एक अवस्था है। कामकाज करते, चलते फिरते, खाते पीते भी यदि साधक में नाम स्फुरित हो आए और वृत्तियां एकाग्र हो जाएं तो हम उसी को समाधि कह सकते हैं। यह आवश्यक नहीं कि आसन लगाकर आंखें बंद करके ही बैठें तो समाधि होती है।

(iii) नाद

नाद भी एक चिह्न है। पहले यह जरा स्थूल होता है और फिर अपने आप ही सूक्ष्म होता चला जाता है। नाद आत्मगत भी होता है और प्रवृत्तिगत भी। नाद ताल सहित होता है। नाद की मधुरता को कौन कहे, परमाणु में भी नाद होता होगा। जगत् के कण कण में सूर्य की किरणों से जो हलचल पैदा होती है वह और भी अधिक मधुर और संगीतमयी होगी। इन नादों में बड़ी मोहिनी शक्ति होती है, जो मन को मस्त कर देती है।

नाद जो आत्मगत होते हैं, उनके अन्दर गूंज होती है। नाद सब समाधियों से परे की वस्तु होती है। यह इन कानों से सुनाई नहीं देता। इसे अजपा जाप कहते हैं अर्थात् जो जिह्वा से नही जपा जाता। यह आत्मगत नाद है। नाद होने में ऊपर से शव्द भी

उतरा करते हैं। इसलिये नाद बड़ी रहस्यमयी चीज़ है। इसमें अपने भी शब्द होते हैं और प्राकृतिक भी। और ऊपर से शब्द आया करते हैं। मस्त भंवर की या गुफा की गूंज सी आवाज पैदा होती है। बड़ी मधुर सुरीली आवाज होती है और शब्द सूक्ष्म से सूक्ष्म बनता चला जाता है। पातंजलि इन्हें प्रवृत्तियों का नाम देते हैं और कहते हैं कि इनसे शांति प्राप्त होती है। ऐसी प्रवृत्तियां पैदा होने से दृढ़ता बढ़ जाती है और मन की स्थिति बन्ध जाती है।

(iv) प्रकाश

ऐसे ही प्रकाश का आना भी एक चिह्न है। ऋषियों ने कहा है ब्रह्मलोक प्रकाशमय है। यह भी साधारण चीज़ नहीं है। बड़ा अच्छा चिह्न है। यदि यह स्थिति गुरु कृपा से सहज में ही प्राप्त हो जाये तो इसका बहुत आदर करना चाहिये।

ध्यान में बैठे हुए बंद आंखों के सामने प्रकाश का आना—यह एक विलक्षण बात है। इस का अर्थ यह है कि उस समय साधक इन्द्रियों, मन से परे की अवस्था में चला जाता है इससे उसकी कुण्डलिनी शक्ति जाग पड़ती है।

प्रकाश के अतिरिक्त और भी कई प्रकार के अनुभव साधकों को होते हैं। कईयों को ऐसा प्रतीत होता है कि उनका आसन जमीन से ऊपर उठ पड़ा है, कईयों को ऐसा कि वे आकाश में बैठे हैं, कईयों को ऐसा कि वे शरीर से बाहर हैं, कईयों को कम्प होता है, इत्यादि। यह सब अच्छे लक्षण हैं और साधन में उन्नति के सूचक हैं। इनमें घबराना, भय बिल्कुल नहीं करना चाहिये। कईयों के प्राण तेज चलने लग पड़ते हैं और कईयों को अपनी भावना के अनुसार अपने इष्टदेवों की मूर्तियां भी [illegible] देती हैं यह आवश्यक नहीं कि यह सब चिन्ह [illegible]

शरीर में शिथिलता आ जाना [illegible]

शरीर में बिजली सी [illegible]
होना—यह भी शक्ति जागने का [illegible]
सहस्त्रार की ओर जाती है। वहां [illegible]

का स्फुरित होना—अथवा अजपा जाप—इस योग में नाम से शक्ति जगाई जाती है। कई बार यह होता है कि बिना किसी प्रयत्न या इच्छा के नाम स्वयं कभी मुख में, कभी हृदय में कभी किसी और अंग में स्फुरित हो जाता है। तब साधक को यह समझना चाहिये कि यह नाम मेरे व्यवहारिक मन में नहीं जपा जा रहा वरन् स्वयं अन्दर ही अन्दर गूंज रहा है। यह बड़ी ऊंची अवस्था है। इस अवस्था के आने पर साधक को प्राप्ति से गिरने का भय नहीं रहता। इसे सिद्ध अवस्था भी कह सकते हैं क्योंकि साधक का काम नाम से समता (मिलाप) पैदा करना ही है।

(ii) एकाग्रता—

अपने स्वरूप में स्थिति हो ज़ाने को कहते हैं। इसी का नाम समाधि है। इसमें चेतनता बनी रहती है। सुन्न हो जाना समाधि नहीं। यह तो निद्रा जैसी ही एक अवस्था है। कामकाज करते, चलते फिरते, खाते पीते भी यदि साधक में नाम स्फुरित हो आए और वृत्तियां एकाग्र हो जाएं तो हम उसी को समाधि कह सकते हैं। यह आवश्यक नहीं कि आसन लगाकर आंखें बंद करके ही वैठें तो समाधि होती है।

(iii) नाद

नाद भी एक चिह्न है। पहले यह जरा स्थूल होता है और फिर अपने आप ही सूक्ष्म होता चला जाता है। नाद आत्मगत भी होता है और प्रवृत्तिगत भी। नाद ताल सहित होता है। नाद की मधुरता को कौन कहे, परमाणु में भी नाद होता होगा। जगत् के कण कण में सूर्य की किरणों से जो हलचल पैदा होती है वह और भी अधिक मधुर और संगीतमयी होगी। इन नादों में बड़ी मोहिनी शक्ति होती है, जो मन को मस्त कर देती है।

नाद जो आत्मगत होते हैं, उनके अन्दर गूंज होती है। नाद सब समाधियों से परे की वस्तु होती है। यह इन कानों से सुनाई नहीं देता। इसे अजपा जाप कहते हैं अर्थात् जो जिह्वा से नहीं जपा जाता। यह आत्मगत नाद है। नाद होने में ऊपर से शब्द भी

उतरा करते हैं। इसलिये नाद बड़ी रहस्यमयी चीज़ है। इसमें अपने भी शब्द होते हैं और प्राकृतिक भी। और ऊपर से शब्द आया करते हैं। मस्त भंवर की या गुफा की गूंज सी आवाज पैदा होती है। बड़ी मधुर सुरीली आवाज होती है और शव्द सूक्ष्म से सूक्ष्म बनता चला जाता है। पातंजलि इन्हें प्रवृत्तियों का नाम देते हैं और कहते हैं कि इनसे शांति प्राप्त होती है। ऐसी प्रवृत्तियां पैदा होने से दृढ़ता बढ़ जाती है और मन की स्थिति बन्ध जाती है।

(iv) प्रकाश

ऐसे ही प्रकाश का आना भी एक चिह्न है। ऋषियों ने कहा है ब्रह्मलोक प्रकाशमय है। यह भी साधारण चीज़ नहीं है। बड़ा अच्छा चिह्न है। यदि यह स्थिति गुरु कृपा से सहज में ही प्राप्त हो जाये तो इसका बहुत आदर करना चाहिये।

ध्यान में बैठे हुए बंद आंखों के सामने प्रकाश का आना—यह एक विलक्षण बात है। इस का अर्थ यह है कि उस समय साधक इन्द्रियों, मन से परे की अवस्था में चला जाता है इससे उसकी कुण्डलिनी शक्ति जाग पड़ती है।

प्रकाश के अतिरिक्त और भी कई प्रकार के अनुभव साधकों को होते हैं। कईयों को ऐसा प्रतीत होता है कि उनका आसन जमीन से ऊपर उठ पड़ा है, कईयों को ऐसा कि वे आकाश में बैठे हैं, कईयों को ऐसा कि वे शरीर से बाहर हैं, कईयों को कम्प होता है, इत्यादि। यह सब अच्छे लक्षण हैं और साधन में उन्नति के सूचक हैं। इनमें घबराना, भय बिल्कुल नहीं करना चाहिये। कईयों के प्राण तेज चलने लग पड़ते हैं और कईयों को अपनी भावना के अनुसार अपने इष्टदेवों की मूर्तियां भी दिखाई देती हैं। यह आवश्यक नहीं कि यह सब चिन्ह हर एक में प्रगट हों।

शरीर में शिथिलता आ जाना एक बहुत अच्छा चिह्न है।

शरीर में बिजली सी दौड़ जाना अथवा कम्पकम्पी होना—यह भी शक्ति जागने का चिन्ह है। इससे सहस्त्रार की ओर जाती है। वहां पर अभ्यास की

ब्रह्म से एक्य होता है।

ऊपर के चिन्हों में से किसी में एक, किसी में दो, किसी में ती
और किसी में सब चिन्ह प्रकट होते हैं। पर जिनके कम प्रकट हो
हैं वे अपने आपको तुच्छ नहीं मानें। यह आवश्यक नहीं कि स
में सब चिन्ह ही प्रकट हों। ऐसे भी हैं जिनमें कोई चिन्ह प्रगट नह
होता पर उनकी एकाग्रता हो जाती है।

यदि साधक शक्ति के जागने के प्रकारों (चिह्नों) को मुख
बात माने तो वह अधिक उन्नति कर जाता है। यदि गौण बा
माने तो उन्नति रुक जाती है।

आत्मा का नाद (नाम) जब कहीं अन्दर स्फुरित हो जावे औ
साधक, साक्षी रूप से उसे सुने तो आनन्द, रस, व सतालता व
मिठास का अनुभव होता है। आत्मा के कई सूक्ष्म स्तर हैं। व
उन सब पर पृथक पृथक बोल सकता है।

वाणी के चार भागों में से तीन भाग गुफा में रहते हैं। चौथे को
मनुष्य बोलता है। यह चौथा पद वैखरी वाणी कहलाता है। पहले
को परा, दूसरे को पश्यन्ती और तीसरे को मध्यमा कहते हैं। परा
और पश्यन्ती को ज्ञानी जानते हैं। सूक्ष्म शब्द परा शब्द है। यह
अन्दर भी स्फुरित होता है। यह आत्मा की वाणी होती है। जगे
हुए पुरुषों का आत्मा बोला करता है अर्थात् अपने आप अन्दर से
शब्द हुआ करता है—मन की शक्ति नहीं, आत्म शक्ति चलाया
करती है। आत्मा में उत्पादिनी शक्ति है। परा वाणी मन के
चिन्तन से परे है। परम पद से, आत्मा से भी परा वाणी ही हुआ
करती है। शब्द हमारे भीतर उत्पन्न हो रहा हो, हम उसे सुन रहे
हों, एक तार चलती अनुभव हो तो यह परा वाणी से हुआ करता
है। यह कई साधुओं का अनुभव है। मानो यह मन या वाणी का
व्यापार नहीं यह आत्मा जप कर रहा होता है। सूक्ष्म लोक में
आत्मा चला गया तो भगवत् से सम्बन्ध हुआ।
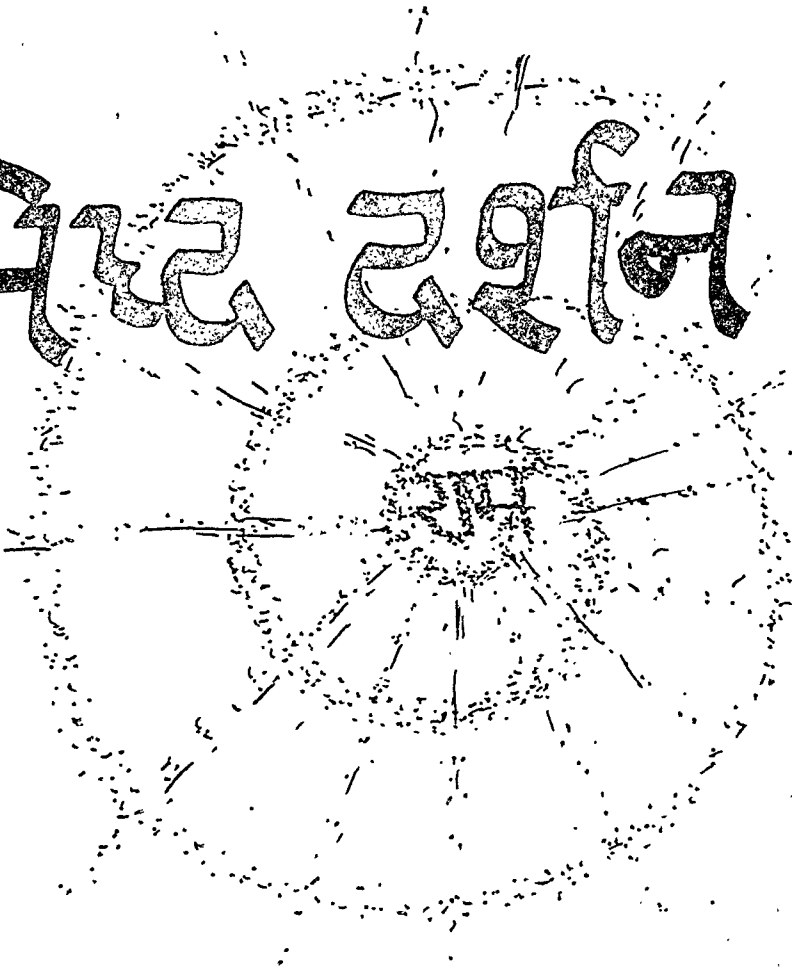
मेरे संस्मरण

बाल्यकाल

मेरा जन्म विक्रमी 1918 (तद्नुसार सन् 186
शुक्ला पूर्णमासी को एक मुह्याल ब्राह्मण के घर
जन्म का समय पांच बजे प्रातःकाल था। मेरा ज
रावलपिंडी जिले का एक छोटा सा ग्राम 'जग्गू का
परन्तु मेरा पालन पोषण जम्मू राज्य में, जेहलम नद
(नाना के पास)'अंकरा'नामक ग्राम में हुआ।मेरी स्मृ
मेरे माता पिता का शरीर शान्त हो गया था। इस
पालन पोषण नाना के घर ही होता रहा। मैं अपनी माँ
ही पुत्र था। मुझे अपने माता पिता की आकृति स्मरण
मुझे दादी से मिलने की एक बार की याद है। पंजाबी
है। नाना के यहां मुझे लक्ष्मण कह कर पुकारते थे। द
दूसरा नाम था गोबिन्द। माता पिता के प्यार का
नहीं। मेरे लिये तो मामा मामी ही सब कुछ थे। इत
बताया था कि मैं अपने माता पिता की बड़ी आयु में पैद

मेरी नानी ने कोई छः वर्ष तक मुझे पाला। फिर व
छोड़ गई। इस समय मेरी आयु कोई 10 वर्ष थी। अब
में कोई नहीं रहा। कुछ वर्ष इधर उधर भटकते हुए प
मेरा यह समय अत्यन्त कष्ट में तथा रुल खुल कर ब
संस्कारों और प्रारब्ध अनुसार मुझे साधु सन्यासियों
मिल गई। फिर भी प्रयास यही रहा कि विद्वानों से स्था
जाकर संस्कृत का अध्ययन करूं।

जैन यति

जब मैं 17 वर्ष का था तो मुझे जैन साधुओं की
हुई। उनके उपदेश से मैंने घर त्याग कर उनके
आरम्भ कर दिया। साधक की अवस्था में जैन मुनि
एक **वर्ष** तक रहा। जब मेरी आयु 19 वर्ष की थी मैं ज

गया। जैन यति की अवस्था में मैंने जैन-ग्रन्थों का खूब मनन किया। मैंने सोहन लाल जी जैन मुनि से प्रायः सभी जैन ग्रन्थ अध्ययन कर लिये थे। मेरी स्मरण शक्ति बहुत अच्छी थी, इसलिये जैन ग्रन्थों के समझने में मुझे कुछ भी कठिनाई नहीं होती थी। मुझे पढ़ा कर श्री सोहन लाल जी बहुत प्रसन्न हुआ करते थे। मैं उनका कृपा-पात्र समझा जाता था।

जव मैं 29 वर्ष का हुआ तो मुझे एक छोटा सा ग्रन्थ 'आध्यात्मिक चिकित्सा' नामक पढ़ने का अवसर मिला। उसमें अध्यात्मिक चिन्तन और योग के सम्बन्ध में कई एक साधन लिखे हुए थे। अभ्यासी के लिये जहाँ अन्य अनेक साधन उसमें लिखे हुये थे, वहाँ यह भी एक आवश्यक है कि परमेश्वर में विश्वास करे। उसे सर्वत्र विद्यमान, सर्वशक्तिमान, सच्चिदानन्द स्वरूप माने। मुझे इस साधन में बड़ी कठिनाई प्रतीत हुई। मैं यह तो चाहता था कि उस पुस्तक के अनुसार अभ्यास करूं, परन्तु मुझे ईश्वर पर विश्वास नहीं था। उसके अस्तित्व के विरुद्ध मैं युक्तियां बहुत दिया करता था पर अभ्यास की लगन ने अन्त में मुझे प्रभावित कर दिया। मैंने अपने आपको इस प्रकार सन्तुष्ट किया कि अभ्यास काल में ईश्वर विषय में मौन रहूँगा, उसके सम्बन्ध में मैं वाद-विवाद नहीं करूंगा। ऐसा नियम के साथ मैंने अभ्यास करना आरम्भ कर दिया। उन दिनों में मेरा चर्तुमास लुधियाना नगर में था।

अभ्यास रात के समय मैं किया करता था। अभ्यास के समय मुझे अनेक अलौकिक बातें प्रतीत होने लग गईं जिससे मेरा विश्वास बढ़ गया और मुझे आप ही आप ईश्वर में श्रद्धा हो गई। मुझे पूर्ण विश्वास हो गया कि परम पुरुष अवश्यमेव है। तब से मैंने दृढ़ संकल्प कर लिया कि अब मैं जैन मत को त्याग दूँगा। इस मत में ईश्वर विश्वास नहीं है, इस कारण मैं इसका प्रचार और समर्थन नहीं करूंगा। पहले मुझे ईश्वर के विरुद्ध चर्चा वार्ता करने का अधिक चाव हुआ करता था। जब भी कोई ईश्वर वादी मिल जाया करता, मैं उससे भिड़ जाया करता और तर्क से उसे

निरुत्तर करने का यत्न किया करता, परन्तु ईश्वर विश्वास की हृदय भूमि में जड़ जम जाने से मुझे अपना सारा तर्क जाल बड़ा बोदा दीखने लगा। अपनी सभी युक्तियां सार रहित जान पड़ीं, अपने अनीश्वरवाद के विचार मानस विकार प्रतीत होने लगे और अपने उस समय के मन्तव्य निर्मूल और मिथ्या दिखाई देने लगे। साथ ही साथ जैन धर्म के आत्मवाद, मुक्तिवाद, स्वर्ग-नरक-वाद तथा कर्मवाद में मेरा विश्वास उठ गया। मुझ को ऐसा प्रतीत होने लगा कि ईश्वर भावना के आते ही मेरा सारा मतवाद का कोट आप ही आप धराशायी हो गया है। मेरे मतवाद की माला के सारे मनके बिखर गये हैं। मेरी विचार धारा का प्रवाह सर्वथा बदल गया है और मेरी मानी हुई धर्म धारणा आमूल चूल हिल गई है। अभ्यास करने से मुझे ईश्वर कृपा का जो भी प्रसाद प्राप्त हुआ वह यद्यपि बहुत थोड़ा था परन्तु उसका उत्तम फल यह हुआ कि मैं पूरा आस्तिक बन गया और अधिक अभ्यास की मुझमें जिज्ञासा व लगन उत्पन्न हो गई। इस जिज्ञासा और लगन की भूख ने व्याकुल कर दिया। रात दिन मैं यही सोचने लगा कि इस सम्प्रदाय को छोड़कर जितना भी हो सके मैं हरिद्वार आदि धामों में जाकर सन्तजनों से भगवदाराधना के साधन सीखूं तथा साधन करके आत्म-तृप्ति प्राप्त करूं। अपने हृदय का यह भेद मैंने अपने मित्र साधुओं पर प्रकट कर दिया।

स्नेह सम्बन्ध तथा मैत्रीभाव जैन मुनियों ने उस समय जो प्रदर्शन किया वह मेरे लिये सदा स्मरण रखने की बात है। प्रेम वश मुझे उन्होंने यह भी कहा कि यहाँ तू गुरु माना जाता है, सेठ साहूकार आकर तेरे पैरों पर सिर रखते हैं। इतनी पूजा और प्रतिष्ठा तुम्हें प्राप्त है जो सहज से प्राप्त नहीं हो सकती। इस कारण तुम्हें जैन सम्प्रदाय का त्याग नहीं करना चाहिये। ऐसा करना बुद्धिमता का भी काम नहीं है, और धर्म तो अपनी मन की भावना से सम्बन्ध रखता है। मन में तू जैसा चाहे वैसा मानते रहो परन्तु व्यवहार में जैन यति ही बने रहो। एक डेरे वाले यति ने मुझे यह भी कहला भेजा कि यदि त्याग वृत्ति आप छोड़ते हैं तो हमारे

या। जैन यति की अवस्था में मैंने जैन-ग्रन्थों का खूब मनन
क्या। मैंने सोहन लाल जी जैन मुनि से प्रायः सभी जैन ग्रन्थ
ध्ययन कर लिये थे। मेरी स्मरण शक्ति बहुत अच्छी थी,
सलिये जैन ग्रन्थों के समझने में मुझे कुछ भी कठिनाई नहीं होती
।। मुझे पढ़ा कर श्री सोहन लाल जी बहुत प्रसन्न हुआ करते
। मैं उनका कृपा-पात्र समझा जाता था।

जब मैं 29 वर्ष का हुआ तो मुझे एक छोटा सा ग्रन्थ
आध्यात्मिक चिकित्सा' नामक पढ़ने का अवसर मिला। उसमें
ध्यात्मिक चिन्तन और योग के सम्बन्ध में कई एक साधन
खे हुए थे। अभ्यासी के लिये जहाँ अन्य अनेक साधन उसमें
खे हुये थे, वहाँ यह भी एक आवश्यक है कि परमेश्वर में
श्वास करे। उसे सर्वत्र विद्यमान, सर्वशक्तिमान,
च्चिदानन्द स्वरूप माने। मुझे इस साधन में बड़ी कठिनाई
तीत हुई। मैं यह तो चाहता था कि उस पुस्तक के अनुसार
भ्यास करूं, परन्तु मुझे ईश्वर पर विश्वास नहीं था। उसके
स्तित्व के **विरुद्ध** मैं युक्तियां बहुत दिया करता था पर अभ्यास
ी लगन ने अन्त में मुझे प्रभावित कर दिया। मैंने अपने आपको
स प्रकार सन्तुष्ट किया कि अभ्यास काल में ईश्वर विषय में
ौन रहूँगा, उसके सम्बन्ध में मैं वाद-विवाद नहीं करूंगा। ऐसा
यम के साथ मैंने अभ्यास करना आरम्भ कर दिया। उन दिनों
मेरा चर्तुमास लुधियाना नगर में था।

अभ्यास रात के समय मैं किया करता था। अभ्यास के समय
झे अनेक अलौकिक बातें प्रतीत होने लग गईं जिससे मेरा
श्वास बढ़ गया और मुझे आप ही आप ईश्वर में श्रद्धा हो गई।
झे पूर्ण विश्वास हो गया कि परम **पुरुष** अवश्यमेव है। तब से
ने दृढ़ संकल्प कर लिया कि अब मैं जैन मत को त्याग दूँगा। इस
त में ईश्वर विश्वास नहीं है, इस कारण मैं इसका प्रचार और
मर्थन नहीं करूंगा। पहले मुझे ईश्वर के विरुद्ध चर्चा वार्ता
रने का अधिक चाव हुआ करता था। जब भी कोई ईश्वर वादी
ल जाया करता, मैं उससे भिड़ जाया करता और तर्क से उसे

निरुत्तर करने का यत्न किया करता, परन्तु ईश्वर विश्वास की हृदय भूमि में जड़ जम जाने से मुझे अपना सारा तर्क जाल बड़ा बोदा दीखने लगा। अपनी सभी युक्तियां सार रहित जान पड़ीं, अपने अनीश्वरवाद के विचार मानस विकार प्रतीत होने लगे और अपने उस समय के मन्तव्य निर्मूल और मिथ्या दिखाई देने लगे। साथ ही साथ जैन धर्म के आत्मवाद, मुक्तिवाद, स्वर्ग-नरक-वाद तथा कर्मवाद में मेरा विश्वास उठ गया। मुझ को ऐसा प्रतीत होने लगा कि ईश्वर भावना के आते ही मेरा सारा मतवाद का कोट आप ही आप धराशायी हो गया है। मेरे मतवाद की माला के सारे मनके बिखर गये हैं। मेरी विचार धारा का प्रवाह सर्वथा बदल गया है और मेरी मानी हुई धर्म धारणा आमूल चूल हिल गई है। अभ्यास करने से मुझे ईश्वर कृपा का जो भी प्रसाद प्राप्त हुआ वह यद्यपि बहुत थोड़ा था परन्तु उसका उत्तम फल यह हुआ कि मैं पूरा आस्तिक बन गया और अधिक अभ्यास की मुझमें जिज्ञासा व लगन उत्पन्न हो गई। इस जिज्ञासा और लगन की भूख ने व्याकुल कर दिया। रात दिन मैं यही सोचने लगा कि इस सम्प्रदाय को छोड़कर जितना भी हो सके मैं हरिद्वार आदि धामों में जाकर सन्तजनों से भगवदाराधना के साधन सीखूं तथा साधन करके आत्म-तृप्ति प्राप्त करूं। अपने हृदय का यह भेद मैंने अपने मित्र साधुओं पर प्रकट कर दिया।

स्नेह सम्बन्ध तथा मैत्रीभाव जैन मुनियों ने उस समय जो प्रदर्शन किया वह मेरे लिये सदा स्मरण रखने की बात है। प्रेम वश मुझे उन्होंने यह भी कहा कि यहाँ तू गुरु माना जाता है, सेठ साहूकार आकर तेरे पैरों पर सिर रखते हैं। इतनी पूजा और प्रतिष्ठा तुम्हें प्राप्त है जो सहज से प्राप्त नहीं हो सकती। इस कारण तुम्हें जैन सम्प्रदाय का त्याग नहीं करना चाहिये। ऐसा करना बुद्धिमता का भी काम नहीं है, और धर्म तो अपनी मन की भावना से सम्बन्ध रखता है। मन में तू जैसा चाहे वैसा मानते रहो परन्तु व्यवहार में जैन यति ही बने रहो। एक डेरे वाले यति ने मुझे यह भी कहला भेजा कि यदि त्याग वृत्ति आप छोड़ते हैं तो हमारे

स्थान में आ जाइये। इस स्थान की ब
उत्तराधिकारी मैं आप को बना देता हूं।
उनका कथन भी अस्वीकार कर दिया।

मेरे ईश्वर सम्बन्ध में विचार वैदिक वि
कारण मैंने यही निश्चय किया कि मैं जैन
समाज में प्रवेश करूं। जिससे अपने पुरात
फिर किसी एकान्त स्थान में आराधना सा
करूं। मैंने भली-भान्ति सोच विचार क
तिथि निश्चित कर ली।

सम्वत् 1948 (सन् 1891), दिसम्बर
नगर में जब मेरी आयु के 30 वर्ष समाप्त ह
को छोड़कर, जैन यतियों से बड़े प्रेम और व
हो गया। उन मुनियों के उपकार मैं आज भ
साथ स्मरण करता हूं।

आर्य समाज में प्रवेश तथा सन्यास

ज्योंहि मैं जैनधर्म स्थान को छोड़क
मालीरकोटला के सनातन धर्मियों और
मिलकर बड़े समारोह से मेरा स्वा
समाज का वार्षिकोत्सव मनाया
मण्डप में मैंने आर्य समाज
सन्सास ले लिया। तदनन्तर मैं
आने का विचार मैंने इसलिये
साहित्य में स्नान करके
आराधना करूंगा। सम
रामजी से आया। वे मुझे
करते। व्यायाम भी
प्रवचन भी करने लग
बोलता था। कालान्तर
वेदान्त सूत्र भी शांकर

एक निकटवर्ती सेवक के अनुसार श्री महाराज जी जब महाभारत, रामायण तथा वैदिक प्रसंगों पर कथा करते थे तो सहस्त्रों लोग बिना ध्वनि वर्द्धक (loud speaker) के उनकी ऊंची तथा मीठी वाणी सुनते थे। शास्त्रार्थ में वे बड़े बड़े विद्वानों को परास्त कर देते थे। ऐसे वैदिक प्रचार दीर्घ काल तक (25 वर्ष) भ्रमण करके करते रहे। इस बीच एक सुन्दर पुस्तिका, 'ओंकार उपासना' नाम से भी लिखी। और भी ग्रन्थ लिखे विशेषत: 'श्री दयानन्द प्रकाश' बड़ी खोज तथा पर्यटन के उपरान्त बड़ी सुन्दर एवं ललित भाषा में लिखी जो माननीय है।

ऐसा प्रतीत होता है कि इसी बीच आध्यात्मिक पिपासा ने उन्हें अतिशय विह्वल कर दिया जिसके फलस्वरूप उन्होंने गंगा किनारे अनेक संतों और महात्माओं से सम्पर्क किया परन्तु कहीं भी उन्हें यथेष्ट साधना प्राप्त नहीं हुई। अन्ततः सन् 1925 में उन्होंने निश्चय किया कि वे स्वयमेव किसी एक निर्जन स्थान पर एकान्त वास करें। तदनुसार उन्होंने हिमालय के डलहौज़ी नामक स्थान पर, जो निर्विघ्न था, एकान्त जीवन बिताते हुए कुछ काल तक अनवरत साधना की। उनका श्री मुख वाक्य है), "मैंने संकल्प किया कि जब तक मुझे परम प्राप्ति नहीं हो जाती, तब तक मैं इस स्थान पर एकाग्रचित्त बैठा रहूंगा।"

साक्षात्कार

मुझे उस स्थान पर साधना करते हुए एक मास बीत गया तो, व्यास-पूर्णिमा के दिन, जब मैं आँखे बंद किए प्रार्थना करने में निमग्न था तो मुझे 'राम' शब्द बहुत ही सुन्दर और आकर्षक स्वरों में सुनाई दिया। मैंने समझा कि कोई प्राणी इधर उधर राम नाम का उच्चारण कर रहा है। आँखें खोलीं और चारों ओर देखा तो कोई भी दृष्टिगोचर नहीं हुआ। फिर आँखें बन्द कीं तो उसी मधुर स्वर में 'राम', 'राम' शब्द सुनाई दिया।

आदेशात्मक शब्द आया 'राम भज, **राम**

मैंने प्रथम उसे विघ्न समझा किन्तु

नहीं जिस प्रकार इस लोक में भी होता है। किसी विशेष महापुरुष के पधारने पर जैसे लौकिक साधारण पुरुष सभा मंच से उठ जाते हैं, इसी प्रकार मेरा हाल था। सारे शरीर में कम्पन हुआ।

मेरे प्रार्थना करने पर वह शब्द पुनः आया और फिर दर्शन की मांग करने पर प्रश्न हुआ किस रूप का दर्शन चाहते हो? तो मैंने कहा जो तेरा रूप हो,मैं क्या बताऊँ। तब यह 'रा' और 'म' अक्षर मयी "**राम**" रूप, तेजोमयी, दर्शन हुआ।

उस समय ये विचार आये कि भगवान ही युग युग में गुरु रूप धारण करते हैं और आस्तिक वाद को बनाये रखते हैं। इसलिये परम गुरु राम ही हैं। क्योंकि वे देशकाल से भी परे हैं। मानवी गुरु अथवा अवतार तो देश काल में ही रहते हैं। वह सर्वत्र **व्याप्त** है। मुझमें नाम की प्राप्ति जिस धाम से हुई है उसके लिये मेरे अन्दर बड़ी कृतज्ञता है। मैं चाहता हूं कि मेरे जीवन में जितना हो सके उसका विस्तार कर सकूं।

पहले मैं राम नहीं जपता था। हां, बचपन में कभी जपता था। अब राम कृपा अवतरण के पश्चात् मेरे में इतनी शक्ति आ गई थी कि चलते समय ऐसा प्रतीत होता था कि पांव के नीचे धरती कांप रही है।(एक सेवक के अनुसार जब राम नाम की साधना करते करते श्री महाराज जी का अन्तरात्मा श्री राम नाम के साथ एकीभूत हो गया तो परिपक्व आस्तिक भावना, पूर्ण योग, सिद्धियों तथा सन्यस्थ जीवन से इस साधना में तीव्र शीघ्रता के साथ आध्यात्मिक उपलब्धियां होने लगीं। एक गोपनीय पुस्तक, "अंकित संस्मरण" से प्रतीत हुआ कि श्री महाराज जी को उसी वर्ष "राम कृपा अवतरण" का आभास हुआ। सर्व सिद्ध होने पर श्री महाराज जी ने सन् 1928 से राम नाम दान बड़े सेवा भाव से आरम्भ किया।)

भक्ति-प्रकाश

किसी साधक में भावना कैसे उत्पन्न हो इसके लिये ही मैंने भक्ति प्रकाश लिखा है। भक्ति प्रकाश लिखने के समय मैंने

सत्संग करना और कथा करनी छोड़ दी थी। मैं भक्ति प्रकाश सोच समझ कर या कथा कहानी घड़ कर लिखने नहीं बैठा था। मैं लिखता जाता था। जब लेखनी रुक जाती थी, रुक जाता था। जो चलने लगती थी, चलती ही रहती थी। जब सोचने की शक्ति (conscious mind) पर दूसरी शक्ति (sub-conscious mind) का प्रभाव छा जाये तो अपनी सोच और मन की सोच बन्द हो जाती है। और दैवी सोच काम करने लग जाती है। यह तो मैंने शक्ति प्रभाव (sub-conscious mind) में लिखा है। मैं उसे बनाने नहीं बैठा था। यह तो ईश्वर की शक्ति से बन गया। मैंने यह कदापि नहीं सोचा था कि किस कथा के बाद कौन सी कथा होनी चाहिये। कहां से प्रारम्भ करनी चाहिये और कहां बन्द करनी चाहिये। यह तो आप ही लेखनी चलने लग जाती थी और आप ही रुक जाती थी। मुझे राम नाम मिला। मुझे अपने अन्दर और बाहर प्रतीत होने लगा। तब यह भक्ति प्रकाश लिखा गया।

आर्य समाज से किनारा

(भक्ति-प्रकाश में परमेश्वर का 'राम' नाम द्वारा वर्णन तथा गुणगान है। इस पर आर्य समाज के प्रबन्धकों ने विरोध किया और श्रीमहाराज जी को कहा कि 'भक्ति प्रकाश' में 'राम' शब्द के स्थान पर 'ओम्' लिख कर दुबारा छपवाएं। श्रीमहाराज जी ने उत्तर में कहा) "मैं राम को नहीं छोड़ सकता तथा आर्य समाज से किनारा करता हूं।"

(श्रीमहाराज जी ने आर्य समाज से किनारा करके कोई नया मत नहीं चलाया। 'राम' मन्त्र की प्राप्ति से उन्हें अभूतपूर्व शान्ति की अनुभूति हुई। उन्होंने निश्चय किया कि प्रभुकृपा से प्राप्त इस 'राम' महामन्त्र के प्रसाद को त्रितापों से तप्त मानवों में वितरित करें। सम्प्रदाय, जातिभेद तथा मतमतान्तर की संकुचित सीमाओं को अस्वीकारकर मानव मात्र के प्रति करुणामय होकर इस बीज मन्त्र का प्रसाद बांटते रहे। अपनी अपनी स्थिति अनुसार सब ने लाभ लिया।)

मैं बहुत घूमा इधर—एक एक आदमी के लिए कई कई कोस। (मैं घूमा दीक्षा देने के लिए)—उस समय यह २० मिनट ध्यान में बैठने का कोई नियम नहीं था। एक सज्जन ने पूछा, ओम् नाम को सब बड़ा बताते हैं पर आपके राम नाम से हमें तो बड़ा लाभ है। (महाराज जी ने उत्तर दिया) यह (ओम् नाम) आर्य समाजियों ने चलाया—बनाने से बना। अरब में जाओ तो वहां तो लोग अल्लाह ही नाम पुकारें। क्रिश्चियन—उनमें ऐसा नहीं कि ऊंची कोटि के आदमी न हों, पर वे तो गॉड का नाम ही लेकर पूजन करें। मुझे इससे कोई संबंध नहीं। नाम से क्या अभिप्राय। तो नाम जिस पदार्थ की ओर संकेत करता है उससे है।

श्री रामायणसार में परिशिष्ट

परिशिष्ट का अर्थ है पूरक अंश (supplement)। 'राम नाम' भक्ति, रामकृपा, आदि पर मैं बहुत बोलता रहा हूँ। मैंने चाहा कि किसी और की साक्षी भी होनी चाहिए। मैंने तुलसीकृत-रामायण से कुछ, पहले पैन्सिल में लिखना आरम्भ किया। प्रेमजी बाद में लिखा करें। एक महीने की छुट्टी ली। कोई 15 दिन में कापी निकाली। 20-9-1957 से 8-10-1957 तक यह परिशिष्ट पूरा हुआ।

यह रचना देहरादून में—परिशिष्ट रूप से—मैं पैन्सिल से लिखा करूं। प्रेम, जो बाद में लिखा करें—एक माह की इसने छूट्टी ली। एक सेवक ने पूछा "दूसरों के लिए विचार आना और उनके सुस्वास्थ्य के लिये प्रार्थना करना—क्या इसमें कोई हर्ज तो नहीं।" (महाराज जी ने उत्तर दिया कि) दूसरों के हित के लिये प्रार्थना यह बहुत अच्छा है। मैं भी राम नाम के जपने वालों के लिए करता हूं। पूर्णमासी को जिन्होंने नाम जपा, उनका मन बड़ा अच्छा टिके। संकल्प में प्रार्थना से एकदम प्रभाव तब जब आदमी का अपना अच्छा—झूठ न बोलना। ईर्ष्या बड़ी पर संकल्प में बल कैसे आता यह भी मैं ने बताया।

एक ने दक्षिण की ओर से, मुझे चैक भेजा, अमरीकन उसकी बीबी, पर अब वह काफी दिनों से मित्र जैसे (रहते हैं)। अस्तु, चैक तो मैंने वापिस कर दिया—फिर देहरादून बुलाया।

साधना सत्संग

दीक्षित साधकों की उन्नति का ध्यान करके श्री महाराज जी ने साधना सत्संग लगाने आरम्भ किये। कोई चार पांच दिन के लिये साधक सारे सांसारिक सम्बन्धों से परे हटकर साधना करें जिससे उनकी उन्नति के मार्ग की बाधायें दूर हों, और वे अपना जीवन साधनामय बना लें तथा जीवन में साधना की छाप लगाकर, साधारण जन समाज से ऊँचा उठकर, सब को उन्नत करने का सामर्थ्य उनमें जागृत हो। श्री महाराज जी कहते हैं, कि "बहुत लम्बी आयु होने से मेरे अच्छे अच्छे साथी चले गये, जिस से जीवन में कुछ उदासीनता आ गई। पाकिस्तान बनने पर जो कुकृत्य हुए उन्हें देखकर उदासीनता बढ़ गई किन्तु अब कुछ अच्छे साधक और जिज्ञासु मिलने से जीवन अच्छा लगने लगा है। मेरा समय साधना सत्संगों में बहुत अच्छा कटता है।"

प्रेम जी — उनको बड़ा सिधाया। उसने शादी कराई नहीं। मेरे कहने पर थोड़ा वेतन होते हुए भी सौ रुपये घर वालों को दिया करता। उसकी उस समय अस्थायी नौकरी (Temporary post)। मेरे कहने पर होमियोपैथी सीखी (by correspondence)। बाकी मेरे कहने से ही पैसे भी जमा करता था। अब छः सात हज़ार जमा कर लिए। दिल्ली में साईकल पर बहुत फिरता। उसके पास बाकी बहुत थोड़ा बचता था। पैन्चर भी लगवाने पड़ते थे। साईकल भी बहुत पुरानी। मरम्मत भी, मैं समझता हूँ, करवानी पड़ती होगी। देहरादून में जब रहा तब वहाँ पचास रुपये मासिक देता।

सेवाभाव से नामदान

इधर हाँसी के इलाके में मैं बहुत घूमा हूँ। क्योंकि एक एक

व्यक्ति को दीक्षा देने के लिए मैं कई कई कोस जाता था। जहाँ मैं ठहरता था वहाँ रात को बोला भी करता। लम्बा समय भी लग जाता था। अब तो मैंने प्रवचन के लिए अपने पर, आप से ही, 20 मिनट की रोक लगा रखी है। उस समय कोई रोक न थी।

मैंने विवेक, विचार आप लोगों को अच्छा मार्ग दिखाया है। मेरा तो एक ही पंथ है—राम नाम—और कुछ नहीं जानता हूं। इस नाम में मेरी बड़ी धारणा है। इस कारण आसुरी माया से सर्वथा वंचित रहा हूँ। राम नाम में मस्ताना हो कर राम सर्वशक्तिमान परमेश्वर को भजता रहा हूँ। कभी लचक नहीं आने दी। लचक मृत्यु समान है। मेरे मित्रों ने मुझे कहा कि राम नाम को न दे। हम सभाओं में विरोध तेरे आसन का नहीं करेंगे। मैंने उत्तर दिया यह असम्भव है। राम नाम मेरी कमाई का नहीं है। मेरी झोली में किसी ने डाल दिया। मैं "ना" नहीं करूंगा। मुझे राम नाम में दृढ़ता है। इस नाते से आपका आदर करता हूँ। मेरे में किसी के साथ विपरीत भावना नहीं रही। यह सब कुछ आप लोगों की लीला है।

शुभ मंगल के लिये

कुछ व्यक्ति ऐसे हैं जिन पर इस देश का भविष्य निर्भर है। उनके बारे में समाचार पढ़ कर उनके स्वास्थ्य और मंगल के लिये, उनकी देश-विदेश यात्रा में सुरक्षा के लिये उनके शुभ कार्यों में सफलता के लिये मैं भगवान से प्रार्थना करता हूँ और कामना करता हूँ कि देश हित भगवान उन्हें सुमति दे। फिर देश में या देश से बाहर जब कोई दुर्घटना होती है तो जो उस दुर्घटना ग्रस्त हो जाते हैं, उनके कल्याणार्थ भी मैं प्रार्थना करता हूं।

अस्वस्थता

कुछ दिनो से घुटने में दर्द रहा करती। हरिद्वार साधना सत्संग में नीचे से ऊपर चढ़ने में आध-आध घण्टा लग जाता। घुटने में चीस थी। खाना भी न खाया जावे। अलग से उबली सब्जियाँ बनाकर ऊपर ही कमरे में साधक ले आते। सब के साथ नीचे नहीं

जाया करता। शौच आदि में भी कष्ट। डाक्टर ने सारी अवस
की जाँच की। हृदय जाँच भी हुई। डाक्टर को एक साधक पैसे दे
लगा तो वह बोला, मेरे पिताजी स्वामी जी के पास बैठा करते हैं
मैं पैसे नहीं लूंगा। उसकी पहली ही औषधि का सफल प्रभ
हुआ। अब एक निरोधक (preventive) औषधि भी दे रहे हैं

अन्तिम दर्शन

महा प्रयाण से एक सप्ताह पूर्व श्री महाराज जी ने अपनी चेत
को अन्तर्मुखी कर लिया था। उनको इस स्थिति में देख क
डाक्टर ने उन्हें सम्बोधित कर के पूछा, "महाराज जी, आप
क्या हो गया है?" श्री महाराज जी ने आँखें खोली और डाक्टर
ओर देखकर खिलखिला कर हँस पड़े और यह हँसी बहुत देर त
उनके मुखारविन्द से नहीं हटी। फिर डाक्टर का यह विचार हु
कि कहीं श्री महाराज जी को पक्षधात (paralysis) तो नहीं
गया। डाक्टर ने आग्रह किया, "महाराज जी, थोड़ा दायां ह
ऊपर उठाइये"। श्री महाराज जी ने तुरन्त दायां हाथ उठा
डाक्टर के हाथ से मिलाया। फिर वैसे ही डाक्टर के कहने
बांया हाथ भी ऊपर उठा दिया। यह देख कर सब चकित हो ग
और डाक्टर भी मूक हो गया। फिर उन्होंने उन्मुक्त हँसी की छ
बखेरी और पूर्ववत् अन्तर्मुख हो गए।

श्री प्रेम जी महाराज कहने लगे कि श्री महाराज जी प्रायः ब
करवट से लेटते रहे हैं। संभवतः ऐसा करने से उन्हें आर
मिलेगा। जैसे ही श्री महाराज जी को बाईं करवट लिटाया
उन्होंने अपना दांया हाथ श्री प्रेम जी महाराज के कंधे पर र
और अपने अति निकटतम करने की चेष्टा की।

13 नवम्बर 1960, रात के आठ बजे श्री महाराज जी बड़े
से नाम जप करने लगे। जो कुछ धीमीं स्वर में सुनाई भी देता थ
ठीक दस बजे रात्रि श्री महाराज जी ने आँखें खोलीं और हाथ
संकेत से सब को आर्शीवाद देकर यह भौतिक चोला छोड़ दिय

श्री महाराज जी अपना कोई स्मारक नहीं चाहते थे। वे चा

थे राम स साधकों का सीधा सम्बन्ध। अतः महाराज जी के दिव्य शरीर को हरिद्वार ले जाया गया। श्री राम शरणम् हरिद्वार में सन्यास परम्परा के अन्तर्गत स्नान आदि तथा लेपन आदि कराके और नवीन वस्त्र पहना कर एक बड़े ही सुन्दर अलंकृत हिंडोले में शंख, घंटे, घड़ियाल तथा बाजों के साथ ज़लूस निकाला गया। जिसमें हजारों साधक हिंडोले को उठा कर नील धारा ले गए और वहां श्री महाराज जी के पार्थिव शरीर को जल प्रवाह किया गया।

अभिव्यक्तियां

(i)-सद्व्यवहार

१. एक बार एक व्यक्ति ने श्री महाराज जी से पूछा कि दूसरे के मन की बात जान लेने की शक्ति आपने कैसे प्राप्त की? श्री महाराज जी मुस्कराये और बोले "प्यारे! यह तो प्रसाद है जो प्रभु ने मेरी झोली में डाल दिया है।" उस व्यक्ति ने फिर पूछा कि एक साधक कैसे इस प्रसाद का अधिकारी बन सकता है? श्री महाराज जी ने कहा, "युग युग से सन्तों महात्माओं का यही अनुभव है कि नाम जाप और ब्रह्म कृपा में कोई विशेष सम्बन्ध है। कितना नाम जाप इसके लिये किया जाये, यह हिसाब प्रभु आप जाने। पर दीर्घकाल तक निरंतर और प्रेमपूर्वक विश्वास और विधि से नाम जाप करते रहने से, एक दिन, प्रभु प्रसाद मिलता अवश्य है। इसके चिह्न साधक को स्वयं भी प्रतीत होते हैं और दूसरों को भी दिखने में आते हैं। नाम जाप छोड़ देने से कृपा अवतरण रुक भी जाता है।"

२. एक देवी ने श्री महाराज जी से निवेदन किया, "महाराज! मैं तो प्रातः काल उठ कर तीन चाटी दही बिलोकर माखन निकालती हूँ। फिर सारे घर का काम इतना होता है कि रात सोते समय तक थक जाती हूँ। आप ही बताइये कि कब भजन करूं और कब पूजा पाठ जिससे भगवान की प्राप्ति हो?" श्री महाराज जी ने कहा, "जब तुम चाटी बिलोती हो तो जब तुम्हारा दायां हाथ आगे को जाये तो कहो 'राम' और फिर जब बायां हाथ आगे जाये तो भी कहो 'राम'। ऐसे चाटी भी बिलोती जाना और राम राम का जाप भी चलता रहे, तुम्हारा कल्याण हो जायेगा। छः महीने के पश्चात् जब वह देवी श्री महाराज जी से फिर मिली तो प्रसन्नता पूर्वक बोली "महाराज जी! आपकी बताई हुई विधि से मेरे अन्दर राम नाम ऐसे बस गया है कि सारा दिन अपने आप गूँजता रहता है। अब जरा भी थकान नहीं होती।

३. हरिद्वार साधना सत्संग के अन्तिम दिन साधकों को कुछ अच्छी मात्रा में हलवे का प्रसाद दिया जाये ऐसी बात अधिकारी लोग सोच रहे थे। महाराज जी को जब यह सूचना मिली तत्काल उन्होंने सर्वाधिकारी को बुलाया और रोष प्रकट करते हुए कहा, ''क्या तुम लोगों को इतना भी ज्ञान नहीं कि सत्संग में सामान्य स्तर के कितने साधक आते हैं? उन्हें यह खर्च अखरेगा। आगे से इस बारे में पूरा ध्यान रखा जावे कि सत्संग में आने वालों का कम से कम खर्च हो।'' बहुत विनय करने पर, कम घी का तथा थोड़ी मात्रा में हलवे का प्रसाद देने की आज्ञा मिली।

४. एक साधक जो पहली बार साधना शिविर में सम्मिलित हुआ, उसकी अखण्ड जाप में बारी सायं 3 बजे से 5 बजे तक निश्चित हुई। महाराज जी के प्रवचन का समय था 3 से 4 बजे तक। उसने दूसरे साधकों को कहा कि उस की बारी का समय बदल दिया जाए ताकि वह प्रवचन सुन सके। यह बात जब महाराज जी तक पहुँची तो उन्होंने कहा, ''मेरे भाषणों, प्रवचनों और उपदेशों का सार आप में प्रभु भक्ति उत्पन्न करना है। आप की अखण्ड जाप के समय में परिवर्तन की कामना अनुचित है। परमात्मा से क्षमा माँगो और भविष्य में ऐसा न करने का पक्का और सच्चा निश्चय करो।''

'सत्य और अहिंसा' का दूसरा रूप

५. सन् 1951 की बात है। एक बालक को उसकी नानी ने कहा कि आज श्री महाराज जी का प्रवचन है। उनका कथन है कि 'सत्य और अहिंसा' के सहारे मानव उन्नति के पथ पर सब बाधाएं पार कर बढ़ सकता है। उसे बड़ी उत्सुकता हुई यह 'सत्य और अहिंसा' जानने की। वो भी अपनी नानी के साथ महाराज जी से यह पूछने चला आया। वहाँ पहुँच कर जब उसने स्वामी जी के दर्शन किए तो उनके स्वरूप को देखकर अपने आप को भूल सा गया। प्रवचन समाप्त होने पर नानी के साथ घर लौट आया। तब कुछ चेतना हुई और उसे अपना प्रश्न याद आया। साथ ही उत्तर

भी मिल गया। उसे अनुभव हुआ कि 'सत्य और अहिंसा' का दूसरा रूप स्वामी जी हैं।

६. एक बार एक परम सेवक श्री महाराज जी के साथ उनके सेवार्थ रेल गाड़ी में चला। गाड़ी चलने से थोड़ा पहले उसने एक लोटे में पीने का पानी भरकर उनकी सीट के साथ लगी एक छोटी, मेज (जो प्रथम श्रेणी के डब्बों में होती है) पर रख दिया और लोटे को एक कटोरी से ढक दिया। श्री महाराज जी ने उस सेवक को संकेत किया कि ऊपर की सीट पर रखी उनकी पेटी उतार देवे। सेवक ने उसे उतार दिया और श्री महाराज ने स्वयं उसमें से एक समाचार पत्र का कागज निकाला और बड़े प्रेम से उसकी पाँच छः तहें कर के लोटे के नीचे रखने को उस सेवक से कहा। उसने वैसा ही किया। फिर श्री महाराज जी ने उसे समझाया कि लोटे के गीले होने के कारण मेजपर पानी का निशान पड़ जाता है, जो ठीक नहीं है। स्पष्ट है कि श्री महाराज जी कितने महान थे। कितना प्रिय और सुन्दर उनका ढंग था साधकों को समझाने और सिखाने का तथा छोटी-छोटी बातों का वे कितना ध्यान रखते थे।

७. एक बार एक साधक ने श्री महाराज जी से पूछा "मृत्यु से भय लगता है। इस भय से कैसे बच सकते हैं?" श्री महाराज जी ने उत्तर दिया जब मनुष्य का जीवन भारभूत हो जाता है, जब उसके दुःख को कोई औषध दूर नहीं कर सकती, तब मृत्यु मित्र बन कर आती है और उसे दुःख से मुक्त कर देती है। इसीलिये जन्म और मृत्यु को हमारे हाथ में न रख कर भगवान ने अपने हाथ में रखा हुआ है।

८. एक दिन श्री महाराज जी से एक साधक ने पूछा कि आप कैसे सदा तुले हुए शब्द बोलते हैं। एक भी आप का वाक्य ऐसा नहीं होता जो ठीक न हो। श्री महाराज जी ने उत्तर दिया, मैं चाहे थोड़े व्यक्तियों में बात करूं चाहे बड़ी सभा में व्याख्यान दूं बात वही कहता हूं। आवाज़ धीमी या ऊंची करनी पड़ती है। वास्तव में पहले हर शब्द को तोलो फिर पपोलो और फिर बोलो। उस

व्यक्ति ने बाद में बताया कि पिछले 25 वर्ष के सम्पर्क में उसने श्री मुख से कोई असभ्य वचन नहीं सुना।

९. एक वृद्धा महाराज के पास आई और आदर से प्रणाम करके बोली कि उसे नाम लिये पाँच वर्ष हो गए। नाम जाप वह प्रतिदिन करती है पर उसे शान्ति नहीं मिली। श्री महाराज जी ने कहा, "भाई! यदि राम नाम से कुछ प्राप्त नहीं हुआ तो सत्यानन्द क्या करेगा। अपने जीवन में राम नाम में विश्वास बढ़ाओ और बड़े भाव चाव से उस राम नाम को जो सबके अन्दर और तुम्हारे अन्दर गूँज रहा है, सुनो और गाओ। अवश्य कल्याण होगा।"

१०. श्री महाराज जी अपने नियमानुसार जहां ठहरते थे, वहाँ प्रायः नौ बजे प्रातः साधकों को दर्शन देने बाहर बैठते थे। एक बार ऐसे ही समय एक साधक आया और प्रणाम करके सामने बिछी हुई दरी पर बैठ गया। श्री महाराज जी ने बड़ी प्रसन्नता से कहा "आओ जी"। उस समय उनके हाथ में श्रीमद् भगवद् गीता थी। उसी समय एक गाय द्वार खुला देख कर अन्दर घुस आई और बरामदे के आगे जो बगीची थी उसमें फूल चरने लगी। महाराज जी ने गाय को बाहर निकालने और द्वार बन्द करने के लिये साधक को संकेत किया। जब वह द्वार बन्द करके लौटा तो कहा "जब मन का द्वार खुला हो तो अशुभ विचार अन्दर घुस कर सुन्दर विचारों के फूल चर जाते हैं। सत् शास्त्रों को पढ़ते रहना और उन पर मनन करना मन के द्वार को बन्द रखना है।"

११. एक साधक ने प्रश्न किया कि मन में दूसरों के लिए विचार आता है। जैसे – पूर्णमासी के अखण्ड जाप में जो आते हैं उनका मन बड़ा अच्छा टिके। एक साधक जो ज्वर में सत्संग में आया मेरी इच्छा थी कि कम से कम सत्संग में उसे ज्वर न हो। ऐसी प्रार्थना करना क्या ठीक है? मैंने उत्तर दिया, "दूसरों के लिए प्रार्थना करना बहुत अच्छा है। मैं भी राम नाम के जपने वालों के लिए करता हूँ। सब मिला कर कोई सौ से ऊपर व्यक्ति हैं जिन के लिए प्रार्थना करता हूँ। मेरे विचार में प्रार्थना में प्रभाव शीघ्र तब

होता है जब प्रार्थना करने वाले का जीवन अच्छा हो। झूठ न बोले, ईर्ष्या न करे, उसकी कमाई शुद्ध हो तो फिर संकल्प में जो बल आता है वह करने वाले को स्वयं पता चलता है।

प्रार्थना

१२. प्रधानमंत्री, राष्ट्रपति आदि जब बाहर विदेशों में जाते हैं तो किसी दुर्घटना में न फंस जायें मैं उनके लिये उस समय उनके सुरक्षित वापिस लौट आने के लिए ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ। और देशों के लिए भी जैसे रूस जर्मनी किन्तु उनकी हानि के भाव से नहीं उनमें किसी उन्नति की भावना से। उसके लिये नियत श्लोक हैं उनको बोलकर प्रार्थना की जाती है ऐसा ईश्वरी आदेश भी होता है कि इस विधि से चार दिन तक अथवा एक सप्ताह तक प्रार्थना करो अथवा इसके लिये प्रार्थना न करो कोई और प्रार्थना करो।

प्रार्थना करते समय परमात्मदेव की उपस्थिति की प्रतीति भी होती है। शब्द भी सुनाई देता है तो इस कहने का तात्पर्य यह है कि इस मार्ग में साधना रूढ़ होने पर अनेक अद्भुत अनुभव होते हैं। करने से पता चलेगा। भक्ति भाव से तत्पर होकर साधन में लग जाओ। प्रतिवर्ष जुलाई मास में कुछ छुट्टियां लेकर यहां रहकर साधना करो कुछ मित्रों के साथ जिनकी प्रार्थना में वृत्ति हो साधन करने को यहां आओ। रामकाज करो तो सब प्रकार से कल्याण होगा, पारिवारिक स्थिति भी सुधरेगी।

१३. अध्यात्मवाद की बात कहने का बहुत थोड़े व्यक्तियों को अधिकार होता है। जिनके अन्दर राम नाम की ज्योति जग रही हो वही कह सकता हैं। दो प्रकार के लेखक होते हैं एक तो दूसरे की चुरा कर लिखने वाले। दूसरी प्रकार अपने आप अनुभव करके लिखने वालों की होती है। किन्तु देखो, खड़ाऊं का रिवाज़ बहुत है। लोग साधुओं की चीज़ समझ कर लेते हैं किन्तु जो राम चरण की पद्वी भरत के लिये थी वह अवलम्बन है। मेरे सम्पर्क में गृहस्थी भी हैं और साधु भी। दो तीन साधुओं ने आगे नाम देने की

शक्ति भी मुझ से ली। वह शक्ति देते समय मैं कौन सा मन्त्र बोला करता हूँ वह तो यहां नहीं बोलूंगा। किन्तु उन साधुओं को सफलता नहीं हुई क्योंकि उनमें बड़ाई आ गई। अपने में अहंकार और बड़प्पन नहीं आना चाहिये। जितना छुपाया जाये उतना ही अच्छा है। मुझे ज्ञात है कि कई गृहस्थी पूरे पहुँचे हुए हैं। किन्तु वे लोगों की दृष्टि से छिपे हुए हैं।

वेदों में राम शब्द

१४. एक साधक के पूछने पर श्री महाराज जी ने स्पष्ट शब्दों में बताया, "वेदों में राम नाम भगवान वाचक रूप में कितने ही स्थानों पर आया है। फिर यह नाम तो मुझे सीधा भगवान से साधना रूप में प्राप्त हुआ है। यह मार्ग मुझे बहुत देर में प्राप्त हुआ परन्तु यह अतिउत्तम और अतिशय क़ल्याणकारी है। यह कहने में संकोच नहीं कि इस पथ पर साधकों को ऐसी ऐसी अनुभूतियां हुई हैं जो कन्दराओं में बैठे तपस्वियों को भी न हों।

अहंकार को निर्जीव कर दिया

१५. श्री महाराज जी ने अपने अनुभवों को ऐसे ढंग से अपने ग्रन्थों में दिया है कि किसी भी स्थान पर और किसी भी वक्तव्य में श्री महाराज जी ने अपने अहंकार को स्थान नहीं दिया। अन्य पुरुष की अनुभूति के रूप में अपनी महान से महान अनुभूतियां लिखी हैं। हज़ारों पद्य तथा गद्य में वर्णन श्री महाराज जी ने लिखे हैं किन्तु किसी में भी अपना नाम नहीं लाये। किसी भजन में भी उनका नाम नहीं है। स्पष्ट है कि महाराज जी ने अहंकार को निर्जीव कर दिया।

देशप्रेम

१६. एक निकटवर्ती सेवक का कथन है कि श्रीस्वामी जी के हृदय में अपने देश के लिये इतना प्रेम था कि वे देशद्रोह को ऐसा घोरतम पाप समझते थे कि उससे बड़ा पाप संसार में नहीं हो सकता।

हिन्दी भाषा

१७. हिन्दी भाषा के लिये उन में इतना प्रेम था कि अपने जीवनकाल में उन्होंने अपने किसी ग्रन्थ को दूसरी किसी विदेशी लिपि में नहीं छपने दिया।

सन्यास

१८. आत्मोन्नति के लिये मैं सन्यास लेना आवश्यक नहीं समझता। इसलिये न किसी को सन्यास देता हूँ और न किसी से सन्यास लेने की प्रेरणा देता हूँ। जो साधना जंगलों और एकान्त स्थानों में रहकर हो सकती है वही गृहस्थ में भी हो सकती है। अपितु आज कल के युग में तो गृहस्थ और कारोबार करते हुए और भी अच्छी साधना संभव है।

(ii) अटल विश्वास

१. एक साधक ने एक बार निश्चय किया कि माला पर एक लाख नाम जाप प्रतिदिन एक महीने के लिये करेगा। उसे इस जाप के लिये दस घंटे प्रतिदिन लगते थे। अधिष्ठान को सामने रखकर कभी आँखें खोलकर और कभी मींच कर एक लाख प्रतिदिन की संख्या एक महीने तक पूरी की। उसे सन्तोष हुआ कि उसने अनुष्ठान पूरा कर लिया पर मन में यह प्रश्न रहा कि लाभ क्या हुआ? उसने यह सब श्री महाराज जी को बताया तो उन्होंने समझाया, अब तुम बहुत जाप न किया करो। बड़े भाव चाव से थोड़ा सा जाप तुम्हारे लिये काफी है। अब मनन और चिन्तन अधिक किया करो। सर्व शक्तिमान, सर्व व्यापक, सच्चिदानन्द स्वरूप, ज्योर्तिमय, परम दयालु, देवाधिदेव राम जो तुम्हारे मस्तिष्क में विराजमान हैं उनपर मनन और चिन्तन किया करो। अपने आप का पूर्ण समर्पण करके राम कृपा का अनुभव किया करो। ऐसे प्रतिदिन के ध्यान से तुम्हारा अपने आप निस्तार होगा।

२. एक साधक को नाम दीक्षा लेने के बाद ऐसा अनुभव हुआ कि श्री महाराज जी ने अपने आप आ कर और अकारण कृपा कर के यह पावन राम नाम का दान देकर उसकी काया पलट दी है और उसे जीव से मनुष्य बना दिया है। फिर साधना सत्संग में सम्मिलित होने पर उसे ऐसा अनुभव हुआ कि साधना तो सत्संग के वातावरण में ही संभव है। और उसे विश्वास हो गया कि

(1) उसका उत्थान पतन प्रारब्ध के अधीन नहीं है स्वयं उसके आधीन है।

(2) सर्वशक्तिमान श्री राम नाम के पावन नाम में वह शक्ति है कि उसके जैसे अपावन को भी पावन कर सकता है।

(3) मोक्ष इसी जन्म में प्राप्त हो सकता है। जितना समय बीत गया सो बीत गया। अब यदि पूरी लगन से बाकी का जीवन बिताया जावे तो पर्याप्त है।

(4) जीवन की सफलता श्री महाराज जी के बताये पथ पर चलने से ही संभव है।

एक बार रोहतक जिले के एक गाँव में रात्रि के समय श्री महाराज जी का भाषण हुआ। उन्होंने कहा कि "जाट बड़े शूरवीर होते हैं। जाट का छोरा और उसके हाथ में लाठी हो तो कसर किस बात की रह जाती है। शेर को भी पछाड़ सकता है।" इस का वहां के जाटों पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा। अगले दिन तीन तरुण महाराज जी के दर्शन करने आये। श्री महाराज जी ने बड़े प्रेम से उनको अपने पास बिठाया। इसका उन तरुणों पर इतना अच्छा प्रभाव हुआ कि अगले दिन जब महाराज जी का दूसरे गाँव में भाषण हुआ तो वे वहाँ भी पहुँचे। वहाँ महाराज जी ने राम नाम की महिमा का वर्णन किया। और सब को राम नाम लेने के लिये प्रेरित किया। एक बूढ़े चौधरी ने प्रश्न किया कि महाराज हम तो हर समय अशुद्ध रहते हैं। नहाने धोने की सुविधा नहीं मिलती। फिर जैसा कि भगवत पुराण में लिखा है कि एक आदमी ने मल उत्सर्ग करते समय राम नाम ले लिया था तो उसे शूकर की योनी मिली। इस पर महाराज जी ने कहा कि आप सदैव खेतों में बीज बोते हो और वे दाने उल्टे सीधे पड़ते हैं किन्तु सब ऊपर को निकलते हैं। इस पर तुलसी दास जी का दोहा बोला —

तुलसी मेरे राम ने, रीझ भजो या खीज।
भौम पड़ा जामे सभी, उल्टा सीधा बीज।।

अत: काम करते हुए भी राम नाम का जाप किया करो।

भाषण की समाप्ति पर श्री स्वामी जी ने उन तरुणों को देखा और पास बुलाकर पूछा, तुम कहाँ सोओगे? उन में से एक ने उत्तर दिया, "महाराज! हम तो जमींदार हैं। यहाँ पर ही चौपाल में बिछे हुए तख्तों पर सो जायेंगे। पर श्री महाराज जी ने एक साधक को बुलाकर कहा "आप इन लड़कों को भोजन कराओ और इनके सोने आदि की व्यवस्था करो।"

तत्पश्चात् उन लड़कों को समाचार-पत्रों द्वारा पता चला कि ज्वालापुर हरिद्वार में श्री स्वामी जी के कर कमलों द्वारा एक नए भवन का उद्घाटन उत्सव मनाया जा रहा है। उन में से एक ने वहाँ जाने का निश्चय कर लिया। जब वह ज्वालापुर पहुँचा उस

..गो जी महाराज एक बड़े पंडाल में भाषण कर रहे .. दूर एक स्थान पर बैठ गया। किन्तु श्री स्वामी जी ने उसे ..ख लिया और तुरन्त अपनी ओर आने का संकेत किया। फिर उसे अपने कमरे की ओर ले गए और कहा "तू ऐसे क्यों फिरता है? तेरी आर्थिक स्थिति दुर्बल है, ऐसे मत फिरा कर।" किन्तु उसने नम्रतापूर्वक निवेदन किया, "महाराज! अब तो मैं आप के साथ ही रहा करूंगा, आप का पीछा नहीं छोड़ूँगा।" तब महाराज जी बोले, "मैं ही दूसरों के घर पर ठहरता हूँ, तुझे कैसे साथ रखूँ"? फिर उसने श्री महाराज जी से प्रार्थना की "यदि वचन दें कि वर्ष में एक बार अवश्य उसके गाँव आया करेंगे तो वह उन के पीछे फिरना छोड़ देगा"। श्री महाराज जी ने स्वीकृति दे दी और अन्त तक अपना वचन निभाया।

३. एक बार श्री महाराज जी जब उसके गाँव गए तो उसे और उसके साथियों को 'भक्ति प्रकाश' की प्रतियाँ दीं और नित्य प्रति पाठ करने को कहा। ये लड़के 1930 में महात्मा गाँधी के सत्याग्रह आन्दोलन में जेल गए और वहाँ भक्ति प्रकाश का पाठ करते। भजन और ईश्वर स्तुति आदि भी करते। जेल के अधिकारी इनके नित्य कर्म देख कर बड़े प्रभावित हुए और उनके सत्संग आदि की सुविधा के लिये एक पृथक स्थान का प्रबन्ध कर दिया।

इनमें से जो बहुत गरीब था और जो हरिद्वार गया था उसने कोयले का व्यापार आरम्भ किया। रामकृपा और श्री स्वामी जी के आशीर्वाद से आशातीत लाभ हुआ और उसका दरिद्रता से छुटकारा हो गया।

४. सन् 1920 के गुरुकुल काँगड़ी के वार्षिक उत्सव पर एक रात्रि महाराज जी का प्रवचन श्रोतागण मंत्रमुग्ध सुन रहे थे। अचानक एक भयानक आवाज़ आई 'शेर आया', 'सांप आया' इत्यादि। यह सुनकर मंडप में भगदड़ मच गई। लोग बच्चों का, स्त्रियों का, बुढ़ों का तथा दुर्बलों का कोई ध्यान न कर, उन्हें मसलते, गिराते और धकेलते हुए एक दूसरे से आगे दौड़ने में लगे हुए थे। किन्तु श्री महाराज जी न आगे झुके, न पीछे मुड़े, न दायें झाँका, न

बाँयें दृष्टिपात, बस अपने आसन पर अविचल निश्चय धारे शान्त भाव से मन्द-मन्द मुस्काते स्थिर रहे। सब निकटवर्ती उनके इस निर्भय भाव से चकित थे।

५. एक युवक जो सन् 1957 में बेकार था और इस कारण परेशान भी, श्री स्वामी जी महाराज से दीक्षा लेने आया। श्री महाराज जी ने पूछा कि क्या काम करते हो? वह बोला कोई काम नहीं करता। श्री महाराज जी हँस कर बोले, "तुम भी मेरे जैसे हो। मैं भी कुछ काम नहीं करता।" इसके पश्चात् उसको नाम दीक्षा दे दी और कहा, "प्रतिदिन नियम से नाम जाप करना। भूलना नहीं। राम कृपा होगी।" उसे सहारा मिला जिससे उसकी चिन्ता कम हुई। वह विश्वासपूर्वक भाव-चाव से जाप करने लगा और उसे कुछ दिन में काम भी मिल गया।

६. एक साधक को एक बार बड़े जोर का सिर दर्द शुरु हुआ। उसे ध्यान आया कि ग्वालियर साधना सत्संग में श्री महाराज जी ने अपने प्रवचन में कहा था कि किसी भी शारीरिक वेदना पर विश्वास पूर्वक रामनाम चिन्तन करते हुए हाथ फेरा जाए तो अवश्य लाभ होता है। उसने वैसा ही किया। माथे के ऊपर एक ओर दाहिने हाथ का अंगूठा और दूसरी ओर बीच की दोनों उंगली रखकर मन में राम नाम चिन्तन करते हुए माथे को दो तीन बार सूतने से पता ही न चला कि दर्द कहां गया।

(iii) नम्रता

१. एक साधक को नाम दीक्षा लेने के समय ये विचार आये कि महाराज परम दयालु हैं, परम कृपालु हैं। नाम दीक्षा लेने के बाद वे मेरे हृदय में बैठे हैं। उनका शरीर छूट जाये तब भी वे हृदय में विराजमान हैं। साधक जहां भी जाये, जो भी करे, जो सोचे वे उसके साथ रहते हैं। साधक यदि पाप करे तो भी वे अन्दर बैठे दु:खी होते हैं पर कभी उसे छोड़ते नहीं।

जब तक साधक मुक्त नहीं होता वे उसके साथ रहते हैं। श्री महाराज जी ने अपने एक पत्र में लिखा "श्री राम नाम पूर्वक आप का और मेरा जो सम्बन्ध है वह बड़े उत्तरदायित्व का है। वह परलोक तक बना रहता है। आप आत्म कल्याण के सम्बन्ध में सर्वथा निश्चिन्त रहें। आप का काम केवल साधना करना है। शेष सब राम पर भरोसा रखिये। परमेश्वर श्री राम सर्वशक्तिमान हैं। वह जिससे, जो काम, जिस ढंग से, जिस समय लेना चाहता है उतना ही उसे समर्थ बना देता है।

एक बार श्री महाराज जी ने कहा था, "यहाँ गुरु शिष्य की कोई बात नहीं। केवल इतना है कि जो इस मार्ग में आगे हैं वे पीछे आने वाले को कहते हैं कि हम इस मार्ग से यहां तक पहुंचे हैं।आप भी इसी मार्ग से चलते हुए, यहां पहुँच जायेंगे। यहाँ गुरुडम को कोई स्थान नहीं है। श्री महाराज जी राम नाम में रंगे थे। उनमें ज्ञान, ध्यान, विचार, विवेक का अभिमान कहाँ।

२. एक बार महाराज जी, लुधियाना में, जब अपनी व्याख्यान शृंखला समाप्त कर रहे थे, तब, अन्तिम दिवस जनता ने महाराज जी को अभिनन्दन पत्र दिया। तो उन्होंने कहा, "यह तो कागज़ का टुकड़ा है, फट जायेगा, बेकार हो जायेगा। मेरा अभिनन्दन तो आप लोगों ने मेरी रूखी सूखी बातों को दत्तचित्त सुनकर ही कर दिया है।

इसी अवसर पर देवियाँ फूलों की मालाएं हाथ में लिये श्री महाराज जी की ओर बढ़ीं। श्री महाराज जी ने पीछे हटते हुए उन

देवियों को कहा "माताओ! ये मालायें आप के पतियों के लिये हैं। मेरे समीप इन को मत लाना।"

३. एक वकील ने महाराज जी से कहा, "महाराज, 12 वर्षीय पुत्र के वियोग का दुःख हुआ है परन्तु सत्संग और स्वाध्याय नहीं छोड़ा"। श्री महाराज जी ने कहा, "पुत्र वियोग रूपी दुःख तो किसी कर्म का फल मिला। इधर जो आपने सत्संग स्वाध्याय से, अपने मन से, इस दुःख को दूरकर दिया यह आप के दूसरे कर्म का फल है। किसी कर्म का फल दुःख है तो किसी कर्म का फल सुख है। कर्म फल में कोई परिवर्तन नहीं होता।" कई बार समझाने पर भी वकील साहब कहते रहे कि उनकी समझ में नहीं आया। तब श्री महाराज जी ने कहा, "अब यूँ समझिये कि मैं इस विषय में आप को समझाने में असमर्थ हूँ। किसी और से पूछ लो"।

४. एक बार एक साधक ने श्री महाराज जी से निवेदन किया कि साधकों तथा अपने अन्य परिचितों के लाभ के हेतू आप को अपने जीवन के परिचायक अंश अपनी किसी पुस्तक के आरम्भ में तथा अलग से एक पुस्तक में अवश्य देने चाहियें। यह सब सुनकर श्री महाराज जी ने उत्तर दिया, "मेरी सम्पूर्ण आत्म कथा भक्ति-प्रकाश में है। जो जानना चाहे उसका पाठ करे।"

५. श्री महाराज जी ने एक बार कहा कि कई प्रेमी कहते हैं आप के लिये आश्रम आदि बनवा देवें परन्तु मैं तो यही कहता हूँ कि बहुत समय बीत गया है बाकी थोड़ा बहुत भी, दो दिन किसी प्रेमी के पास, चार दिन किसी प्रेमी के यहां विश्राम कर के बीत जायेगा। जब पिछला ही छोड़ दिया तो नया बखेड़ा काहे को सहेड़ना।

६. श्री महाराज जी साधना सत्संग में कीर्तन आदि करने वालों को ऊपर के आसन पर बैठने को कहते थे। एक बार हरिद्वार के साधना सत्संग में श्री महाराज जी ने कहा, "जो कीर्तन करते हैं उन को मुझे ऊपर बिठाना पड़ता है। कोई यह न समझे कि वे मेरे अधिक प्रिय हैं। मैं भी ऊपर कुर्सी पर बैठता हूँ। पर कौआ मन्दिर के कलश पर बैठने से हँस तो नहीं हो जाता।" यह सुनकर

साधकों को ऐसी टीस उत्पन्न हुई कि सब ऊँचे स्वर से 'राम, राम' बोल उठे।

श्री महाराज जी को कोई कहता कि आप की हम पर बहुत कृपा है तो वे झट से बोलपड़ते राम कृपा, राम कृपा'।

७. **एक बार एक साधक ने महाराज जी से निवेदन किया कि जब** वह वापस जाएगा तो अन्य साधक उससे पूछेंगे कि श्री महाराज जी से उनके लिए क्या संदेश लाया है। महाराज जी ने हँस कर उत्तर दिया, "जो कुछ मेरे जीवन की कमाई और सन्देश है, वह सब मैंने पुस्तकों में पहले से ही भर दिया है। वह ही मेरा सन्देश है।"

८. **बहुत वर्षों की बात है कि श्री महाराज जी दिल्ली में थे और** व्यास पूर्णिमा का शुभ दिन आ गया। साधक जन बादाम, मिश्री आदि द्रव्य ले कर, महाराज जी जहाँ ठहरे हुए थे वहाँ आ गए। महाराज जी अपने कमरे में ही थे। नियत समय पर बाहर पधारे और यह सब देखकर बहुत ही दुःखी हुए। कहने लगे कि यदि मुझे पता होता तो मैं बाहर ही न आता। यह सब द्रव्य कौन लाया है? सब मौन थे और अपने किये पर पश्चात्ताप कर रहे थे। श्री महाराज जी ने सब से वचन लिया कि आगे से कभी कोई वस्तु नहीं लानी होगी नहीं तो इस पर्व को नहीं मनाया जायेगा। उसके पश्चात् प्रतिवर्ष जहां महाराज होते वर्षा होते हुए भी साधक जन समय से पूर्व पहुँचते। महाराज के आसनासीन होने पर अमृतवाणी का पाठ आरम्भ होता। श्री महाराज जी जहाँ व्यास जी को नमस्कार करते वहाँ सब साधकों के आगे भी मस्तक टेक देते। इस नम्रता भाव को देखकर प्रायः सभी के नयन उमड़ आते।

९. **एक युवक साधक श्री महाराज जी के पास आया और** नमस्कार कर बड़े आदर से पूछने लगा, "महाराज! मैं शादी कर लूं?" श्री महाराज जी मुस्करा कर बोले, "हमारे सत्संग में तो दोनों प्रकार के लोग आते हैं। यदि शादी कर लोगे तो जीवन की दिशा दूसरी होगी और अविवाहित जीवन की दिशा दूसरी। इस का निर्णय तो तुम्हें स्वयं करना होगा क्योंकि तुम अपना जीवन जैसा बिताना चाहते हो उसी के अनुसार निर्णय लो।"

(iv) कृपामय

१. एक बार एक महिला ने सत्संग के पश्चात् महाराज जी से विनती करी कि वे उसके घर आवें और उस के हाथ का बना भोजन करें। महाराज जी ने उत्तर दिया कि वे प्रायः जहाँ ठहरते हैं वहीं भोजन करते हैं पर उसको आश्वासन दिया कि एक दिन अवश्य उसके घर आएँगे। उस दिन से वह देवी अपने घर की विशेष रूप से सफाई करने लगी।इस विश्वास से कि एक दिन महाराज अवश्य आएँगे। अन्ततः महाराज गए। उस समय उसकी बेटी स्कूल गई थी और उसके पतिदेव काम पर गए हुए थे। वह घर पर अकेली थी। श्री महाराज जी के साथ वे सज्जन भी थे जिनके घर महाराज ठहरे हुए थे। सर्दी के दिन थे। उस देवी ने महाराज को आंगन में धूप में बिठाया। श्री महाराज जी ने देवी से पूछा, "तुम्हारे यहाँ सफाई, बर्तन, खाना पकाने के लिए कोई नौकर या माई है? "कौन माखन निकालता है? यहाँ चाटी और मंथनी किसने धोकर धूप में रखी है?" उस देवी ने हाथ जोड़कर कहा "महाराज! इस घर में मैं ही नौकर और माई हूं। सब काम राम कृपा से हो जाता है। कोई बहुत काम भी तो नहीं है।" इस उत्तर से श्री महाराज जी बहुत प्रसन्न होकर बोले, "कल मैं तुम्हारे घर आकर तुम्हारे हाथ का पका भोजन पाऊँगा। कल इतवार है। तुम्हारी बच्ची और तुम्हारे पति भी घर होंगे।"

उस देवी की प्रसन्नता अपार थी और उस दिन से उसने नियम से साधना और निष्काम सेवा के भाव से पूर्ण अपना जीवन मधुर और राममय बना लिया।

२. एक व्यक्ति जो शराब पीता था, श्री महाराज जी के पास आया और बोला, "महाराज ! मैं आप के चरणों में बैठकर ध्यान करना सीखना चाहता हूं।" महाराज जी ने उसे हँसकर टाल दिया। पर वह भी पीछे पड़ा रहा तो अन्त में एक दिन उन्होंने उसे एक माला दी और कहा, "इस माला पर राम नाम का जाप 15 दिन अपने घर में करना। हो सके तो शराब कुछ कम पीना। फिर मुझे

मिलना।" वह चकित हो गया कि महाराज उसके शराब पीने के बारे में कैसे जान गए। 15 दिन बाद जब वह श्री महाराज जी के पास गया तो उन्होंने उसे अपने सामने ध्यान में बिठाया। थोड़ी देर बाद आंखें खोलने के लिये कहा और पूछा कि कुछ अनुभव हुआ? उसने उत्तर दिया, "महाराज! मुझे ऐसा लगा कि मैं अपने अन्दर बहुत गहराई में चला गया हूँ वहाँ मुझे राम, सीता और लक्ष्मण के दर्शन हुए। मैं उन्हें नमस्कार कर रहा था कि आपने मुझे आँखें खोलने को कहा।" महाराज बोले, "प्रतिदिन राम नाम की माला जपा करो और ध्यान में बैठने से पहले राम कृपा मांगा करो। तुम्हारा कल्याण हो जायेगा। उस व्यक्ति ने शराब पीना छोड़ दिया और राम नाम में रंग गया।

३. सन् 1943 की बात है। एक साधक महाराज के दर्शन करने गया और निवेदन किया कि उसे एक बड़ी नौक़री मिल गई है – एक दूर प्रान्त में, जहाँ वह सपरिवार जा रहा है। महाराज बोले, "बहुत दूर जा रहे हो, मुझे लिखते रहना और जब कभी पंजाब आया करना तो सौ-डेढ़ सौ मील पर मैं हूँ तो मुझे मिल जाया करना। राम नाम का जाप और ध्यान करते रहना। तुम्हारे पर और तुम्हारे परिवार पर राम कृपा बनी रहे।

सन् 1945 में जब वह पंजाब आया तो जहाँ वह ठहरा था वहाँ से महाराज डेढ़ सौ मील दूर दूसरे नगर में थे। वह दर्शन करने वहाँ गया और अपना परिचय पत्र अन्दर भेजा। चौकीदार ने महाराज जी की आज्ञा अनुसार उसे स्वागत के कमरे में बिठाया। महाराज आ कर बैठे तो वह उनके चरणों में जा बैठा।

श्री महाराज जी ने पूछा-कैसे आये। उसने उत्तर दिया, "महाराज, आपने ही तो कहा था कि पंजाब आना हो तो सौ-डेढ़ सौ मील की दूरी का विचार न करके मिलने आना। महाराज जी ने बड़ी प्रसन्नता से उसका हाथ पकड़कर उसे अपने पास सोफे पर बिठाया और बड़े प्यार से अपना वरद हाथ उसके सिर पर फेरा और प्रेम से कहा, "अरे! इतनी दूर से केवल मुझे मिलने के लिए

ही यहाँ आये हो। तुम बड़े अच्छे हो। कितना प्रेम है तुम्हारे सरल हृदय में।" जब महाराज उसके सिर पर हाथ फेर रहे थे तो उस व्यक्ति को ऐसा अनुभव हुआ कि उसके शरीर में एक बिजली सी दौड़ रही है और उसके कई जन्मों के कर्म कट गए।

४. एक साठ साल के साधक को साधना सत्संग में सम्मिलित होने का सुअवसर प्राप्त हुआ। कुछ दिन पहले ही उस साधक को अपने सारे दाँत निकलवाने पड़े थे। साधना सत्संग में उसके अनुकूल भोजन की व्यवस्था कर दी गई थी। विनोद सभा में एक दिन श्री महाराज जी ने कहा, "कहो, सेठ जी आजकल तो खाने को खूब हलवा मिलता होगा।" और हँसने लगे। फिर पूछा, "प्रतिदिन कितना जाप करते हो?" भरी सभा में बड़े संकोच से उस ने हाथ जोड़कर धीरे से कहा, "एक लाख।" श्री महाराज जी बहुत प्रसन्न हुए और हँसते हुए कहा, "सेठ जी, आप तो लखपति हो गए।" श्री महाराज जी की कृपा से कुछ वर्षों में उस व्यक्ति के पास लाखों की सम्पत्ति हो गई।

५. एक साधक महाराज के दर्शन करने नियम से जाता था। श्री महाराज जी के मानव चोला छोड़ने के पश्चात् एक दिन कहने लगा, "श्री महाराज जी ऐसे शान्त, निर्मल, गम्भीर और समदृष्टि थे कि उनकी मुख कान्ति के प्रभाव से आनन्द प्राप्त होता था। मन शान्त हो जाता था और शरीर स्वस्थ हो जाता था। प्रसन्नता उन की मुखाकृति का एक अंग ही हो गई थी। जब मैं उनका वह चित्र देखता हूँ जिसमें वे मुस्करा रहे हैं तो मुझे ऐसा लगता है जैसे वे कह रहे हों, तुम सदा मुस्कराने की अखंड साधना करो। उस चित्र को देखकर याद आते हैं उन का शील स्वभाव, कोमल हृदयता, शिष्टाचार, नियम मर्यादा, उनका गद्गद् हो कर कीर्तन करना और कभी नाचने लग जाना, उनका विनोद, उनका प्रेम से हमारी पीठ ठोकना और उत्साह देना, उनका उपदेश और वे सच्ची प्रार्थनाएं जिनको सुनकर हमारे आँसू बहने लगते थे।

जब भी महाराज के दर्शन करने जाता चरणों में बैठता तो

वे मुस्करा कर कहते "कहो, कुछ पूछना है"? किन्तु उस समय सूझता नहीं था कि क्या पूछें—बस चुप रहते थे। पर एक बात देखी थी कि हमारे न पूछने पर भी जो प्रश्न हमारे मन में उठता वे अपने प्रवचन में बिना पूछे उसका उत्तर दे देते थे। सच्चे गुरु की यही पहचान है कि शिष्य यदि कुछ भी न पूछे तो भी उसकी स्थिति के अनुसार उसके अन्दर जो संशय हो उसे दूर कर दे।

६. एक बार एक साधक श्री महाराज जी को आकर कहने लगा कि उस पर थोड़ी राम कृपा हुई है। यह सुनकर महाराज गद्‌गद् हो गए। उस समय उनके मुखमंडल की ज्योति और मस्तक का तेज देखते ही बनता था। महाराज जी कहने लगे "जिस पर मेरे राम कृपा करने लगे हैं, वह धन्य है। उसे बार बार नमस्कार। राम ने थोड़ी कृपा की है तो और भी करेंगे।" श्री महाराज जी ऐसे साधक की सहायता करते थे कि उस पर से कृपा अवतरण रुक न जाये। वे ऐसे साधक को मान देते थे, उसका उत्साह बढ़ाते थे। उस साधक ने अनेक भक्तों और सन्तों के दर्शन किये पर जो प्रसन्नता महाराज जी के दर्शन करने से होती थी इस पर उसका कहना था "**वे तो वे ही थे**"।

७. सन् 1942 की बात है एक साधक नई दिल्ली में सपरिवार रहते थे। एक और सज्जन सपरिवार उनके पड़ोसी थे। श्री महाराज जी के दिल्ली आने पर वह साधक उनके दर्शन करने उनके निवास स्थान पर प्रतिदिन जाया करता था। एक दिन उसने अपने पड़ोसी के साथ हुई अनबन और उसके दुर्व्यवहार के विषय में श्री महाराज जी से कहा कि बात इतनी बिगड़ गई है कि अब संभवतः मारपीट न हो जाये। श्री महाराज जी मुस्करा दिये। उसे लगा कि उसे अपनी समस्या श्री महाराज जी को नहीं बतानी थी। कोई अध्यात्म की बात सुननी चाहिये थी।श्री महाराज जी से अपनी प्रतिकूल परिस्थिति का वर्णन नहीं करना चाहिये था। यह तो घर घर की कहानी है।

पर श्री महाराज जी की मुस्कान के पीछे बहुत कुछ छिपा था। वे अपने भक्त का दु:ख सह न सके। दूसरे ही दिन वे उसके घर पर सीढ़ियां चढ़ कर अकेले गए। किन्तु उसके फ्लैट पर ताला लगा था। उन्होंने साथ वाले पड़ोसी को बाहर बरामदे में खड़ा देखा। वह श्री महाराज जी को देखकर चकित हो गया। उनके पाँव छुए और अपने फ्लैट में ले जा कर धन्यवाद सहित कहा कि उसके अहोभाग्य कि श्री महाराज जी ने उसके घर में चरण डाले। श्री महाराज जी ने कहा, "मैं इधर तुम्हारे पड़ोसी (साधक का नाम बता कर) के पास आया था। वह मेरे मिलने जुलने वाला है। उसके तो ताला लगा है। अच्छा हुआ आपके दर्शन हो गए"। श्री महाराज जी ने उस पड़ोसी का और परिवार वालों का कुशल पूछा। कुछ देर बैठे, प्रेम की चार बातें की। बहुत कहने पर भी कुछ खाया नहीं और चले गए। जब वह साधक घर लौटा तो वह पड़ोसी जिससे साधक का बोलचाल बंद था उसके घर आकर कहने लगा, "अरे! श्री महाराज जी जैसे महापुरुष आप को मिलने आए थे। आप बड़े भाग्यशाली हैं।" उस दिन के पश्चात् जिस कारण उन दोनों की अनबन थी वह मिट गई और वे दोनों पड़ोसी बड़े प्रेम से रहने लगे।

श्री महाराज जी के जाने के दूसरे दिन जब वह साधक उनके दर्शन करने गया तो विनती की, "मैं बड़ा अभागा हूँ, आप आये और मकान पर ताला लगा था"। वे फिर मुस्कराये और कहा, "मैं तो तुम्हारे मकान पर बार बार आता हूँ। सदा द्वार बन्द होता है और ताला लगा रहता है। यह सुनकर साधक की अश्रुधारा बह निकली। हम कहते हैं हम भगवान को ढूंढते हैं।अरे! भगवान तो हमें ढूँढते फिरते हैं। बार बार आकर हमारे द्वार पर ताला लगा देखकर लौट जाते हैं। फिर भी आशीर्वाद तो छोड़ ही जाते हैं।

८. सन् 1959 में श्री महाराज जी के एक परम सेवक अपने रोग के उपचार के लिए लन्दन जाने को तैयार हुए। तब श्री

महाराज जी ने आज्ञा दी कि तुम विदेश हो आओ। वहाँ के जलवायु और आहार नियम से ही तुम्हारा स्वास्थ्य ठीक हो जाएगा। ओपरेशन नहीं कराना पड़ेगा। वह सेवक सपरिवार जैकोस्लोवाकिया पहुँचा और वहाँ की प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति से उसने अपने आप को स्वस्थ अनुभव किया। फिर भी लन्दन ओपरेशन कराने के लिए गया। जब वहाँ ओपरेशन की सब बातचीत तय हो गई, अकस्मात् उसने अनुभव किया कि वह पूर्णतया स्वस्थ है और ओपरेशन करवाये बिना लन्दन से भारत लौट आया। दिल्ली आकर उसे पता चला कि जिस दिन उसका ओपरेशन होना था, उसी दिन श्री महाराज जी ने एक दूसरे सेवक को कहा था, "आज हम जाग्रत-स्वप्न में लन्दन गए और वहाँ हस्पताल में उस सेवक को कहा कि तुम बिल्कुल ठीक हो, वापिस आ जाओ।" तब उसे याद आया कि श्री महाराज जी ने भक्ति-शक्ति दान से भारत में रहते हुए उसे लन्दन में स्वस्थ कर दिया था और इसीलिए उसने अपने आप को अकस्मात् पूर्ण स्वस्थ अनुभव किया और भारत लौट आया।

९. एक बार एक सज्जन ने श्री महाराज जी से पूछा कि कुछ लोग कहते हैं कि आयु घटती बढ़ती है और कुछ कहते हैं आयु निश्चित है। आप का इस विषय में क्या विचार है। महाराज जी ने मन्द मुस्कान से बताया कि क्या लेना है आयु के घटने बढ़ने से? जितना समय मनुष्य जीवे, शुभ कर्म और परोपकार के लिये जीवे।

१०. एक साधक को जो पहली बार साधना सत्संग होशियारपुर में सम्मिलित हुआ, यह विचार उठा कि श्री महाराज जी की उस पर कृपा नहीं है। उसने एक दूसरे साधक को भी ऐसा कहा जिसने श्री महाराज जी को उसका भाव बता दिया। स्वामी जी महाराज ने कहला भेजा मुझे तुम्हारा विचार है और आशीर्वाद भी दिया। परन्तु उसके मन में वह भावना बनी रही और कुछ एक घटनाओं से और दृढ़ हो गई। एक

दिन जब वह ध्यान में बैठा तो उसके मन में वह बात आई। ध्यान से मन उखड़ गया किन्तु उसी समय उसे ऐसा अनुभव हुआ कि श्री महाराज जी उसके पास आये हैं और अपना हाथ उसके मस्तक पर रखकर कह रहे हैं, "घबराते क्यों हो? मेरा ध्यान तुम्हारी ओर रहता है। निःसंकोच अपने लक्ष्य की ओर बढ़ते जाओ।" उसे बड़ी सान्त्वना मिली। बाद में उसे महाराज जी का आशीर्वाद समय समय पर अपने आप मिलता रहा।

११. एक बार एक नगर में श्री महाराज जी वर्षाकाल में ठहरे हुए थे। बहुत वर्षा हो रही थी और साधक चिन्तित थे कि महाराज जी का प्रवचन कैसे होगा। उन्होंने कुछ उदास होकर महाराज जी से प्रार्थना की कि ऐसी वर्षा में आप का प्रवचन कैसे होगा। महाराज जी ने कहा, "आप क्या चाहते हैं।" एक साधक बोला, "महाराज दूर-दूर से साधक आपका प्रवचन सुनने आये हैं।" महाराज जी बोले, "आप व्यवस्था करो, मैं आऊँगा।" साधक बड़े प्रसन्न हो, बाहर आए तो देखा वर्षा बन्द थी। बड़ी तीव्रता से आंगन का पानी निकाल कर दरियाँ बिछा दीं और ठीक समय पर प्रवचन तथा भजन कीर्तन हुआ। यह सारा समय वर्षा बन्द रही किन्तु बाकी दिन रात वर्षा होती रही। पूरा एक सप्ताह ऐसे ही वर्षा होती रही परन्तु प्रवचनों के समय केवल बन्द।

१२. सन् 1943 की बात है। एक देवी, जिसने श्री महाराज जी से दीक्षा ली थी किन्तु 'राम नाम' कुछ विशेष नहीं जपती थी, अपने परिवार को लेकर कश्मीर गई। उसके पति का देहान्त हुए एक वर्ष हुआ था और वह बहुत दुखिया थी। जब वह पहलगांव पहुँची तो घोड़ी वाले आ गए और सब बच्चे घोड़ों पर सैर को गए। उसकी एक आठ वर्ष की लड़की घोड़े की रकाब में फंस कर घिसटती गई। घोड़े वाले ने देखा नहीं। जब बहुत घायल हो गई तो उठा कर वापस उसके तम्बू में डालकर भाग गया। आठ-दस दिन उसका इलाज करके

उसके ऊपरी घाव ठीक हुए तो उसके एक कन्धे की दो हड्डियाँ टूटी हुई डाक्टर ने देखीं। तो उसने लड़की को श्री नगर ले जाने को कहा। वहाँ श्री नगर अस्पताल में उसे सात दिन रहना पड़ा और जब पलस्तर बंध गया तो दोपहर दो बजे की बस पकड़ी जिसमें 25 पुरुष और एक स्त्री भी बैठी थी। जब पहलगांव 13 मील रह गया, अकस्मात् बस खराब हो गयी। उसी समय वर्षा भी होने लगी और अंधेरा छा गया। किसी ने कहा थोड़ी दूर एक स्कूल का कच्चा कमरा है उसमें आप रात बिता लें। सब लोग वहाँ गये और वह देवी भी उनके साथ गयी। किन्तु कमरा इतना छोटा था कि 25 पुरुष सटक के कठिनाई से उसमें समा सके। वह देवी 33 वर्ष की थी। उसने वहाँ लेटना ठीक नहीं समझा। लड़की को लेकर किसी को बताए बिना वापस बस में आ गई। रात दस बजे बहुत वर्षा और अंधेरा, बिजली का जोर। वह बहुत भयभीत हुई और प्रभु से प्रार्थना की कि किसी पुरुष को पता न चले कि मैं अकेली इतनी रात जंगल में बैठी हूँ। एकदम उसके मुख से निकला कि जैसे द्रौपदी की लाज रखी थी, मेरी भी रखना। इतना कहना था कि अंधेरे में उसे श्री महाराज जी बस में खड़े दीखे। वह बड़ी चकित हुई कि श्री महाराज जी वहाँ कैसे? चार-पाँच मिनट बाद जो स्कूल के कमरे में सोने गए थे उनमें से कितनों को किसी जीव ने काटा। सब के सब वापस बस में भाग आए। सारी रात बस में कीर्तन होता रहा। प्रातः दूसरी बस आई और वे पहलगांव पहुँचे।

१३. 16 वर्ष के एक दीक्षित युवक में महाराज जी के दर्शन करने की बड़ी इच्छा थी। उन दिनों बाराखम्बा रोड एक साधक के घर में सत्संग होता था। जब वह वहाँ पहुँचा तो सत्संग की समाप्ति पर सूचना दी गई कि महाराज जी बंगलोरोड पर ठहरे हुए हैं जो दर्शन करना चाहें कर सकते हैं। वह एकदम साईकल उठा कर भागा क्योंकि मिलने का समय थोड़ा ही रह गया था। तीव्रता से साईकल चलाता हुआ

वह हाम्पता-हाम्पता पहुँचा। सामने महाराज जी के दर्शन किये किन्तु कुछ मिनटों में ही महाराज जी ने सब को उठा दिया और उसे अपने पास बिठा कर प्यार से हंसते हंसते कहने लगे "प्यारे! मैं तुम्हें बहुत याद करता था। तुम तो मुझे बिल्कुल याद नहीं करते होगे।" यह सुनकर बह रोने लगा। श्री महाराज जी ने उसे चुप कराया, पर उस का रोना बंद न हुआ। उन्होंने बहुत प्यार किया, समझाया और कहा, "प्यारे! चुप हो जाओ, हँसो। फूल खिला हुआ ही अच्छा लगता है।" यह सुनकर वह चुप हो गया और श्री महराज जी से आशीर्वाद लेकर वापस घर चला गया।

१४. एक साधिका का भाई सपरिवार छुट्टी लेकर उसके पास आया। श्री महाराज जी प्रतिवर्ष कुछ दिन डलहौज़ी रह कर कथा करते थे। जहाँ महाराज ठहरा करते उसी कोठी में साधिका को ठहरने की सुविधा मिल गई। अतः दोनों भाई बहिन ने सपरिवार वहाँ छुट्टियाँ बिताने का निश्चय कर लिया। जब जाने में एक दिन रह गया तो उस देवी ने देखा कि उसका भाई नौकर को ऊंचा ऊंचा बोलकर बहुत डाँट रहा था। उसने भाई से कहा कि डलहौज़ी में श्री महाराज जी का कमरा हमारे बिल्कुल पास होगा, वहाँ ऐसा मत करना। तब भाई ने उत्तर दिया कि मैं वहाँ पर उपले जला कर इतना धुंआ कर दूँगा कि उनकी आँखें दुखने लग जायें और वे आप ही वहाँ से चले जायें। यह सुन कर वह देवी बहुत दुःखी हुई। अगले दिन प्रातः जब वह भाई से मिली तो देखा उसके भाई की आँखें लाल थीं। कहने लगी कल श्री महाराजी जी के प्रति जो शब्द कहे थे उसी का यह फल है। इसी अवस्था में सब इसी दिन डलहौजी के लिये चल पड़े। जब वहाँ पहुँचे तो उसके चारों बच्चों की भी आँखें लाल हो गईं। सात दिन बाद जब श्री महाराज जी पधारे तब तक सब की आँखें ठीक हो गई थीं। दोनों देवियों ने प्रातः जा कर महाराज जी के दर्शन किये परन्तु भाई के डर से सायं काल नहीं गईं। दोपहर को उसके

भाई ने अपनी पत्नी से कहा कि महाराज जी शाम को साढ़े चार बजे चाय पीने आयेंगे। उसे पता नहीं लगा कि कब उसका पति महाराज जी के पास जा कर दीक्षा ले आया और उन्होंने उसके परिवार के साथ चाय पीने की स्वीकृति भी दे दी।

१५. एक देवी ने श्री महाराज जी से साधना सत्संग में आने की अनुमति माँगी। श्री महाराज जी ने पूछा तुम्हारे दर्द का क्या हाल है? उसने कहा अभी ठीक नहीं हुआ। महाराज जी ने कहा यदि ठीक होगा तो आना, अन्यथा नहीं। उसने कई डाक्टरों को दिखाया पर पसली का दर्द ठीक नहीं हुआ। सत्संग में केवल 20-25 दिन शेष रह गए थे तो वह रात को बहुत रोई। उसने श्री महाराज जी से प्रार्थना की कैसे सत्संग में आ सकूंगी। ऐसे ही रोते रोते वह सो गई। प्रातः चार बजे उसे अनुभव हुआ कि महाराज जी आए और कहने लगे देखो, भोजपत्र की फक्की बनाकर खाओ। उसने पूछा कितनी मात्रा में? उन्होंने कहा, 'क्या यह कोई बताने आयेगा?' इतने में उसकी नींद खुल गई। दिन चढ़े उसने पंसारी से चार आने का भोजपत्र मंगाया। उसको चीथू से चीथे तो चीथा न जाये, पीसे तो पीसा न जाये। उसने भोजपत्र को कढ़ाई में आग लगा दी तो राख बन गई। उस राख को एक चम्मच में डालकर दूध से खाकर बाहर आ कर बैठ गई। उसने देखा एक बूढ़ा पीले वस्त्र पहने और राम-राम लिखी चादर ओढ़े उनकी कोठी के अन्दर आ गया और कहने लगा आज संक्रांति है। फिर उस से बातें करते देवी ने पूछा, "बाबा जी, कोई भोजपत्र से भी दवाई बनती है?" उसने कहा, "हाँ, छत्तीस दवाइयां इसकी बनती हैं। देवी ने पूछा, "काहे के लिये?" उसने उत्तर दिया, "दर्दों के लिये आधा तोला राख दूध से खानी होती है।" उस देवी ने चार दिन खाई। उसका दर्द बिल्कुल ठीक हो गया। वह देहली आकर महाराज जी के दर्शन करने गई। श्री महाराज जी के पूछने पर बताया कि दर्द बिल्कुल ठीक हो गया है। श्री

महाराज जी ने पूछा, ''किस की औषधि से?'' देवी बोली, ''आप की औषधी से''। महाराज जी बोले, ''मेरी कैसे?'' देवी बोली, ''महाराज जी आप ने भोजपत्र बताया था।'' तो हंसते-हंसते उठकर अन्दर चले गए।

१६. एक साधक महाराज जी के दर्शन करने गया तो साथ में संतरे ले गया। जब संतरे महाराज जी को भेंट दिए तो उनको देखकर महाराज जी गुस्से से बोले, यह क्यों ले आये। यहाँ इनको खाने वाला कौन है? इनको थैलें में डाल लो। उसने थैले में डाल लिए पर मन में दुखी हुआ कि महाराज जी ने एक भी स्वीकार नहीं किया। इतने में एक सज्जन आये और श्री महाराज जी को अपने साथ एक टाँगे में ले गए। यह साधक भी अपनी साईकल पर उनके पीछे हो लिया। उसके मन की क्षुब्धता उस के मुख से श्री महाराज जी ने टाँगें में बैठे देख ली। टाँगा रोका, उसे बुलाया और कहा, ''लाओ संतरे। इनका प्रसाद बना देता हूँ। घर जाकर बच्चों में बाँट देना।'' उन संतरों पर हाथ फेरते हुए श्री महाराज जी ने एक संतरा निकाल लिया और कहा, ''ले जाओ इनको।'' वह साधक अत्यन्त प्रसन्नता पूर्वक घर लौट गया।

१७. श्री महाराज जी अपने नियमानुसार सन् 1954 में गुरदासपुर में एक सप्ताह निवास करके रेल से जाने वाले थे। साधक मंडल स्टेशन पर एक नदी प्रवाह की भाँति उनके दर्शनों को उमड़ आया था। श्री महाराज जी सबको आशीर्वाद देकर विदा कर रहे थे। एक साधक हाथ में रुमाल के अन्दर एक मिश्री का कूजा और उसमें थोड़ी सी इलाइचियाँ लेकर प्रयास कर रहा था कि श्री महाराज जी तक पहुँच कर उन्हें भेंट करे। किन्तु गाड़ी चलने का समय हो गया और श्री महाराज जी ने गाड़ी में सवार हो दरवाजा बन्द कर लिया। गाड़ी चल पड़ी और वह साधक निराश होकर व्याकुल हो गया और गाड़ी के साथ साथ चलने लगा। अकस्मात् गाड़ी चलते-चलते रुक गई और श्री महाराज जी मन्द मुस्कान से दरवाजा खोल

खड़े हो गए। वह साधक उनके सामने इलाइचियों वाली मिश्री लेकर खड़ा था। श्री महाराज जी ने दोनों हाथ उसके कन्धों पर रखते हुए उन्हें प्रेमपूर्वक स्वीकार किया और एक सेवक को, जो पास ही खड़ा था, आवाज दी, "लो भाई, जरा इसको तोड़ दो।" तोड़ा हुआ एक टुकड़ा और एक इलाइची श्री महाराज जी ने ले ली और शेष साधक समूह में बाँटने का आदेश दिया। तत्पश्चात् तुरन्त अपनी सीट पर जा बैठे।

१८. एक साधिका जब भी घर से निकलती, श्री महाराज जी को प्रणाम कर के और उनका आशीर्वाद लेकर। एक बार उसे बहुत जल्दी में स्टेशन जाना था जिस कारण वह ऐसा करना भूल गई। जब वह स्टेशन को जा रही थी तो अकस्मात् उसे अपनी भूल अनुभव हुई। उसे हार्दिक दुख हुआ। यदि वह वापस जाए तो गाड़ी छूट जाती। इसी पश्चात्ताप में वह स्टेशन की ओर जा रही थी कि उसने देखा कि एक दूसरी कार में जो उसकी कार के आगे जा रही थी स्वयं महाराज जी विराजमान हैं। स्टेशन पहुँचने पर अपने डब्बे में सामान रखकर वह महाराज जी के पास उनके दर्शन करने आई और उनका आर्शीवाद प्राप्त किया।

१९. सन् 1954 में श्री महाराज जी की जन्म तिथि पर पंचरात्रि का साधना सत्संग उनकी अनुमति से दिल्ली में लगा। इस निमित्त एक परम सेवक ने अपनी सारी कोठी खाली कर दी। पहली रात काफ़ी गर्मी थी। अप्रैल का महीना था। रात काफ़ी असुविधा से बीती। प्रातः काल जब साधक गण श्री महाराज जी के साथ बाहर जाने लगे, महाराज बोले, "रात बहुत गर्मी थी। आप लोगों को नींद कैसे आई होगी"? साधक गण बोले, "महाराज ! आप की कृपा से सब ठीक ही रहा।"

दूसरी रात जब आई तो इतनी सर्दी हो गई थी कि सब ने कम्बल और मोटे वस्त्र ओढ़े। प्रातः वायुसेवन करने जाते समय ऊनी स्वेटर पहनने पड़े। और यह स्थिति पूरे पंचरात्रि सत्संग में रही। किन्तु श्री महाराज जी ने एक बार भी अपने

मुखारविन्द से इस ऋतु परिवर्तन पर कोई वार्तालाप नहीं किया। इस घटना से स्पष्ट होता है कि उनकी शक्ति कितनी महान थी और वे प्रार्थना बल से ही क्या कुछ नहीं कर सकते थे।

२०. एक सज्जन महाराज जी के पास आए और बोले, "महाराज जी। ध्यान नहीं लगता। कई एक महात्माओं के पास गया हूँ। कोई कहता है शिव का ध्यान करो, कोई कृष्ण का और कोई राम का ध्यान बताते हैं।मैं किस का ध्यान करूं?" महाराजी जी हंस पड़े और बोले, "एक लड़की अपनी माँ को कहने लगी, माँ, जब मैं मन्दिर जाती हूँ तो लोग मेरी ओर देखते हैं" माँ ने कहा, "बेटी मन्दिर जाया ही न करो।" यदि तुम महात्माओं के पास जाना ऐसा विघ्नकारी समझते हो तो उनके पास न जाया करो। जो तुमने पूछा उसका उत्तर तो यही है किन्तु इसका उचित उपाय भी है, " ऐसा कहकर श्री महाराज जी दूसरी ओर देखने लगे। और अगले दिन अपने कार्यक्रम के अनुसार चले गए। वह सज्जन श्री महाराज जी से प्रभावित तो बहुत था किन्तु महाराज जी के पास जाने का साहस नहीं होता था। कुछ समय बाद उसने निश्चय किया कि महाराज जी के दर्शन करे और तदर्थ वह साधना सत्संग नांगल में सम्मिलित हुआ। जब वह नांगल साधना स्थान पर पहुँचा तो श्री महाराज जी ने उसे देख लिया और कहा आप ने जब मैं आपके नगर में आया था तब नाम क्यों नहीं लिया। यहाँ इतनी दूर पहुँच कर कष्ट उठाया। अश्रु भरे नेत्रों से वह बोला, महाराज संयोग नहीं था। यथा समय श्री महाराज जी ने उसे दीक्षा दी।

(v) त्रिकाल दृष्टि

१. एक दिन श्री महाराज जी के सम्मुख एक साधक बैठा था। अकस्मात् श्री महाराज जी ने हाथ उठा कर अंगुली से गोल चक्कर बनाते हुए बड़े गद्गद् भाव से कहा, "राम नाम तीनों लोक में गूँज रहा है। मुझे स्पष्ट दीख रहा है कि वह बड़ा कल्याण कर रहा है।" श्री महाराज जी ने ये शब्द ऐसे निश्चय और भाव से कहे कि वे उस साधक के अन्दर घर कर गए। अब जब भी अमृत वाणी का पाठ होता है और यह पंक्ति आती है "होता तीनों लोक में राम नाम गुण गान" तो उस साधक को महाराज जी के वे शब्द याद आ जाते हैं। तथा वह समय, वह स्थान और वह भाव उसके सामने एक चित्र रूप में आ जाते हैं और उसे रोमांच होने लगता है।

२. एक देवी को श्री महाराज जी पर बड़ी श्रद्धा थी। उसका बेटा नौकरी पर जाते समय श्री महाराज जी के निवास स्थान पर अपनी माँ को छोड़ देता और दोपहर को लौटते समय उनको वापिस ले आता। पर स्वयं श्री महाराज जी के दर्शन करने अन्दर नहीं जाता था। एक दिन श्री महाराज जी ने उस देवी से पूछा, "तुम्हें कौन लाता है और ले जाता है?" उसने उत्तर दिया, "मेरा एक ही बेटा है जो भारत सरकार में एक ऊँचे पद पर है। वही मुझे अपनी कार में लाता है और खाने के समय वापिस ले जाता है। मेरी बड़ी सेवा करता है।" श्री महाराज जी ने कहा, "कल रविवार है, उसे कहना थोड़ा समय निकाल कर मुझे मिले। मुझे उससे कोई काम है।"

उस लड़के को रविवार को देर तक सोने की आदत थी पर उस दिन यह सोचकर कि उसे श्री महाराज जी ने बुलाया है प्रात:काल ही तैयार होकर अपनी माता जी के साथ महाराज जी से मिलने चल पड़ा। उस देवी ने महाराज जी से अपने पुत्र का परिचय करवाया और वह महाराज जी को नमस्कार करके उनके सामने बिछे गलीचे पर बैठ गया।

श्री महाराज जी ने उसकी ओर बड़े ध्यान से देखा और थोड़ी देर देखते रहे। फिर मुस्कराये। फिर उसके सिर पर हाथ रखा। खड़े हो गए और बहुत प्यार से बोले, "अपनी माता जी को यहीं बैठा रहने दो और तुम मेरे साथ मेरे कमरे में आओ।" जब वे अपने कमरे में पहुँचे तो उन्होंने उस व्यक्ति को गले लगा कर बहुत प्यार किया और कहा, "पिछले जन्म में तुम मेरे बहुत प्यारे मित्र थे। मुझे पता नहीं था कि तुम मुझे इस जन्म में भी मिलोगे। मैं तुम्हें फिर मिल कर गद्गद् हो गया हूँ।" इनके इस प्रकार कहने का उस पर बहुत प्रभाव हुआ और वह उनके पाँव में गिर कर रोने लगा। महाराज जी ने उसे प्यार से सामने बिठाया और नाम दान दिया। जब घर जा कर उसने अपनी माता को यह सब कुछ बताया तो वह बड़ी प्रसन्न हुई और अपना जन्म धन्य माना। उस दिन से उसके लड़के का जीवन बदल गया और उनका घर एक मन्दिर बन गया।

३. जलन्धर में श्री महाराज जी एक बार एक साधक की कोठी पर अपने आप गए। उस साधक को बाद में पता चला कि श्री महाराज जी जिसके घर अपने आप जाते हैं वहाँ प्रभु प्रेरणा से जाया करते हैं। उसकी छोटी लड़की को देखकर श्री महाराज जी ने पूछा, "इस लड़की की शादी कब करनी है?" उसने उत्तर दिया, "महाराज जी, इस लड़की का कद इतना छोटा है कि कोई योग्य वर इसके लिये नहीं मिलता। हम कितनी देर से इसके लिये प्रयत्नशील हैं और कुछ चिन्तित भी इसी कारण रहते हैं"। श्री महाराज जी ने उस बालिका की ओर कुछ देर देखा। फिर बोले, "सब कुछ भगवान के हाथ में है। यदि वह चाहे तो दस दिन के अन्दर बिना आप के ढूंडे लड़का अपने आप आपके घर आ जाये"। फिर जोर से हँसने लगे।

एक सप्ताह बाद उसका एक पड़ोसी मित्र उसके घर आया और बोला कि मेरा एक मित्र अपनी पत्नी और लड़के सहित कलकत्ता से अपने लड़के के लिये कोई योग्य लड़की ढूँढने

आया है और मेरे पास ही ठहरा है। तुम अपनी बेटी के लिए बात क्यों नहीं चलाते? इसने उसके घर जाकर लड़के को देखा ओर कहा, लड़का इतना लम्बा है, कि उसकी लड़की के कद से उसका कद दुगुना है भला वह क्यों मानने लगा? इसकी पत्नी ने कहा, "प्रयत्न करने में क्या हर्ज है।" तत्पश्चात् वह लड़के के पिता से मिला और उन्हें अपनी लड़की से मिलाया। उन्होंने लड़की को पसन्द कर लिया और बात पक्की हो गई।

श्री महाराज जी ने जो कहा था वह सच निकला।

४. एक साधक का एक ही बेटा कॉलिज पढ़कर आया तो वह उसे श्री महाराज जी के पास नाम दान के लिये ले गया। श्री महाराज जी ने उसे पूछा, आगे और पढ़ना है क्या? कौन सी पढ़ाई आगे करनी है? उसने उत्तर दिया, महाराज, एक ज्योतिषी से मेरे पिताजी ने मेरी जन्म पत्री बनवाई है जिसके अनुसार 28 वर्ष की आयु में मैं राम को प्यारा हो जाऊंगा। यह जानकर न तो मेरा आगे पढ़ने को जी करता है और न किसी काम में मन लगता है।" यह सुन कर श्री महाराज जी ने उस साधक की ओर इतने क्रोध से देखा कि वह काँप उठा। उन्होंने गंभीर और ऊंचे स्वर में कहा, "राम नाम जपने वाले कभी ज्योतिषियों और जन्म पत्रियों में विश्वास नहीं करते।" उस साधक ने निवेदन किया, "न जाने इसने अपनी जन्म पत्री कब देख ली?" श्री महाराज जी ने उस साधक पर अपनी अप्रसन्नता प्रकट की और थोड़ी देर बाद बड़े प्रेम से उसके बेटें को अपने उस कमरे में ले गए जहां वे प्रतिदिन ध्यान करते थे। वहां उन्होंने उसे विश्वास दिलाया कि यह जो ज्योतिषी की बात है एक दम गलत है। उसे नाम की दीक्षा दी और प्रतिदिन राम नाम की एक माला जपने को कहा। फिर उस साधक को भी अन्दर कमरे में बुलाया और कहा कि तुम दोनों दम्पति इस बच्चे के लिये पांच पांच लाख का नाम जाप करो। राम नाम सब संकट और विघ्न विनाशक है। रामकृपा से उस बालक ने दीर्घ आयु प्राप्त की।

५. एक सेवक को सन् 1959 में श्री महाराज जी ने आदेश दिया कि वे 'कार्तिक माहात्म्य' के विषय में कुछ चर्चा करना चाहते हैं। वह एक शास्त्री को ले आया जिसने श्री महाराज जी को 'कार्तिक माहात्म्य कथा' पढ़कर सुनाई। श्री महाराज जी मन्द मुस्कान के साथ सुनते रहे और अन्त में बहुत संतोष प्रकट किया। पर उस सेवक को यह समझ नहीं आई कि श्री महाराज जी ने क्यों एक विशेष महीने का माहात्म्य सुना। सन 1960 के कार्तिक में जब श्री महाराज जी ने भौतिक कलेवर का त्याग किया तब उसे समझ आई कि एक वर्ष पूर्व ही श्री महाराज जी ने शरीर त्याग की तिथि जान ली थी।

६. रामायणी सत्संग, हरिद्वार में एक दिन श्री रामायणसार के पाठ में तीन चार बार 'सनातन-धर्म' शब्द आया। एक साधक के विचार में शंका पैदा हुई कि रामायण-सार श्री महाराज जी ने तब लिखी थी जब आर्य समाज के कार्यकर्ता थे। इसलिए उसे विचार आया कि 'सनातन धर्म' के स्थान पर 'आर्य धर्म' अथवा 'वैदिक धर्म' लिखना चाहिये था। उसको श्री महाराज जी से यह पूछने का साहस नहीं हुआ। परन्तु श्री महाराज जी ने रात्रि के सत्संग में जब उस दिन के पाठ पर अपने भाव रखे तो कहा कि आज के पाठ में तीन चार बार 'सनातन धर्म' शब्द आया है। यह शब्द मैंने अपनी ओर से नहीं लिखा अपितु जैसे महर्षि बाल्मीकि जी ने अपनी लिखित रामायण में लिखा है उसी प्रकार मैंने लिख दिया है। फिर उस साधक का नाम लेकर कहा कि चाहे वह साधक अपने मन में कुछ भी सोचता फिरे। उन्होंने दो बार यह शब्द उसका नाम लेकर कहे। दिल की बात बिना बताये कहना और इतने स्पष्ट शब्दों में, इससे श्री महाराज जी के मन की उच्च स्थिति स्पष्ट होती है।

७. एक बार एक अच्छे साधक की पत्नी अस्वस्थ हुई और वह उसे हस्पताल ले गया। वहाँ उसे बहुत कष्ट था तो उसने वहीं पर श्री महाराज जी का ध्यान किया। उसे दर्शन हुए और

ऐसा अनुभव हुआ कि श्री महाराज जी उससे पूछ रहे हैं कि उसकी पत्नी कौन से कमरे में है? वह उन्हें उस कमरे में ले गया और उन्होंने कहा कि जाप करो, ठीक हो जायेगी। उसे बड़ा सहारा मिला और तत्क्षण जाप प्रारम्भ कर दिया। वहां नर्स आदि आती थीं और माला देखकर हंसती थीं। किन्तु उसे ऐसा लगता था कि सहन करने और नाम का जाप करने से सब ठीक हो जायेगा। दो तीन दिन के बाद वह बिल्कुल ठीक हो गई। तीव्र भावना से राम नाम जपने से उसी समय लाभ होता है।

८. एक परम सेवक प्रतिदिन 'अमृतवाणी' का पाठ करते थे। किन्तु थोड़ा पाठ अशुद्ध था जिसका उसे पता नहीं था। एक दिन स्वप्न में उसे श्री महाराज जी के दर्शन हुए। महाराज जी बोले कि अमृतवाणी का अन्तिम श्लोक बोलो, तो उसने बोला—

अमृत वाणी का नित्य गाना,
राम राम मन बीच समाना

श्री महाराज जी ने एकदम टोक दिया और बोले ऐसा नहीं। फिर शुद्ध तीन बार मुस्कराते हुए बोले—

राम राम मन बीच रमाना

'समाना' नहीं। जब उसने ठीक उच्चारण किया तो श्री महाराज जी आशीर्वाद देकर लुप्त हो गए।

९. एक बार एक साधक को जिह्वा फालीन रोग हो गया। बोलते समय उसकी ज़बान अटकती और ठीक उच्चारण नहीं कर सकता था। इस कारण उसके व्यापार में भी बाधा पड़ी। मन में अत्यन्त दुःखी, हर समय उदास, निराशा के भाव यहाँ तक कि आत्म हत्या की भी सोचने लगा। सौभाग्य से एक साधना सत्संग में आया तो वहां एक प्रवचन में महाराज जी ने बतलाया कि राम जाप से केवल मनुष्य के मानसिक ही नहीं शारीरिक और भौतिक रोग भी समाप्त हो जाते हैं। और यह

भी बताया कि पूर्व जन्म के कर्मों के रोग तो राम नाम के जाप से ही समाप्त होते हैं। उसे बड़ा आश्चर्य हुआ कि उसके मन की सारी स्थिति को श्री महाराज जी ने कैसे जान लिया। उसे बड़ी शान्ति मिली और जो वह महाराज जी से पूछना चाहता था उसे उसने पूछा ही नहीं, वह उसे प्रवचन में ही उत्तर मिल गया।

१०. साधना सत्संग हरिद्वार में जो श्री महाराज जी के जन्म तिथि पर लगता था। उसके अन्तिम दिन महाराज जी ने अपने प्रवचन में वर्णन किया "साधक को एक निष्ठा से भगवान की उपासना करनी चाहिये। ऐसे ही तल्लीन होना चाहिये जैसे पतिव्रता स्त्री अपने पति की सेवा में लीन होती है अथवा जैसे माता अपने पुत्र की शुश्रूषा में लीन होती है, आदि।" जैसे ही श्री महाराज जी ये शब्द उच्चारण कर रहे थे, साधकों ने देखा महाराज जी ऊपर की ओर देखने लग गए। ऐसा प्रतीत हुआ मानो साधकों के पीछे किसी ऊँचे स्तर पर महाराज जी को किसी ने आकृष्ट किया। महाराज जी के मुखारविन्द पर तेज सहस्त्रों गुणा बढ़ गया। अश्रुपात की झड़ी लग गई। महाराज जी ने अपना विह्वल भाव बड़ी तीव्रता से रोका। अश्रुओं को पोंछा और आगे बोलना शुरु किया।

श्री महाराज जी ने पहले कई बार स्वरुपों की उपलब्धि के सम्बन्ध में वर्णन किया था संभवतः इस बार श्री श्री महाराज जी को ऐसी ही उपलब्धि उनके जन्म तिथि के उपलक्ष में हुई थी। जिसकी एक छटक उपस्थित साधकों को अश्रुपात तथा रोमांच के रूप में हुई थी।

११. श्री महाराज जी एक बार लाहौर में दो साधकों के साथ ऊपर से नीचे उतर रहे थे। अकस्मात् महाराज जी सीढ़ियों में बैठ गए। यह विचार करके कि शायद महाराज जी को चक्कर आ गया है या शरीर में किसी और प्रकार का विकार है, एक साधक उनको देखने के लिए आगे बढ़ा किन्तु दूसरे ने संकेत से उसको रोक दिया और कहा, "महाराज जी इस समय

ध्यानावस्थित हो गए हैं। उनको ऐसे ही नेत्र मूँद कर बैठा रहने दो। कुछ समय पश्चात् महाराज जी ने आँखें खोली और यथा स्वभाव मन्द मुस्कान के साथ उठ खड़े हुए।

१२. एक उत्साही साधक अपने निकटवर्तियों को श्री महाराज जी के पास नाम दीक्षा के निमित्त ले जाया करता और उन का परिचय देते समय उनकी प्रचुर प्रशंसा करता। श्री महाराज जी ने एक दो बार तो सुना किन्तु बाद में कहने लगे, "तुम जिस नये व्यक्ति को लाते हो उस का केवल मुझे नाम बता दिया करो। बाकी मुझे उसे देखते ही पता चल जाता है। साधक को बड़ा आश्चर्य हुआ और पूछने लगा कि उसे यह बात समझ नहीं आई। श्री महाराज जी ने हंसकर कहा, "अरे! तुम किसी भी व्यक्ति को लाओ और उस को पूरा छुपाकर केवल उसकी ठोड़ी दिखा दो। तो उसी से मैं तुम्हें उस का पिछले तीन जन्मों का चरित्र बता सकता हूँ। फिर पूरे व्यक्ति को देखकर तो उस का चरित्र जान लेना तो बहुत ही सरल है।" यह सुनकर साधक नतमस्तक हुआ और धन्य मानता चला गया और फिर नये व्यक्तियों का केवल नाम ही बताया करता। अधिक कुछ किसी व्यक्ति के विषय में कहने का साहस नहीं किया।

आशीर्वाद

(पत्रों में से उद्धृत)

१. ध्यान स्मरण आदि को भी न छोड़ियेगा। मनुष्य जन्म की सफलता इसी में है। ऐसा उत्तम और सुगम मार्ग मिलना यहां दुर्लभ है।

२. निश्चय के साथ आराधन करते रहिये।

३. मुझे निश्चय है कि आप अपने कामकाज में अच्छी उन्नति कर रहे हैं। कोमल स्वभाव और पूरा परिश्रम—ये साधन सफ़लता को अवश्य समीप ले आते हैं। काम को मन लगाकर करने का लक्ष्य फल की अपेक्षा उत्तम है। फल तो स्वयं हुआ करता है। उस को लक्ष्य बनाना उचित नहीं होता। साधन को करते रहियेगा।

४. आप की कष्ट कथा जानकर कर्म गति का ही ध्यान आया। प्यारे! संसार में शुभाशुभ फल भोगने ही पड़ते हैं। इससे आज तक कोई भी मनुष्य नहीं बच सका। केवल धैर्य और भगवान का भरोसा ही साहस का कारण हुआ करता है। सम विषम उपभोग सहन करने में सुख समझा जाता है। मन को सम रखने का यत्न ही उत्तम पुरुषार्थ है। उत्तम पुरुषार्थ ही शान्ति और मानस सन्तुष्टि का सर्वश्रेष्ठ साधन है। मनुष्य को इस बात में यदि संतोष हो कि उसका जो कर्तव्यकर्म था उसने उसको भली प्रकार पालन कर लिया है तो फिर उसे किसी प्रकार की चिन्ता चित्त में नहीं आने देनी चाहिये। पांच भूतों की कोटि में घिरा हुआ यह प्राणी न तो सर्वज्ञ ही है और न ही सर्वशक्तिमान। इस के अधीन केवल कर्तव्य पालन है। ईश्वर आपको अपना भरोसा दान दे।

५. आप भजन ध्यान करने के समय यह संकल्प कर लिया करें कि यह भजन ध्यान आपको सुख, स्वास्थ्य तथा प्रसन्नता देने वाला है। इस से आप का मस्तक, हृदय और सारा शरीर बहुत ही सुखी हो जायेगा। ऊपर के विचार से आप का बहुत

लाभ होगा और विघ्न सर्वथा दूर हो जायेगा।

६. आशा है आप सब विघ्नों से मुक्त होकर अपने चिन्तन, स्मरण और ध्यान में समय देते होंगे। भगवान विघ्नविनाशक और मंगलकारी है। नाम का भरोसा दोनों लोकों में काम आता है। इस भरोसे वाला जन कालान्तर में भवसागर से अवश्यमेव पार पा जाता है। भगवद्भक्त का नाश और दुष्ट जन्म कदापि नहीं होता। भगवान के नाम को हृदय में स्मरण करते समय अपने आप को अपने ज्ञान, विज्ञान, वुद्धि, बल सहित परमेश्वर की चरणशरण में समर्पण करके निश्चिन्त हो जाना ही परम भरोसा है।

७. आप भजन ध्यान करते रहें और श्री राम पर भरोसा रखें। वह ही एक सहारा है।

८. भजन ध्यान करते रहिये। इससे चुपचाप अपने आप मनोविकास भीतर होता रहता है।

९. अधिक भावना से आराधन करते जाइये।

१०. मन को अशान्त नहीं रखना चाहिये। विवेक, विचार और नामजप से मनके दुःख दूर कर दिया करो।

११. साधन करते रहिये। मानव जीवन का यही उत्तमसार है। अपने स्वास्थ्य का अवश्य ध्यान रखा करें।

१२. आप ध्यान स्मरण करते रहिये। अन्य जो भी कुछ होता है उसे साक्षीरूप से जानते जाइये।

१३. हृदय के ऊपर एक प्रकार का विघ्न उपस्थित होने पर, "राम नाम जपते हुए अपना हाथ हृदय पर फेरते रहिये। सब ठीक हो जावेगा। निश्चय पूर्वक करिये, भरोसा रखिये, राम भली करेंगे।"

१४. मेरा शुभसंकल्प आपके साथ है।

१५. आप अपनी चिकित्सा करते रहिये। सावधानी बड़ी वस्तु है। राम मन्त्र भी जपते जाइये।

१६. आप का व्यवहार और परमार्थ भली प्रकार चल रहा होगा। ऐसे शुभ अवसर से लाभ लेना ही चाहिये।

१७. आप के नित्य नियम निभ रहे होंगे, ऐसी आशा है। अधिक कमाई करने का यही शुभ अवसर है। इस से सुलाभ लेना ही चतुरता है।

१८. आप के भजन, पाठ, साधन, सत्संग चला रहे हैं, ऐसा मुझे निश्चय है।

१९. सत्संग का कार्य उत्तम है। इस का संचालन करते रहिये।

२०. अन्य सज्जनों के विरोध का कोई विचार न करिए। अपनी ओर से उनके लिए शुभ कामना करनी ही उचित है। यह राम का काम है, किसी का निजी नहीं है। राम किस जन से कितना काम लेना चाहते हैं, यह वे स्वयं जानते हैं। अपने कार्य का अभिमान नहीं होना चाहिए।

आप ध्यान जाप करते रहें।

चतुराई से काम करो। बिना विचारे, किसी से अधिक सम्बन्धित हो जाना राम प्रेमी के पथ में बाधा डाल देता है।

२१. आपका राम कार्य तो अत्युत्तम है। जप, कीर्तन बहुत प्रशंसनीय है। ऐसे उत्तमोत्तम कार्यों को करते हुए जीना ही वास्तव में जीना है। ऐसा भागवत जीवन, देव दुर्लभ जीवन है। आपको किसी पूर्व पुन्य के प्रभाव से प्राप्त हुआ है। श्रीराम कृपा आप पर सदा बनी रहे।

मैं आप सब के कल्याण की कामना करता हूं।

२२. आप मेरे स्वास्थ्य की जितनी चिन्ता करते रहते हैं, उसका मैं अति आभारी हूं। आप दोनों के लिए मेरी मंगल कामना स्फुरित होती ही रहती है।

श्री राम ने अपना कार्य आपको सौंपा है। उसको समर्पण भाव से और निरहन्ता पूर्वक करते जाईए। श्रीराम कृपा आप पर बनी रहे।

श्रीमती... को अपनी भावना भगवान में अखण्ड रखनी चाहिए। डोलना, परमार्ग अन्वेषण करना साधक के लिए हितकर नहीं होता। यह उपदेश है।

२३. आपका काम तो श्रीराम का काम है

उतना होता ही जायेगा। संसार बहुत बड़ा है। उसमें सबके लिए स्थान है। आप अपने कार्य को तत्परता से करते जाइए और अपने आपको श्रीराम का यंत्र ही समझिये।

मुझे हर्ष है कि आप स्वात्मा में सन्तुष्ट हैं। निश्चय में पक्के हैं। अनन्य राम भक्त हैं। और राम कृपा के पात्र हैं। इतना ही पर्याप्त है कि आप अपने आपको किसी अन्य सज्जन उपासक से कम समझ कर उसकी इच्छा के अधीन न बन सके।

आपके संकोच का मुझे ज्ञान है। वह एक गुण ही है।

२४. रामेच्छा से सब कार्य चल रहे हैं। यही भावना बनी रहनी उचित है। आप चिन्ता को, शोक को, मोह को और मानस दौर्बल्य को जीतने की चेष्टा किया करें।

२५. धैर्य और शान्ति से काम लो। इस संसार में दुःख दर्द तो है ही। उनको सहन करना ही होता है। इन से भाग कर कोई कहां जायेगा। घबराओ नहीं। भगवान पर भरोसा रखो। विश्वास दुर्बल न बनाओ। परमात्मा आप को बल दे।

२६. जो भूल आदि के हो जाने पर आपके चित्त में उच्चाट उत्पन्न हो जाता है, उसके होने पर जाप करने लग जाया करो। पुस्तक पाठ करिए, राम राम बोलकर जपिए, भगवान के शान्तिमय स्वरूप का चिन्तन कीजिए।

श्रीमती देवी जी की अवस्था उत्तम है। स्वरूपों के दर्शन भगवान की विभूतियों के परिचय हैं और उन्नति–परिचायक चिन्ह है।

२७. यह सृष्टि ईश्वर से संचालन होती है। इसी समझ में सुख तथा शान्ति है। यही निश्चय रखना उचित है। धैर्य से रहो।

२८. मुझे तो केवल यही कहना है कि मेल–जोल और प्रेम पूर्वक कार्य करने में अधिक लाभ होता है। यह कार्य श्री राम का है। न जाने भगवान किससे कितना काम लेना चाहता है। कभी–कभी परीक्षा भी, धृति की, शान्ति की, विश्वास की,

समर्पण की तथा कार्यपरता की राम किया करते हैं। सो आप भी पक्के रहिए।

२९. औषध खाते रहिए। "राम" मंत्र से सब विघ्न दूर हो जाते हैं। उपद्रव भी नहीं रहते। निश्चय करो। राम सहायता करेंगे। जप अधिक करिए।

३०. अपने स्वास्थ्य को सुरक्षित रखना– यह भी मनुष्य के लिए बड़ा कर्तव्य है।

३१. मानव देह कर्मफल भोगने का स्थान है। यही स्मरण रखने योग्य वार्ता है।

३२. स्थिर चित्त से और निःस्वार्थ भाव से कार्य करते जाइए। श्री राम पर निर्भर रहिए।

३३. पर वे दुर्बल होंगे। इसलिए उनकी सेवा में रहना प्राथमिक कर्तव्य है। आप हरिद्वार में होने वाले चैत्री सत्संग में न आइएगा।

३४. निराश न होइएगा और घबराइए भी नहीं। उत्साह और धैर्य से रोग दूर हो जाया करते हैं। चिकित्सा ठीक होनी चाहिए।

३५. जीवन से जितना भी शुभ बन सके, उतना ही बनना चाहिए।

३६. आप सब व्यास पूर्णमासी का पावन पर्व, जप, ध्यान, पुण्य पाठ तथा प्रीति भोजन आदि से मनाओगे। यह एक श्रेष्ठ प्रकार है। यह पुनीत पर्व, आप सब में ज्ञान वृद्धि का, राम भक्ति का, कर्तव्य पालन का, उच्च विचारों का, आत्म जागृति का समुदय करे। आप सब में सद्‌भावों की स्फूर्ति हो।

३७. आप भजन ध्यान करते रहें। संसार तो परिवर्तनशील बना ही रहेगा। राम नाम का आराधन ही मंगलकारी और सुखद है।

३८. सत्संग के काम राम के काम हैं। वह तो राम आप ही करेगा इसकी चिन्ता करनी अनुचित है।

३९. मैं समझता हूं कि आप भली प्रकार काम कर रहे होंगे और सत्संग तथा जाप भी चलते रहते होंगे। सत्संगियों में उत्साह बढ़ाते रहा करो। इससे काम अधिक फूलता–फलता रहेगा।

४०. श्री राम नाम का प्रचार जितना अधिक कर सको, करते रहो। यह एक उत्तम कर्म है।

४१. राम का कार्य करने का अवसर पुण्योदय से ही प्राप्त हुआ करता है।

४२. राम का यंत्र बन कर तत्परता पूर्वक काम करते जाइए। अपने आपको श्री राम का ही मानिए। कार्य को तो वह स्वयमेव करता है।

४३. श्री राम की प्रीति, श्रद्धा और विश्वास अधिक से अधिक बढ़ाईए। इस मार्ग में यही एक सार और कर्म का रहस्य है। पिछले कामों को भूला करो, अबेर–सवेर तो घूमने वालों के सामने आया ही करती है। बीती बात को बड़ा रूप देकर मानस कष्ट की वेदना भोगना भक्तों के भावों के विपरीत है। बीते समय का शोक करना उचित नहीं होता। मुझे कोई कष्ट उस दिन नहीं हुआ था। काम आप करते जाइए। परिणाम परमेश्वर पर छोड़िए। फलाफल उसी के अधीन समझिए। आप तो एक साधन के रूप में काम करते जाओ। काम उसीका है।

जो पथ आपको दिया गया है, वह उत्तम है। उस पर चलते–चलते चले जाओ यही एक पुण्य कार्य है।

प्रचारक

यह हर्ष समाचार है कि आप प्रचार कर रहे हो। प्रचारक पद तो आपको दिया ही गया था।

राम नाम के प्रचारक को शान्त, सुशील, सभ्य, सज्जन, साधु स्वभाव का होना चाहिए।

वह निन्दक न होवे। मान कीर्ति से दूर रहे।

निस्वार्थता से काम करे।

राग द्वेष को जीते और वासना विजय करे। श्रीराम आश्रय रहना ही प्रचारक का कर्तव्य है।

श्रीराम आपका सहायक हो।

यह बात सच जानिए कि श्रीराम अपना काम जिससे जितना लेना चाहता है, उससे उतना ही बन पड़ता है।

मनुष्य की कामना तो कई कारणों से बहुत होती है। परन्तु राम जानते हैं कि किस काम के योग्य और कितने काम के योग्य कौन व्यक्ति है। ऐसे निश्चय से धैर्य, शान्ति और राम भरोसा बढ़ता है।

आप "प्रार्थना और उसका प्रभाव" इस नाम की पुस्तक का मनन करते हैं। यह उत्तम बात है। उसको जीवन में बसाना बहुत ही आवश्यक है। ऐसा किए बिना काम करने वाले का जीवन बल शक्तिहीन बना रहता है।

४४. आप के लिये शुभ कामना सदा बनी रहती है। परमेश्वर श्रीराम आप को सुख स्वास्थ्य में रखे।

आप नित्य भ्रमण तो करते ही होंगे। स्वास्थ्य का नियम भी पालन करना ही चाहिये। नामाराधन भी करते रहा करो। इसमें आलस्य प्रमाद करना उचित नहीं होता। चित्त में चिन्ता की चिंगारी चमकने देना हानिकर है। मन को प्रसन्न रखना एक बड़ा कौशल और सुखी रहने का गहरा रहस्य है। अपने मानस बाग़ के कुसुमों को कुम्हलाने देना हितकर नहीं होता।

प्रार्थना

परमात्मा श्री राम, परम सत्य, प्रकाश रूप, परम ज्ञानानन्द स्वरूप सर्वशक्तिमान् , एकैवाद्वितीय परमेश्वर, परम पुरुष, दयालु, देवाधिदेव तुझे बार बार नमस्कार, नमस्कार।

देव! तू सर्वत्र विद्यमान है, तेरी सदा जय जयकार हो। परमेश्वर! इस जगत जाल में हम मछली के समान फंसे हुए हैं। तेरे नाम से ही इस जाल से छुटकारा हो सकता है। रूप तो सदा रहने वाले नहीं। रूप की पहचान भी नाम के बिना नहीं। तेरे नाम

में हमारी धारणा पक्की रहे।

परमेश्वर! अब यह वरदान दीजिये कि भगवती भ
भक्ति हम सब के मन में प्रवाहित हो। तेरे और हमारे में जं
है उसको नाम ही दूर कर सकता है। हे राम! इस भावन
तेरा आराधन करते हैं। देवाधिदेव! हम तेरे देखते हुए
भूलें करते हैं। आप अपराधों को सदैव क्षमा करते आए हैं
अपराधों को, त्रुटियों को भी क्षमा करना।

श्री राम! हम सब में बसने वाला तू ही माता पिता है
त्रुटियों को देखते हुए तो तेरे दरबार में बैठने के हम अ
नहीं। आन्तरिक वस्त्र मैले कुचैले रखते हुए तेरे सामन
आती है। परन्तु बालक जब गन्दा होता है और नाक ब
फिर भी माँ बच्चे को इस दशा में छाती से लगा लेती
बालक समान हैं, हमें मलिन देख कर भी कृपा करो।

हमारा पूजन, कर्मकांड, यज्ञ, ध्यान, सब आप को सम
स्वीकार करो, स्वीकार करो।

आरती उतारने की पुरानी प्रथा है। वैसे तो सारा संस
आरती उतार रहा है फिर भी श्रद्धा और प्रथा अनुसार
आरती उतारते हैं –

श्री राम तेरी आरती, जगदीश तेरी आरती

आरती सर्व प्रकार की प्रसन्नता की सूचक है। तू मेरे सब
के हृदय में विराजमान है। इन सब में तुम्हें देखते हुए
आरती उतारता हूँ।

श्री राम! आप हमको ज्योति देवें। मोह माया के बादलों
कर हमारे चिदाकाश में जो ज्योति प्राप्त हुई है वह मन्द
पावे।

जोत से जोत जगा दे राम, जोत से जोत जगा दे।
जोत जगे घट बीच, राम तेरी जोत जगे।
जोत जगे जग बीच, राम तेरी जोत जगे।
जोत से जोत जगा लो बहिनों, जोत से जोत जगालो।
जोत से जोत जगा लो साजन, जोत से जोत जगालो।
बार बार मिले राम मेला सजनां दा।
सर्वशक्तिमते परमात्मने श्री रामाय नमः।